वर्ष : २
अंक :
अगस्त, १९७

बंगला देश का नरसंहार

ओमेगा-१ : अहिंसक उत्तर

'ओमेगा-१' एक एम्बुलेंस गाडी है। सफेद रंगी हुई है। उस पर रेड क्रास बना हुआ है, जिसके चारो ओर इसी पृष्ठ पर दिया यह चिह्न 'ओमेगा' है। उस गाडी में चिकित्सा का सामान है, और चार-स्वयं सेवक है।

(विवरण पृष्ठ-३ पर)

नयी तालीम
शिक्षकों, प्रशिक्षकों एवं समाज शिक्षकों के लिए

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में शिक्षा

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर ८२३ करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे। इसमें से ५५२ करोड़ राज्यों के लिए और २७३ करोड़ केन्द्र के लिए निर्धारित है। यह धन 'पब्लिक सेक्टर' में खर्च होनेवाले कुल बजट का ५·२ प्रतिशत है। सन् १९६६ से १९६९ तक की अवधि में शिक्षा पर कुल बजट का ४·८ प्रतिशत ही खर्च किया गया था और इस दृष्टि से चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर खर्च किये जानेवाले धन में थोड़ी वृद्धि ही हुई है। फिर भी तृतीय पंचवर्षीय योजना में होनेवाले खर्च से यह खर्च कम है क्योंकि उस योजना में हमने कुल बजट का ६·९ प्रतिशत खर्च किया था। यह खर्च राष्ट्रीय आय के २ प्रतिशत से अधिक नहीं है। शिक्षा की आवश्यकताओं को देखते हुए यह अत्यन्त अपर्याप्त है।

वर्ष : २०
अंक : १

जापान, अमेरिका, रूस आदि विकसित देश अपनी कुल राष्ट्रीय आय का ६ प्रतिशत अंश शिक्षा पर खर्च करते हैं। शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त उन्नत होने पर भी अमेरिका प्रति व्यक्ति हमसे सौगुना अधिक खर्च करता है। परन्तु हम बावजूद अपने पिछड़ेपन के अपनी योजनाओं में शिक्षा को अत्यन्त नीचा स्थान दिये जा रहे हैं।'

शिक्षा के प्रति इस नियोजन का ही यह परिणाम हुआ है कि स्वतंत्रता के २४ वर्ष बाद भी न तो हम अपनी प्रौढ़-निरक्षता दूर कर पाये हैं और देश के बच्चों के लिए प्रारम्भिक शिक्षा को ही अनिवार्य कर सके हैं।

कोठारी कमीशन ने आशा की थी कि अगर विकसित देशो की भाँति राष्ट्रीय आय का ६ प्रतिशत शिक्षा पर व्यय किया जाय तो १९८५ तक १ से १४ वर्ष की आयु के बच्चो को प्रारम्भिक शिक्षा दी जा सकेगी और देश की निरक्षरता का भी उन्मूलन हो सकेगा। परन्तु चतुर्थ पचवर्षीय योजना मे शिक्षा के लिए जिस धन का प्रावि- धान किया गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे नियोजको ने अपनी पहली गलतियो से कुछ सीखा नही है और हम इस गति से इस शताब्दी मे न तो प्रौढ-शिक्षण की समस्या का हल कर पायेंगे और न प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य बना सकेंगे।

हमें यह भूलना नही चाहिए कि अनपढ-अशिक्षित व्यक्ति लोकतन्त्र का सबसे बडा खतरा है और आज के इस विज्ञान और तकनीकी के युग मे तो यह खतरा और भी बढ गया है। अशिक्षित व्यक्ति पर- म्पराओ से चिपका रहना चाहता है और परिवर्तन का विरोध करता है। ये दोनो प्रवृत्तियाँ प्रगतिशील लोकतन्त्र के लिए घातक हैं।

कोठारी कमीशन ने राष्ट्रीय आय का ६ प्रतिशत खर्च के लिए इसलिए भी सस्तुति की थी वह शिक्षा को कोरी पढाई-लिखाई तक ही सीमित न करके उसे उत्पादक बनाना चाहता था। इसीलिए उसने स्पष्ट शब्दो मे सस्तुति की थी कि 'कार्यानुभव' (वर्क एक्स- पीरिएन्स) को अर्थात् हाथ से किसी समाजोपयोगी उत्पादक धन्धे की वैज्ञानिक शिक्षा को प्रत्येक स्तर की सामान्य शिक्षा का अभिन्न अग बना दिया जाय और माध्यमिक शिक्षा को व्यवसायपरक बनाया जाय। उत्पादक काम की शिक्षा पर कोरी पढाई-लिखाई से प्रारम्भिक व्यय कही अधिक होता है। उसके लिए खेत और कारखाने का प्रबन्ध करना होता है, प्रशिक्षित अध्यापक की व्यवस्था करनी होती है। अगर योजना-आयोग कोठारी आयोग की सस्तुतियों पर विचार करते हुए शिक्षा के इस पक्ष पर ध्यान देता, तो शिक्षा पर इतने कम धन का प्राविधान नहीं करता। इस समय के बजट के आँकडे तो यही कहते है कि शिक्षा पहले की तरह अनु- त्पादक ही बनी रहेगी और उससे देश की सम्पदा मे कोई वृद्धि नहीं होगी। और शिक्षा द्वारा न व्यक्ति का इस प्रकार का सस्कार बनेगा कि वह अपने हाथो से काम करके अपने पैसे पर खडा हो सके।

—वशीधर श्रीवास्तव

मानवता की पुकार

१ जुलाई, १२ बजे दिन को 'ओमेगा-१' इग्लैण्ड मे सेण्ट मार्टिन से बगला देश के लिए चल पडी है। वहां से भारत के भीतर से होती हुई बगला देश जायेगी। सीमा पर रुकेगी नही, चलती ही जायेगी—वहां तक, जहां सेवा की जरूरत है। पाकिस्तान सरकार रोकेगी भी तो रुकेगी नही। ओमेगा की सेवा चलती रहेगी—जब तक उसके लोग पकड न लिये जायें, गोली से उडा न दिये जायें, किसी दुर्घटना के शिकार न हो जायें, या ऐसी दूसरी सेवा सस्थाएँ न खडी हो जायँ जो पाकिस्तान सरकार से स्वतन्त्र होकर काम कर सकें।

ओमेगा टीम भारत मे

पहली टीम अभी नयी दिल्ली मे है, उसकी गाडी बएरा से नयी दिल्ली भेजी जा रही है और वहां १० अगस्त को पहुँचेगी। दूसरी ओमेगा टीम के दो सदस्य बेन फुले, और रोजर मूडी गत २७ जुलाई, (मगलवार) को नयी दिल्ली पहुँच गये। दूसरी ओमेगा टीम के चार और सदस्य नयी दिल्ली आयेंगे। वे हैं एलेन कोनेट, डीरोन पर्लमुटिन, डान डियू और क्रिस्टिन पैरट।

वे सीमा पर किस प्रकार पहुँचेंगे यह उस समय की भारत की स्थिति पर आधारित है। परन्तु यह आशा की जाती है कि दोनो टीमे एक ही समय भीतर जायेंगी, सहायता कार्य के लिए दो सदस्यों को भारत मे छोडकर, जो सामान की आपूर्ति करेंगे, लन्दन से लगाव रखेंगे, और हर प्रकार से उन लोगों की सहायता करेंगे जो बगला देश के अन्दर हैं।

इस बीच ब्रिटेन मे चार आदमियों की टीम देश मे घूम-घूमकर लाउड-स्पीकर, पोस्टर, फोटो, और पर्चे द्वारा ओमेगा के सन्देश का प्रचार कर रहा है। पहली अगस्त को ट्रैफलगर स्क्वायर मे 'बगला देश रैली' ओमेगा के कार्य के लिए समर्थन और सहायता प्राप्त करने के लिए आयोजित हुई। ओमेगा की सहायता के लिए स्कूलो में चन्दे किये गये हैं, रेस्टोरा मे, सडकों पर चन्दे जमा किये गये हैं, ताकि ओमेगा की कार्रवाई चलती रहे।

× × × ×

ओमेगा की दोनों टीम ने १८ अगस्त को बगला देश मे प्रवेश किया। पाकिस्तानी सेना ने उन्हे आगे बढने से रोका और भारत मे वापस कर दिया। फिर भी ओमेगा टीम प्रयत्न नहीं छोड रही है।

शिक्षा में परिवर्तन आवश्यक

मानव मूल्यो के ह्रास के युग मे शिक्षा का क्षेत्र ही सबसे अधिक क्षतिग्रस्त होता है। धर्म, दर्शन, शासन आदि मानव जीवन के किसी एक अश से सम्बन्ध रखते हैं, किन्तु शिक्षा सम्पूर्ण मानव जीवन की मूल्यात्मक सजीवनी शक्ति है।

स्वतत्र होने के उपरान्त हमने इस बार-बार परीक्षित सत्य की उपेक्षा कर दी है, इसी से हमारे जीवन का वर्चस्व नष्ट होता जा रहा है। शिक्षा की दृष्टि से शिक्षक, विद्यार्थी, शिक्षा का लक्ष्य, भाषा, पाठ्यक्रम-प्रणाली, वातावरण तथा परीक्षा मे मूलगामिक परिवर्तन आवश्यक है। चेतन तत्व होने के कारण अध्यापक तथा विद्यार्थी दोनों के दृष्टिकोण तथा सम्बन्धों मे क्रान्तिकारी परिवर्तन शिक्षा के पुन निर्माण की पहली आवश्यकता है। जो अपने स्वत्व से अनभिज्ञ है, वह अपने अधिकार की माँग करने मे भी असमर्थ रहता है।

विश्वास है शिक्षा मे क्रान्ति का आह्वान हम सबमे उस आत्म विश्वास को जमा सकेगा जो 'सा विद्या या विमुक्तये'' मे ध्वनित होता आ रहा है।

—महादेवी वर्मा

अभियान का स्वागत

यह प्रसन्नता की बात है कि देश का नवयुवक वर्ग देश की गिरती हुई अवस्था के प्रति सजग और सचेत हो रहा है। अंग्रेजो के शासनकाल मे हमारे देश मे जो शिक्षा-पद्धति प्रचलित थी उसका मुख्य उद्देश्य था देश मे अंग्रेजो के शासन में सहयोग देनेवाले वर्ग की स्थापना, यानी उनके गुलाम क्लर्कों को तैयार करना। उच्चतम कक्षाओं म, जहाँ केवल कुछ चुने हुए सम्पन्न घरो

के लोग ही जा सकते थे, वैज्ञानिक शिक्षा की व्यवस्था थी, लेकिन इस शिक्षा को प्राप्त करनेवाले लोगों को भी शासकों की गुलामी में रहकर शासक वर्ग के हित के लिए ही काम करना पड़ता था। वैसे समस्त जनता असहाय अवस्था में छोड़ दी गयी थी।

देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद भी शिक्षा की प्राचीन परिपाटी वैसी की-वैसी कायम है। आज भी शिक्षण संस्थाओं में क्लर्क तैयार हो रहे हैं। जीवन के निर्माण का काल इस व्यर्थ की शिक्षा में बिता देने के बाद विद्यार्थी श्रम से विमुख हो जाते हैं उनके अन्दरवाला समस्त उत्साह जाता रहता है एक तरह से उनकी प्राण शक्ति ही क्षय हो जाती है। उनके हाथ आती है कुण्ठा और निराशा। और हरेक व्यक्ति जीवित रहने के लिए गुलामी अथवा नौकरी के पीछे दौड़ने लगता है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि शिक्षा की ओर देश के नेतृत्व एवं शासन का ध्यान गया ही नहीं। सत्ता जिन लोगों के हाथ में आयी वह गुट बनाकर अपना स्वार्थ साधन करने में लग गये और देश का नवयुवक वर्ग विवश एवं असहाय सा नैतिक तथा आत्मिक ह्रास की ओर बढ़ने लगा।

जनतंत्र सजग और सचेतन जन की ही परम्परा है। हमारा नवयुवक वर्ग सजग एवं सचेत हो रहा है यह हर्ष और सन्तोष का विषय है। यह नवयुवक वर्ग ही अपने आन्दोलनों से देश के शासन तथा नेतृत्व को देश में बढ़ती हुई निरावलम्बन, निराशा तथा बेकारी की समस्याओं को हल करने पर मजबूर कर सकता है।

मैंने तरुण शांतिसेना की विज्ञप्ति पढ़ी, और मुझे लगा कि देश के नव युवक वर्ग में एक ऐसा भी भाग है जो निराशा और कुण्ठा की निष्क्रियता से ऊपर उठकर अपने तथा देश के निर्माण के प्रति सजग एवं सचेतन है और कार्यरत हो रहा है। शिक्षा में आमूल परिवर्तन के बिना काम नहीं चलेगा। नवयुवकों के इस अभियान से देश का शासन तथा नेतृत्व अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर देश की आधारभूत समस्याओं को सुलझाने के लिए विवश हो, इस उद्देश्य का मैं स्वागत करता हूँ। इस सजग एवं सचेत युवा वर्ग के साथ मेरी समस्त शुभकामनाएँ हैं, और समय पड़ने पर मेरा पूरा सहयोग भी उसे प्राप्त होगा।

२ ८ '७१, चित्र लेखा
महानगर, लखनऊ.

—भगवती चरण वर्मा

काकासाहेब कालेलकर

शिक्षा में क्रान्ति : कब और कैसे ?

एक जमाना था जब शिक्षाशास्त्री आपस मे मिलकर चर्चा करते थे कि विद्यार्थी को किस प्रकार पढ़ाया जाय। उन्होने माँ-बापो के द्वारा समाज को भी समझाया कि ठोक पीटकर बच्चो को पढाने मे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक है। इससे बच्चो के चारित्र्य में काफी गिरावट आती है और उनकी बुद्धि कुछ क्षीण ही होती है। शिक्षक कोई पुलिस नही है कि मारकर या धमकाकर नयी पीढ़ी को सीधा कर दे। शिक्षा की कला इसमे है कि बच्चो की बुद्धि मे, भावनाओ मे और आदतो मे सुधार हो जाय, जीवन के हरएक क्षेत्र मे सफलता पाने के लिए जरूरी कौशल्य वे प्राप्त करें और साथ साथ अपनी सामाजिक जिम्मेदारी समझनेवाले नागरिक भी वे बनें।

इन सब बातो में समाज की कितनी प्रगति हुई सो कहना कठिन है लेकिन शिक्षा पद्धति के आदर्श समझने में, लोकमानस मे काफी प्रगति हुई है। लकिन आज का जमाना 'शिक्षा-पद्धति' मे क्रान्ति की बात नहीं करता, जबकि आज आवश्यकता है 'सम्पूर्ण शिक्षा मे क्रान्ति' की।

शिक्षा किसे देनी है ? किसलिए देनी है ? शिक्षा के द्वारा हम जीवन के सब क्षेत्रों में क्या-क्या प्रगति करना चाहते हैं ? शिक्षा के द्वारा धर्मों को हम सुधार सकते हैं या नहीं ? राज्यतन्त्र को सुधारने का काम शिक्षा के द्वारा हो सकेगा या नहीं, ऐसे अनेक सवाल उठते हैं।

गांधीजी का कहना था कि आजकल के समाज मे ऊपर के चन्द लोगो को ही शिक्षा मिलती है और वह भी अशिक्षित लोगों का शोषण करने की कला मे प्रवीण बनने की शिक्षा दी जाती है। फलत शिक्षित लोगों का जीवन बिगड़ता है। वे आलसी और परावलम्बी बनते हैं। आजकल शिक्षित की परिभाषा अगर की जाय तो कहना पड़ेगा 'शिक्षित आदमी वह है जो स्वय कभी भी शरीरश्रम नहीं करेगा।' वह अगर उत्पादक शरीरश्रम करेगा तो उसकी प्रतिष्ठा कम हो जायेगी। अगर डाक्टर ने शरीरश्रम करने की सलाह दी तो 'टेनिस' खेलेगा या पैदल घूमने जायेगा। 'सुशिक्षित वह है जो सामान्य जनता को अशिक्षित रखकर उसके श्रम से लाभ उठाने का तन्त्र सगठित कर सके।' कोई भी सुशिक्षित मनुष्य ऐसी निर्लज्ज व्याख्या मान्य नहीं करेगा। लेकिन अपने जीवन के द्वारा इसी व्याख्या की सत्यता वह सिद्ध करता है।

गाधीजी का कहना था कि राष्ट्रीय शिक्षा मे ग्रामोद्योग की, हस्तोद्योग की, शिक्षा देने से विद्यार्थी म श्रमजीवन की ग्रादत पड़ेगी। पिछड़े व श्रमिक लोगों का शोषण करने की उसकी वृत्ति भी नही रहेगी। एकत्रित पूजी के मुनाफे पर ग्रथवा सूद पर जीने की इच्छा भी वह नही करेगा, जिसे उत्पादक परिश्रम करने का ग्रानन्द मिला है।

जनता के जीवन का प्रधान हिस्सा ग्राजीविका प्राप्त करने मे व्यतीत होता है। मनुष्य को जीने के लिए चाहिए—ग्रन्न, वस्त्र, मकान ग्रौर काम करने के लिए तरह-तरह के स्थूल ग्रौर सूक्ष्म साधन, जिसे हम ग्रौजार कहते हैं। ग्रन्न के लिए हम खेती ग्रौर बागवानी करते हैं। उसके बाद ग्राता है वस्त्र का उद्योग जो उद्योग ग्रगर गाँव के लोगो के ग्रौर किसानो के हाथ मे रहा तो समाज का स्वास्थ्य बिगड़ने का डर नहीं रहता।

राष्ट्र के सबसे श्रेष्ठ ग्राधार स्तम्भ हैं किसान ग्रौर जुलाहा। इनके साथ साथ ग्राते हैं बढ़ई, लुहार ग्रादि कारीगर। इनके बाद ग्राते हैं हिसाब लेखक ग्रौर मुहर्रिर, चित्रकार ग्रादि। इनके बाद ग्रायेंगे वैद्य ग्रादि दवा करनेवाले लोग। समाज ग्रगर निरोगी है तो हरेक घर का सारा काम घर के लोग ही करेंगे। सफाई करने के लिए, बर्तन मांजने के लिए ग्रथवा पाँव दबाने के लिए मजदूर रखने में लोगों को शर्म ग्रायेगी।

गांधीजी का कहना है कि व्यापक ग्रर्थ मे ग्राजीविका प्राप्त करने के प्रयत्न मे ही सब उद्योगो के, विज्ञान के ग्रौर समाज-व्यवस्था चलाने के शास्त्र तैयार हुए हैं। इसीलिए ग्राजीविका की कला सीखते सीखते उन्ही की मदद से विज्ञान ग्रादि सब विद्या कलाएँ सिखानी चाहिए।

गाधीजी का उद्देश्य था कि सारे देश में शोषण रहित-ऊँच नीच भेद रहित, ग्रहिंसक समाज व्यवस्था की स्थापना की जाय ग्रौर शिक्षण इसी हेतु दिया जाय।

लेकिन ग्राजकल के समाज मे गाधीजी का यह ग्रादर्श ग्रमल मे लाने की हिम्मत नहीं है, इच्छा भी नहीं है। उसे तो विज्ञान ग्रौर यंत्र विद्या के द्वारा, जो तरह-तरह के साधन पैदा किये जाते हैं उन्हीं में पढ़ाया करना, यन्त्रोद्योग द्वारा वस्तुनिर्माण करना यन्त्रोद्योगी वस्तुएं बेचकर धन कमाना, सारी समाज-व्यवस्था सरकार नाम की हिंसा-कुशल संस्था द्वारा चलाना ग्रौर ऐसे करते हुए शिक्षा का सार्वत्रिक प्रचार करना ग्रौर श्रमजीवी दबी हुई, बेचारी जनता के दु:ख का निवारण करना ग्रधिकाधिक सत्ता ग्रौर संपत्ति सरकार

नामक राज्य संस्था के हाथ में दे देना, और उसके द्वारा समाज की स्थिति सुधारना, इतना ही चाहिए।

ऐसे आदर्श का विकास पश्चिम में बहुत हुआ है। उनके यहाँ की चर्चा से लाभ उठाकर वही आदर्श जैसा वहाँ है वैसा ही यहाँ दाखिल करना यह है आज के हमारे अच्छे से अच्छे राष्ट्रीय नेताओं का आदर्श। इसलिए वे कहने लगे हैं कि गांधीजी के आदर्श आज के जमाने के काम के नहीं हैं।

यह है आज की स्थिति और हमें ऐसे लोगों में उन्हीं के द्वारा शिक्षा में क्रान्ति लानी है। लोगों को समझना चाहिए कि 'जैसा होगा जीवन का आदर्श, उसी के अनुकूल हो सकेगी शिक्षा की पद्धति'। इसलिए जब तक हम जीवन में क्रान्ति करने में एकमत नहीं हुए हैं, शिक्षा में क्रान्ति करने की आशा व्यर्थ है। आज तक शहर के लोग और शहरी जीवन गाँवों का शोषण करते आये हैं। शहरों में और गाँवों में भी उच्चवर्ग के लोग निचले वर्ग के लोगों का शोषण करते हैं। पुरुष वर्ग स्त्री-जाति का शोषण करता है। धर्माचार्य और धर्मप्रचारक (इनमें निराग्रही, नि सग अपरिग्रही, अविवाहित सन्यासी भी आ गये।) सामान्य भोले भक्तिमान लोगों का शोषण करते हैं।

केवल कानून बनाने से यह शोषण बन्द नहीं होगा। एक तरह का शोषण रोका तो उसी में दूसरी तरह का शोषण खड़ा हो ही जाता है। अत चाहिए 'शोषण के जीवन को टालने की वृत्ति' यानी चाहिए सामाजिक जीवन में क्रान्ति और जीवन में क्रान्ति आयेगी तब जबकि बचपन से उस प्रकार की शिक्षा दी जायेगी।

हम चाहते हैं कि विद्यार्थी अभिभावक, शिक्षक, संस्था चलानेवाले सचालक, शिक्षाशास्त्री समाज का सम्पूर्ण जीवन अपने काबू में लाने की महत्वाकांक्षा रखनेवाली सरकार और सरकार को अपने हाथ में रखने की कला में प्रवीण लोकनेता ये सब आपस में विचार-विनिमय करें और कोई एक निर्णय करें।

मैं चाहूँगा कि हरेक नागरिक पुरुष या स्त्री अपने मन में सोचे कि क्या उसे दूसरे को दु:खी करके जीना है ? या दूसरों का दु ख दूर करने के लिए ? इस एक प्रश्न में जीवन की सारी क्रान्ति आ जाती है। मैं चाहूँगा कि तरुण शान्तिसेना में काम करनेवाले लडके लडकियाँ चौदह हों या अधिक इस एक प्रश्न को अपने मन के साथ निश्चय करें, केवल चर्चा के लिए नहीं किन्तु जीवन के आदर्श के तौर पर। इतना करने पर उनकी सारी चर्चा में नयी जान आयेगी, और उनके मन में नये नये सवाल खड़े होंगे।•

शिक्षा में क्रान्ति : दृष्टि और दिशा

हम शिक्षा में क्रान्ति चाहते चाहते हैं। लेकिन हम क्या चाहते हैं?

शिक्षा की अनेक परिभाषाएँ हैं—सब एक से-एक बढ़कर। लेकिन सबमें यह संकेत है कि शिक्षा के बिना मनुष्य मनुष्य नहीं बन सकता, इसलिए शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो मनुष्य को मनुष्य बनाये। यह प्रयोजन बुरी शिक्षा से नहीं सिद्ध होता। जैसे खराब भोजन से शरीर खराब होता है उसी तरह कुशिक्षा से संस्कृति खराब होती है। अनुभव से यह सिद्ध हो गया है कि कुशिक्षा अशिक्षा से कहीं अधिक बुरी होती है। और यह भी सिद्ध है कि साक्षरता शिक्षा नहीं है। साक्षरता के बिना भी शिक्षा संभव है। यह मानना भूल है कि शिक्षा कहीं से शुरू होकर कहीं खत्म होती है। कोई डिग्री मिल गयी तो शिक्षा पूरी हो गयी, यह विचार आज के विज्ञान और लोकतन्त्र के जमाने में सर्वथा गलत है। जब तक जीना है तब तक सीखने, सुधारने, सँवारने का क्रम चलना चाहिए—गर्भ से मृत्यु तक। जीवन भर चलनेवाले इस क्रम में ग्रंथ और गुरु सहायक हो सकते हैं, लेकिन सच्ची शिक्षा वही होगी जो मनुष्य स्वयं अपने को देगा। यह क्षमता शिक्षा द्वारा हर एक में पैदा होनी चाहिए।

विज्ञान और लोकतन्त्र की भूमिका में हम अपने देश के संदर्भ में शिक्षा के दो लक्ष्य मान सकते हैं। एक यह कि शिक्षा पाकर हर व्यक्ति अपने लिए

ईमान की रोटी और इज्जत की जिन्दगी प्राप्त कर सके। दूसरे यह कि शिक्षा पाकर देश के लाखो गाँवो और शहरो मे रहनेवाले ५६ करोड लोग शांति के साथ मिल जुलकर रह सकें। पहले लक्ष्य को आर्थिक तथा दूसरे को सामाजिक, सांस्कृतिक, और आध्यात्मिक भी मान सकते हैं।

मनुष्य अपने पेट से जुडा हुआ है। पेट ही नहीं, वह प्रकृति और पडोसी के साथ भी जुड़ा हुआ है। किसी न-किसी रूप मे उसने अपने को परमेश्वर के साथ भी जोड रखा है। इस तरह हमारे जीवन का एक अनुबंध वृत्त (यूनिवर्स आव कारिलेशन) है जिसमे पेट, पडोसी, प्रकृति और परमेश्वर, चार मुख्य तत्व है। इसी अनुबंध से सारे ज्ञान विज्ञान का जन्म हुआ है। इसलिए इस अनुबंध से अलग हटकर शिक्षा सच्ची शिक्षा नही हो सकती, और मनुष्य का सच्चा विकास भी नही हो सकता।

आज की शिक्षा हमे इन चार मे से किसी के भी साथ नही जोडती, इस लिए वह सर्वथा त्याज्य है। लेकिन शिक्षा अकेली नही है, वह देश मे प्रचलित सम्पूर्ण व्यवस्था का अंग है। यह सम्भव नही है कि हम एक ओर शिक्षा को जड से बदल दें और दूसरी ओर राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था को ज्यों-की त्यो छोड दें। क्रान्ति के लिए राजनीति, अर्थनीति शिक्षानीति, समाजनीति और धर्मनीति, जिनको मिलाकर जीवननीति बनती है सबको साथ बदलना चाहिए। लेकिन अगर इनमे से किसी क्षेत्र मे सुधार करना हो तो सुधार ऐसा होना चाहिए जो क्रांति की दिशा मे ले जानेवाला हो।

शिक्षण की किसी नयी सुधार-योजना म बाल शिक्षण और प्रौढ शिक्षण, दोनों को साथ साथ सोचना चाहिए। बालशिक्षण से समाज बनता है, लेकिन समाज बदलने के लिए प्रौढ शिक्षण अनिवार्य है। हमे समाज को बदलना भी है, और बनाना भी, इसलिए हमारे लिए विद्यालयो म पढनेवाले विद्यार्थियो की शिक्षा का जितना महत्व है उससे कम महत्व उन करोडो प्रौढों का नही है जो गाँवो शहरो मे रह रहे हैं और खेतो-खलिहानों, कारखानों, दूकानो और दफ्तरों में काम कर रहे हैं। जब हम लडकों लडकियो को उत्पादक हुनर सिखाना चाहते हैं तो जो लोग उत्पादक या अन्य उपयोगी कार्यो मे पहले से लगे हुए हैं उन्हें शिक्षित प्रशिक्षित करने की बात क्यो नही सोचेंगे?

लोकतन्त्र में सरकार बनाने बदलने का काम प्रौढ वोटरो का है, लेकिन समाज परिवर्तन का काम किसका है? अगर लोक चेतना परिवर्तन को स्वीकार न करे और लोक शक्ति परिवर्तन के लिए स्वय आगे न बढे और परिवर्तन के बडे काम को सरकार के हाथ मे सौंप दे तो निश्चित है कि घूम फिर कर सरकार

की शक्ति सेना के हाथ में चली जायगी, और सैनिक शासन का प्रभुत्व जम जायगा चाहे वह पाकिस्तान की तरह नंगा खुला हुआ हो या अमेरिका की तरह छिपा हुआ। इस दृष्टि से समाज के जीवन को सरकार के प्रभुत्व से बचाना लोकतन्त्र की इस समय सबसे बड़ी समस्या है। उसके लिए समाज को तैयार करने का काम शिक्षण का है। इस संदर्भ में प्रौढ़ शिक्षण (या लोक शिक्षण) का अर्थ है शिक्षण को एक नयी सामाजिक शक्ति बनाना। इसलिए जहाँ एक ओर बाल शिक्षण को रचनात्मक बनाने का काम है वहाँ लोक शिक्षण को क्रांतिकारी बनाने का उतना ही बड़ा काम है।

क्रांतिकारी लोक शिक्षण में शिक्षण, विकास और समाज-परिवर्तन (यानी नये सामाजिक सम्बन्ध) बहुत हद तक एक ही समन्वित प्रक्रिया के विभिन्न अंग हैं। ग्रामदान ग्रामस्वराज्य की योजना में यह समन्वय स्पष्ट दिखाई देता है। इस समन्वय के आधार पर लोक शिक्षण का अभ्यास क्रम बनना चाहिए। स्वभावतः शिक्षण के ऐसे समन्वित अभ्यास क्रम में हर गाँव, हर मुहल्ला हर कारखाना और हर कार्यालय एक 'विद्यालय' बन जायगा, और हर व्यक्ति अपने विद्यालय का विद्यार्थी। उस 'विद्यालय' में काम करते करते वह सोचेगा कि (क) कार्य-क्षमता के विकास के आधार पर उसकी कमाई कैसे बढ़े (ख) उसमें उस बुद्धि और चरित्र का विकास कैसे हो कि वह अपने परिवार और पड़ोसियों के बीच शांति, सहयोग और सम्मान के साथ रह सके, (ग) देश में उत्पादन और प्रशासन की वह व्यवस्था कैसे कायम होगी जिसमें लोकतन्त्र का अवसर और विज्ञान का साधन हर व्यक्ति को उपलब्ध हो।●

नरदेव शर्मा कपरुआया

सोवियत माध्यमिक विद्यालय में कक्षा-शिक्षक का स्थान और कार्य

सोवियत माध्यमिक विद्यालय मे विद्यार्थियों के सर्वाङ्गीण विकास पर बड़ा बल दिया जाता है। विद्यार्थियो के सर्वाङ्गीण विकास मे कक्षा शिक्षक का बड़ा महत्व है। इस प्रकार के शिक्षक की व्यवस्था सोवियत संघ में सबसे पहले सन् १९३१ मे हुई और २५ मई १९३४ के राजकीय निर्देशों के अनुसार कक्षा-शिक्षक का कार्य-क्षेत्र निर्धारित किया गया। इसके उपरान्त सन् १९६० मे पुन कक्षा शिक्षक के कार्य क्षेत्र का निर्धारण हुआ।

पहली तीन कक्षाओ मे कक्षा शिक्षक का कार्य भी वही शिक्षक करता है जो कि उन कक्षाओ मे सभी विषयो का अध्यापन करता है। चौथी से दसवीं कक्षा तक प्रत्येक कक्षा मे कक्षा-शिक्षक की नियुक्ति उन शिक्षकों मे से होती है जो उस कक्षा मे अध्यापन करते हैं। माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक (डायरक्टर) कक्षा शिक्षक की नियुक्ति कक्षा के अनुभवी शिक्षकों मे से करते हैं। कक्षा-शिक्षक एक कक्षा के साथ पाचवी कक्षा से लेकर दसवी कक्षा तक कक्षा-शिक्षक का काय करता है।

कक्षा-शिक्षक के तीन प्रमुख कार्य हैं —

(१) अपनी कक्षा के सभी शिक्षकों के कार्य में समन्वय स्थापित करना, (२) कक्षा के सभी विद्यार्थियो के शैक्षिक-सुसंस्कृतात्मक कार्य को दिशा देना और उसका संगठन करना, (३) विद्यालय का परिवार के साथ सम्बन्ध स्थापित करना।

कक्षा-शिक्षक की रुचि प्राय विद्यार्थियो के सामान्य व राजनैतिक विकास म, चरित्र के विभिन्न पहलुओ म, अध्ययन-कार्य के साथ विद्यार्थियो के सम्बन्ध और शैक्षिक श्रम मे, विद्यार्थियो के दायित्व के स्तर म और अनुशासन और सुसंस्कृत व्यवहार में होती है। कक्षा शिक्षक विद्यार्थियो के जीवन की परिस्थितियो, उनकी अध्ययन रुचियो, योग्यताओं और रुझानो, विद्यार्थियों के पारस्परिक सम्बन्धो को जानने तथा उनकी उच्च प्रकार की प्रगति तथा कक्षा-अनुशासन को दृढ करने के लिए कठिन प्रयास करता है। वह विद्यार्थियो को जीवन व उत्पादक श्रम के लिए प्रशिक्षित करने और उनके व्यावसायिक मार्ग

दर्शन म भाग लेता है। कक्षा की सहगामी क्रियाओं के लिए वह कमसामोल व पायनियर संगठनों को सहायता करता है।

कक्षा-शिक्षक का प्रमुख दायित्व विद्यार्थियों का सर्वाङ्गीण अध्ययन करना है। कक्षा शिक्षक विद्यार्थियों के बारे मे कई प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त करता है। अपने पाठो मे व अन्य शिक्षकों के पाठो में विद्यार्थियो का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करता है। इसी प्रकार कक्षा सभाओं मे तथा सहगामी कार्यकलापों के समय विद्यार्थियो का निरीक्षण करता है, उनके मित्रो व उनके माता पिताओं के साथ बातचीत करता है।

उपरोक्त प्रकार की सभी सूचनाएँ व निरीक्षण परिणाम कक्षा शिक्षक अपनी दैनिक डायरी मे क्रमबद्ध रूप से अंकित करता है। कई कक्षा-शिक्षक अपनी डायरी के दो तीन पृष्ठ ऐसे रखते हैं जहाँ पर कि कुछ प्रश्नों के उत्तर व सामान्य सूचनाएँ—जैसे सामाजिक कार्य, विद्यार्थी-परिषदो मे भाग, कमसामोल व पायनियर संगठन मे भाग आदि—अंकित की जाती हैं।

विद्यार्थियों की प्रगति और अनुशासन का स्तर ऊँचा करने मे कक्षा-शिक्षक का कार्य—इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कक्षा-शिक्षक नियमित रूप से विद्यार्थियो की प्रगति की जाँच करता रहता है नियमित रूप से कक्षा-प्रगति चार्ट को देखता है, कक्षा मे पढ़ानेवाले सभी शिक्षकों से विचार-विमर्श करता है, उनके पाठो को देखता है। वह इस बात का प्रयत्न करता है कि सभी शिक्षकों की विद्यार्थियो के प्रति अपेक्षाएँ समान हो। गृहकार्य देने मे समानता के सिद्धान्त का पालन कराता है जिससे विद्यार्थियो पर गृहकार्य का बहुत बोझा न पड़े।

माता पिताओं को विद्यार्थियों के सम्बन्ध मे ठीक सूचना देने की दृष्टि से कक्षा शिक्षक प्राय सप्ताह मे एक बार कक्षा-प्रगति चार्ट की जाँच करता है। इस सप्ताह मे विद्यार्थियो ने जो अंक प्राप्त किये वह उनकी दैनिक डायरी मे लिखे गये कि नहीं, और यदि कोई अंक नहीं अंकित किया गया तो वह स्वय उसमें लिखता है। वह ही प्राय दैनिक डायरी मे जाँचकार्य के अंक भी लिखता है। कक्षा शिक्षक इस बात की भी जाँच करता है कि विद्यार्थियों की दैनिक डायरी म उनके अभिभावकों के हस्ताक्षर हुए कि नहीं। यदि आवश्यक हो तो विद्यार्थियो की डायरी मे अनुशासन भंग करने तथा विद्यालय की विभिन्न अपेक्षाओं की पूर्ति सम्बन्धी विवरण भी भरता है। यदि कक्षा शिक्षक यह देखता है कि कोई विद्यार्थी उचित कारण से अध्ययन मे पिछड़ा हुआ है और उसे सहायता की आवश्यकता है, तो वह कक्षा में अध्यापन करनेवाले

शिक्षक अथवा कक्षा के किसी योग्य बालक से उसको पढ़ाने के सम्बन्ध में बात करता है। कई बार पायनियर व कमसामोल समूह इस कार्य में सहयोग करते हैं। यह सहायता विशेष रूप से उस परिस्थिति में अपेक्षित है जब कक्षा-शिक्षक यह समझता है कि विद्यार्थी पर सामूहिक प्रभाव का असर होगा।

विद्यार्थियों के साथ कक्षा शिक्षक के कार्य में निरीक्षण और वैयक्तिक विचार विमर्श का बड़ा महत्त्व है। न० इ० बलदीरेव ने सुझाया है कि निरीक्षण कार्य में कक्षा शिक्षक केवल तथ्यों का विवरण ही न करे वरन् विद्यार्थियों के व्यवहार के लक्षणों और कारणों का भी स्पष्टीकरण करे तथा उसकी योग्यता के अनुसार प्रत्येक विद्यार्थी पर अच्छा प्रभाव डालने के लिए मार्ग-निर्धारित करे। "जैसे उदाहरण के लिए यदि अपने लम्बे समय के निरीक्षण के परिणामस्वरूप कक्षा-शिक्षक इस परिणाम पर पहुँचा कि विद्यार्थी समूह के जीवन में भाग नहीं लेता है तो ऐसी अवस्था में उससे केवल इतना ही अपेक्षित नहीं है कि वह इसके कारणों को स्पष्ट करे बल्कि अमुक विद्यार्थी को सामाजिक कार्य में भाग लेने के लिए आकर्षित करने के उपाय अपनाये, उसमें अपनी कक्षा के जीवन के प्रति रुचि उत्पन्न करे।"

कक्षा-शिक्षक विस्तृत रूप से वैयक्तिक विचार-विमर्श विधि का प्रयोग करता है। वह ऐसे विषयों—जैसे दिनचर्या, घर पर पाठ की तैयारी कैसे करें आदि—पर सामूहिक विचार-विमर्श का भी संगठन करता है। वह विद्यार्थियों की विद्यालय में उपस्थिति पर भी ध्यान देता है। बिना कारण दो दिन से अधिक अनुपस्थित होने पर शिक्षक पायनियर व कमसामोल संगठनों से आग्रह करता है कि वह किसी को विद्यार्थी के घर भेजे व उसकी अनुपस्थिति का पता चलायें।

सोवियत शिक्षाशास्त्री तच्याना अन्द्रेवना इलिना ने सुझाव दिया है कि विद्यार्थियों की प्रगति का "सप्ताह में तुम्हारा अध्ययन" नामक बोर्ड (बुलेटिन) बनाया जाय जिसमें उन सभी अंकों का प्रदर्शन हो जो कि विद्यार्थियों ने प्रत्येक पाठ में प्राप्त किये हों। साथ-ही-साथ इसमें उनका भी प्रदर्शन हो जो कि सप्ताह के परिणामों के अनुसार अच्छे हों या पिछड़े हुए हों।

कक्षा-शिक्षक सामाजिक कार्य में अधिक विद्यार्थियों को आकर्षित करता है जिससे सामाजिक कार्य में उनकी रुचि उत्पन्न हो और समूह में कार्य का कौशल उत्पन्न हो। कक्षा-शिक्षक का एक प्रमुख कार्य यह है कि अच्छे विद्यार्थियों को कमसामोल संगठन में प्रवेश के लिए तैयार करे।

कक्षा शिक्षक के कार्य मे "कक्षा शिक्षक के कालांश" का बड़ा महत्त्व है। इस कालांश मे प्रायः कक्षा के अध्ययन और शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं पर विचार-विमर्श होता है। कभी कभी इसमें कक्षा-शिक्षक नैतिक विषयो पर चर्चा करते हैं। इस प्रकार के विचार विमर्श विद्यार्थियों के नैतिक विश्वास को बढाने मे सहायता करते हैं। कक्षा-जीवन से सम्बन्धित घटनाओं पर विचार-विमर्श का इसमे बड़ा महत्व है। यह जाँच करने के लिए कि नये वातावरण मे विद्यार्थी कैसे व्यवहार करते हैं, कक्षा-शिक्षक अलग-अलग विद्यार्थियो के लिए अथवा समस्त विद्यार्थियो के लिए जीवन सम्बन्धी वास्तविक परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है और उनके व्यवहार का नयी परिस्थितियो मे अध्ययन करता है। उदाहरण के लिए, यह जानने के लिए कि एक विद्यार्थी अन्य साथियों के साथ पाठ के अतिरिक्त समय मे किस प्रकार का व्यवहार करता है, उसमे सामूहिकता की भावना का विकास हुआ है कि नहीं, कक्षा-शिक्षक उसे सामूहिक, सामाजिक कार्य की ओर आकर्षित करता है।

कक्षा-शिक्षक अन्य शिक्षकों के साथ तथा कमसामोल व पायनियर सगठनो के सक्रिय कार्य के सहारे कई प्रकार के सहगामी कार्यकलापों का आयोजन करता है—जैसे विद्यार्थियों का सामाजिक लाभप्रद श्रम, राजनीतिक विषयो पर चर्चा, निबन्धों का पाठन, पाठक-सम्मेलन, वादविवाद तथा निश्चित विषयों पर बैठक, सग्रहालयो तथा प्रदर्शनियो में भ्रमण, सिनेमा और थियेटर देखना और देखी हुई फिल्मो व नाटकों की समालोचना, विद्यार्थियो को विषय-सम्बन्धी क्लबों तथा अन्य क्लबो की ओर आकर्षित करना, विभिन्न प्रकार की यात्राएँ।

कक्षा शिक्षक के महत्वपूर्ण लक्ष्यों और कार्यों मे से, जैसा कि प्रो० ईवान अफिमोविच अगरोदनिकोव ने भी लिखा है, एक लक्ष्य विद्यार्थियो की सैद्धान्तिक राजनीतिक व नैतिक शिक्षा है। अत यहाँ पर राजनीतिक सूचनाओं का उल्लेख करना भी उपयुक्त होगा। कक्षा शिक्षक पायनियर व कमसामोल सगठनो के द्वारा महत्त्वपूर्ण घटनाओं (राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय) से परिचय कराता है। पाँचवीं से छठी कक्षा मे यह कार्य "पायनियर प्रावदा" के ऐसे प्रश्नों की संक्षिप्त टिप्पणी द्वारा होता है जैसे हमारे समय के वीर, ससार म हमारे मित्रो के यहाँ, पूँजीवादी देशो के बच्चे। विद्यार्थी भी विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करते हैं। कई विद्यालयों मे "वर्तमान राजनीति के क्लबो का सगठन किया जाता है। अनुभवी कक्षा-शिक्षक इस बात का प्रयास करते हैं कि विद्यार्थियों को राजनीतिक शिक्षा का उनके सामाजिक

कार्य के साथ सम्बन्ध जोड़ा जाय। कक्षा-शिक्षक अन्य शिक्षकों के साथ मिलकर विद्यार्थियों को पुस्तकों के चुनाव मे सहायता करता है, विद्यार्थियों के अध्ययन-क्षेत्रों का निर्धारण करता है, अच्छी पुस्तकों पर विचार-विमर्श आयोजित करता है। विद्यार्थियों और माता पिताओं को इस सम्बन्ध में परामर्श देता है कि घर पर अध्ययन कैसे किया जाय। इसका सम्बन्ध मुख्य रूप से पाँचवीं से आठवीं तक के विद्यार्थियों से है। बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थियों को पूरक पुस्तकों के चुनाव मे काफी स्वतन्त्रता होती है।

कक्षा-शिक्षक का विद्यार्थियों के माता-पिता के साथ कार्य

बच्चों की शिक्षा मे परिवार की सहायता करते हुए कक्षा-शिक्षक माता-पिताओं को विद्यालय की उन अपेक्षाओं से परिचित कराता है जो कि विद्यार्थियों के दैनिक कार्यक्रम, पाठों की तैयारी, उनको घरेलू श्रम के प्रति आकर्षित करने से सम्बन्धित है। उसका यह भी प्रयास होता है कि विद्यालय और परिवार की अपेक्षाओं मे समन्वय उत्पन्न करे। कक्षा-शिक्षक माता-पिताओं के लिए कम्युनिस्ट शिक्षा के प्रश्नों पर व्याख्यान आयोजित करता है जिसमें यह बताया जाता है कि वे कौन से साधनों व विधियों का उपयोग करें जिससे नैतिक, श्रमीय, सौन्दर्य-शिक्षा आदि तथा बच्चों के स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने में योग दे सकें। व्याख्यानों के अतिरिक्त कक्षा-शिक्षक विद्यार्थियों के माता-पिता के साथ वैयक्तिक विचार विमर्श करता है। इसी समय वह अपने निरीक्षण की जाँच करता है। अपनी भिन्न राय को स्पष्ट करता है। बच्चों के चरित्र की विशेषताओं से उनको अवगत कराता है और उनमें निश्चित प्रकार के गुण उत्पन्न करने के लिए परामर्श देता है। अलग-अलग परिवार की आर्थिक कठिनाइयों की जानकारी प्राप्त कर कक्षा शिक्षक विद्यालयी माता-पिता समिति के द्वारा आर्थिक सहायता का आग्रह करता है। उन परिवारों के लिए आर्थिक सहायता का आग्रह उस धन मे से करता है जिसकी व्यवस्था राष्ट्रीय सरकार द्वारा की गयी है।

कक्षा शिक्षक माता पिता वर्ग को विद्यालय की सहायता के लिए विस्तृत स्तर पर आकर्षित करता है। माता पिता विद्यालयी और कक्षा की समितियों में भाग लेते हैं, वे विद्यालय मे आकर विभिन्न कार्यों म सहायता करते हैं। अलग-अलग विद्यार्थियों की जीवन परिस्थितियों का पता चलाते हैं। कई विद्यालयों में विद्यार्थियों की भोजन-व्यवस्था का प्रबन्ध करने म सहायता करते हैं।

कक्षा-शिक्षक माता-पिताओं की सभाओं में कभी-कभी "परिवार और विद्यालय" नामक पत्रिका में छपे बच्चों की शिक्षा-सम्बन्धी लेखों पर तथा इसी प्रकार के अन्य परिवार में शिक्षा-सम्बन्धी साहित्य पर वाद-विवाद करते हैं। इन सभाओं में कक्षा-शिक्षक प्रायः माता-पिताओं को आवश्यक साहित्य पढ़ने का सुझाव देते हैं। वर्तमान समय में कक्षा-शिक्षक के कार्यक्षेत्र में यह भी जोड़ा जा रहा है कि वह उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को अपना अच्छा परिवार बनाने के लिए प्रशिक्षित करे। इस सम्बन्ध में लिंग-सम्बन्धी शिक्षा पर सामान्य व्याख्यान व विचार-विमर्श का महत्व है। इस सम्बन्ध में विद्यार्थियों में नये पारिवारिक आवश्यक गुण उत्पन्न करने के प्रयास पर जोर दिया जा रहा है। विद्यार्थियों को पारिवारिक श्रम के लिए प्रशिक्षित करने पर बल दिया जा रहा है।

कक्षा-शिक्षक माता-पिताओं के साथ निम्नलिखित विधियों से कार्य करता है। विद्यार्थियों के परिवार में जाना और बातचीत करना, माता-पिताओं को वयक्तिक विचार-विमर्श के लिए विद्यालय में बुलाना, नियमित रूप से कक्षा की माता-पिता समिति की बैठक बुलाना, माता-पिता की विशेष प्रकार की सभाओं का आयोजन करना, जिसमें कक्षा-शिक्षक उन माता-पिताओं के साथ विचार-विमर्श करता है, जो कि विद्यालय में शिक्षा-सम्बन्धी परामर्श करने आये हों। यहाँ पर यह उल्लेख करना भी आवश्यक होगा कि कक्षा-शिक्षक का विद्यार्थियों के परिवार में जाना और माता-पिता को विद्यालय में बुलाना केवल उन परिस्थितियों में ही नहीं होता जबकि विद्यार्थियों के व्यवहार में खराबी हो या विद्यार्थियों की प्रगति निम्नस्तर की हो गयी हो। कक्षा-शिक्षक सामान्य परिस्थितियों में भी, जैसा पहले लिखा जा चुका है—अपनी योजना के अनुसार परिवार की आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन करने के लिए और माता-पिताओं को उनके बच्चों की शिक्षा में वैयक्तिक सहायता देने के लिए ऐसा करता है।

कक्षा-शिक्षक की कार्य-योजना

कक्षा-शिक्षक शैक्षिक-सुसंस्कृतात्मक कार्य की योजना अध्ययन सत्र के चौथाई भाग या आधे भाग के लिए बनाता है। योजना बनाने से पूर्व वह विद्यालय की सामान्य योजना से और पायनियर परिषदों के कार्यों की योजना से परिचय करता है। बड़ी कक्षाओं की योजना बनाने में कक्षा-शिक्षक कमसामोल समिति के सचिव के साथ भी परामर्श करता है। योजना बनाते समय कक्षा समूह की परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाता है। योजना में

आरम्भ मे कक्षा की सक्षेप में विशेषताएँ दी जाती है।और शैक्षिक लक्ष्यो का निर्धारण किया जाता है। फिर कार्य के विभिन्न स्वरूपो और प्रकारो को उनकी प्राप्ति के लिए आवश्यक समय के साथ निर्धारित किया जाता है।।

कार्य के स्वरूपो को कई समूहो मे बाँटा जाता है। उनमे से एक है सामाजिक व राजनीतिक जीवन मे भाग। इसके अन्तर्गत कई विन्दु आते हैं जैसे ज्ञान के प्रकार तथा शारीरिक व मानसिक श्रम की विधियो को ऊँचे प्रकार का बनाना, सामाजिक लाभप्रद श्रम, शारीरिक शिक्षा और खेल-सम्बन्धी कार्य, सौन्दर्य शिक्षा आदि योजनाओ म माता-पिता के साथ कार्य, समाज के साथ सम्बन्ध, पायनियर तथा कमसामोल कार्यों म भाग आदि। कक्षा-शिक्षक की योजनाओ म उस शैक्षिक सुसंस्कृतात्मक कार्य पर विशेष ध्यान दिया जाता है जो कि छुट्टियों के समय विद्यार्थियो के साथ किया जाता है।

कक्षा-शिक्षक अपनी योजना मे विद्यार्थियों का अध्ययन करने के लिए विशेष प्रकार का रूप निर्धारित करता है जैसे विद्यार्थियो के परिवार मे जाना, बीमार विद्यार्थियो को देखने के लिए जाना आदि। उसकी अध्ययन योजना मे निम्नलिखित बिन्दु आते हैं—विद्यार्थियो की पारस्परिक सहायता तथा उनके ऊपर नियत्रण का सगठन, विभिन्न विषयों के शिक्षको को आकर्षित कर अलग-अलग विद्यार्थियो की सहायता, अलग अलग विषयो, पाठो का जिनका कि निरीक्षण निर्धारण करना हो (विशेष रूप से उन विषयो के पाठो का जिनमे वि विद्यार्थियों की सफलता निम्न स्तर की है) विद्यार्थियों के गृहकार्य की जाँच के अलग अलग कार्य के स्वरूपो का सगठन, विद्यार्थियो को विषयो सम्बन्धी कार्यो की ओर आकर्षित करना। यही पर कक्षा शिक्षक निर्धारित करता है कि कब वह दैनिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में विचार विमर्श करेगा, कब वह पाठो सम्बन्धी कार्य को पूरा करेगा। कक्षा शिक्षक विद्यार्थियो के साथ वैयक्तिक कार्यों का भी निर्धारण करता है जैसे—किन विद्यार्थियो की दो तीन दिन मे पूर्ण रूप से जाँच करेगा – कैसे उसने पाठ तैयार किया, उसकी पाठ्यपुस्तको, कापियों व बस्ते की क्या स्थिति है। कभी-कभी इस बात की भी योजना बनाता है कि कब कक्षा सभा होगी, उन विषयो का भी निर्धारण करता है जिन पर विचार विमर्श होगा। कक्षा शिक्षक की इस योजना के अन्तिम भाग का सम्बन्ध माता पिता के कार्य से रहता है। उसमे प्राय कक्षा माता पिता सभा के दिनों का निर्धारण होता है, उन विषयों का भी निर्धारण होता है, जिन पर बातचीत होगी।

कक्षा शिक्षक की योजनाओं पर विद्यालय की शिक्षा-सभाओं या शिक्षण-विधि संगठनों में विचार किया जाता है। योजना का अनुमोदन विद्यालय डायरेक्टर द्वारा किया जाता है।

शैक्षिक सुसंस्कृतात्मक कार्य के परिणाम कक्षा शिक्षक अपनी डायरी में लिखता है। इस प्रकार की डायरी अनिवार्य तो नहीं है पर इच्छानुसार है। उसमें योजना की पूर्ति के लिए किये गये शैक्षिक-सुसंस्कृतात्मक कार्य की प्रभावशीलता, विद्यार्थियों के जीवन व कार्यों-सम्बन्धी पर्यवेक्षण तथा दिन-प्रतिदिन कक्षा के जीवन में होनेवाली महत्वपूर्ण घटनाओं को अंकित करते हैं। शैक्षिक-सुसंस्कृतात्मक कार्य की उपलब्धियों और असफलताओं को भी उसमें लिखते हैं। विद्यार्थियों के सामूहिक तथा वैयक्तिक शैक्षिक-सुसंस्कृतात्मक परिणामों को बतलाते हैं। इसमें ध्यान मुख्य रूप से इस बात पर नहीं दिया जाता कि कितने विचार-विमर्श हुए, कितने पाठक सम्मेलन हुए हैं, कितने वाद विवाद हुए हैं, और कितने भ्रमण हुए हैं, वरन् उन परिवर्तनों पर बल दिया जाता है जो कि विद्यार्थियों की जागरूकता, चेतना और व्यवहार से सम्बन्धित होते हैं।

भारत के लिए निष्कर्ष

सोवियत संघ के कक्षा शिक्षकों के कार्यों पर विचार करने के साथ ही साथ भारत के कक्षा-शिक्षकों के कार्यों पर भी संक्षिप्त विचार करना उपयुक्त होगा। भारत के कुछ पब्लिक स्कूलों को छोड़कर या उन माध्यमिक विद्यालयों को छोड़कर जिनकी कार्य-प्रणाली पब्लिक स्कूलों की तरह होती है, अन्य सामान्य विद्यालयों में कक्षा शिक्षकों का कार्य-क्षेत्र बहुत सीमित होता है। उसमें मुख्य रूप से निम्नलिखित कार्य सम्मिलित हैं : (१) उपस्थिति पंजिका को भरना, (२) अध्ययन शुल्क व कई अन्य प्रकार के शुल्क लेना, (३) परीक्षा-परिणाम तैयार करना, (४) कहीं कहीं पर विद्यार्थियों के 'क्यूम्यूलेटिव रेकर्ड्स' तैयार करने की भी योजना है। इन कार्यों को जब हम सोवियत कक्षा शिक्षक के कार्यों के सन्दर्भ में देखते हैं तो स्पष्ट दिखाई देता है कि भारतीय कक्षा शिक्षक के कार्य कितने सीमित हैं। अतः भारतीय कक्षा-शिक्षक के कार्यों को पुनः निर्धारित करने की आवश्यकता है। इस कार्य में हम सोवियत संघ के विभिन्न अनुभवों का लाभ उठा सकते हैं।

हमारे कक्षा-शिक्षक के कार्य-क्षेत्र के तीन मुख्य बिन्दु हो सकते हैं :—
(१) कक्षा के विभिन्न शिक्षकों के कार्यों में समन्वय स्थापित करना।

(२) विद्यार्थियों को सुसंस्कृत बनानेवाले कार्यक्रम का संगठन करना। (३) माता-पिताओं से सम्बन्ध बनाये रखना। इन बिन्दुओं के स्पष्टीकरण के लिए यह आवश्यक होगा कि यहाँ पर संक्षेप में इन पर विचार करें।

कक्षा-शिक्षक के लिए यह अपेक्षित होगा कि उस कक्षा में पढ़ानेवाले सभी शिक्षकों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क बनाये रखें। इसमें उसका मुख्य लक्ष्य यह होगा कि वह भिन्न-भिन्न विषयों में विद्यार्थियों की सफलताओं और असफलताओं के कारणों से परिचित हो सके और विद्यार्थियों की कठिनाइयों को दूर करने में सहायक हो सके। कक्षा-शिक्षक कक्षा के विभिन्न शिक्षकों की सहायता से सभी विषयों के लिए एक सामान्य समय-चक्र तैयार करे जिससे विद्यार्थी गृह-कार्य के अनावश्यक भार से न दबें। वह कक्षा के विभिन्न शिक्षकों की सभा बुलाये और विद्यार्थियों की ऊँचे स्तर की उपलब्धियों पर विचार-विमर्श करे। इस सभा में यह विचार करना भी अपेक्षित होगा कि जो विद्यार्थी वार्षिक परीक्षा में असफल हुए हैं और जिनको अगले वर्ष दुबारा उसी कक्षा में पढ़ना हो, उनका अध्यापन कार्य किस प्रकार हो।

कक्षा-शिक्षक विद्यालय के उन सभी व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करे जिनका सहगामी क्रियाओं से सम्बन्ध हो— जैसे स्काउट मास्टर, विद्यालय की छात्र परिषद् के परामर्शदाता शिक्षक, विद्यालय में स्थित विभिन्न प्रकार के क्लबों (*जैसे विज्ञान क्लब*) के परामर्शदाता शिक्षक। इन सबके साथ मिलकर कक्षा-शिक्षक ऐसी योजना बनाये जिससे बच्चों को सुसंस्कृत बनाने का कार्य संगठित प्रकार से हो सके। इसके अतिरिक्त छोटी कक्षाओं—छठी, सातवीं, आठवीं—में कक्षा-शिक्षक कुछ ऐसे विषयों पर विद्यार्थियों के साथ विचार-विमर्श करे जैसे सद्व्यवहार के नियम, सड़क पर चलने के नियम, राष्ट्रीय ध्वज व राष्ट्रीय गान के सम्मान के नियम आदि।

कक्षा-शिक्षक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों के माता पिता के साथ विभिन्न प्रकार से सम्पर्क स्थापित करे। जैसे घर पर जाकर विद्यार्थियों के व्यवहार के सम्बन्ध में माता-पिता से बातचीत करे। हर महीने माता-पिताओं की एक सभा आयोजित करे। इसमें विभिन्न विद्यार्थियों के सम्बन्ध में सामान्य पर्यवेक्षण प्रस्तुत किये जायें। माता पिता को उन लक्ष्यों से परिचित कराया जाय जिनके लिए विद्यालय प्रयास कर रहा हो। माता-पिताओं को उन विधियों से अवगत कराये जिनसे कि माता पिता विद्यार्थियों के शैक्षिक सुसंस्कृतात्मक कार्य में विद्यालय की सहायता कर सकें। वर्तमान परिस्थितियों में साम्प्रदायिकता

को दूर करने में भी कक्षा-शिक्षक और माता-पिताओं के सहयोग का बड़ा महत्व है। उपरोक्त सभी कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए यह अपेक्षित है कि कक्षा शिक्षक अपने कार्यों की वार्षिक, अर्द्ध-वार्षिक व मासिक योजना बनाये।

कक्षा-शिक्षक इन कार्यों को भली प्रकार कर सके, इसके लिए उसे कुछ विशेष सुविधाएं देनी होंगी। जैसे विभिन्न प्रकार के शुल्क लेने के कार्य से मुक्त किया जाय। यह कार्य विद्यालय के कार्यालय के लिए छोड़ देना चाहिए जो विभिन्न तिथियों पर विभिन्न कक्षाओं के शुल्क प्राप्त करे। कक्षा-शिक्षक के अध्यापन-भार को भी कम किया जाय। कक्षा-शिक्षक के लिए कुछ अतिरिक्त वेतन की व्यवस्था हो। कक्षा-शिक्षक अनुभवी शिक्षकों में से बनाये जायें। प्रादेशिक सरकार के शिक्षा-विभाग कक्षा-शिक्षक के कार्यों को पुन: निर्धारित करें। इसके लिए राष्ट्रीय स्तर पर भी चिन्तन होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थान के अध्यापक शिक्षा-विभाग का इसमें विशेष योगदान हो सकता है। कक्षा-शिक्षक निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति सफलता और प्रभावशाली ढंग से कर सके, इसके लिए उसे प्रशिक्षण महाविद्यालयों में प्रशिक्षित करना होगा।

उपरोक्त सुझावों को अपनाने से विद्यार्थियों के शैक्षिक सुसंस्कृतात्मक स्तर को ऊंचा करने और उनके सर्वांगीण विकास में सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है।

—'नया शिक्षक' से साभार

डा० श्रीमती चित्रा नाइक

बाल-शिक्षा एवं परिवार-शिक्षा

मनोवैज्ञानिक परिवर्तन का आयोजन

समानता एक आधुनिक संकल्पना है। हमने इसे स्वीकार किया है। पर वास्तव में क्या हमने उस मनोवैज्ञानिक परिवर्तन का आयोजन किया है जो हमें परम्परा से आधुनिकता की ओर ले जाने के लिए आवश्यक है? यदि पुनर्मूल्यांकन तथा दृष्टिकोण-परिवर्तन हमारे मुख्य लक्ष्य होते तो अब तक की योजना में हमने केवल बालकों की शिक्षा पर ही नहीं, बल्कि पूरे परिवार की शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया होता, क्योंकि दृष्टिकोण का विकास बहुधा परिवार में ही होता है। और, तब केवल बालकों की परम्परागत औपचारिक शिक्षा पर बल देने के बदले हमने एक प्रकार की 'मुक्त गृह'-सी शिक्षापद्धति विकसित की होती जो औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त, पर उससे सम्बद्ध, पूरे परिवार के सभी सदस्यों की शैक्षणिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती। शैक्षणिक आयोजन का हेतु वयस्क तथा बालकों के वर्ताव में देश के संविधान तथा विकास के अनुरूप अपेक्षित परिवर्तन लाना होता न कि शैक्षणिक प्रयास का उपयोग केवल 'प्रसार' अथवा 'स्तर' के बढ़ावे के लिए होता। वास्तव में यह आसानी से समझ में आ

जानेवाली संकल्पना नहीं है और न ही परम्परागत गठन और व्यवस्थावाली शिक्षा में इस प्रकार का प्रयास कोई आसान काम है। पर धीरे धीरे यह स्पष्ट होता जा रहा है कि पूरे समाज को परिवर्तन के अनुरूप बनने तथा वांछित विकास की गति तीव्र करने में सहायता देने के लिए इसका कोई विकल्प नहीं है। जब तक सामाजिक रुख म परिवर्तन नहीं होता तब तक न तो आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े तथा उन्नत वर्गों को समान शिक्षण का अवसर ही मिलेगा और न परम्परागत औपचारिक शिक्षा का सतोषजनक विकास और प्रगति,सम्भव है। चूंकि समाज मे मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की इकाई परिवार ही है, अतः हमारा अधिक से अधिक प्रयास कुटुम्ब के सबसे अधिक परम्पराबद्ध सदस्यों अर्थात् प्रौढ़ महिलाओं के बोध और रुझानों मे परिवर्तन लाना होना चाहिए। बालकों के रवैये के लिए माता ही सुर देती है। अतः पहले माता से ही सम्पर्क करना चाहिए। यदि वही बालकों के स्कूल भेजने के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक महत्व का अनुभव नहीं करती तो प्राथमिक शिक्षा मे गति कैसे आ सकती है? यदि वह परम्परा की विसंगतियों को नहीं समझती और तकनीकी प्रगति को नहीं जानती, जो स्त्रियों की परम्परागत भूमिका बदल रही है, तो वह लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए आखिर क्यों अनुभव करेगी? यदि वह राष्ट्रीय एकीकरण की पुकार से प्रभावित नहीं है तो वह अपने बच्चों को जातिवाद, वर्गवाद और क्षेत्रीयता से ऊपर उठने में सहायता कैसे पहुँचायेगी? मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के इस स्रोत की उपेक्षा तथा परिवार के सबसे कमजोर सदस्य बालक पर परम्परागत मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन और आधुनिकता के हेतु दृष्टिकोण-परिवर्तन के लिए निर्भरता शिक्षा की प्रगति में सदा बाधा बनी रहेगी। हमारे समाज-कल्याण और आर्थिक विकास कार्यक्रमों मे आंशिक सफलता या पूरी असफलता का बड़ा कारण शायद यही है। हम चिकित्सालय तथा मातृचिकित्सा भवन खोलते हैं और देखते हैं कि वे अपनी क्षमता का पूरा उपयोग इसलिए नहीं कर पाते कि गाँव की माताएँ अपने बच्चों को स्वस्थ बनाने के लिए जादू-टोना जैसी अविश्वसनीय विधियों पर अधिक भरोसा करती हैं। अधिक प्रोटीनयुक्त गेहूं की नयी किस्में उगायी जा रही हैं। पर महिलाएँ इन्हें इसलिए नापसन्द कर देती हैं कि यह पहलेवाली किस्म-जैसा, जिसका वे प्रयोग करती रही हैं, पीला नहीं है। पोषण कार्यक्रम इसलिए रुक जाते हैं क्योंकि गृहिणियाँ अपनी पाक विधियों को बदलने और नये किस्म के भोज्य पदार्थों को अपनाने मे उदासीनता दिखाती हैं। लड़कियों

को स्कूल मे भर्ती के शैक्षणिक प्रयास विफल हो जाते हैं क्योंकि माताएँ परिवार की सम्मानवृद्धि के लिए लडकों की तुलना मे लडकियों का महत्त्व अत्यल्प समझती हैं। स्कूल मे बालको को हम कितना भी स्वास्थ्य, सफाई, ऐक्य, समता इत्यादि के बारे मे सिखायें पर जब माताएँ इन्हे मूर्खतापूर्ण समझती हैं तथा स्कूल को अव्यावहारिक विचारो का स्थान मानती हैं तो यह सब घुल जाता है।

अत यह कहना सही होगा कि स्त्रियों और लडकियो के लिए शिक्षा की समान सुविधा प्रदान करने अथवा समग्र प्राथमिक शिक्षा की धीमी प्रगति की समस्या वास्तव मे महिलाओ का परिवार और समाज मे परम्परागत स्थान बदलने की समस्या है। परम्परा से स्त्रियों का दर्जा नीचा रहा है और उन्हें पीछे रखना ही ठीक माना गया है, जबकि हमारी योजनाएँ उनका सहयोग चाहती हैं, समाज उन्हे हतोत्साहित करता है। समाज-कल्याण तथा आर्थिक विकास मे उनके योगदान की प्राकृतिक क्षमता को कार्य का अवसर बहुत कम मिलता है। शिक्षा का अभाव उनमे तर्कसंगत भावना को अपनाने में बाधक बनता है। पारम्परिकता उनके उत्साह को कुचल देती है तथा सर्जनशील आत्मविश्वासी नागरिक बनने की ओर उन्मुख विकास अवरुद्ध होता है। वयस्क महिलाओ की यह स्थिति स्वास्थ्य और सफाई, परिवार-नियोजन, बाल-सम्भाल, खाद्य, पोषण और आर्थिक विकास की समस्या के समाधान के रास्ते मे मुख्य रोडा है। हमने अब वयस्क जनसख्या के लगभग आधे भाग की सुप्त क्षमता के उपयोग की कोई व्यवस्था नही की है और बालकों के भविष्य की सरक्षिणी माता की शिक्षा की उपेक्षा की है तो यह कोई बडा आश्चर्य नही कि विकास अटकता रहे। अत यदि विकास और मुख्यत छोटे बालक-बालिकाओ के साहसिक नागरिक के रूप में विकास की समस्या का समाधान करना है तो हमें समूचे परिवार को शिक्षित करना होगा और जहाँ तक सम्भव हो माता पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना होगा। देश के राज-नीतिक आर्थिक विकास और मनोवैज्ञानिक विकास के बीच दरार पाटने की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा। सारे विश्व मे जो परिवर्तन आ रहा है उसे हम अपने परिवार और समाजव्यवस्था के अनुरूप बनाने के लिए रोक नहीं सकते। अत हमे अपनी व्यवस्था मे हेरफेर करना पडेगा। परिवार ही समाज का मनोवैज्ञानिक कार्यकारी प्रतिनिधि है। इसमे नये सामाजिक मूल्य-निरोपण की शक्ति है। जब यह शिक्षित होकर समानता, न्याय और स्वतन्त्रता की ओर कदम उठाता है तो सामाजिक परिवर्तन और

विकास की शक्तियों को गति मिलती है। शिक्षण की समस्या पारम्परिकता से उपजती है।

शिक्षण की बहुत सी समस्याएं आज स्त्रियों और लड़कियों द्वारा शिक्षण प्रक्रिया में धीमी गति से भाग लेने से उपजती हैं। रूढ़िग्रस्त और निरपेक्ष महिलाएँ बालकों के गृहकार्य तथा शैक्षणिक प्रगति की देखरेख में स्वयं को असमर्थ पाती हैं। अध्ययन के लिए प्रेरित करनेवाले घरेलू वातावरण का अभाव स्थिरता और क्षति का एक मुख्य कारण है। गाँव की छोटी प्राथमिक शाला में लड़कियों की कम भर्ती एक शिक्षक वाले स्कूलों की संख्या में वृद्धि करती है। महिला अध्यापकों की नियुक्ति में स्थानिक निकायों की हिचक न केवल लड़कियों की भर्ती को कम कर देती है बल्कि छोटे बच्चों की घबराहट और असंतुलन को भी पैदा कर देती है जिन्हें स्कूल में आते ही 'मातृ आकृति' के स्थान पर 'पितृ आकृति' का सामना करना पड़ता है। एक रूढ़िवादी विचार घर कर गया है कि यदि बालकों को कुछ सीखना है तो उन्हें पुरुष अध्यापक की तीखी निगरानी में पाँच घण्टे प्रतिदिन शिक्षण लेना आवश्यक है। इस विचार-धारा ने बालकों की पढ़ाई का मुख्यतः स्कूल जाने के प्रथम वर्षों में काफी नुकसान किया है। शिक्षिकाओं की नियुक्ति हम इसलिए अमान्य करते हैं क्योंकि वे अपने साथ छोटे शिशु भी बहुधा स्कूल ले आती हैं। यह अध्ययन अध्यापन में एक अटक समझा जाता है। पर देखने में आया है कि बालक अध्यापिका के बच्चे को बारी बारी से सम्हाल लेते हैं तथा उसे स्वच्छंद और घरेलू वातावरण में काम करने के लिए स्वतंत्र रहने में सहायक होते हैं। शिक्षा की प्रगति में महिलाओं और लड़कियों के भाग लेने की प्र य कई सम्भावनाएँ हैं। पर हमने उन्हें खोजा नहीं है। १० ११ वर्ष की वे लड़कियाँ, जिन्होंने अपने छोटे भाई बहनों की सम्हाल के लिए स्कूल छोड़ा है उन विशेष केन्द्रों में अपना अध्ययन चालू रख सकती हैं जिनमें बालवाड़ी और ऊपर की कक्षाएँ साथ साथ चलती हों और वे अपने छोटे भाई-बहनों को अपने साथ ला सकेंगी। इनका संचालन विद्यार्थिनि 'मॉनीटरों' की सहायता से हो सकता है। खेती या सम्बन्धित धन्धे में लगी लड़कियों और महिलाओं को पशुपालन, दुग्धउत्पादन तथा अन्य लघु उद्योगों में व्यावसायिक शिक्षा, काम के समय या खाली समय में, दी जा सकती है। जब प्रौढ़ शिक्षा के वर्ग चलाये जाते हैं तो उन्हें 'स्त्री वर्ग' और 'पुरुष-वर्ग' में बाँटने के स्थान पर पूरा परिवार एक साथ भाग ले सकता है। स्कूल में जब स्वास्थ्य शिक्षा, पोषण या बागवानी का प्रदर्शन हो तो विद्यार्थियों के घर की

महिलाएँ भी आमन्त्रित की जा सकती हैं। देहाती क्षेत्र के भीतरी भागों के लिए यदि पति-पत्नी अध्यापकों की नियुक्ति की जाय तो माता-पिता के शिक्षण की बहुत-सी समस्याओं का समाधान ढूंढा जा सकता है। प्रौढ़ महिलाओं के लिए घनीभूत प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाक्रम एक अति उत्तम शैक्षणिक नवीनता है जिसे दुर्भाग्यवश आयोजकों तथा शिक्षासंचालकों का भरपूर सहारा नहीं मिल पाया। इस प्रकार के सुव्यवस्थित कार्यक्रमों का जाल अपने विविध रूपांतरणों में सम्भवतः समग्र शिक्षा की प्रगति को बहुत कुछ लाभान्वित कर सकता है। पढ़ी-लिखी विवाहित महिलाओं की सेवाओं का उपयोग, यदि आवश्यक हो तो अधूरे समय के लिए, स्त्रियों और लड़कियों की शिक्षा को बड़ा बल प्रदान कर सकता है। इस कार्य के लिए चालू नियमों और शर्तों में कुछ रूपांतरण करके इन अधूरे समय के लिए शिक्षिकाओं को भी पूरे काल के शिक्षकों के समान ही सेवा-सुविधा और लाभ प्रदान किया जाना चाहिए। विद्यार्थिनियों तथा साक्षर महिलाओं को तकनीक और नवीन सामाजिक दृष्टि प्रदान करने योग्य, सरस, तथा रुचिकर पठन-सामग्री का अत्यन्त अभाव है। देश में तेजी से बढ़ते साहित्य में इस प्रकार की सामग्री को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए। यद्यपि अन्तिम विश्लेषण में सहज योग्यता और रुचि के आधार पर पुरुषों का साहित्य और स्त्रियों का साहित्य-जैसा भेद नहीं किया जा सकता, प्रत्येक व्यक्ति की अध्ययन-रुचि सामान्यतः उसके वातावरण, व्यवसाय और कुटुम्ब तथा समाज में उसकी भूमिका पर निर्भर करती है। स्त्रियों द्वारा साक्षरता का शीघ्र ग्रहण तथा दृढ़ धारण और लड़कियों में स्वाध्याय की आदत डालने के लिए मुख्यतः विख्यात लेखिकाओं द्वारा रचित इस प्रकार का साहित्य अवश्य सहायक होगा। पर नियोजित परिवर्तन हेतु सभी के लिए समान शैक्षणिक सुविधा की समस्या के समाधानार्थ उपादान आयोजकों का आलोचनात्मक ध्यान, जो विकास-आयोजन में निहित मनोवैज्ञानिक पहलू पर दिया जाना चाहिए, तथा संस्कारजन्य धारणा और अभिवृत्ति में परिवर्तन के लिए कुटुम्ब पर अभिकर्ता के रूप में जो बल दिया जाना चाहिए वही निर्णायक है।

प्रक्षेपण

अत सारांश यह है।

(अ) स्त्रियों और लड़कियों के लिए शिक्षण की समान सुविधा केवल प्रजातांत्रिक अथवा संवैधानिक जिम्मेदारी ही नहीं अपितु सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय विकास के लिए पूर्वशर्त भी है।

(आ) द्रुतगति से बढ रहे शैक्षणिक अभ्यासक्रम तथा शिक्षित किये जानेवालो की विविध आवश्यकताओ की चुनौती का सामना औपचारिक शिक्षा पद्धति नहीं कर सकती।

(इ) यदि स्त्रियो और लडकियो की शिक्षा का पिछडापन शीघ्रता से दूर करना है तो औपचारिक शिक्षापद्धति के साथ साथ मुक्त गृह' प्रकार की एक अनौपचारिक शिक्षा पद्धति देनी होगी।

(ई) न केवल शिक्षा के लिए अपितु समग्र विकास के लिए इस तथ्य को आयोजको द्वारा स्वीकार करना होगा कि रूढिग्रस्त महिलावर्ग शैक्षणिक प्रगति तथा सामाजिक परिवर्तन मे रुकावट पैदा करता है तथा प्रौढ महिलाओं की शिक्षा को, मुख्यत देहाती क्षेत्रो मे, प्राथमिकता देनी होगी।

(उ) शिक्षकों की नियुक्ति तथा शिक्षको के प्रशिक्षण के लिए सही नीति निर्धारण के लिए प्राथमिक शाला में भर्ती होनेवालो की पुरुष और महिला अध्यापको के प्रति भावात्मक तथा अध्ययनात्मक प्रतिक्रिया का गहराई से अध्ययन होना चाहिए।

(ऊ) तीन चार वर्षों मे ग्रामीण क्षेत्रो के अधिकांश भाग को रेडियो और टलीविजन जैसे सामूहिक माध्यम उपलब्ध हो जायेंगे।

इसलिए ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं और लडकियो के लिए इन साधनो द्वारा शिक्षा देने का काम अभी से प्रारम्भ कर दिया जाना चाहिए जिससे (१) उन्हे सभी प्रकार की शिक्षा का समान अवसर मिले, (२) कुटुम्ब और समाज म उनकी भूमिका परिवर्तन म सहायता दी जा सके, (३) राष्ट्रीय योजनाओं द्वारा अपेक्षित विकास प्रयास म उनके अधिक और सतुलित योगदान के लिए उन्हें तथा देश के पुरुषवर्ग को तैयार किया जाय। ऐसा तो नही कहा जा सकता कि रूढिवादी समाज को प्रगतिशील समाज में रूपातरित करने का केवल यही मार्ग है, पर कुटुम्ब का परिवतन के मुख्य अभिकर्ता के रूप म उपयोग करना का प्रभावकारी स्रोत दिखाई देता है।

—'इण्डियन कौंसिल ऑफ एजुकेशन' से साभार

प्रा० नारायण उपाध्याय

धर्मनिरपेक्ष प्रजातंत्र और शिक्षण

भारतवर्ष अत्यन्त प्राचीन देश है और अंग्रेजों के शासन से पूर्ण मुक्ति पाने के पश्चात् इस देश में हमने धर्मनिरपेक्ष प्रजातन्त्र की स्थापना का दृढ़ संकल्प किया है। इससे पूर्व हमारे देश में हमेशा राज्य ने किसी-न-किसी प्रकार धर्म को पोषण दिया है किन्तु भारत जैसे विशाल देश में जहाँ का विशाल जन-समूह अनेक धर्मों, सम्प्रदायों और जातियों में बँटा है और लोग भिन्न भिन्न भाषाएँ बोलते हैं, धर्म-निरपेक्ष प्रजातन्त्र की घोषणा एक बहुत बड़ा साहस है।

जिस देश में राज्य द्वारा स्वीकृत एक राष्ट्र धर्म होता है अथवा जहाँ तानाशाही (टोटेलिटेरियन) शासन-व्यवस्था होती है उसके लिए देश में राष्ट्रीय एकता को कायम करना आसान होता है, जब कि उसकी तुलना में धर्मनिरपेक्ष राज्य व्यवस्था कहीं अधिक कठिन होती है। भारत जैसे देश में तो यह और भी कठिन है क्योंकि यहाँ की जनता सदियों से धर्म परायण रही है। जिस देश में राज्य द्वारा स्वीकृत एक राष्ट्र धर्म होता है वहाँ देश पर आनेवाले बाह्य और आंतरिक संकटों के समय देश की जनता सहज ही एक धार्मिक भावना में बंध जाती है और एकजुट होकर संकट का सामना करती है। इस देश में शासक भी समय समय पर उपस्थित होनेवाली राजनैतिक समस्याओं के लिए लोगों की धार्मिक भावना का उपयोग चतुराई से करते हैं और धर्म के

नाम पर ही न्याय, व्यवस्था और शान्ति बनाये रखने में सफल होते हैं। इसी तरह तानाशाही राज्य प्रणाली में भी एक विशेष विचार प्रणाली, जो प्राय धार्मिक अंधानुकरण के स्तर पर ही विकसित होती है, देश की जनता को बांधे रखती है, साथ ही तानाशाही शक्ति का भय भी जनता को एकता बनाये रखने में बहुत बड़ा काम करता है। किन्तु धर्म-निरपेक्ष राज्य में विशुद्ध मानवीय उदारता की भावना ही राष्ट्रीय एकता का मूल आधार होती है और संकट के समय बौद्धिक स्तर पर विकसित होनेवाली राष्ट्रीयता की भावना ही देश को एकजुट होने की प्रेरणा और शक्ति देती है।

मानवीय उदारता और सहिष्णुता की भावना को संसार के महान धर्मों ने भी पोषित किया है, किन्तु बीसवीं शताब्दी में राज्य सम्बन्धी प्रजातंत्र की नवीन विचारधारा और विज्ञान की तीव्रतर विकसित होती हुई शक्ति के सन्दर्भ में धर्म-सापेक्ष उदारता और सहिष्णुता निरर्थक सिद्ध हुई है। इसका कारण यह है कि धर्म वैयक्तिक साधना है और उसमें परोक्ष सत्ता के अस्तित्व के प्रति आस्था ने एक सीमा पर ले जाकर मनुष्य को भाग्यवादी बना दिया है। धार्मिक मनुष्य का जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण भाग्यवादी और वैयक्तिक हो जाता है। उसका सामाजिकता का बोध धर्म विशेष से सम्बद्ध मत सम्प्रदाय के संकुचित घेरे से बाहर नहीं जाता। प्रजातंत्र समाज के सभी धर्मावलम्बी लोगों के लिए समान सुख सुविधाओं के उच्चादर्श को लेकर चलता है। प्रजातंत्र एक लोक कल्याणकारी राज्य-व्यवस्था कायम करना चाहता है, जिसमें सामाजिक न्याय की स्थापना का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह एक सामूहिक प्रयत्न है, जिसमें धर्म के नाम से विकृत जातियों और सम्प्रदायों की गोद में पले हुए धर्म-परायण मनुष्य की घोर व्यक्तिवादी और भाग्यवादी संकुचित भावनाएँ सदैव ही बड़ी बाधक रही हैं। इसीलिए प्रजातंत्र की स्थापना के लिए धर्म निरपेक्ष राज्य का विचार अनिवार्य हो जाता है।

भारत में प्रजातंत्र की स्थापना का जो प्रयोग हम गत २०-२२ वर्षों से कर रहे हैं उसकी सफलता और उस सफलता से स्थापित प्रजातंत्र की सुरक्षा का एकमात्र आधार है शिक्षा और व्यापक जन शिक्षा। हमें शिशु से लेकर वृद्ध तक के लिए उचित शिक्षा का नियोजन करना पड़ा है ऐसी शिक्षा जो सभी स्तर के मनुष्यों के लिए ऐसे बौद्धिक और नैतिक शिक्षण की व्यवस्था करे, जो समस्त समाज के शान्तिपूर्ण और विकासशील जीवन को प्रशस्त करे। प्रजातंत्र के लिए आवश्यकता है ऐसी शिक्षा की जो अव्यवस्था के विरुद्ध विधि विनियम और व्यवस्था के लिए आस्था की भावना, स्वार्थ के विरुद्ध सहकारिता और

समस्त संकीर्णताओं संकुचितताओं के विरुद्ध व्यापक उदारता, मानवीय सहृदयता तथा लोक-कल्याण की भावना को विकसित करे।

शिक्षा के दो प्रधान माध्यम होते हैं। एक तो वे नियमित शिक्षण-संस्थाएँ हैं, जिनके अन्तर्गत हमारी शालाएँ, विद्यालय, महाविद्यालय और सभी प्रकार के शिक्षण-संस्थान आ जाते हैं। दूसरा शक्तिशाली माध्यम है अनियमित संस्थाओं का, जिसके अन्तर्गत ऐसी सामाजिक संस्थाएँ आ जाती हैं, जो धार्मिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक आधारों पर स्थापित होती हैं और अपने विचार-प्रचार से एवं समाजसेवी कार्यों से समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करती हैं। इन दोनों प्रकार की संस्थाओं अथवा शिक्षण-माध्यमों के सम्बन्ध में हम यहाँ विचार करेंगे।

हमारी नियमित शिक्षण संस्थाओं में प्रधान रूप से दो स्तर की शिक्षा-व्यवस्था प्रचलित है। एक व्यापक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत मानवीकी विषयों से सम्बन्धित, यथा साहित्य, कला, संगीत, इतिहास, दर्शन-शास्त्र समाज शास्त्र राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, वाणिज्य आदि अनेक विषय आ जाते हैं, जो मानव मन की भावनाओं, संस्कारों और विचारों को परिष्कृत करते हैं, समाज की जरूरतों के अनुकूल उनको समृद्ध करते हैं और नयी समाज रचना से व्यक्ति अपने को उसका उपयोगी अंग बना सके, इसके लिए उसे तैयार करते है। दूसरे विषय विज्ञान और तकनीकी प्रशिक्षण से सम्बन्धित हैं, जो प्रशिक्षार्थी की बुद्धि का उत्कर्ष करते हैं, उसकी वृद्धि के साथ कार्यक्षमता को एक विशिष्ट दिशा में अग्रसर कर अधिकाधिक प्रवीणता प्रदान करते हैं, यह शिक्षा अधिकाधिक भावना-निरपेक्ष होती है, और उच्च तकनीकी शिक्षा तो एक स्तर पर पहुँचकर यांत्रिक ही हो जाती है।

उक्त दोनों ही प्रकार की शिक्षण-पद्धतियों से सम्बद्ध छात्र और छात्राएँ भिन्न पारिवारिक और सामाजिक परिवेशों से आते है उनके भावात्मक, बौद्धिक और आचरण-सम्बन्धी संस्कारों में काफी भिन्नताएँ होती हैं, अतएव हमारे पहले मानवीकी विषयों के पाठ्यक्रमों का ऐसा होना आवश्यक है, जो इन विभिन्न संस्कारवाले बालकों को समान बौद्धिक उत्कर्ष तक पहुँचा सकें। किन्तु दुर्भाग्य से इन पाठ्यक्रमों की सामग्री इतनी उच्चस्तरीय नहीं पायी जाती जो बौद्धिक निष्पक्षतापूर्ण हो, इसके अभाव में हम प्रजातंत्र के लिए जै नागरिकों की अपेक्षा करते हैं वे हमारी शिक्षण-संस्थाओं से नहीं निकलते हैं। हमारी वर्तमान युवा-पीढ़ी की अनास्था के मूल में हमारी उक्त शिक्षण-संस्थाओं के पराजित उद्देश्य ही निहित हैं। भावनात्मक स्तर पर किशोर और

युवा मन मे उचित सामजस्य का अभाव और शिप्रगति के उन्नत वैज्ञानिक तकनीकी शिक्षा को भी उच्चाकाक्षा के बीच समुचित सयोजन नही हो सकने के कारण ही हमारी युवा पीढी न केवल क्षुब्ध एव क्रुद्ध है, किंतु वह विध्वसात्मक भी हो चुकी है जिससे प्रयोग के स्तर पर सफल समझी जानेवाली हमारी लोकशाही शासन प्रणाली के अस्तित्व का ही सकट उत्पन्न हो गया है।

अब शिक्षा के दूसरे माध्यम को लें। निरपेक्ष विचार के पूव ग्राम लोगो के भावात्मक और वचारिक परिष्कार का कार्य हमारी बहुत-सी धार्मिक सस्थाए अपने अपने ढग से करती थीं जिनमे साप्रदायिक सकुचितता से उत्पन्न अनेक बार भयकर हिंसात्मक सघर्षों से समाज को भारी हानि भी उठानी पडी है। आज के सदभ मे ये सस्थाएँ अपना महत्व खो चुकी हैं। दूसरी, वे सस्थाएँ होती हैं जो शुद्ध मानवप्रेम से प्रेरित और गठित होकर केवल मानव मात्र की सेवा मे रत होती हैं, जैसे सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसाइटी और रेन्कास हैं। कुछ इसी प्रकार की एक 'भारत सेवक समाज' नाम की सस्था हमारे देश मे भी स्वतत्रता के बाद निर्मित हुई, किन्तु वह शुद्ध मानव सेवा के उच्च आदर्श तक ऊँची नही उठ सकी। तीसरी, व राजनतिक सस्थाएँ हैं जिनका महत्व और प्रभाव लोकतत्र मे सबसे अधिक होता है। वास्तव मे ये सस्थाए अपने विचारो और उनके अनुकूल दृढता के आचरण करनेवाले व्यक्तियो के माध्यम से ही जन-जनका लोक मानस लोकतत्र के लिए बनाती हैं। लोकनिर्माण के उक्त तीन प्रधान सस्थागत माध्यम हैं। इनके अतिरिक्त समाचार पत्रों का भी अपना योगदान है। किन्तु पिछले बीस वर्षों का हमारा अनुभव यह रहा है कि ये सस्थाएँ लोकशाही के उच्च उदार मानवीय स्तर तक अपने कार्यों को उठा नहीं पायी हैं। हमारी जिन धार्मिक कमजोरियो का लाभ उठाकर अग्रेजो ने लगभग दो सदियो तक हमपर शासन किया अत मे शोषण से जजरित देश के वे दो टुकड कर गये। इतने कड ऐतिहासिक कटु अनुभव से भी हमने सामाजिक रूप से शिक्षा नही ली और स्वातत्र्योत्तर काल म हमारी धार्मिक सस्थाएँ व्यापक मानवीय उदारता से हटकर सकुचित साम्प्रदायिकता के घरों म ही सिमिटती गयी हैं।

देश के राजनतिक दलो म नेतृत्व देनेवाले लोगो की स्वार्थपरायण महत्वाकाक्षाओ ने दलबदल की प्रवृत्ति को इस हद तक प्रोत्साहित किया है कि आज राजनैतिक दल पर से सस्था के रूप मे सामान्य जन का विश्वास उठ गया है। राजनैतिक दलो में निहित स्वार्थों ने और तात्कालिक लाभ के दृष्टिकोण ने मानो यह तथ्य ही भुला दिया कि हमारे गणराज्य का आधार बहुदेलीय प्रजा

तन्त्र-प्रणाली है और सामाजिक संगठन के रूप में राजनैतिक दलों पर से सामान्य जन की आस्था का डिगना प्रजातन्त्र के मूल आधार को आघात पहुँचाना है। धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना तभी सम्भव हो सकती है, जब राज्य के कोटि कोटि जन मन और विचार से उसकी स्थापना में प्रयत्नशील हों। इस तरह हम देखते हैं कि 'लोक शिक्षण' के बहुत बड़े उत्तरदायित्व की गरिमा को इन संस्थाओं ने समझा ही नहीं, जिनको पूरा करने का भार इन संस्थाओं पर था। संकुचित साम्प्रदायिक भावना प्रधान धार्मिक संस्थाओं और स्वार्थ परायण राजनैतिक दलों का उत्तर देशव्यापी मानवसेवी संस्थाएँ ही दे सकती थीं, किन्तु उनका अभाव हमारे सामाजिक जीवन की सबसे कमजोर कड़ी है। धर्मनिरपेक्ष प्रजातन्त्र को अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए बहुत बड़ी कीमत देनी पड़ती है। आज हमारे प्रजातन्त्र का अस्तित्व ही संकट में है और लगता है कि देश में व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर वह कीमत दे सकने में हम असमर्थ रहे हैं। समग्र रूप से समाज की यही कमी और दुर्बलता हमारी शिक्षण-नीति में भी व्यक्त हुई है, जो देश की भावी पीढ़ी का निर्माण करती है। —'राष्ट्र भारती' से साभार

राधाकृष्ण शास्त्री

ग्रामोत्थान के लिए शिक्षा क्या करे ?

भारत मे भूतपूर्व अमेरिकी राजदूत प्रोफेसर गेल्ब्रेथ ने राजस्थान विश्व-विद्यालय के दीक्षान्त समारोह मे भाषण देते हुए ठीक ही कहा था कि शिक्षा राष्ट्र निर्माण में सबसे बड़ा और कीमती 'इन्वेस्टमेंट' है। यद्यपि अनेक राजनीतिज्ञ, प्रशासक एव समाज के अन्य कर्णधार इस बात को स्वीकार करते हुए भी उसको क्रियान्वित नहीं कर रहे हैं लेकिन धीरे धीरे उन्हें इस दिशा मे अग्रसर होने को बाध्य होना पड रहा है।

राष्ट्रपिता गाधी ने लिखा है—'जिन्हें शिक्षा का सौभाग्य प्राप्त है, उन्होंने गाँवो की बहुत समय से उपेक्षा की है। उन्होंने अपने लिए शहरी जीवन को चुना है। मैंने ऐसे दारिद्रय पीडित भारत का चित्र नहीं खींचा है जिसमे लाखों आदमी अनपढ़ हैं। मैंने तो अपने लिए ऐसे भारत का चित्र खींचा है जो अपनी बुद्धि के अनुकूल मार्ग पर निरन्तर तरक्की कर रहा है। मैं इसे पश्चिम की मरणासन्न सभ्यता की 'थर्ड क्लास' या 'फर्स्ट क्लास' नकल के रूप म चित्रित नहीं करता।

"यदि मेरा स्वप्न पूरा हो जाय तो भारत के सात लाख (अब ५।। लाख) गाँवों में से हरएक गांव समृद्ध प्रजातन्त्र बन जायगा। उस प्रजातन्त्र का कोई व्यक्ति अनपढ न रहेगा, काम के अभाव मे कोई बेकार न रहेगा, बल्कि किसी-न किसी कमाऊ धधे मे लगा होगा। हरएक आदमी को खाने को पौष्टिक चीजें, रहने को अच्छे हवादार मकान, और तन ढकने को काफी खादी मिलेगी, और हरएक देहाती को सफाई और आरोग्य के नियम मालूम होगे और वह उनका पालन किया करेगा। ऐसे राज्य की विभिन्न प्रकार की और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई आवश्यकताएँ होनी चाहिए, जिन्हें वह स्वय पूरा करेगा, अन्यथा उसकी गति रुक जायगी।

"मेरे विचार के अनुसार ऐसी सरकार के पास जो चीज नहीं होगी, वह है बी० ए० और एम० ए० डिग्रीधारियों की फौज, जिनकी बुद्धि दुनिया भर का किताबी ज्ञान ठूंसते-ठूंसते कमजोर हो चुकी है और जिनके दिमाग अंग्रेजों की तरह फर-फर अंग्रेजी बोलने की असंभव चेष्टा में प्रायः अशक्त हो गये हैं। इनमें से अधिकांश को न कोई काम मिलता है और न नौकरी। और कभी कहीं नौकरी मिलती भी है, तो वह आमतौर पर क्लर्की की होती है; और उसमें उनका वह ज्ञान किसी काम नहीं आता, जो उन्होंने स्कूलों में और कालेजों में बारह साल गवांकर प्राप्त किया है।" हरिजन सेवक, ३०-७-३८

ग्रामोत्थान में रुचि लेनेवाले सभी व्यक्तियों के लिए बापू का उपर्युक्त कथन प्रेरणादायक एवं स्फूर्तिदायक है। जिस रामराज्य की बात राष्ट्रपिता करते थे वह सचमुच में उनका ग्रामस्वराज्य ही है जो स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर निर्मित है। बापू के लिए सच्चा प्रजातन्त्र वही है जिसमें एक व्यक्ति की आवाज भी नहीं दबायी जाय चाहे बहुसख्यक उसका कितना भी विरोध क्यों न करें, जहां व्यक्ति की अभिव्यक्ति स्वतन्त्र हो, उसे अपनी आत्मा की आवाज को दबाना न पड़े, जहां शोषणमुक्त आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था हो तथा जहां वर्गविहीन समाज की संरचना हो।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सभी अफ्रीकी-एशियाई विकासशील राष्ट्रों की आधारशिला उनके ग्राम ही हैं। भारत तो गांवों का देश है ही जहां कि करीब ८५ प्रतिशत जनता देहातों में रहती है। अतः भारत का विकास ग्रामोत्थान ही है।

ग्रामोत्थान क्या है? ग्रामोत्थान से अभिप्राय ग्रामवासियों का सर्वांगीण विकास है जिसमें उनका आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक एवं नैतिक विकास निहित है। लेकिन भारत के सन्दर्भ में इन सबके मूल में आर्थिक विकास प्राथमिक है। दूसरे शब्दों में ग्रामोत्थान का मुख्याधार कृषि की उन्नति है। अतः जब तक कृषि उन्नतावस्था में नहीं आती, ग्रामों का आर्थिक विकास नहीं हो सकता। कृषि की उन्नति केवल तब ही संभव है जब कि किसान खेती के सम्बन्ध में सभी आधुनिक तकनीकी ज्ञान को समझे एवं उसे क्रियान्वित करे। दुर्भाग्य का विषय है कि कृषिप्रधान भारत आज अन्न के लिए विदेशों का मुंह ताकता है। पशुपालन ग्रामोत्थान का दूसरा प्रबल स्तम्भ है। यह स्पष्ट है कि विगत २१ वर्षों में अनेक प्रकार की सुविधाएं एवं साधन केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराये जाने पर भी पशुपालन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति करने में हम असमर्थ रहे हैं।

ग्रामोत्थान मे प्रौढ शिक्षा के महत्त्व को नही भुलाया जा सकता। भारत में प्रौढ निरक्षरता और आबादी साथ-साथ बढती जा रही है। अनुमान है कि १.२५ प्रतिशत के हिसाब से जनसख्या और ०.०७ प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ रही निरक्षरता के फलस्वरूप १९७१ तक १५ से ४५ वयोवर्ग के लगभग १६ करोड व्यक्ति निरक्षर होंगे जिन्हें शिक्षित करने के लिए करीब साढे चार अरब रुपए चाहिए। प्रौढो के ऊपर जो धनराशि खर्च होगी वह तो राष्ट्र निर्माण म एक भारी 'इन्वेस्टमेंट' सिद्ध होगा। शिक्षा प्राप्त कर प्रौढ सलग्न कार्य को अधिक चातुर्य एव तत्परता से करने मे समर्थ होगा जिसके फलस्वरूप न उसको केवल व्यक्तिगत लाभ ही होगा बल्कि इससे राष्ट्र का धन बढेगा। प्रौढ शिक्षा न केवल सुनागरिक को ही जन्म देगी बल्कि एक आर्थिक दृष्टि से एक सुदृढ राष्ट्र का भी निर्माण करेगी। आर्थिक एव औद्योगिक दृष्टि से सबल राष्ट्र सामरिक दृष्टि से सुदृढ होगा और भारत पुनः अपने विस्मृत गौरव को प्राप्त करने मे सफल होगा। ग्रामों मे नयी चेतना आयेगी, कुटीर-धधे पनपेंगे। हरित कान्ति लहलहायेगी, ग्राम नन्दन-वन बन जायेंगे।

वैसे प्रौढ शिक्षा मे नारी-शिक्षा भी निहित है लेकिन इसका यहाँ विशेष रूप से उल्लेख करना आवश्यक है। इसका कारण यह है कि माता-पिता लडको को तो शिक्षित कराने मे फिर भी कुछ रुचि ले लेते हैं लेकिन लडकियो की शिक्षा तो घोर रूप से उपेक्षित है। राजस्थान मे तो नारी शिक्षा बहुत ही दयनीय अवस्था मे रही है। यद्यपि स्वतन्त्रता के उपरान्त इस दिशा मे काफी विकास हुआ है लेकिन फिर भी पुरुषो की तुलना मे नारी शिक्षा बहुत ही पिछडी हुई है। उदाहरणार्थ स्त्री-शिक्षको की सख्या पुरुष शिक्षको से ११ हजार कम है। यह खेदजनक बात है कि हमारे राज्य मे करीब ४ प्रतिशत ही महिलाएँ साक्षर हैं। पढने योग्य बालिकाओं का ७६.६ प्रतिशत उच्च प्राथमिक स्तर पर, ९२ ९ प्रतिशत माध्यमिक स्तर पर एव ९७ ७ प्रतिशत उच्च शैक्षणिक स्तर पर नही पढना एक चिन्तापूर्ण विषय है।

नारी शिक्षा के अभाव मे राष्ट्र निर्माण कैसे होगा? राष्ट्र के भावी कर्णधार बालक की सबसे महत्त्वपूर्ण शिक्षा, जो उसके जीवन पर स्थायी प्रभाव अकित करती है, माँ की गोद मे ही सम्पन्न होती है। आधुनिक ज्ञान से शून्य, मनोविज्ञान से अपरिचित एव बालक की सही मन स्थिति से अनभिज्ञ माँ शिशु का विकास करने म असमर्थ है। विद्वानो ने अन्वेषण कर सिद्ध किया है कि १० वर्ष की आयु तक बालक को जो बनना होता है बन जाता है। उनके जो सस्कार बन जाते हैं अमिट रहते हैं अत इसके उपरान्त उनमे कोई विशेष

उल्लेखनीय परिवर्तन सम्भव नहीं है। स्वामी विवेकानन्द के बारे में कहा जाता है कि अमेरिका में उनके भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित होकर एक महिला ने अपने एक १२ वर्ष के बच्चे को उन्हें सौंपना चाहा और यह इच्छा व्यक्त की कि यह बच्चा बड़ा होकर दूसरा विवेकानन्द बने। स्वामीजी ने उस महिला के आग्रह को अस्वीकार करते हुए कहा कि—'मैडम, नाउ दिस इज् टू लेट'। सार यह है कि बच्चे की सच्ची मित्र, पथ-प्रदर्शक एवं गुरु उसकी ममतामयी जननी ही है।

राष्ट्र-निर्माताओं की जीवनियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनके जीवन में प्रेरणादायी उनकी माँ रही हैं। केवल एक शिक्षित माँ ही अपने बच्चे के सर्वांगीण विकास में सर्वाधिक योगदान दे सकती है, पिता एवं परिवार के अन्य सम्बन्धियों, अध्यापकों एवं समाज के कर्णधारों का स्थान इस दृष्टि से गौण है। अतः सारहृप में यह कहा जा सकता है कि ग्रामोत्थान में नारी शिक्षा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका है जिसकी उपेक्षा घातक सिद्ध हो सकती है।

गाँव के सर्वांगीण विकास हेतु सहकारी समिति, सहकारी बैंक आदि की नितान्त आवश्यकता है जिनका संचालन भी केवल शिक्षित ग्रामीण ही कर सकता है। पुस्तकालय, चिकित्सालय, पोस्ट आफिस, टेलीफोन, बिजली आदि की उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग भी अशिक्षित ग्रामीण अच्छी तरह नहीं कर सकता।

जनतन्त्र की आधारशिला ग्राम पंचायतें हैं जिनकी सुव्यवस्था एवं प्रगति में शिक्षित ग्रामवासी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। यदि देश में जनतन्त्र को सुरक्षित रखना है तो देहात में रहनेवाली ८५ प्रतिशत जनता को शिक्षित करना होगा, उन्हें अपने कर्तव्य एवं अधिकार का बोध कराना होगा, उन्हें संविधान का ज्ञान कराना होगा एवं उन्हें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति से भी परिचित कराना होगा। यह एक ठोस काम है जिससे प्रजातन्त्र की नींव मजबूत होगी एवं राष्ट्र सुदृढ़ होगा। यह सब केवल शिक्षा के द्वारा ही सम्पन्न होगा, अन्यथा नहीं।

ग्रामोत्थान में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को गौण माननेवाले व्यक्ति प्रगति के शिखर पर निरन्तर बढ़ते जानेवाले राष्ट्रों की ओर देखें तो उन्हें स्पष्ट हो जायगा कि उनकी इस आशातीत सफलता का मूल रहस्य क्या था। अमेरिकन लोग कहा करते हैं कि आगामी समाज का पहला चित्र हमारा विद्यालय है। विश्व की नवोदित शक्ति साम्यवादी चीन में ग्रामों की उन्नति हेतु अपनी सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान शहरी शिक्षित युवकों को ग्रामों में

जाकर बस जाने एवं वहाँ सर्वसाधारण को शिक्षित करने का आदेश दिया। इससे शिक्षा के साथ-साथ शहरी सभ्यता ग्रामों तक स्वतः फैल गयी और देश के भावात्मक एकीकरण में शिक्षा की इस प्रकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका बनी।

आधुनिक टर्की के निर्माता कमाल पाशा ने आधुनीकरण का मूल मंत्र शिक्षा को ही माना। वह पहला शासक था जो अपने साथियों को साथ लिये स्वयं चॉक और ब्लैकबोर्ड साथ लेकर देश की निरक्षरता के उन्मूलन हेतु गाँव-गाँव शिक्षा-प्रचार के लिए घूमा करता था। स्त्रियों के लिए उसने शिक्षा को अनिवार्य कर एवं परम्परागत बुराइयों से टर्की को मुक्ति दिलाकर उसे समुन्नत आधुनिक राष्ट्र के रूप में परिवर्तित कर दिया।

रूस की क्रान्ति के अग्रदूत एवं विश्व में प्रथम साम्यवादी राज्य के निर्माता लेनिन ने भी सर्वाधिक ध्यान ग्रामीण शिक्षा पर दिया जिसके फलस्वरूप एक जर्जरित रुग्णप्राय राष्ट्र अर्द्ध शताब्दी से भी कम समय में ही विश्व की दो महान् शक्तियों में एक के रूप में अवतरित हुआ। यह उसी शिक्षा की देन है कि आज सोवियत संघ में पुस्तकालयों का जाल-सा बिछा हुआ प्रतीत होता है तथा इस समय देश में ७० हजार देहाती पुस्तकालय हैं। फलस्वरूप पाठकों की रुचि सामाजिक एवं राजनीतिक साहित्य की ओर स्वतः विशेष रूप से बढ़ती मालूम होती है।

इन सबके मूल में ग्रामोत्थान में शिक्षा की समुचित भूमिका को समझना है।

माला में चाहे मोती गुम्फित हो, चाहे फूल, उन्हें सम्भालने का कार्य सूत्र ही करता है, जिसके टूटने पर बहुमूल्य और सुन्दर सब कुछ धूल में बिखर जाता है।

शिक्षा बिना ग्राम निर्जीव।

शिक्षा राष्ट्र का मेरुदण्ड है।

बापू की मान्यता थी कि "स्वराज्य की असली कुंजी शिक्षा है।"

इसी से भारत की माटी सोना उगलेगी एवं भारत सब राष्ट्रों का सिरमौर पुनः बन सोने की चिड़िया कहलायेगा।

सच है, सरस्वती केवल ज्ञान ही की देवी नहीं है; निर्माण की भी प्रदेश-वाहिका है।●

नियाज वेग मिर्जा

नये मूल्य—बदलती परम्परायें

हम शिक्षा द्वारा बालक मे सर्वाङ्गीण व्यक्तित्व का, अच्छी आदतो एव अभिवृत्तियों का, कौशल एव कर्त्तव्य परायणता का विकास करने का सपना सजोया करते हैं और इसका सबसे गुरुतर भार 'गुरु' को (शिक्षक को), शाला को सौंपते हैं। लेकिन क्या बालक केवल शाला मे और शिक्षक के पास ही रहता है ? क्या वह समाज, परिवार, मोहल्ले, खेल के मैदान म स रक्षक अभिभावक, माता-पिता, भाई-बहनो के पास नही रहता ? आप फरमायेंगे, रहता तो है। तो फिर सर्वांगीण विकास के दायित्व को क्या हम सब मिल कर वहन कर रहे हैं ?

कुछ ही वर्षों पहले की बात है। प्रात॰ कोई, बाबा या फकीर, दीन हीन भिखारी हमारे घरो म आता तो बालको के हाथ से आटा या दक्षिणा दिलवाते, रोटी या कपडा बँटवाते, कबूतरो की मक्की डलवाते, पशुओं को पानी पिलवाते, चिड़ियों-हेतु पानी के ढीमरे लटकवाते, घरो मे तोते-मैना-कबूतर पालते, उन्हें दाना दाना डलवाते, इन सब बातो से बालक दान, दया, सेवा एव करुणा का भाव सीखता।

लेकिन अब क्या हो रहा है ? कोई बाबा या भिखारी, ब्राह्मण या फकीर आता है तो सबसे पहले बालको को छिपा देते हैं—डराते हैं 'खा जायगा', 'भगा ले जायगा', 'उठा ले जायगा'।

उन्हें न आटा, न रोटी, न दाल, न दलिया, न कपडा, न दक्षिणा। गालियाँ देते हैं, झिडकते हैं, डाँटते-फटकारते हैं— 'कहाँ कहाँ से सुबह सुबह, लुच्चे-लफंगे आ जाते हैं, हट्ठे कट्ठे नजर आते हैं—मजदूरी क्यो नही करते ? भीख

माँगते हैं, शर्म नहीं आती ? क्या हम तुम्हारे लिए ही कमाते हैं ?"

बताइए, बालकों ने क्या सीखा ?

मदद नहीं देना, झिड़कना, डाँटना फटकारना, कोई माँगे तो भगा देना, कोई प्रेम, 'दान', दया, सेवा भाव नहीं।

दूसरा उदाहरण। एक ही परिवार में, बड़े चौक में, सभी बालक एक साथ खेलते, एक गेंद से, एक गुल्ली डन्डे से। लकड़ी की तीन पहियों की एक ही गाड़ी में सभी बारी बारी से बैठते बड़ा आनन्द आता। मूँगफली-तिल्ली, गन्ना गाजर चने भुट्टे सभी एक साथ खाते, कभी झगड़ते नहीं। एक दूसरे के घरों में बच्चों के लिए खाने-पीने की चीजें भेजते।

इसमें बालक सीखते सहयोग, सहनशीलता, सामाजिकता त्याग एवं प्रेम।

लेकिन अब क्या हो रहा है ?

बड़े-बड़े परिवार टूट रहे हैं, और उनके साथ हमारे रिश्ते नाते, प्रेम त्याग की भावना ही नहीं टूट रही है, हम स्वयं भी टूट रहे हैं। हर मामले में अलग-अलग हो गये, खाते अलग, सोते अलग, सोचते समझते अलग। आज हम अपनी शान में बालकों के लिए खिलौने अलग-अलग लाते हैं रीता की गुड़िया, रमेश के लिए गेंद, राकेश के लिए राकेट। फिर भी वे लड़ते हैं एक-दूसरे के खिलौनों के लिए। क्यों ? हम ही उन्हें शुरू से अलग अलग खेलना, अलग अलग रहना सोचना कार्य करना सिखाते हैं—यह पप्पू की अलमारी, यह पिंकी की डलिया यह बंटू का सूटकेस। अब आप ही देखिए, उनमें वैयक्तिकता भेद भाव ईर्ष्या-द्वेष आयेगा कि नहीं ?

सामाजिकता, सामूहिकता, सहिष्णुता, समीपता, समर्पण आयेगा कैसे ?

बालकों के सामने बोलने, कहने, व्यवहार करने, उठते-बैठते हर समय बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। यह न हो कि बालक उससे गलत प्रेरणा, व्यवहार, आदत अभिवृत्ति ग्रहण कर ले। क्या हम सभी इन छोटी छोटी बातों पर ध्यान देते हैं ?

अब इन बड़े बच्चों की तरफ भी देखिए—पहले अभिभावक क्या करते थे ? वे अपनी सन्तान का बहुत ध्यान रखते थे केवल लाड़-प्यार ही नहीं करते थे। थोड़ी-सी नजर, चाल ढाल, काम-काज में फर्क नजर आया नहीं कि उनको सही रास्ते पर लाने का अभियान। बाल थोड़े ज्यादा बढ़ आते तो कहा जाता "नाटक मंडली में भरती होना है, क्या ?" उसी दिन बाल छोटे करवाने के प्रभावपूर्ण आदेश एवं कार्यवाही एक साथ क्रियान्वित हो जाते।

शाम को घर पहुँचने मे देर हो जाती तो ढूंढने निकल जाते और हिदायत हो जाती, "टाइम से जाओ और टाइम से आओ।" मजाल कि फिर कभी देर हो जाय !

कभी किसी ऐसे-वैसे के साथ घूमते-फिरते देख लेते तो बस 'कोर्ट मार्शल' हो जाता। और आज ?

फुर्सत ही नहीं हमे, कब आता है, कब जाता है, कैसी ड्रेस पहनता है, कैसे बाल रखता है, कितने सिनेमा देखता है, कैसी किताबें पढता है, किसके साथ घूमता है,—कुछ भी खबर नहीं। बिलकुल स्वच्छन्द वातावरण, अवसर की समानता, कार्य की स्वतन्त्रता और फिर क्या चाहिए ?

आज बढे हुए बाल 'दिलीप कट' कहे जाते हैं। जिधर भी देखिए बिखरे हुए, उडते हुए तेल-विहीन बालो की ही बहार है, और लम्बी-घनी जुल्फो का ही चलन है।

बाग-बगीचो मे, सिनेमा आदि मे चमकीले-भडकीले कपडे पहनकर परिभ्रमण करना, फिल्म फेयर-फेमीना पढना 'फोर-वर्डनेस' की निशानी है।

घर मे बैठकर पढनेवाले को 'पोचू', 'रट्टू तोता' और आजकल तो 'गंगाराम' भी कहा जाने लग गया है।

बुधवार को बच्चो की जिद पर, 'बिनाका' सुनने की चाह मे आकाशवाणी से समाचार तक छोडने पड जाते हैं। परिवार के सभी सदस्य—पिता पुत्र, माता-पुत्री छोटे-बडे सुनते हैं, सिलोन से गाने—"आगी बदन को ज्वाला, सैंया तूने क्या कर डाला" "मैं चली, मैं चली, तो प्यार की गली, कोई रोकेना मुझे...।" बताइये हम कैसे रोक सकेंगे उन्हें, क्या इनके लिए हम कोई उपाय कर रहे हैं ?

क्या कभी हमने यह जाँच की है कि लता और रफी के गानो की तुलना मे सूर-तुलसी-कबीर के कितने दोहे-चौपाइयाँ हमारे लाडलों को याद हैं ?

पुलिस के संरक्षण मे परीक्षाएं होनी प्रारम्भ हो गयी हैं। शिक्षकों पर हाथ उठने ही नहीं लगे, चाकू-छुरी का प्रयोग भी होने लग गया है। ऐसे समय भी यदि संरक्षक-अभिभावक चुप हैं—सारी जिम्मेदारी शिक्षको, शाला, सरकार एवं पाठ्यक्रम पर ही डाल देते हैं तो क्या यह सब उचित है ? बालक के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास मे आपका भी योगदान अनिवार्य है। तो आइए इस महान् अभियान मे शिक्षकों को, शाला को, शिक्षार्थियों को अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग एवं सहायता दीजिए।■

नयी तालीम समिति की बैठक के कुछ निश्चय

(१९, २० जून '७१ को नयी तालीम समिति की भावनगर मे हुई बैठक की कार्यवाही)

बैठक मे निम्नलिखित सदस्य उपस्थित थे :

सर्वश्री १—श्रीमन्नारायण, अध्यक्ष, २—मनुभाई पंचोली उपाध्यक्ष, ३—के० एस० आचार्लु, मन्त्री; ४—वजू भाई पटेल; ५—के०एस० राधाकृष्ण; ६—पूर्णचन्द्र जैन, ७—ग० उ० पाटणकर; ८—वंशीधर श्रीवास्तव, ९—मार्जरी साइक्स ।

विशेष आमन्त्रित थे :

सर्वश्री १—हरभाई त्रिवेदी, २—मूलशंकर भट्ट; ३—अनिल भाई भट्ट, ४—मृदुलाबेन मेहता ।

नयी तालीम के जन्म से लेकर उसका पूरा इतिहास तैयार करने, हिन्दुस्तानी तालीम संघ के निर्माण, उसके सर्व सेवा संघ मे विलीनीकरण और पुन उसके वर्तमान रूप मे पुन. स्थापित होने आदि के सम्बन्ध मे यह तय हुआ कि श्री आचार्लुजी के संयोजकत्व में श्री सत्यनाथन्, श्री पूर्णचन्द्रजी और श्री राधाकृष्णजी की एक समिति बनायी जाय और श्री सत्यनाथन्जी से निवेदन किया जाय कि वे उसका प्रारूप तैयार कर दें जिसे उपसमिति

अंतिम रूप देकर प्रस्तुत करे। प्रारम्भ मे सम्पर्क कमेटी के काम का, और केन्द्र तथा राज्य सरकारो के द्वारा नयी तालीम की प्रगति के लिए किये गये कार्यो का, संक्षिप्त विवरण भी रहे।

नयी तालीम समिति की गतिविधियाँ हिन्दी पत्रिकाओ को भी दी जायँ।

नयी तालीम सम्मेलन

अक्तूबर-नवम्बर ७१ मे प्रान्तीय धारा सभा के लिए चुनावो और उनमे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शिक्षा मन्त्रियो के व्यस्त रहने के कारण नयी तालीम सम्मेलन की कठिनाइयो की बात थी राधाकृष्ण ने बतायी। फिर भी यह महसूस किया गया कि देश में व्याप्त वर्तमान विश्वास के संकट को देखते हुए सम्मेलन का स्थगन अनुचित होगा। नयी तालीम समिति को यह चुनौती स्वीकार कर देश की शिक्षा प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने मे देश का नेतृत्व करना चाहिए ताकि देश के युवक पुन विश्वास प्राप्त कर सकें। वरना हमें एक अद्वितीय सामाजिक उथल पुथल का सामना करना होगा और ईश्वर ही जानता है कि उस परिस्थिति मे तब क्या परिणाम होंगे। इसलिए श्री राधाकृष्ण ने सुझाव दिया कि दिल्ली मे शीघ्र ही एक सम्मेलन बुलाया जाय। इस सम्मेलन मे शिक्षा नीति पर चर्चा करने के लिए सरकार को भी बुलाया जाय। प्रधान मन्त्री तथा शिक्षा-मन्त्रियो के अलावा उन सभी शिक्षाशास्त्रियो तथा अन्य लोगो को भी इस सम्मेलन मे बुलाया जाय जो युवा-कल्याण और मानव प्रगति मे रुचि रखते हो। इस राष्ट्रीय प्रयास मे कुछ चुने हुए छात्र नेताओं और अध्यापकों को आमन्त्रित करना भी आवश्यक होगा।

मार्जरी बहन ने इससे सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि समय का तकाजा शिक्षा मे क्रान्ति है, सर्वत्र व्याप्त अस्वस्थ असंतोष की ओर ध्यान दिलाया और सुझाया कि हमे इस दिशा मे सोचनेवाले अन्य लोगों को भी इसमे बुलाना चाहिए भले ही वे नयी तालीम की शब्दावली का प्रयोग न करते हो। उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि इस तरह के विचार-मन्थन के बाद कोई एक वक्तव्य या घोषणापत्र राष्ट्र के लिए जारी किया जाय।

श्री पूर्णचन्द्रजी ने सुझाया कि शिक्षानीति पर एक वक्तव्य जारी करने के अलावा हमे नयी तालीम के क्षेत्र में काम करनेवाले सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं को साथ बैठकर विचार करने का अवसर देना चाहिए।

श्री मनुभाई ने नयी तालीम के अनुकूल शिक्षा का घोषणापत्र बनाने पर सहमति व्यक्त की।

श्री श्रीमन्नारायणजी ने पिछली बैठक में पारित प्रस्तावों की ओर सदस्यों का ध्यान खींचते हुए अनुभव किया कि हमें सेवाग्राम में ही यह सम्मेलन करने का विचार मान लेना चाहिए जहाँ चर्चाओं के लिए स्वस्थ और गम्भीर वातावरण मिलेगा। यदि प्रधानमंत्री के लिए सेवाग्राम में एक-आध दिन रहना अनुकूल न हो तो फिर हमें नयी दिल्ली में ही यह सम्मेलन करना चाहिए।

यहाँ पर अध्यक्षजी ने श्री मनुभाई से, जो गुजरात में शिक्षा सुधार-समिति के अध्यक्ष थे, कहा कि वे सदस्यों को बतायें कि उन्होंने वहाँ क्या क्या सुझाव दिये थे और गुजरात की हजारों ग्रामीण और शहरी प्राथमिक शालाओं में उन पर क्या अमल हो रहा है। श्री मनुभाई ने संक्षेप में नीचे लिखी बातें कहीं—सामुदायिक जीवन का संगठन, शालाओं में विभिन्न दस्तकारियों का प्रवेश, सरकार के विकास विभाग के साथ शालाओं का सहयोग, ग्रामीण जीवन और उसकी आवश्यकताओं में शालाओं का सहयोग, विशेष अवसरों और ग्रीष्मावकाश में ग्रामीण घरों में सामुदायिक सेवाकार्य, तालीम जीवन में कृषि और कताई का स्थान, शिक्षण के ऊँचे स्तर और स्वावलम्बन का दृष्टिकोण।

श्रीमन्जी ने कहा कि इसमें तीन मुख्य दिशाएँ थीं जिनके आधार पर गुजरात में शिक्षा प्रणाली का पुनर्नवीकरण किया जा रहा था। (१) निजी और सार्वजनिक विकास एजेन्सियों से शालाओं का सहयोग (२) इतिहास का पुनर्नवीकरण ताकि स्वतंत्रता-संग्राम और राष्ट्रीय एकता तथा संविधान की पवित्रता पर उचित जोर दिया जा सके और (३) सब धर्मों के प्रति आदर, इसके लिए एक विशेष पुस्तिका भी बनायी गयी थी।

श्री पाटणकर ने करजगाँव में कम्पोस्ट बनाने के प्रयोगों पर प्रकाश डाला और आस पास के गाँवों में शाला द्वारा पैदा किये गये असर की चर्चा की।

मार्जरी बहन नयी तालीम में आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों पर बोलीं। 'धार्मिक और नैतिक' के बजाय 'आध्यात्मिक और नैतिक' शब्दों का प्रयोग क्यों किया जाय यह बताते हुए उन्होंने बालकों में अपनी आन्तरिक भावनाओं के अनुसार निर्णय करने और निर्णय देने की क्षमताओं के विकास की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि मानव जाति के सभी आध्यात्मिक गुरु मुक्त चिंतक थे; किसी परम्परा या बंधन से बँधे नहीं थे। अतः आध्या-

मिक शिक्षा को परम्परागत संस्कृति के उचित मूल्यों का महत्व समझने और अपनी चेतना की अन्त शक्ति के विकास के द्वारा उनमे चुनाव करने और उन पर निर्णय देने मे बालको की सहायता करना है। अपने विचारो के समर्थन म विनोबा का उद्धरण देते हुए उन्होने कहा कि शिक्षा पर सरकारी नियन्त्रण से यह खतरा है कि मुक्त चिन्तको के स्थान पर जी-हुजूरो के एक वर्ग का उदय होता है। उन्होने कहा कि शिक्षा से विकास-कार्य के सम्बन्ध का अर्थ केवल काम के अवसरों मे वृद्धि भौतिक वस्तुओं की सम्पन्नता से नही, बल्कि मानवीय मूल्यों, सामाजिक सम्बन्धो तथा सामाजिक न्याय से लगाया जाना चाहिए। उनके अनुसार इसका अर्थ सास्कृतिक परम्परा का हस्तान्तरण, नवीनीकरण तथा पुन निर्माण होना चाहिए। शिक्षा को लोगो में दृढ़ मस्तिष्क और उन्मुक्त हृदय पैदा करना चाहिए। केवल ऐसे ही लोग अहिंसक क्रांति मे योगदान कर सकते हैं। अन्त मे उन्होने शिक्षा मे, खासकर परीक्षाओं के संचालन आदि के सन्दर्भ मे, पवित्रता पर जोर दिया और कहा कि आचार्यकुल आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यो को प्रोत्साहन देने मे शिक्षा-प्रणाली की मदद कर सकेगा।

श्रीमन्जी ने सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि नैतिक मूल्यो का काफी ह्रास हो गया है और गांधीजी तथा विनोबाजी की आत्म-निर्भरता की कल्पना इसी बुराई की जड पर प्रहार करने के लिए है। उन्होंने सहमति व्यक्त की कि वर्तमान परीक्षा पद्धति पूर्णत दोषपूर्ण और गैरनैतिक है इसमे आमूल सुधार होना चाहिए। उन्होने आश्चर्य व्यक्त किया कि छात्रो को परीक्षाओ मे पुस्तकें क्यो नही देखनी चाहिए या अन्य व्यक्तियों से क्यो नहीं सलाह लेनी चाहिए।

श्री वशीधरजी, आचार्लूजी और वजू भाई की निश्चित राय थी कि परीक्षा-पद्धति का पूर्ण परिवर्तन होना आवश्यक है डिग्रियों का नौकरियों से सम्बन्ध रहने के कारण परीक्षाओ को अनावश्यक महत्व मिल गया है और एक बार डिग्री नौकरी का यह सम्बन्ध खत्म हो जाय तो परीक्षाओ का मूल्य स्वत समाप्त हो जायगा। परीक्षाओ के स्थान पर अध्ययन-गोष्ठियो आदि मे छात्र के भाग लेने के आधार पर सतत मूल्यांकन की पद्धति होनी चाहिए और साल के अन्त मे 'उत्तीर्ण' प्रमाणपत्र के बजाय छात्र के कार्य का एक विवरण-पत्र दिया जाना चाहिए जिसका वह चाहे जो उपयोग करे।

यह सुझाया गया कि शिक्षा में आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों और परीक्षा

प्रणाली मे सुधार-सम्बन्धी विचारों को बैठक मे पेश किये जानेवाले शिक्षा नीति-वक्तव्य मे शामिल कर लिया जाय।

परीक्षा पद्धति, पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण, डिग्री-प्रमाण पत्र और देश भर के लिए एक समान शिक्षा पद्धति, बालक की आक्रामक प्रवृत्तियों को रचनात्मक कार्य कैसे परिष्कृत करता है, पाठ्यक्रम मे सुधार तथा प्रयोगो के लिए विद्यालयो की स्वतन्त्रता पर चर्चा हुई। श्री हरभाई त्रिवेदी ने पूर्व प्राथमिक स्तर पर सृजनात्मक कार्य, और स्कूल स्तर पर लाभप्रद उत्पादक क्रियाओं के महत्व पर मूल्यवान सुझाव दिये।

सम्मेलन-उप-समिति प्रात ६ बजे से बैठी और इसमे ये सदस्य उपस्थित थे .—

श्री आचार्लू, श्री राधाकृष्ण, श्री वजूभाई, श्री पाटणकर, श्री पूर्णचन्द्र जैन, श्री वशीधर श्रीवास्तव, श्री मनुभाई, मार्जरी बहन।

विचार-विमर्श के बाद नीचे लिखे निश्चय लिये गये

(१) २९ सितम्बर और २० अक्तूबर के बीच दिल्ली मे हो तो २ दिन का और सेवाग्राम मे हो तो ३ दिन का एक सम्मेलन किया जाय, ९ और १० अक्तूबर को ठीक रहेगा।

(२) सम्मेलन मे नीचे लिखे विषयो पर चर्चा की जायगी—

(अ) शिक्षा मे वर्तमान सकट और इस परिस्थिति के लिए उत्तरदायी कारण की खोज और वर्तमान शिक्षा-नीतियो ने इस सकट को सुलझाने का प्रयास किये बिना कहाँ तक इसे बढाया है।

(ब) देश के लिए नयी शिक्षा-नीति।

—के० एस० आचार्लू
मत्री
नयी तालीम समिति

आचार्यकुल : मुशहरी की रिपोर्ट

ग्रामस्वराज्य की मूल कल्पना में शिक्षा और उसके दर्शन तथा संगठन का केन्द्रीय महत्व है। मुशहरी प्रखंड में पुष्टि अभियान को एक खास स्तर तक पहुँच जाने के बाद जे० पी० वहाँ समग्र क्रान्ति की दृष्टि से शिक्षा में प्रयोग करने का सोच रहे हैं। इस प्रयोग में गुजरात के वेडछी आश्रम के श्री ज्योतिभाई देसाई उनके सहयोगियों और छात्रों के साथ मुशहरी में लगनेवाले हैं। आचार्यकुल इस प्रयोग के लिए आरम्भिक भूमिका बना दे, इस दृष्टि से गत अप्रैल में जे० पी० ने केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के संयोजक श्री वंशीधरजी श्रीवास्तव को बुलाकर बातें की और यह तय हुआ कि ज्योतिभाई के पहुँचने के पहले वहाँ पर आचार्यकुल का काम आरम्भ कर दिया जाय। स्थानीय शिक्षा अधिकारियों से मिलकर यह तय हुआ कि प्रखण्ड को पहले चार-पाँच भागों में बाँटकर वहाँ स्थानीय शिक्षकों और हो सके तो गाँवों के कुछ प्रमुख लोगों को बुलाकर उनसे चर्चा करने की व्यवस्था की जाय और फिर प्रखण्ड स्तर पर आचार्यकुल के गठन का प्रयास हो। स्थानीय सर्वोदय कार्यकर्ता इसमें योजन तथा सहयोग करेंगे, यह भी तय किया गया।

इस दृष्टि से गत १८ मई से २८ मई तक मैंने मुशहरी प्रखण्ड का भ्रमण किया। जिन चार-पाँच स्थानों पर गोष्ठियाँ होनेवाली थी वे नहीं हो सकी क्योंकि उनके लिए पहले से कोई तैयारी आदि नहीं की गयी थी। फिर भी २८ तारीख को प्रखण्ड शिक्षा अधिकारी की सहायता से प्रखण्ड-स्तरीय शिक्षक-गोष्ठी हुई। करीब १५० लोग आये थे। काफी उपयोगी चर्चाएँ हुई और शिक्षकों को आचार्यकुल का विचार बताया गया। सभी जगहों की तरह वहाँ भी शिक्षक संघ काम कर रहे हैं और उसी दिन उन्होंने शिक्षक-संघ की भी बैठक

बुला ली थी। अत शिक्षकों ने सघ की बैठक के बाद विचार करने तथा आचार्य-कुल का गठन करने का विचार प्रकट किया है। आगे के काम का सयोजन करने के लिए सर्वोदयग्राम के नयी तालीम विद्यालय के प्रधानाचाय श्री श्यामनारायण जी 'विकल' को संयोजनका भार सौंपा गया। उस समय आचार्यकुल के १६ सदस्य बने। यह स्पष्ट था कि यदि पहले से संयोजन और स्थानीय लोगो ने इस काय म रुचि ली होती तो काफी काम हो सकता था। फिर भी विचार का प्रवेश हो गया है।

इसके अलावा प्रखण्ड के पताही और नरोली पंचायत क्षेत्रो के गांवो मे भी गया। वहाँ पर ग्रामसभाएँ कैसे काम कर रही हैं और पुष्टिकाय मे कैसे अनुभव आ रहे हैं इसका अध्ययन करने की दृष्टि से ही मैं गया था। इस क्रम मे पताही के हाईस्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय के शिक्षको और छात्रो से तथा नरोली के हाईस्कूल के शिक्षको से अच्छी चर्चाएँ हुई। मुजफ्फरपुर शहर में भी मैं दो दिन रहा और वहाँ पर दो हाईस्कूलो और एक महिला प्रशिक्षण विद्यालय के शिक्षक शिक्षिकाओं से चर्चा हुई और नगर के लंगटसिंह कालेज के अधिकारियो से भेंट की। अब शहर मे आचार्यकुल का सगठन करने का आधार बन गया है। गांधी शांति प्रतिष्ठान के मित्र श्री शाहीजी ने और श्री हलधरजी ने इन चर्चाओं का सयोजन किया।

मुशहरी मे पुष्टि अभियान की अपनी एक विशिष्टता है—वह है उसमें आरम्भ से ही रहनेवाली समग्रता की प्रक्रिया। जैसा मैंने अनुभव किया वहाँ पर ग्रामसभाएं अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय लगीं। इसका कारण सम्भवत पुष्टि काम का विकास और संगठन से जोड दिया जाना है। किन्तु ग्रामसभाएँ बराबर सक्रिय रहे उनका कार्यान्वयन सही और समर्थ हो इसके लिए प्रशिक्षण और मार्गदर्शन तथा ग्राम सयोजन मे उनकी मदद करने का दायित्व आचार्यकुल को ग्रहण करना होगा। मुशहरी म इसके लिए पूव भूमिका बन गयी है। आचार्यकुल को अपनी इस नवीन भूमिका के लिए तत्काल तैयार होना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि वहाँ पहले आचार्यकुल का गठन हो और पहले उसका स्वय का ही तदथ प्रशिक्षण हो। यह काय तुरन्त आरम्भ कर देना होगा और इसके लिए तयारियाँ आरम्भ कर दी गयी हैं।

—कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

सम्पादक मण्डल ।
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : २०
अंक : १
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

अगस्त '७१

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये हैं और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयी तालीम : अगस्त, '७१
पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

पापी और खुदगर्जी दुनियाँ

प्यारे श्रीमन्‌जी खुश और सलामत रहो,

आपका प्रेम और मोहब्बत से भरा हुआ खत मिला। बहुत खुशी हुई। बहुत-बहुत शुक्रिया, यादआवरी का। मश्कूर हूँ। मुझे यहाँ अक्सर खत देर से मिल जाते हैं। मैं अक्सर दौरे पर होता हूँ। और लिखने में भी अक्सर देरी हो जाती है। शुक्र है कि आप लोग खैरियत से हैं। हम लोगों पर तो हर रोज मार्शल लॉ है।

मेरा बयान तो आप लोगों ने अखबारात में पढ़ लिया होगा। बंगला देश की हालत काबिल रहम है। इतने मजालिम शायद दुनिया में किसी पर न की गयी हो और अफसोस की बात यह है कि दुनिया की कौमें तमाशा देख रही है, और किसी के दिल में उनके लिए रहम नहीं। यह दुनिया पापी और खुदगर्जी की दुनिया है।

मुझे तो जगजीवनराम से इत्तफाक है कि पाकिस्तान शरारती बच्चा है जो हमेशा शरारत पर तुला रहता है। जब तक उसको थप्पड़ न पड़े तब तक वह मानता ही नहीं।

काबुल अफगानिस्तान
२८-६-'७१

आपका
अब्दुल गफ्फार

(श्री श्रीमन्‌नारायणजी को सीमान्त गांधी का लिखा पत्र)

अग्रवाल-मुद्रक ⊙ सर्वोदय प्रेस, मानमंदिर, वाराणसी-१

वर्ष : २०
अंक : २

—विनोबा

(७६ वाँ जन्म दिन पर नयी तालीम की शुभकामना)

सितम्बर, १९७१

पब्लिक स्कूल बन्द हों।

पब्लिक स्कूलों के चलते इस देश में समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकेगी—ऐसा अनुभव करने के बाद ही कोठारी कमीशन ने देश में विद्यालय-शिक्षण की एक समान प्रणाली (एक कॉमन स्कूल सिस्टम) की स्थापना का सुझाव दिया था। शिक्षा में जब तक विषमता बनी रहेगी, समाज में समता स्थापित नहीं हो सकेगी। पब्लिक स्कूल, जिनके लघु संस्करण आज के नर्सरी, और किन्डर गार्टन स्कूल हैं, और जिनकी संख्या स्वराज्य के बाद ज्यामितिक अनुपात से बढ़ी है, ऐसे ही केन्द्र हैं जहाँ धनी अपने बच्चों के लिए शिक्षा खरीदते हैं और जहाँ अलगाव और वर्गभेद की प्रवृत्ति का सृजन होता है। नर्सरी स्कूलों से प्रोमोशन पाता हुआ कान्वेन्ट के पब्लिक स्कूलों में पढ़नेवाला विद्यार्थी भारत की सामान्य जीवन-धारा और संस्कृति से एकदम अपरिचित ही नहीं रहता, उससे विमुख भी हो जाता है। वह देश के ८० फी सदी गरीबों की रोटी-दाल की समस्या को समझ नहीं सकता। और जब हम देखते हैं कि देश का प्रशासन धीरे-धीरे इन्हीं पब्लिक स्कूलवालों के हाथ में चला जा रहा है, तो लोकतंत्र और समाजवाद को खतरा है—ऐसा सोचने के लिए मजबूर होना पड़ता है। प्रशासन में वे इसलिए नहीं जा रहे हैं कि वे ही देश के सर्वाधिक प्रतिभा सम्पन्न छात्र हैं, बल्कि इसलिए कि देश के प्रशासन को चलाने के लिए एक उपनिवेशवादी साम्राज्यवाद ने आई० सी० एस०, पी० सी० एस० के जिस 'स्टील फ्रेम' की रचना की थी स्वराज्य

वर्ष : २०
अंक : २

के बाद भी उसकी व्यवस्था बनायी रखी गयी। आई० सी० एस०, पी० सी० एस० (नया नाम आई० ए० एस० और पी० ए० एस० है) अर्थात् भारतीय और प्रादेशिक प्रशासनिक सेवाओं की परीक्षाओं मे शिक्षा का माध्यम आज भी अंग्रेजी है। अतः अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों-कालेजो की बेहद खर्चीली शिक्षा देने की क्षमता जिन अभिभावकों में है, वे ही इन स्कूलों से लाभ उठा पाते हैं। अंग्रेजों के जमाने मे दुभाषिए का काम करके जो एक नया वर्ग बन गया था और जिसके साथ हिन्दुस्तान के सामन्ती वर्ग ने समझौता कर लिया था, वही वर्ग आज भी अगुआ बना हुआ है और साधारण जनता जहाँ पहले थी वही आज भी है; शायद बद से बदतर ही हुई है।

कहते है कि इन स्कूलो मे 'अच्छी' शिक्षा मिलती है। हम 'अच्छे' शब्द की सापेक्षिकता की बहस मे न पड़कर अगर इन पब्लिक स्कूलो की शिक्षा को 'अच्छी' मान भी लें तो भी हम चाहेंगे कि जो 'अच्छी शिक्षा' समाजवाद के प्रति प्रतिश्रुत देश के ९० प्रतिशत बच्चों को सुलभ नही, वह देश के चन्द अमीरो के बच्चो को न दी जाय। इसलिए जो इन स्कूलों को बन्द करने की बात कहते है उनको इतना कहकर टाल देने से काम नही चलेगा कि वे 'अच्छी शिक्षा' का विरोध कर एक ऐसी संकुचित दृष्टि का परिचय दे रहे हैं जो शिक्षा की दृष्टि से अमनोवैज्ञानिक और देश के व्यापक हित की दृष्टि से अनुचित है। वर्गभेद और अलगाव की प्रवृत्ति को बढ़ानेवाली और देश की संस्कृति से विमुख सामन्तवादी मनोवृत्ति का सृजन करनेवाली शिक्षण-संस्थाओं को बन्द कर देने की वकालत करनेवालों के तर्क में जो बल है, उससे इनकार करनेवाले को अपना हृदय टटोलना होगा कि कहीं उसका निहित स्वार्थ उसके साथ छल तो नहीं कर रहा है। देश का व्यापक हित इन स्कूलों को बन्द करने मे है—अच्छी शिक्षा के नाम पर इनको चलाते रहने में नही। शिक्षा जगत में ये अन्याय के स्थल हैं और इन्हें बन्द करने अथवा इनमें वांछित परिवर्तन लाने के लिए अगर प्रतिकार करना पड़े तो उसे भी करना चाहिए।

इन स्कूलों को बन्द न करने के लिए एक दूसरी दलील यह दी जाती है कि एक ही शिक्षण-प्रणाली कम्यूनिस्ट राष्ट्रों की पद्धति है,

ग्रौर लोकतंत्र मे तो 'प्रयोग' की छूट होनी ही चाहिए। यह ठीक है। पर सामान्य शिक्षण प्रणाली के भीतर प्रयोग की छूट एक बात है ग्रौर एकदम विभिन्न शिक्षण प्रणाली दूसरी बात है। प्रयोग पद्धति म होता है प्रणाली मे नही। शिक्षा पद्धति ग्रौर शिक्षा प्रणाली मे ग्रंतर होता है। ग्राचार्य कृपलानी ने जब 'लेटेस्ट फैड' नाम की पुस्तक म कहा था कि बेसिक शिक्षा शिक्षा की पद्धति नही प्रणाली है तो शायद वे यही कहना चाहते थे। शिक्षा-प्रणाली का सम्बन्ध किसी राष्ट्र ग्रथवा समुदाय के जीवन दर्शन ग्रौर समाज नीति से होता है। जब कोई राष्ट्र या समुदाय किन्ही विशिष्ट जीवन मूल्यो से प्रभावित होकर उन्ह प्राप्त करने के लिए ग्राचरण करता है, तब यह ग्राचरण उस समुदाय ग्रथवा राष्ट्र का 'जीवन मूल्य' कहलाता है। शिक्षा इस ग्राचरण की प्रेरक शक्ति है। यहाँ 'शिक्षा' शब्द से तात्पर्य शिक्षा प्रणाली से है। प्रणाली के साथ प्रयोग नही चलता नही चलना चाहिए हाँ, उस प्रणाली के भीतर 'मूल्यो' को 'कैसे' प्राप्त करें, के प्रयोग हो सकते हैं। यह पद्धति है। इसलिए 'प्रयोग' के नाम पर दूसरी ही शिक्षा प्रणाली की बात करना गलत होगा क्योकि इसका ग्रर्थ होगा कि ग्रापका राष्ट्र या समाज जिन जीवन मूल्यो मे निष्ठा रखता है ग्रापका उनमे विश्वास नही है। इसलिए शिक्षा की समान स्कूल प्रणाली चलाने के तर्क म जो बल है उससे इनकार नही किया जा सकता।

नीचे की बातें पूरी हो तो हम मानेंगे कि विद्यालय समान स्कूल प्रणाली के भीतर है

(१) पहली तो यह कि शिक्षा का माध्यम, एक स्तर की शिक्षा के लिए समान है। जाहिर है कि यह माध्यम मातृभाषा या क्षत्रीय भाषा होगी।

(२) दूसरी यह है कि एक स्तर की शिक्षा के पाठ्य विषय (कान्टेन्ट ग्राफ एजुकेशन) भी समान हैं। ऐसा नही कि एक ही स्तर की शिक्षा के स्कूलो मे कहीं लड़के समाजोपयोगी उत्पादक काम कर रहे हैं, ग्रौर कही खाली कोरी पढाई लिखाई कर रहे हैं।

(३) तीसरी यह कि मानव जीवन के जो सर्वसम्मत ग्रौर सर्व स्वीकृत नैतिक ग्रौर ग्राध्यात्मिक मूल्य हैं ग्रौर जो सब धर्मों मे समान हैं, उनकी शिक्षा सभी स्कूलो मे समान हो, भले विशेष धर्म

वाले अपने धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध अपने धर्म माननेवालों के लिए करें।

इन सीमाओं के भीतर अगर प्रयोग हो तो ठीक है। अगर पब्लिक स्कूल अंग्रेजी के अनिवार्य माध्यम को छोड़ दें और पाठ्य विषयों की एकता स्वीकार करें तो इन स्कूलों को बन्द करना आवश्यक नहीं होगा।

कोठारी कमीशन ने यह भी सुझाव दिया है कि गरीब छात्रों को छात्रवृत्ति देकर इन स्कूलों में भेजा जाय। इससे समस्या का हल नहीं होगा। होगा यह कि जिन गरीब लड़कों को अपने घर और पड़ोस के वातावरण से एकदम अलग एक नये वातावरण में शिक्षित किया जायगा वे भी अपनी संस्कृति से विमुख होंगे और उनमें भी पूंजी-वादी सामन्तवादी मनोवृत्ति का सृजन होगा।

तब भी एक सावधानी और बरतनी होगी। इन स्कूलों में प्रवेश 'धन' के आधार पर होता है। यह नहीं होना चाहिए। राज्य में अगर प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा निःशुल्क और स्थानीय निकायों द्वारा संचालित स्कूलों में बच्चों से कोई फीस नहीं ली जाती तो इन तथाकथित स्कूलों के प्रारम्भिक और माध्य मिक स्तर की शिक्षा पानेवाले बच्चों से भी कोई फीस न ली जाय। अगर ये पब्लिक स्कूल छात्रों से फीस न लें अथवा उतनी ही फीस लें, जितनी समान स्तर की शिक्षा के लिए दूसरे पड़ोसी स्कूल ले रहे हैं, तो इनको बन्द करने का कोई अर्थ नहीं।

असल बात यह है कि शिक्षा द्वारा सामाजिक सहिष्णुता और राष्ट्रीय एकता बढ़े और धनी गरीब का अन्तर अथवा सामाजिक अलगाव की प्रवृत्ति समाप्त हो, इसके लिए शिक्षा की समान स्कूल प्रणाली आवश्यक है और यदि पब्लिक स्कूल राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सहिष्णुता प्राप्त करने में बाधा बनते हैं तो उन्हें बन्द करना चाहिए अथवा उनमें वांछित सुधार करना चाहिए।

—वंशीधर श्रीवास्तव

श्री धीरेन्द्र मजूमदार

समग्र क्रान्ति के अन्तर्गत ही शिक्षा में क्रान्ति सम्भव

[सहरसा के मनोहर उच्च विद्यालय में ९ अगस्त को 'शिक्षा में क्रान्ति दिवस'-समारोह के अवसर पर दिये गये भाषण से उद्धृत।—स०]

आप सब शिक्षा में क्रान्ति चाहते हैं तो आपको गहराई से विचार करना होगा कि शिक्षा में क्रान्ति कैसे हो सकेगी। पहली बात यह समझनी चाहिए कि समाज के किसी एक हिस्से में क्रान्ति नहीं हो सकती है। पूरे समाज में पुराना मूल्य तथा पुरानी पद्धति और मान्यताएँ कायम रहें और शिक्षा में क्रान्ति हो जाय, ऐसा नहीं हो सकता। शिक्षा में एक क्रान्ति अंग्रेजों ने की थी, लेकिन साथ-साथ उन्होंने सामाजिक मूल्यों को बदलकर समाज-क्रान्ति भी की थी।

प्रश्न यह है कि उन्होंने किस मूल्य के बदले में किस दूसरे मूल्य की प्रतिस्थापना की थी। यद्यपि वह क्रान्ति अधोमुखी थी तथापि वह क्रान्ति ही थी। अंग्रेजों के आने से पहले समाज का मूल्य इस प्रकार था—'उत्तम खेती, मध्यम बाण, अधम चाकरी भीख निदान।' अंग्रेजों ने इस मूल्य को बदल कर दूसरे इस मूल्य की स्थापना की—

'उत्तम चाकरी मध्यम बाण, अधम खेती, भीख निदान।' दुर्भाग्य से आपलोग अभी भी अंग्रेजों द्वारा चलाये हुए मूल्य को ही मानते हैं। जबतक आप इस मूल्य को बदल कर पहले के मूल्य पर अपनी निष्ठा स्थापित नहीं करेंगे तबतक आप लाख नारे लगाते रहिए, शिक्षा में क्रान्ति नहीं होगी। आपको स्पष्ट रूप से यह निर्णय करना होगा कि समाज में शिक्षित लोगों का रोल क्या होगा। आज तो उसका रोल मैनेजर बनने का है। कृषि और उद्योग के विद्यार्थी भी शिक्षा पाकर मैनेजर ही बनना चाहते हैं। दूसरी तरफ विज्ञान और लोकतंत्र के युग में जब समाज में साम्य, मैत्री तथा स्वतंत्रता का उद्घोष हो रहा है तब स्वभावतः सबकी सामान्य शिक्षा की माँग हो रही है। अब

आप बताइये, जब सब शिक्षित हो जायेंगे तो सबको मैनेजर बना सकेंगे क्या ? अतएव पहली बात यह है कि आपको उत्तम खेतीवाले मूल्य पर एक सामाजिक और सांस्कृतिक क्रान्ति करनी होगी।

देश में शिक्षित लोगों की बेकारी बढ़ रही है। ऐसा यदि नहीं होता तो शायद आपलोग इस क्रान्ति का नारा भी नहीं लगाते, क्योंकि आप तरुणों की बेकारी के कारण निराशा और उद्दण्डता से परेशान हैं। शिक्षित बेकारों को काम कैसे दिया जाय, इस पर सब लोग विचार कर रहे हैं। तो सरकार और जनता चाह रही है कि शिक्षा में लघु उद्योगों को प्रवेश कराया जाय। लेकिन लघु उद्योगों से क्या मिलनेवाला है ? क्या ये लड़के उससे अपना गुजारा कर सकेंगे ? आप तो केन्द्रित उद्योग के पुजारी हैं, इस कारण आप गांधी को अर्व-शानिक कहते हैं। विज्ञान उद्योग के मामले में आटोमेशन से बढ़ कर साइबर-नेशन तक पहुंच गया है। इस पद्धति से अगर पूरे अमेरिका में उद्योग धन्धा चलने लगे तो वहाँ केवल ३०० आदमी की जरूरत पड़ेगी। अब आप बतायें कि आप समाज की अर्थनीति में आटोमेशन और साइबरनेशन चाहते हैं और अपने बच्चों को लघु-उद्योग सिखाकर बेकारी की समस्या हल करना चाहते हैं। इससे अधिक मन्दबुद्धि का परिचय क्या होगा ? लड़के लघु उद्योग सीखेंगे और फिर मान लो कि आपने कहीं से पूंजी बटोरकर उद्योग में लगा भी दिया तो इस आटोमेशन और साइबरनेशन के माल के मुकाबले में अपना माल भी बेच सकेंगे क्या ? अतः शिक्षा में क्रान्ति चाहिए तो जहाँ एक तरफ सामा-जिक और सांस्कृतिक क्रान्ति आवश्यक है, वहाँ विकेन्द्रित उद्योगवाद की स्थापना द्वारा आर्थिक क्रान्ति भी आवश्यक है।

आज तो जिसका लड़का स्कूल में पढ़ता है, वह कहता है कि मेरे बबुआ स्कूल जाते हैं, उन्हें कोई काम मत दो। आप जितने पढ़े लिखे लोग हैं सबके सब यही मानते हैं कि पढ़ लिख कर शरीर श्रम नहीं करना है, क्योंकि वह सबसे छोटा और नीच काम है। तो आप चाहे जितना प्रयास करेंगे, लड़के चाहे जितने तोड़-फोड़ करेंगे, आपकी समस्या का हल नहीं होगा। इसीलिए विनोबा शिक्षा में क्रान्ति की बात नहीं करते, वे समग्र क्रान्ति की बात करते हैं। वे समाज की बुनियादी इकाई गाँव से क्रान्ति शुरू करना चाहते हैं। इसके लिए वे उन्नीस साल तक पूरे देश में घूम-घूमकर ग्रामस्वराज्य की समग्र क्रान्ति का सन्देश सुनाते रहे हैं। अतएव अगर आप शिक्षा में क्रान्ति चाहते हैं तो आप सबको इस समग्र क्रान्ति में लगना होगा और उसीके अन्तर्गत शिक्षा में क्रान्ति का कार्यक्रम उठाना होगा। (प्रस्तुतकर्ता—मदन दीन)

दिनेश सिंह

हमारी शिक्षा-संस्थाएँ तथा धार्मिक शिक्षा : एक समीक्षा

[वादे वादे जायते तत्वबोधः—इसी दृष्टि से हम नयी तालीम में यह लेख दे रहे हैं। इस विषय पर अन्य दृष्टिकोण का भी 'नयी तालीम' स्वागत करेगी।—सं०]

वर्तमान प्रजातान्त्रिक एव समाजवादी भारत मे शिक्षा के क्षेत्र मे धार्मिक शिक्षा के लिए समय-समय पर अनेक व्यक्ति अपने भाषणों एव विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे दलीलें पेश करते दिखाई पडते हैं। इस प्रकार की विचारधारा की परीक्षा के लिए सर्वप्रथम धर्म की उत्पत्ति तथा उसका विवेचन आवश्यक हो जाता है। धर्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक सिद्धान्त देखने को मिलते हैं। ये हैं :—आत्मवादी सिद्धान्त, जीवित सत्तावाद का सिद्धान्त, समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रहस्यवाद का सिद्धान्त, धर्म की सक्रान्ति का सिद्धान्त इत्यादि। धर्म के उपर्युक्त सभी सिद्धान्त यह बतलाते हैं कि धर्म दैवीय न होकर मानवकृत है। मानव के लिए सदैव से सृष्टि-सम्बन्धी घटनाएँ रहस्यपूर्ण रही हैं। मानव को यह विश्वास स्थपित करना पड़ा कि कोई अलौकिक शक्ति सृष्टि की समस्त घटनाओं का सचालन करती है। इस अलौकिक शक्ति को मानव ने श्रद्धा और आस्था का आधार बनाया। आदिकालीन मानव को पूर्णतः विश्वास था कि इस अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करके अनेक सकटों का निवारण किया जा सकता है। यही विश्वास ही धर्म कहलाया। धर्म के सम्बन्ध में इसी प्रकार के विचार ई० ए० होबेल ने भी व्यक्त किये हैं—"धर्म अलौकिक शक्ति के ऊपर विश्वास मे आधारित है, जो आत्मवाद और 'माना' (प्रकृति की शक्ति) को सम्मिलित करता है।" विश्व के प्रत्येक धर्म मे विश्वास की प्रचुरता एव साम्राज्य सर्वत्र स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। तर्क का कोई विशेष स्थान नहीं दिखाई पडता है। दूसरी ओर विज्ञान पूर्णत तथ्य पर आधारित होता है। वैज्ञानिक प्रवृत्ति धार्मिक विश्वासों को इसीलिए दिन-प्रति-दिन कमजोर करती दिखाई पडती है।

विश्व के सभी राष्ट्र इस वैज्ञानिक युग में अपने बालक बालिकाओं को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से शिक्षा देने के पक्ष मे शत-प्रतिशत हैं। उक्त राष्ट्र भले ही पूँजीवादी हों अथवा समाजवादी या बीच के हो। धर्म के अधिकांश पहलू अतार्किक, असत्यपूर्ण एवं अवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखनेवाले होते हैं। बालक मे जिज्ञासा-प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक है। विश्व के विभिन्न धर्मों में ऐसी घटनाओं एवं दृश्यों का वर्णन सर्वत्र देखने को मिलता है, जिनके सम्बन्ध मे बालक के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देने मे अध्यापक एवं समाज अपने को पूर्णत: असमर्थ पाता है। 'धार्मिक शिक्षा' विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों का प्रमुख अंग बने, का नारा लगानेवालों को ज्ञात हो कि भाषा-शिक्षा सम्बन्धी पाठ्यक्रमों एवं तत्सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तकों में धर्म के ही सन्दर्भ एवं प्रसंग सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं। क्या ये प्रसंग अवैज्ञानिक धारणा एवं अंध विश्वास के लिए पर्याप्त नही हैं? इस प्रकार के अवैज्ञानिक सन्दर्भ बालक-बालिकाओं मे अनिर्णीत एवं सन्देहास्पद धारणाएँ जीवन पर्यन्त के लिए घर कर लेती हैं। इन अवैज्ञानिक धारणाओं से छुटकारा दिलाने का कोई उपचार ही नहीं है। खेद का विषय है कि विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा पर बल देनेवाले आज तक अपना निश्चित पाठ्यक्रम नहीं बना पाये हैं। इसका क्या कारण है, यह अत्यधिक गम्भीरता से सोचने की बात है। इनका कथन है कि प्रत्येक धर्म की अच्छी-अच्छी बातें हैं। पर कौन-कौन से नैतिक आदर्श हैं, इनकी गिनती एक दर्जन से आगे नहीं गिना पाते हैं। क्या इन एक दर्जन बातों को हम भाषा, नागरिक शास्त्र, इतिहास तथा भूगोल आदि विषयों के माध्यम से नहीं दे सकते? तो यह फिर धार्मिक शिक्षा पर इतना बल क्यों दिया जाता है?

भारत को सभी लोग धर्म-प्रधान देश मानते हैं। भारत की प्राचीन शिक्षा भी धर्म प्रधान थी। भारतीयों को जगत मिथ्या तथा घोर जीवन का एकमात्र सत्य प्रतीत हुआ—जीवात्मा का परमात्मा मे विलीनीकरण। इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति थी। आज देश मे ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो मोक्ष प्राप्त कर स्वर्ग मे नहीं रहना चाहते हैं, अर्थात् जगत मिथ्या के स्थान पर स्वर्ग मिथ्या की धारणा पर वे अटूट विश्वास रखते हैं। इसका समर्थन राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी किया है। एक बात अत्यधिक गम्भीरता की यह है कि भारतीय धर्मशास्त्रों मे उल्लिखित धर्म की जड़ पुनर्जन्म के सिद्धांत में निहित है। इसी आधार-स्तम्भ के बलबूते धर्म का विशाल महल खड़ा है। क्या हम धर्म की शिक्षा द्वारा पुनर्जन्म के सिद्धांत को

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर सिद्ध करने का साहस कर सकते हैं ? सम्भवत यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त अस्पृश्यता विरोधी अभियान को असफल कर रहा है। अस्पृश्यता निवारण के लिए महर्षि दयानन्द ने चेतना एव जाग्रति दी तथा महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता-निवारण अभियान जीवन के अन्तिम दिनो तक जारी रखा। परिणाम हमारे सामने परिलक्षित है।

धर्म की शिक्षा देने का प्राचीन भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक कारण देना भी धर्म शिक्षा के समर्थकों का सम्बल रहता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा शास्त्रियो का मत था कि पूर्वजन्म के सत्कर्मों के परिणामस्वरूप कुलीन ब्राह्मण के घर म जन्म प्राप्त हो सकता है। प्राय लोगो का यह मत है कि भारत म वर्ण ही कठोरता के साथ व्यवसायो का निश्चय करते थे तथा अध्यापन ब्राह्मणो का एकाधिकार था।[१] धर्मशास्त्रों ने शूद्रो को वैदिक शिक्षा तथा संस्कार देने का विरोध किया है और समाज उनसे सहमत था।[२] प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि गुरु-सेवा बिना ज्ञान की प्राप्ति नही हो सकती है।[३] परन्तु प्राचीनकाल मे भी जो विद्यार्थी शिक्षा शुल्क देते थे उन्हे नाममात्र को ही काम करने पड़ते थे। केवल सेवा के लिए निर्धन विद्यार्थियो को आचार्य अपना शिष्यत्व प्रदान करते थे। अत गुरु सेवा का कर्तव्य विशेष तथा उन्हीं बालको पर लागू था जो अध्ययन शुल्क न देते थे।[४] प्राचीन भारत मे भिक्षा मांग कर पेट भरना विद्यार्थी का धर्म माना गया था। वैदिककाल से ही इस तथ्य का उल्लेख धर्म ग्रन्थो मे मिलता है।[५] कुछ धार्मिक ग्रन्थों ने तो विद्यार्थियों के लिए प्रात एव साय दोनो समय भिक्षा मांगना अनिवार्य घोषित किया था।[६] इसके साथ ही साथ यह भी उल्लेख मिलता है कि भिक्षा मे प्राप्त वस्त्र या मुद्रा गुरुदक्षिणा के रूप में आचार्य को

१—डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति पृ० ३०।

२—वही पृ० ३४।

३—गुरु शुश्रूषया ज्ञान शान्ति योगेन विन्दति। महाभारत ५-३६ ५२

४—डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर प्राचीन भारतीय शिक्षणपद्धति पृ० ४६।

५—अथर्ववेद ११ ५ ९

६—जैमनीय गृह सूत्र १ १८

सौंप देनी चाहिए।[७] सम्भवत इन्ही तथ्यो के आधार पर कीविल ने लिखा है कि प्राचीन भारत मे विद्यार्थियो का जीवन बडा ही कटु था। उन्हे अनजाने स्थान मे रहना पडता था। भोजन के लिए भिक्षा माँगनी पडती थी, या परिश्रम के कार्य करने पडते थे। जीवन में आनन्दो के सभी द्वार उनके लिए बन्द थे।[८] हमारे धार्मिक शिक्षा के समर्थक धर्मात्मा क्या उपर्युक्त तथ्यों को भी धर्म-शिक्षा मे महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करना उचित समझेंगे? प्राचीनकाल मे धर्म शिक्षा का ही जोर था। इसके बावजूद भी अनियमित रूप से घूस लेने के उदाहरण कम नहीं मिलते हैं। पजाब के राजा अनगपाल के आचार्य उग्रभूति ने 'शिष्यहिता-वृत्ति' नामक व्याकरण की एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक को पाठ्य ग्रन्थ बनाने के लिए उग्रभूति ने कश्मीरी पडितो को राजा से दो लाख दीनारें (लगभग ६०,००० रु०) भेंट करायी थीं।[९] क्या धर्म मे लिप्त धर्मात्माओ का यही सामाजिक धर्म है और इसी धार्मिक शिक्षा को ही हम वर्तमान समाजवादी भारत म शिक्षा का प्रमुख अग बनाना चाहते हैं?

भारत विभिन्न धर्मावलम्बियों का देश है। यहाँ हिन्दू, मुसलमान ईसाई, सिक्ख, पारसी, बौद्ध तथा जैन इत्यादि अनेक धर्मों का समाज देखने को मिलता है। ऐसे देश मे राज्य के लिए धर्म शिक्षा का भार ग्रहण करना कठिन ही नहीं असम्भव एव दुस्साध्य कार्य है। गाधीजी स्वय पूर्णत धार्मिक व्यक्ति थे। सम्भवत इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। इसके बावजूद भी उन्होंने अपनी नयी तालीम योजना (वर्धा योजना) के अन्तर्गत धर्म शिक्षा को कोई स्थान नहीं प्रदान किया है। "भारत मे इतने विभिन्न समूह एव पद्धतियाँ हैं कि धर्म-निरपेक्षता एव धार्मिक शिक्षा क मिश्रण करना बिलकुल असम्भव है। भारत मे धर्म धर्मान्धता से युक्त है। यह एक तरह की बारूद है। धर्म के नाम पर लोगो को धर्मान्धता की ओर उत्तेजित किया जाता है।[१०] तथा हर समय धार्मिक पद्धतियों को अच्छे आदर्शो की अपेक्षा बुरे

७—मद्यमानि द्रव्याणि यथा लाभ मुपहरित दक्षिणा एव ता। आपस्तम्ब धर्मसूत्र १,२,३।

८—कीविल दि हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इण्डिया, भा० १, पृ० १५१।

९—डा० अनन्त सदाशिव अल्तेकर प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति पृ० १२०।

१०—डा० के० एस० श्री माली: दी वर्धा स्कीम पृ० २२५

आदर्शों की ओर पुनः जागरण का भय बना रहता है।[११] उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर धार्मिक शिक्षा का शिक्षा-संस्थाओं में प्रतिकूल प्रभाव स्पष्ट देखने को मिलता है। सम्भवतः इसीलिए जब गांधीजी ने यह अनुभव किया कि भारत में धर्म लोगों को एक राष्ट्र में मिलाने की अपेक्षा, गम्भीरतापूर्वक विभाजित कर रहा है तथा भारतीय राष्ट्रीयता को निर्बल बना रहा है तो वे बेसिक शिक्षा की नयी योजना से इसे अलग करने में नहीं हिचके।[१२] गांधीजी क्रान्तिकारी चिन्तक थे। उन्होंने ईश्वर को सत्य का नाम देकर आस्तिक और नास्तिक के बीच के सारे विवाद को जड़ ही काट दी। धर्मनिरपेक्षता उनकी शानदार विरासत है। गांधीजी भारत की जनता की धार्मिक भाग्यवादिता को खूब समझते थे, इसीलिए उन्होंने नये धार्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की थी और साथ ही साथ 'नयी तालीम' की योजना में धर्म की शिक्षा को पूर्णतः बहिष्कृत किया है। जैसा मारिना ने गांधीजी के जीवन से यह निष्कर्ष निकाला है कि जीया गया जीवन दार्शनिक प्रणालियों और धार्मिक मतवादों की अपेक्षा मानव जाति में परिवर्तन लाने में कहीं अधिक समर्थ होता है। मीरा बेन का कथन है जब कोई विचारधारा धार्मिक रूप ले लेती है तो वह अनुलंघनीय बन जाती है और उसके विकास की स्वतन्त्रता जाती रहती है।[१३]

अपराध के कारणों में प्रायः धर्म को भी अपराध का कारण बतलाया जाता है। इसका कारण यह नहीं है कि कोई धर्म अपराध करने की शिक्षा देता हो, बल्कि इसका अर्थ यह है कि अक्सर धार्मिक विषयों को लेकर मारपीट और खून-खराबी हो जाती है। ऐशेफेन बर्ग ने इस सम्बन्ध में जर्मनी में अध्ययन किया और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यूरोप के कुछ देशों में कैथोलिक लोग प्रोटेस्टेन्ट लोगों की अपेक्षा अधिक अपराध करते हैं, ये दोनों ही यहूदियों से अधिक अपराध करते हैं, और ये तीनों धर्मवाले उन लोगों से अधिक अपराध करते हैं जो किसी भी धर्म में आस्था नहीं रखते हैं।"[१४] भारत में विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों की ओर से संचालित विद्यालयों की ओर यदि हम ध्यान दें तो यह देखने को मिलता है कि इस प्रकार

११—एच० आर० जेम्स, एजुकेशन एँड स्टेट्समैनशिप इन इण्डिया पृ० ८७-८८

१२—डा० के० एल० श्रीमाली। दि वर्धा स्कीम पृ० २१५

१३—मीरा बेन : महात्मा गांधी १०० वर्ष पृ० २५६।

१४—डा० रामनारायण सक्सेना : सोशल पथालोजी पृ० ७२।

के विद्यालय अत्यधिक संकुचित एवं संकीर्ण विचारधारा का छात्र छात्राओं मे बीजारोपण करने मे संलग्न रहते हैं। इस प्रकार के विद्यालयों मे किसी-न-किसी जाति विशेष का आधिपत्य भी देखने को मिलता है। उक्त जाति के छात्र-छात्राओं को ही अधिकांश सुविधाएँ सुलभ रहती हैं। यही नही, इन विद्यालयों मे अध्यापकों की नियुक्ति भी जाति के आधार पर की जाती है। सनातन धर्म और आर्य समाज के नाम पर फैले भारत के सभी विद्यालय एवं महाविद्यालय विशिष्ट जाति के आधिपत्य के शिकार हैं। धार्मिक शिक्षा प्रधान शिक्षा-संस्थाओं का यह दुःखद दृश्य है। अराष्ट्रीयता का परिचायक है। उक्त धर्मों के उच्च पद प्राप्त व्यक्ति अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ घोषित करते रहते है। कुछ विदेशी आलोचकों ने यह मत प्रकट किया है कि भारतीय अपने को सारे संसार से अधिक पवित्र समझते हैं। यह ठीक है कि ऐसी उक्तियाँ उन भारतीय वक्ताओं, लेखकों या राजनीतिक प्रतिनिधियों की हैं जो मसीही प्रवृत्तिवाले हैं, या जिनके रंग-ढंग पुरोहिताना हैं अथवा जो अपनी ही बात ले उड़ते हैं। परन्तु सामान्य निष्कर्ष के रूप मे यह कहना पूरी तरह से न्याय संगत और ठीक नही होगा कि भारतीय अत्यन्त आत्मसन्तोषी हैं और स्व-आलोचना करने मे अक्षम हैं।[१५] परन्तु यह सत्य है कि "यदि उपनिषद् काल, बुद्ध के युग अथवा किसी अन्य पुराने युग के भारतीय को आधुनिक भारत मे अवतरित किया जाय तो वह देखेगा कि उसकी जाति भूतकाल के बाह्याचारों, आडम्बरों और चिल्ल-पों से चिपकी है और उनके वास्तविक आशय लगभग पूरी तरह विस्मृत कर चुकी है। वह चरम सीमा तक पहुँची हुई मानसिक दरिद्रता, निश्चलता, घोखे हुए को दुहराते चलने की प्रवृत्ति, विज्ञान के ठहराव, कला की दीर्घकालीन वन्ध्यता और सर्जनशील सहज ज्ञान की अपेक्षा दुर्बलता को देखकर चकित हो जायेगा।"[१६] डा० राधाकृष्णन् का मत है कि आधुनिक जीवन तब तक प्रगति नहीं कर सकता जब तक उसमे वैज्ञानिक दृष्टिकोण, आविष्कारों और तकनीकी का समावेश न किया जाय। डा० राधाकृष्णन् सार्वजनिक शिक्षा के किसी स्तर पर धार्मिक मतों की शिक्षा देने के पक्षपाती नहीं हैं। उनका मत है कि ऐसी शिक्षा देने पर पाठ्चर्या के अन्य विभागों मे जो अनुसंधान की आलोचनात्मक और तार्किक पद्धतियाँ अपनायी गयी हैं उनमे बाधा उत्पन्न होगी। भिन्न-भिन्न धर्मों से मुक्ति के परस्पर

१५—के० जी० सैयदैन : भारतीय शैक्षणिक विचारधारा, भाग २

१६—डा० राधाकृष्णन् द्वारा उद्धृत, इण्डियन फिलासफी, भाग २

विरोधी द्वार और साधन बतलाये गये हैं। यदि विद्यार्थियों को ऐसे धर्मों के आचार्यों और विद्वानों से शिक्षा दिलायी जायेगी तो बन्धुत्व और समानता की इस भावना पर आघात होगा जिसकी स्थापना के लिए महाविद्यालय और विश्वविद्यालय बनते हैं।[१७] स्वतन्त्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना आजाद भी धार्मिक पृष्ठभूमि में पले और शिक्षित हुए थे। उनकी धार्मिक पृष्ठभूमि का विचार करते हुए यह आशा स्वभावतः की जा सकती थी कि वे भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा के पक्षपाती होंगे। परन्तु उन्होंने यह अनुमान किया कि इस धर्म निरपेक्ष राज्य में इतने अधिक मत मतान्तरों वाले लोग रहते हैं कि राजकीय विद्यालयों में साम्प्रदायिक शिक्षा देना न तो सम्भव ही है और न उचित ही। अति धार्मिकता से भी उन्होंने लोगों को सावधान किया था क्योंकि वे समझते थे कि दूरदर्शी उदार और सहानुभूतिशील राष्ट्रीय शिक्षा में धर्मान्धता और हठधर्मिता की भावना कहीं घर न कर ले।[१८]

हम देखते हैं कि समाजशास्त्री एवं अपराधशास्त्रीय शोधकार्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि धार्मिक व्यक्तियों में अपराध प्रवृत्ति अधिक होती है तो दूसरी ओर किसी धर्म में आस्था न रखनेवालों में सामाजिक अपराध की प्रवृत्ति कम होती है। हमारे भारत के स्वतन्त्रता के बीच के नेता भी धार्मिक पृष्ठभूमि रखते हुये उन्होंने भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के लिए धार्मिक शिक्षा का घोर विरोध ही नहीं किया वरन् प्रजातान्त्रिक प्रणाली में उसको कोई स्थान नहीं प्रदान किया है। इस परिस्थिति में हमारे विद्यालयों महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा के व्यवहार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। हमें तो अब उक्त शिक्षा-संस्थाओं को जो आज धर्म विशेष एवं सम्प्रदाय विशेष के प्रचार एवं प्रसार का साधन बनी हैं जो जाति विशेष एवं सम्बन्धित धर्मों के व्यक्तियों को शत प्रतिशत पद देने में, राष्ट्र के लिए महा कलंक बनी हुई हैं उनमें सुधार करना होगा तभी राष्ट्र से जातीयता एवं साम्प्रदायिकता भी दूर की जा सकती है। उक्त धार्मिक शिक्षा संस्थाओं को राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में परिवर्तित कर ही समाजवाद की कल्पना को भी साकार किया जा सकेगा।

१७—रिपोर्ट आफ दि यूनिवर्सिटी एजुकेशन कमीशन, पृ० २६६

१८—के० जी० सैयदैन भारतीय शैक्षणिक विचारधारा पृ० १६१

श्री दिनेश सिंह शिक्षा विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

गुजरात के विद्यालयों में नयी तालीम

गुजरात राज्य मे सन् १९३९ मे बेसिक शिक्षा उस समय प्रारम्भ हुई जब गुजरात राज्य बम्बई प्रान्त का एक भाग था। चूँकि बेसिक स्कूल जनप्रिय हुए और उनकी संख्या बढ़ी अत बम्बई प्रान्त की सरकार ने एक उत्तर-बुनियादी शिक्षा समिति नियुक्त की जिससे प्रारम्भिक स्तर के बाद भी बुनियादी शिक्षा दी जा सके।

बेसिक शिक्षा की सकल्पना जीवन के लिए शिक्षा के रूप में की गयी थी और सफाई और स्वास्थ्य, उत्पादक हाथ का काम, सामुदायिक जीवन, खेल और मनोरंजन की जीवन-प्रवृत्तियाँ उसका माध्यम थीं। शिक्षा का लक्ष्य व्यक्तित्व का समन्वित विकास था जिससे व्यक्ति के जीवन में और समाज के साथ उसके सम्बन्धों मे संतुलन आये। परन्तु वास्तविक प्रयोग मे बेसिक शिक्षा का कार्य प्रमुख रूप से, कुछ दस्तकारियों और घरेलू उद्योगो के चारो ओर केन्द्रित हो गया यद्यपि शिक्षा मे उत्पादिता पर ही जोर दिया गया था। इसीलिए यह अनुभव किया गया कि समय आ गया है जब शिक्षा के कार्यक्रम को विकसित समाज की आवश्यकताओ से सम्बन्धित किया जाय, ऐसे समाज की आवश्यकताओं से जो विज्ञान और टेकनॉलॉजी की सहायता से तेजी से बदल रहा है।

अत: कोठारी-आयोग की संस्तुतियो के अनुसार बेसिक शिक्षा को विकास-परक बनाने की दृष्टि से और उत्पादक हाथ के काम पर बल देने के लिए तथा कार्यानुभव और समाज सेवा को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने के लिए गुजरात राज्य की सरकार ने श्री मनुभाई पचोली, जो उस समय राज्य के शिक्षामन्त्री थे, की अध्यक्षता मे राज्य की बेसिक शिक्षा के मूल्यांकन के लिए एक समिति नियुक्त की।

इस समिति ने सरकार को अपनी अन्तरिम रिपोर्ट प्रस्तुत करते हुए राज्य के सभी प्रारम्भिक विद्यालयों म जून १९७१ से प्रारम्भिक सभी स्कूलों के लिए न्यूनतम कार्यक्रम, बेसिक स्कूलो मे विशेष कार्यक्रम और 'कमाओ और सीखो' क्रिया कलापों के लिए 'मार्ग दर्शक सुझाव' दिये हैं। गुजरात सरकार ने इन संस्तुतियो को स्वीकार कर लिया है और इस सत्र से योजना को शुरू कर दिया है।

राज्य के सभी प्रारम्भिक विद्यालयो के लिए न्यूनतम कार्यक्रम :

१. स्कूल की सफाई और सजावट

२ प्रार्थना, भजन और गीत

३. स्कूल एसेम्बली—सूचनाएँ देना, राष्ट्रगीत, संकल्प लेना (अगर कोई हो), अच्छे विचार प्रस्तुत करना।

४ व्यक्तिगत और परिसर की सफाई।

५. बालसभा—कक्षा और स्कूल की पंचायतें, स्कूल में सामुदायिक जीवन के लिए योजना बनाना, रिपोर्ट यानी कार्य-विवरण प्रस्तुत करना और चर्चा के बाद स्वीकार करना, सरजाम भंडारों की व्यवस्था, स्कूल-पुस्तकालय और वाचनालय का संचालन, पत्र पत्रिकाएँ तैयार करना।

६. ग्राम सेवा—सड़क, गलियों तथा सार्वजनिक स्थानों की सफाई, गाँवों की प्रगति के लिए श्रमदान, गाँव का सर्वेक्षण, लोगों की सहायता से सांस्कृतिक कार्यक्रम और सामाजिक समारोहों, सामाजिक शैक्षिक कार्यक्रमों और प्रदर्शनियों एवं मध्यकालीन भोजन-व्यवस्था का आयोजन।

७ सहकारी भंडार का संचालन—वांछित वस्तुएँ खरीदना, उनका हिसाब रखना, ग्रामीण सहकारी समितियों की कार्य-पद्धति, नियमों और विधान का अध्ययन, मीटिंग बुलाना और उसकी कार्यवाही का लेखा रखना।

८ साइंस क्लब, गोष्ठी मंडल, भजन मंडली, और भाव प्रकाशन के लिए दूसरे मंडलों का संगठन और संचालन।

९ ध्वजारोहण—मैदान और ध्वज-दण्ड की तैयारी, उचित ढंग से ध्वज वंदन करना और राष्ट्रगान गाना। राष्ट्रध्वज का सम्मान और संरक्षण।

१० पाठ्यक्रम के सैद्धान्तिक विषयों को पढ़ाते समय उनको जीवन और कार्यानुभव से अनुबन्धित करना, जिससे अध्यापन यथार्थ और व्यावहारिक हो सके। स्थानीय साधनों से शिक्षण सामग्री तैयार करना। करीक्यूलम की मासिक योजना बनाना और उसका मूल्यांकन।

११ खेल कूद के लिए प्रतिदिन समय निकालना।

बेसिक स्कूलों के लिए अतिरिक्त कार्यक्रम

सभी बेसिक स्कूलों में निम्नांकित अतिरिक्त कार्यक्रम की संस्तुति की जा रही है :

१ स्कूल और उसके पास-पड़ोस को बिलकुल साफ रखा जाय।

२. स्कूल-सरजाम फर्नीचर आदि दूसरी वस्तुएँ बिलकुल स्वच्छ रखी जायें। कूड़ा कचरा फेंकने के पात्र का समुचित प्रयोग।

३. गन्दे कान, दाँत, आँख, पाँव और नाखून के साथ विद्यार्थी स्कूल न आयें।

४ स्कूल में एक व्यस्त कारखाने का सा वातावरण हो। वहाँ प्रत्येक क्षण का उपयोग किया जाय। वहाँ रचनात्मक और सृजनात्मक क्रिया-कलापों की पूरी

गुंजाइश हो जिससे विद्यार्थियों का सर्वाङ्गीण विकास हो।

५. किसी भी सभा में समय की पाबन्दी और सभा के समय व्यवस्था रखी जाय।

६. छात्रों को किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड न दिया जाय और न उन्हें ऐसी कोई सजा दी जाय जिससे उनके आत्मसम्मान को चोट लगे।

७. शैक्षिक कार्यक्रम की समुचित योजना बनायी जाय और थोड़े-थोड़े समय बाद उसका मूल्यांकन हो। संस्था का प्रधान इन सारे क्रिया कलापों का विस्तारपूर्वक नोट रखें। छात्रों की समस्याओं पर अभिभावकों के साथ विचार किया जाय और उन्हें हल करने में उनकी सहायता ली जाय।

८. विभिन्न क्रिया कलापों के समुचित कार्यान्वयन हेतु विद्यालय गांव और जिले पंचायत समितियों से सहयोग और वित्तीय सहायता ली जाय।

कमाओ और सीखो कार्यक्रम

रिपोर्ट में पढ़ाई के समय और छुट्टी के समय छात्रों के लिए निम्नांकित कार्यक्रम सुझाये गये हैं

१. वाचनालय और पुस्तकालय में काम करना। अखबार बेचना।

२. टिन बाक्सों और डिब्बों को रंगना, स्टोव, टूटे छाते, टूटे ताले, आदि की मरम्मत करना।

३. फूल के पौधों की गमलों में और टूटे सन्दूक में कलम लगाना, वृक्षारोपण और उनकी देखभाल। बोआई, गोड़ाई, निराई, सिंचाई, रोपाई, कटाई आदि कृषि की क्रियाओं में सहायता करना। सहकारी भंडारों में समान पहुंचाना और सजाना।

४. राज का काम—काम पूरा होने के बाद ईंटों को खुरचना, पलास्टर पर पानी छिड़कना, इमारत बनाने के लिए गारा तैयार करना, मकान बनाने के लिए गारा के गोले तैयार करना, मकानों के लिए बाँस के पार्टीशन बनाना, स्तम्भपीठ तैयार होने के बाद खोखली जगहों को मसाले से भरना, कंक्रीट के कामों में लाने के लिए टिन को बालू और रोड़ों से भरना, दीवार की सफेदी करना, रंग धोना, दरवाजा, खिड़कियों का किवाड़ रंगना, दरवाजा और खिड़कियों में रोक लगाना, छोटे टुकड़ों के लिए ईंटों को तोड़ना, ईंट और छोटे पत्थर ले जाना इत्यादि।

५. सड़क बनाना—सड़क बनाने के लिए सिलसिलेवार ईंटों को सरियाना, कोलतार की सड़कों पर ईंट को हाशिया बनाना, सड़क पर कोलतार डालने के बाद बालू छींटना, सड़कों और नहरों के किनारे छोटे गढ़ों को भरना, हाईवेज

पर माइल स्टोन और गार्ड स्टोन को रखना, सड़कों के किनारे पानी की व्यवस्था करना, सड़क नापने के सर्वे के काम में सहायता देना।

६. सिलाई के कामों जैसे बटन लगाने, बटन तैयार करने में सहायता देना इत्यादि।

७. आत्मनिर्भरता के लिए कताई का काम करना, ताकि उस कमाये हुए पैसों से सफ़र और सैर की जा सके।

कार्यानुभव-कार्यक्रम

रिपोर्ट में कुछ-कुछ कार्यानुभव भी सुझाये गये हैं, जिनसे स्कूल और उनके पड़ोस को लाभ हो।

१. श्रम के द्वारा बुनाई के केन्द्रों की सहायता करना।

२ गाँव के लिए सफ़ाई की योजना तैयार करना और सफ़ाई करना।

३ प्राथमिक चिकित्सा में सहायक होना।

४. गाँव के कृषि के कामों में सहायता देना, खाद, बीज और दूसरी चीजें प्राप्त करना, किसान को मिट्टी तैयार करने, बीज बोने, खाद डालने, पेड़ लगाने, खेत में पानी पटाने, छिड़काव करने, पैदावार को बेचने में और कृषि के शोध-केन्द्रों में सहायता देना।

५. गाँव की जनगणना, गाँव की सुरक्षा, और पीने के पानी के सम्बन्धित कार्यों में ग्रामपंचायत की सहायता करना।

६ स्कूल के लिए आँकड़े जमा करने, सहकारी गोदाम, स्कूल बैंक चलाने, दोपहर का खाना तैयार करने, स्कूल के फर्नीचर रंगने और उसकी पालिश करने, पुस्तकालय में जिल्दसाजी, स्कूल के खेल के मैदान और थियेटर तैयार करने में सहायता देना।

७ बिजली के तार फिट करने में गाँव वालों की मदद करना।

८ घर घर मवेशी को पानी वाली जगहों में हकाने, गोशाला तक लाने और बीमार मवेशी को अस्पताल ले जाने में माता पिता की सहायता करना।

सरकार ने यह निर्देश जारी किया है कि इन सब कार्यों में एक शिक्षक को साल में प्रति कक्षा में १०० घंटे से कम समय नहीं देना चाहिए। काम चाहे स्कूल के नियमित समय के अन्दर हो या बाहर, कामों का पूरा रेकार्ड रखा जाय और हर स्तर पर मूल्यांकन किया जाय।

—के० एस० आचार्लु

क्रान्ति वाला

बालक क्या बनें ? कैसे बनें ?

विद्यार्थी को केवल लिखना, पढना, गिनना सिखाना शिक्षा का यह उद्देश्य पुराना हो गया है और अवैज्ञानिक सिद्ध हो गया है। शिक्षा की नयी और वैज्ञानिक परिभाषा के अन्तर्गत बालक के व्यक्तित्व का विकास प्रत्यक्ष प्रवृत्ति और दूसरो के साथ सम्पर्क मे आने से होता है। मानसशास्त्र के अनुसार व्यक्तित्व के विकास की नीव ३ से ६ वर्ष की आयु मानी जाती है, क्योकि ३ से ६ की आयु मे बालक अपनी सारी जिन्दगी की आयु से अधिक सवेदनशील होते है। ३ से ६ साल का काल ही बच्चे के जीवन का वह काल है, जब उसके मन और शरीर की शक्तियाँ खिलने का प्रयत्न करती हैं। खिलने की इस अवधि मे जो भी वातावरण बालक को मिलता है, जैसे भी सस्कार के बीच वह रहता है वही सब उसके कोमल मन पर अकित होता जाता है।

भविष्य मे व्यक्तिगत पारिवारिक और सामाजिक जीवन को ठीक ढग की तैयारी, सामूहिक प्रवृत्तियाँ—खेल, गीत, नाटक और बातचीत के माध्यम से २ साल से ६ साल की अल्पायु मे ही हो सकती हैं, क्योकि १ वर्ष से ३ साल की उम्र मे भूख, लडाई, भय, हास्य, क्रोध और चापलूसी की वृत्तियो का जन्म होता है। इन वृत्तियो को स्थायित्व प्रदान करनेवाले तत्व को सवेग कहा

जाता है। बालक में संवेग की उचित मात्रा का विकास परिपक्वता के प्रभ्यास प्रर्थात् वृत्तियों पर नियन्त्रण करना माना शिक्षण की मुख्य प्रवृत्ति है।

खाना, पीना, खेलना, उठना, बैठना, थूकना, टट्टी-पेशाब करना, सोना, घूमना नहाना, कपड़े पहनना, प्रतिथि-सत्कार करना, बातचीत करना—जैसी क्रियाएँ भी शिक्षा के विषय और माध्यम बन जाती हैं। इन क्रियाओं का सही ढंग सिखाये बिना प्रक्षर-ज्ञान कराना बच्चों की इन्द्रियों—हाथों, आँखों की शक्ति का दुरुपयोग करना है। चरित्र-गठन और व्यक्तित्व-विकास से अधिक जोर जब शिक्षा के नाम पर प्रक्षर ज्ञान को दिया जाता है तो आचार्य जैकस के शब्दों में — *बन्दर को बन्दूक चलाना सिखाना जैसा होता है।* बन्दर बन्दूक चलाना सीख सकता है पर कब चलाना इसका विवेक नहीं कर सकता। इस विवेक के बिना बन्दूक चलाने का ज्ञान स्वयं बन्दर और समाज दोनों के लिए जैसे प्रनिष्टकारी है उसी तरह समझदारी, ग्रहणशक्ति, स्नायुओं पर नियन्त्रण-क्षमता, और आत्म प्रभिव्यक्ति का अभ्यास कराये बिना प्रक्षरज्ञान बालक और समाज के लिए घातक है।' *समय से पूर्व प्रक्षरज्ञान का परिणाम* तो बहुधा बच्चों की पढ़ने की रुचि ही हट जाने के रूप में होता है। ऐसे बच्चे आगे जाकर माता-पिता, समाज, शिक्षक, सबके सिरदर्द बन जाते हैं।

मनोविज्ञान-वेत्ताओं की तो यहाँ तक मान्यता है कि यदि बालकों को स्वतन्त्रतापूर्वक अपने भावों को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त होता रहे तो उनके अन्दर किसी बुराई का प्रवेश ही नहीं होता। मनुष्य की ६ ज्ञानेन्द्रियाँ—आँख, कान, जीभ, त्वचा, मुद्रा, और भाव की पूर्ति के लिए चित्र कला, गायन-विद्या, नृत्यनाटिका, कवितापाठ, हस्तकौशल का प्राविष्कार हुआ, क्योंकि *पढ़े हुए विवरण की अपेक्षा देखी गयी, प्रत्यक्ष उँगलियों द्वारा की गयी बात सरलता* से याद रह जाती हैं। एक जर्मन विद्वान फ्रेडरिक विल्हेल्म फ्रावेल का तो मानना है कि—'बालक एक कोमल पौधा है, शिक्षक माली है, और शाला है एक बगीचा। इस शालारूपी बगीचे में बालक रूपी पौधे का विकास सहज और उत्तरोत्तर होता रहे, ऐसी परिस्थिति पैदा करना शिक्षक रूपी माली का काम है। बालक को कुछ रटा देना शिक्षा नहीं है। कच्ची उम्र में अपनी मान्यताएँ या सिद्धान्त थोप देना शिक्षा नहीं है।

बालक जिस ताजगी, सजीदगी, प्रसन्नता और शक्ति को लेकर पैदा होता है उसकी वह संवेदनशीलता, जिज्ञासा, ताजगी और निर्भीकता बालक की *बढ़ती उम्र के साथ घटती क्यों चली जाती है?* यह एक जटिल प्रश्न वैज्ञानिक, शास्त्रज्ञ और चिन्तक वर्ग के सामने था। वह समझना चाहते थे कि शारीरिक

वृद्धि के साथ साथ मानसिक और बौद्धिक क्षमताएँ भी बढ़ती क्यों नहीं ? बालक से व्यक्ति बनते बनते यह पौधा तरह-तरह के दुख क्लेश, संघर्ष, स्वार्थ, चिन्ता से ग्रसित क्यों हो जाता है ? जीवन में आनेवाली समस्याओं का सामना करने का उत्साह, ओज, उल्लास कहाँ चला जाता है ?

इन ज्वलन्त सवालों को सामने रखकर बच्चों की शक्ति वृत्ति, संस्कार और शिक्षण आदि का अध्ययन किया गया। विश्व के विभिन्न देशों के लाखों बच्चों पर प्रयोग किये गये। अध्ययन, मनन, और चिन्तन के बाद जो सूत्र हाथ में आया वह यह कि आज बालक को अनजान समझकर उसकी जिस उम्र में सर्वाधिक उपेक्षा अवहेलना, अवमानना और तिरस्कार होता है वही काल उसके सारे जीवन की दिशा निर्धारित करता है। इसलिए लिखना, पढ़ना, गिनना, सिखानेवाली शालाओं से भी पहले ऐसी शालाओं की स्थापना होनी चाहिए जहाँ उसकी मूल शक्तियों को बढ़ने खिलने का अवसर प्राप्त हो। इन शालाओं को बालवाड़ी, बालमन्दिर, शिशुमन्दिर, नन्हा भारत, बालभारत, शिशुगृह आदि नाम दिये गये। नाम से ही प्रकट है कि यह स्कूल प्रचलित स्कूलों से भिन्न दायित्ववाले हैं। इन गृहों और मंदिरों में भी बच्चे वही पुस्तकों का ज्ञान रटते रहें या अध्यापक की लाल आँख और छड़ी के इशारे से चलते रहें तो दुनिया के सारे मानस शास्त्रियों वैज्ञानिकों के ज्ञान की विडंबना के सिवाय क्या होगा ?

यह ज्ञान क्या है ? प्रयोगों के बाद जो तथ्य हाथ आया वह यह कि जैसे बच्चे का शरीर धीरे धीरे बढ़ता है उसी तरह मस्तिष्क भी बढ़ता है। जन्म के समय मस्तिष्क का आकार अपनी लम्बाई का एक चौथाई होता है। ५ वर्ष पूरे होते होते यह चौथाई आकार वाला मस्तिष्क बड़े आदमी के मस्तिष्क के बराबर हो जाता है। ५ साल के बाद मस्तिष्क का आकार मुश्किल से १ इंच बढ़ता होगा। मुँह का ऊपरी भाग जन्म के समय पूरे चेहरे की तुलना में बड़ा होता है। इधर टाँगें और बाहु धड़ की तुलना में छोटी होती हैं। बच्चे चलने तक पेट का सहारा लेते हैं, फिर हाथों का भी सहारा लेते हैं। जन्म के समय हड्डी कोमल, माँसपेशियाँ कमजोर होती हैं। स्नायुओं पर तो मस्तिष्क की कोई पकड़ होती ही नहीं। इस अवस्था में ही अगर बच्चे को खड़ा कर दिया जाय, लेटे रहने न दिया जाय तो अंगों की बनावट बिगड़ जाती है। बनावट बिगड़ने से रक्त संचालन क्रिया भी अटकती है। रक्त संचालन की अस्तव्यस्तता सारे विकास को ही रोक सकती है। हड्डी की तरह मांस

न्द्रियाँ भी उम्र के साथ साथ परिपक्व बनती हैं। शरीर की तरह मानसिक और बौद्धिक शक्ति भी प्रतिदिन, प्रतिमाह, प्रतिवर्ष बढ़ती है।

दो साल का होते-होते बालक की मलमूत्र-त्याग क्रियाओं पर नियंत्रण करने की शक्ति का विकास होता है। अब तक १६ दाँत निकल आने के कारण चेहरे का निचला भाग भी ऊपर के समान हो जाता है। मुँह का पूर्ण विकास होने पर वह शब्दों का उच्चारण करने लग जाता है। काका, पापा, बाबा, माँ, घर चल, भाई आ जैसे शब्द बोलने में उसे आनन्द आने लगता है। दो साल की उम्र तक हड्डी में इतना कड़ापन आ जाता है कि वह बड़ों की मदद के बिना चलना सीख जाता है। हाथों से कम भार की चीजों को इधर से उधर करने में उसे कर्तृत्व की अनुभूति होने लगती है। आँखों से चित्र पहचानने लगता है। कानों से अलग अलग प्रकार की आवाजों को पकड़ने लगता है। बड़ों का तिरस्कार या वात्सल्य की भावना को भी पहचानने लगता है। उसके अनुसार चित्त में प्रतिक्रिया भी होने लगती है—हाँ, अभी वह व्यक्त नहीं कर सकता है, बस एहसास कर सकता है। अपनी इन्द्रियों की शक्ति के अनुपात में क्रिया करने में उसे अपने प्रत्येक अंग, अवयव की सार्थकता का बोध होने लगता है। इसी के साथ बड़ों की हर बात पर न, न, न, न कहने में भी उसे आनन्द आता है।

तीन साल का होते-होते दौड़ना, कूदना, तीन पहिए की साइकिल चलाना, सीढ़ी चढ़ना, उतरना, मुड़ना, ठिठकना, पलथी लगाना, उकड़ूँ बैठना, खुड्डी पर टट्टी जाना, नाक सिनकना, मुँह धोना, दाँत माँजना, कुल्ला करना, सड़क पार करना, नाली लाँघना, मिट्टी के खिलौने बनाना, कागज पर रेखाएँ खींचना, लकड़ी के टुकड़े से रेलगाड़ी बनाना, मीनार बनाना, चक्की चलाना, धान में से चावल अलग करने तक चक्की में दलना, कागज के नाव बनाना, पत्तों के माला, पत्तल, तोरण, आदि बनाना, पत्तों को पहचानना, अपना सामान यथास्थान रखना कपड़े पहनना, उतारना, खूँटी पर टाँगना, तह लगाना, नहाना, झाड़ू लगाना जैसी एकहरी क्रियाओं को सीख जाता है।

चार वर्ष का होते-होते चबा-चबा कर खाना, मेहमान का स्वागत करना, परोसना, कपड़े धोना, सुखाना, छोटे भाई-बहनों को खिलाना, माँ को भोजन बनाने में मदद करना, पिता की मदद करना, छोटे-छोटे वाक्य बनाकर बोलना सीख जाता है। इसी उम्र में उसे कहानियाँ कविता सुनना, बड़ों के साथ बाजार जाना, स्वयं सामान खरीदना, देखी हुई चीजों के बारे में सवाल करना, अच्छा लगने लगता है, क्योंकि चार साल तक पहुँचते उसकी धारणा शक्ति,

स्मरण शक्ति बढ़ने लगती है। अपनी सूक्ष्म मांसपेशियों का संचालन भी वह सीख जाता है। बड़ों की बातों की प्रतिक्रियाओं को प्रकट करने लगता है : एक तरह से १ साल से ३ साल तक की आयु अगर अंग संचालन के अभ्यास की है तो ३ साल से ४ साल की आयु नयी-नयी चीजें खोजने-जानने का अभ्यास करने की है।

५ और ६ वर्ष की देहली पर पांव रखने के बाद बच्चे को एक पैर से चलना, खड़े रहना, दौड़ना, कबड्डी, कलामुण्डी, तस्वीर काटना, चिपकाना, बनाना, टोली बनाकर खेलना, नेतृत्व करना, बड़ों की तरह क्रियाएँ करना, बाजार अकेले जाना, सामान लाना, बड़ों की बातों में भाग लेना, क्रियापद, सर्वनाम, विशेषण, का उपयोग करना अच्छी तरह आ जाता है। यह करते-करते सोचने, आंकने और तुलना करने की आदत भी इसी अवधि में बढ़ जाती है।

रुचि-कुरुचि-सुरुचि का ज्ञान भी इसी उम्र तक हो जाता है। प्रकृति, पशु पक्षी, पड़ोसी और समाज के प्रति संवेदनशील, सहायक बनने का अभ्यास भी इसी अल्पआयु में होता है। इस तरह स्पष्ट है कि खाना, खेलना, पाखाने जाना, सफाई करना, व्यवस्थित होना, दूसरों की मदद करना, बातचीत करना आना जैसी बुनियादी बातों का सही और स्वस्थ ढंग सीखने का वास्तविक काल यह ३ से ५ वर्ष की आयु का ही है। इस अवधि में सीखा हुआ पाठ ही जीवन भर काम आता है। ५ साल तक मस्तिष्क का पूर्ण विकास होता है। इसलिए इस काल तक बच्चे के प्रत्येक अंग आंख, कान, नाक, हाथ पैर सतत कुछ न कुछ जानकारी दिमाग को पहुँचाते रहते हैं। दिमाग में आयी बात को दूसरों तक पहुँचाने की कला (अभिव्यक्ति, एक्सप्रेशन) भी इसी समय में सीखते है। इस संवाद-शक्ति (कम्यूनिकेशन, के अभाव में बड़े बड़े व्यक्तियों को आत्म-हीनता का शिकार होते अक्सर हम समाज में देखते हैं।

इतने विश्लेषण के बाद समझ में आता है कि सीखना और परिपक्व होना साथ-साथ चलता है। परिपक्वता (मेच्योरिटी) अर्थात् शरीर के प्रत्येक अंग का पूरी तरह का विकास। सीखना अर्थात् शरीर के प्रत्येक अंग (इन्द्रिय) की शक्ति का उपयोग करना आना। यह उपयोग करना दिमाग और स्नायु-तन्तुओं के विकास के बिना असम्भव है। आठ माह के बालक को लाख सिखायें वह अपनी जरूरत बोलकर बता नहीं सकता। दो माह के बालक के साथ चाहे जितना प्रयत्न किया जाय वह टट्टी-पेशाब की तन्त्रिका पर काबू नहीं रख सकता। एक साल का बालक जितना भी प्रयत्न करे अपने कपड़े अपने-आप उतार नहीं सकता। तीन साल का बालक लगातार घंटों शान्त बैठ नहीं सकता।

समय से पहले सिखाने की जबर्दस्ती का परिणाम होता है मन की रचना में विकृति आना। जबर्दस्ती करने से सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया ही रुक जाती है। जैसे हठपूर्वक सिखाने से सीखने की वृत्ति मर जाती है उसी तरह एक ही तरह के वातावरण में नियमों के बीच रहनेवाले बालक डरपोक और भोंदू हो जाते हैं। बड़े होने पर किसी भी नयी परिस्थिति, नये व्यक्ति का सामना करना, साथ देना, उसके लिए मुश्किल हो जाता है। वह ऐसे अवसरों से ही अपने को बचाता रहता है। उसकी आत्महीनता की यह दमित ग्रन्थि कभी कभी परा-काष्ठा पर पहुँचकर हिंसा का भी रूप ले लेती है। अक्सर ऐसे व्यक्ति चिड़चिड़े, झगड़ालू, जल्दी नाराज होनेवाले हो जाते हैं।

जो बच्चे अपने आप विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करते करते बड़े होते हैं उनमें आत्म-विश्वास, आत्म गौरव, आत्म-निर्भरता, आगे बढ़ने का हौसला तथा कुछ करने की तमन्ना, पायी जाती है। इसलिए चोट लगने गन्दे होने, कपड़े मैले होने, के डर से जो बच्चे बड़ों के अत्यधिक संरक्षण या गोदी में रखे जाते हैं वे पलायनवादी मनोवृत्ति के बन जाते हैं। वे सदा भागा पीछा ही सोचते रहते हैं। हम समझ रहे हैं कि बच्चे की मांसपेशियों, स्नायुओं और चेतना शक्ति की सुदृढ़ परिपक्व होने का प्रमुख माध्यम खेल है। सामूहिक खेलों से बच्चों में सामाजिक चेतना, खेल के समय उपस्थित समस्याओं को सुलझाने की क्षमता-दक्षता आती है। हम बड़े लोग बच्चों के खेलों को कोई महत्त्व नहीं देते, कभी-कभी तो तिरस्कार भी करते हैं। नाक भौंहें तक चढ़ाकर कह डालते हैं कि क्या बतायें हमारा बच्चा तो खेलकूद में ही समय गँवा देता है। पर समय गँवाकर वह चिन्तन-शक्ति और व्यवस्था शक्ति को विकसित कर रहा है, यह बड़े लोगों की समझ में नहीं आता। जब कि उसके विकास का स्पष्ट दर्शन इस बात से होता है कि एक साल का बच्चा—बजनेवाले, लुढ़कनेवाले, खिलौने पसन्द करेगा तो दो तीन साल का बच्चा रचना करनेवाले खेल, दौड़ने कूदनेवाले खेल, अपना कौशल दिखानेवाले खेल, पसन्द करता है क्योंकि उसको हाथ पैर आँख सबका उपयोग करने की प्रेरणा होने लगती है। एक साल के बालक को चारपाई पर लेटे-लेटे हाथ पैर फेंकना, पूरे शरीर को हिलाते डुलाते रहने में जो आनन्द आता है वह चार पाँच साल के बालक को नहीं आयेगा। चार पाँच साल का बालक तो केवल ऊँगलियों को चलानेवाले खेल रचना, निर्माण करना, चित्र बनाना, काटना, बोतल में पानी भरना, बालू में आकृति बनाना, अभिनय करना, बड़ों की नकल करते-करते माँ पिता-दादा-दादी की नकल करना पसन्द करता है। क्योंकि इस आयु में उसे स्नायुओं पर, कुछ अंश में

भावनाओं पर भी, नियन्त्रण करना आने लगता है। सभी माता पिता जानते हैं कि एक दो साल के बच्चे को बड़े-बड़े आकारवाले खिलौने चाहिए तो चार-पाँच साल के बच्चे को छोटे छोटे कल-पुर्जेवाले। क्योंकि स्नायुओं के साथ साथ मास पेशियों का भी इच्छानुसार संचालन करना उन्हें आ जाता है। अंगों का फैलाना, सिकोड़ना, मोड़ना, घुमाना आने के कारण ही दौड़ना, कूदना, चढ़ना, उतरना अधिक पसन्द करते हैं जबकि एक-दो साल के बच्चे इन क्रियाओं को करने में घबराते हैं। दो वर्ष के बच्चे को कुछ भी दिया जाय वह उसे खिलौना मान लेगा, पर पाँच साल का बच्चा, चूँकि पहचानना तुलना करना, याद रखना सीख चुका होता है, इसलिए वास्तविक लगनेवाली चीजों से ही खेलेगा। लकड़ी के टुकड़ों की रेलगाड़ी बनायेगा, कपड़ों की नहीं। वह अपनी खेल-सामग्रियों और पद्धतियों द्वारा वास्तविक जगत में जीना चाहता है। वह हर वस्तु की परख करता है। वह बड़ों से कितना अलग है, कितना समान है, बड़ों की तरह नेतृत्व करना, रौब दिखाना, सम्मानित होना चाहता है। ये सारी सहज इच्छाएँ अपने से छोटे, अपने से एकाध साल बड़े बच्चों के बीच खेलने में अपने आप तृप्त होती रहती हैं।

बड़े बड़ों के जीवन में भाग लेने की उसकी चाह कहानी सुनने में सर्वाधिक पोषण पाती है। बड़प्पन की इस वृत्ति की स्वस्थ तृप्ति उसके मनोभावों को समृद्ध करती है। इसके विपरीत जिन बच्चों को विकसित होने के, अपने को प्रकट करने के ये सहज स्वस्थ अवसर नहीं प्राप्त होते जो बड़ों के द्वारा सदा-सवदा रोके टोके डाँटे डपटे जाते हैं, जिन बच्चों को बच्चों का समूह नहीं प्राप्त होता या जिनके लिए स्थान की कमी हो वे बच्चे अंगूठा चूसना, नाखून चबाना, नाक कुरेदना, जननेन्द्रिय को दबाते रहना, जाँघिया के अन्दर हाथ डाले रहना जैसी कुचेष्टा में अपनी शक्ति का उपयोग करते हैं। इन कुटेवों के कारण उनमें सभ्य समाज से दूर रहने की वृत्ति पनपती है, जैसी तैसी संगत में ही रहने लगते हैं। इस तरह उनका भाषा ज्ञान भी सीमित हो जाता है। वे निर्भीक बच्चों की तरह बड़ों से सवाल पूछ पूछकर नहीं सीखते हैं, केवल स्पर्श, गन्ध, दृष्टि, श्रवण शक्ति के ही भरोसे रह जाते हैं। ५-६ साल की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते तस्वीरों की किताबें देखने, खेलने, कहानी सुनने, बातचीत करनेवाले और इन प्रक्रियाओं में से न गुजरनेवाले बच्चों में अन्तर स्पष्ट दिखाई देने लगता है। और इनमें कल्पना शक्ति, जो मानवीय जीवन की एक मूल्यवान शक्ति है, जिसके बिना मनुष्य और जानवर में कोई अन्तर नहीं है, जिसके बिना

अध्यात्म और विज्ञान की नयी-नयी खोजें असम्भव हैं, की बुनियाद दृढ़ नहीं हो पाती।

इतनी जानकारी से यह बात भी साफ हो जाती है कि जिस परिवेश में बालक रहता है उससे विच्छिन्न उसकी शिक्षा होगी तो उसके अन्दर विरोध की वृत्ति पनपती रहेगी या लाचारी की। बाल विकास के इतने पहलुओं से परिचय हो जाने के बाद शायद ही कोई माता-पिता या शिक्षक बच्चे के विकास में बाधक होनेवाली कामना करेगा, जल्दी-जल्दी सिखाने पढ़ाने की भूल करेगा, मातृ भाषा से अलग भाषा, सहज परिवेश से अलग वातावरण, लादने की चेष्टा करेगा। बाल संस्कार शिक्षण के इस मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में समय समय पर अभिभावकों द्वारा उठायी गयी शंकाओं का वास्तविक हल स्वतः ही सामने आ जायेगा।

प्रश्नों की एक झलक

१—आप लोग पढ़ाते तो हैं ही नहीं।

२—यहाँ केवल खेल-कूद ही कराया जाता है।

३—हमारा बच्चा दो तीन माह से आपके यहाँ आता है पर मेहमानों को नमस्ते करना नहीं सीखा।

४—आप बच्चे को स्टैण्डर्ड शिक्षा नहीं देते।

५—यहाँ जमीन खोदना मिट्टी उठाना, चरखी चलाना, झाड़ू देना भी ये छोटे छोटे बच्चे करते हैं।

६—मठा चलाना, बर्तन साफ करना दाल दलना, आटा छानना घर की औरतों के काम हैं। बच्चों से यह सब क्यों कराना? हम तो पढ़ने के लिए भेजते हैं।

७—ड्रेस के ही कपड़े पहनने क्यों जरूरी हैं? हम बढ़िया कपड़े पहनायें तो आपको कोई आपत्ति है?

८—आप इंग्लिश तो सिखाती ही नहीं हमने देखा है कि बड़े बड़े शहरों में तो नर्सरी स्कूल के बच्चे अंग्रेजी के कितने ही शब्द वाक्य जान जाते हैं।

९—ढाई-तीन साल के बच्चे पढ़ते लिखते तो हैं नहीं, उधम ही करते हैं। उनको बालगृह में भेजना, उनपर खर्च करना फिजूल खर्ची है।

१०—खाना खिलाना, उठना बैठना, बातचीत करना भी कोई अभ्यास कराने की बात है? बड़े होंगे तो अपने आप सीख जायेंगे। आप तो पढ़ाइये।

११—आप लोग बच्चों को डाट डपट नहीं करतीं इससे वे बिगड़ जाते हैं।

हमारे पास इतना समय कहाँ कि उनको हर बात समझाते रहें। हम तो एक थप्पड़ लगाकर काम करा लेते हैं।

१२—नर्सरी स्कूलो मे पढ लिखे बच्चे निडर हो जाते है। बडो का दिमाग खाली कर देते हैं, सवाल पूछ-पूछकर, कहाँ तक सिर खपाये ?

१३—हम बच्चो के साथ समय बर्बाद करें उतने मे कोई और जरूरी काम निबटा सकते हैं।

१४—नर्सरी स्कूल म पढ लिखे बच्चे शैतान हो जाते हैं। हर समय कुछ न-कुछ प्रवृत्ति मांगते है। चुपचाप बैठ नहीं सकते।

१५—बाल मन्दिर मे जानेवाले बच्चो को पता नही क्या हो जाता है कि सब काम अपने आप ही करना चाहते हैं।

१६—पहले बच्चे घर के भीतर ही रह लेते थे। अब उनको अडोसी-पडोसी बच्चो की संगत के बिना अच्छा नही लगता।

१७—अजी बहनजी आपलोगों ने तो जाने क्या जादू किया है कि वह कुत्ता, बिल्ली बन्दर से भी डरता नही। पहले किसी जानवर का नाम लिया कि बस कहना मान जाता था।

१८—यहाँ जो कुछ सिखाया जाता है क्या बड़े होकर यह सब भूल नहीं जायेंगे ? अगर आगे बड़े होने तक भी ऐसे स्कूलो म रहें तो कुछ फायदा भी हो।

१९—आपके यहां धार्मिक शिक्षा का तो कोई प्रबन्ध है ही नहीं, बच्चा हिन्दू या मुस्लिम या इसाई है कैसे जानेगा ?

२०—आप प्रार्थना करना, नमाज पढना भी सिखाती हैं क्या ?

पूछे जानेवाले सवालो मे से कुछ के उत्तर साथ म हैं। कुछ आप स्वयं तलाश कीजिये और कीजिये स्वयं निर्णय—कब क्या होना चाहिए।

सुधा क्रान्तियासा, जीवनभारती, सिकन्दराराऊ अलीगढ़

द्वारिका सिंह

शिक्षा में क्रान्ति

'शिक्षा में क्रांति' की दिशा में भारतीय तरुण शांतिसेना ने अपने हाल के सुसंगठित अभियानों के द्वारा देश का ध्यान प्रचलित पुरानी शिक्षा-प्रणाली के बदले राष्ट्रोपयोगी अपेक्षित नयी शिक्षा-पद्धति की स्थापना के सम्बन्ध में ब्योरेवार ढंग से आकर्षित किया है।

सर्व सेवा संघ की मासिक पत्रिका 'नयी तालीम' ने अपने लेखों के द्वारा बार बार देश के सामान्य लोगों का और विशेषतः बुद्धिजीवियों का ध्यान शिक्षा में क्रांति की ओर आकर्षित किया है।

बापू ने अपने जीवनकाल में *स्वतन्त्रता-प्राप्ति के १० साल पहले* यह समझ लिया था कि देश शीघ्र स्वतन्त्र होनेवाला है। इसलिए स्वतन्त्र भारत के अनुरूप एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना की आवश्यकता है। तदनुसार उन्होंने देश के सामने एक नयी शिक्षा योजना रखी। उस योजना का कार्यान्वयन भी अपने देश में होता रहा है।

देश के जितने शुभचिन्तक और विचारक हैं, उन्होंने समय समय पर अपने निबन्धों और भाषणों के द्वारा वर्तमान शिक्षा पद्धति के दुष्परिणामों की ओर ध्यान दिला दिलाकर उसे बदलने को कहा है।

इतना ही नहीं, हाट बाजारों में रास्ते चौरास्तों पर, होटलों में, सफर के वक्त रेलगाड़ियों में सामान्य तौर पर वर्तमान शिक्षा प्रणाली के गुण दोषों का विवेचन किया जाता है। सारांश यह है कि अपने देश के सभी लोग यह चाहते हैं कि यह शिक्षा पद्धति बदले।

लेकिन सबसे बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि वर्तमान शिक्षा पद्धति से

ऊबने के बावजूद सभी लोग इसमे इस तरह फँस गये हैं कि उनके लिए इस चक्रव्यूह से निकलना सम्भव नही मालूम होता। शिक्षा की ही बात नही है, जन-जीवन की दूसरी दिशाओ मे भी ऐसी ही बात है। लोग ज्यो-ज्यों सादगी की ओर बढना चाहते हैं त्यो त्यो भडकीली पोशाकों मे वे आबद्ध होते जाते हैं। खान पान की दिशा मे भी सिद्धान्त और सरलता की चर्चा तो करते हैं पर लगता है सारा भारत चूल्हे चक्कियों को समेट कर होटलो और रेस्तरो मे सिमट जायगा। दुकानो मे बहुत कठिनाई से पेय पदार्थ अपने सहज रग में दीख पडते हैं। पेय पदार्थों से भरी बोतलें इतनी रग बिरग की होती हैं कि साधारण मनुष्य के लिए यह पहचानना कठिन होता है कि दरअसल उन बोतलो मे क्या है?

हमारे मनोरजन की भी यही दशा है। शुद्ध मनोरजन की तो बात ही छोड दें। सामान्यत समाज गन्दे और भद्दे चित्रो को आँखें फाड फाडकर देखता है। लोगो की दृष्टि चाहे और कही न जाय पर दीवारो पर सटे चलचित्रो के पर्चों और चित्रो पर तो अवश्य ही चली जाती है। वैसे चित्रों को देखकर दर्शको के मन पर क्या प्रभाव पडता है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

पान की दुकानों की मत पूछिए। उन दुकानो पर पान के लिए तो कम अधिक भीड वासना उद्दीपक भद्दे चित्रो पर दृष्टि डालने और मानसिक वासना की तृप्ति के लिए ही डटी रहती है। यो कहा जाय कि जन मानस भीतर से चाहता कुछ है, पर वह झुकता किसी और दिशा मे है।

जन मानस की ऐसी ही चिंतन धारा शिक्षा के क्षेत्र मे भी है। 'शिक्षा मे क्रान्ति' चाहनेवाले लोगो को यह स्पष्ट समझना होगा कि जबतक लोक-मानस के चिन्तन की भूमिका नहीं बदलेगी, तबतक मात्र नारो, प्रदर्शनों, पोस्टरों, भाषणो और लेखो से शिक्षा मे क्रान्ति नहीं आनेवाली है। इसलिए हमलोगो को ऐसे प्रभावकारी साधन अपनाने होगे जो जन-मानस के कठिन चक्रव्यूह को भेद सकें और पुरुषार्थ से शिक्षा मे क्रान्ति करने के लिए नयी दिशा खोज सकें। दूसरी, सबसे बडी बात जो ध्यान देने की है, वह यह कि स्वतत्र सस्थाएँ और स्वतत्र विचारक शिक्षा मे क्रान्ति चाहते हैं, पर अपने विचारो और दर्शन के अनुरूप किसी भी निर्धारित क्षेत्र मे अपने सपने की सस्थाओ को स्थापित कर और उन्हें विकसित कर शिक्षा मे क्रान्ति के मूर्त रूप को सर्वसाधारण के सामने करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता। प्रत्यक्ष या परोक्ष शिक्षा प्रवचन का या प्रदर्शन का जितना विषय नही है, उतना आचार

का है। इसलिए यह सोचना होगा कि ऐसी संस्थाएँ अपने विचारों की संस्थाओं की स्थापना कर इस दिशा में आगे बढ़ेंगी या नहीं। मुझे याद है कि हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के तत्वावधान में चलनेवाले सेवाग्राम प्रशिक्षण महाविद्यालय में अपने देश के प्रति नियुक्त होनेवाले अत्यंत दकियानूसी विचारों के अधिकारी १ सप्ताह से १२ सप्ताह के सुनिश्चित प्रशिक्षण-सत्र में अपने संकुचित विचारों में काफी परिवर्तन लाते थे।

बापू, विनोबा, आर्यनायकम् के सान्निध्य में ये शिक्षा-अधिकारी शिक्षा और समाज रचना के मूलभूत सिद्धान्तों का श्रवण करते थे और उन व्यक्तियों में उनके द्वारा प्रतिपादित दर्शनों का प्रत्यक्ष व्यवहार उनके आधार में पाते थे। यानी उन व्यक्तियों के द्वारा प्रतिपादित विचार, उच्चार और आचार में इतना सघन सामंजस्य रहता था कि उनके समीप रहनेवाले के संस्कार में सहज रूप से एक नयी चेतना का प्रादुर्भाव होता था। इसलिए मेरा ऐसा सुझाव है कि अपने देश में रचनात्मक संस्थाएँ मिल-जुलकर राष्ट्रीय स्तर पर एक फेडरेशन कायम कर नयी शिक्षा के आदर्शों के अनुरूप संस्थाओं को चलाकर अपने-अपने निजी क्षेत्रों में एक आदर्श की स्थापना करें। तभी हम सबों में इतना नैतिक बल होगा कि शासन तथा स्वायत्त-शासन के अन्दर चलनेवाली शैक्षिक संस्थाओं को और उनके मार्गदर्शन करनेवाले निरीक्षकों और निदेशकों को और अन्य व्यवस्थापकों को यह कह सकेंगे कि वे सब नयी शिक्षा की राह पर आयें। यह जबतक नहीं होगा मुझे भय है कि शिक्षा में क्रान्ति का अभियान कोई प्रभाव डालनेवाला नहीं है।

दूसरी बात यह है कि हम शिक्षा में क्रान्ति चाहते हैं, हम शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षाक्रम, शिक्षक-प्रशिक्षण, निरीक्षण, परीक्षण इत्यादि के सम्बन्ध में शासन को सुझाव देना चाहते हैं। पर शिक्षा तो शासन के अधीन चलती है। शासन की अपनी पाबन्दियाँ हैं। उन पाबन्दियों के भीतर शिक्षा सुधारकों का उपदेश और शासन में काम करनेवाले लोगों की गति-विधि में कोई तारतम्य नहीं होनेवाला है। हम शिक्षा को मुक्त कराना चाहते हैं, यानी शासन से शिक्षा को मुक्ति दिलाना चाहते हैं। लोकतंत्र में शासक और शासित नहीं होता। लोकतंत्र में व्यवस्था होती है, व्यवस्थापक होते हैं। व्यवस्थापकों के सहायक होते हैं। इसलिए लोकतंत्र की व्यवस्था (शासन) से शिक्षा को मुक्त करने का मतलब शिक्षा को लोकतंत्र से मुक्त करना है। मेरी सलाह है और वह भी दीर्घकालीन अनुभवों के आधार पर कि शिक्षा में क्रान्ति के लिए शिक्षा

की व्यवस्था में शासन को पूर्णत निरपेक्ष बनाना चाहिए। ऐसी निरपेक्षता शिक्षा सचालन में इतनी स्वतत्र होती है कि शासन और समाज उसमे दोनों विश्वास करते हैं। इसलिए शिक्षा की व्यवस्था शासन-निरपेक्ष होनी चाहिए और इस ओर सोचना चाहिए।

तीसरी बात यह है कि इसमे से अधिकाश औपचारिक शिक्षा को शासन से मुक्त करना चाहते हैं। औपचारिक शिक्षा औपचारिक सस्थाओ मे औपचारिक सिलेबस के आधार पर औपचारिक शिक्षको द्वारा पूरी औपचारिकता से दी जाती है। यानी देश की २१% जनसख्या को औपचारिक शिक्षा जन जीवन से बहुत दूर न गुरु के घर और न छात्र के घर, बल्कि गाँव के बाहर खुले मैदान में जीर्ण-शीर्ण भवनों के अन्दर प्रदान की जाती है। ऐसी औपचारिक शिक्षावाले सामाजिक सस्थाओ, सामाजिक विभिन्न क्रियाशीलनों, विभिन्न अवसरो, प्रकृति के घात-प्रतिघातों, आकस्मिक घटनाओं, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों इत्यादि को शिक्षा का माध्यम नहीं मानते हैं। वे परीक्षा को केन्द्र मानते हैं। जीवन यापन के श्रेष्ठतम शाश्वत मानव-मूल्यों को स्वीकार नहीं करते हैं। नैतिकता के आधार पर किये गये प्रयत्नों के द्वारा उत्तम कर्मों की प्राप्ति में ऐसी औपचारिक शिक्षा अपना पूर्ण विश्वास रखती है। इसलिए मेरी सलाह होगी कि शासन के बाहर रहनेवाले शिक्षा मे जो क्रान्ति चाहते हैं वे औपचारिक शिक्षा से बचे हुए क्षेत्र मे यानी देश की ४० करोड़ जनता की शिक्षा की समस्या को अपने हाथ मे लें। ऐसे लोगों की शिक्षा की योजना बनायी जाय। यदि इस योजना को ठीक से कार्यान्वित किया जाय, तो औपचारिक शिक्षा स्वत सिमट कर इस अनौपचारिक शिक्षा के क्षेत्र मे प्रवेश करेगी और तब बिना परिश्रम के शासन-निरपेक्ष योजना की कार्यान्विति हमारे हाथ मे आयेगी।

ऊपर के कुछ बिन्दु पाठको के विचार के लिए रखे गये हैं और इन बिन्दुओं पर दूसरे सम्बद्ध बिन्दुओ के साथ जगह-जगह सभाओ का आयोजन कर विचार करना चाहिए और विचार कर एक सुनिर्दिष्ट योजना के अनुसार ग्राम स्तर पर या पचायत स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा-योजना तैयार कर उसकी कार्यान्विति मे लग जाना चाहिए।

यह स्पष्ट समझना होगा कि राष्ट्र का आधार उसके विचार के अनुरूप होता है। राष्ट्रीय विचार राष्ट्रीय चिन्तन के अनुसार होता है। राष्ट्रीय चिन्तन लोक चिन्तन पर आधारित होता है। लोक चिन्तन पर आधारित लोक मानस, वर्तमान सामाजिक और मानव मूल्यों को अपना पथ-प्रदर्शक

मानता है। यानी आज का जैसा सामाजिक और मानव मूल्य वैसा लोक मानस, जैसा लोक मानस वैसा लोक चिन्तन, जैसा लोक चिन्तन वैसा विचार, जैसा विचार वैसा उच्चार, जैसा उच्चार वैसा आचार, जैसा आचार वैसी राष्ट्रीय संस्कृति और जैसी राष्ट्रीय संस्कृति वैसा ही वहाँ का लोकतंत्र।

इसलिए लोक-मानस को वर्तमान विकृत दिशा को सही दिशा में मोड़ने के लिए अपने देश के लोग लाखों लाख गाँवों के भीतर शासन निरपेक्ष अनौपचारिक शिक्षा-योजना को शीघ्रातिशीघ्र लाना चाहिए और उसकी कार्यान्विति स्थानीय लोगों के सहयोग से करनी चाहिए।

इसके सम्बन्ध में पूज्य विनोबा ने लोक विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय की कल्पना हमारे सामने बहुत पहले रखी थी। हमारी आदत हो गयी है कि किसी विचार पर टिकते नहीं हैं। इसका फल यह है कि विचारों के जंगल में नये-नये उद्यान लगाने की चेष्टा करते हैं जो पानी पीटने के जैसा होता है।

शिक्षा में क्रान्ति अभियान के औपचारिक प्रदर्शनों के बाद राष्ट्रीय स्तर पर किसी एक प्रमाणित संस्था के द्वारा एक निर्देश पत्र निकलना चाहिए। उस निर्देश पत्र के अनुसार अपने देश के विभिन्न आचार्यकुल स्थानीय परिस्थिति और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अनौपचारिक शिक्षा-योजना को तैयार करें और जनशक्ति को केन्द्रित कर उसकी कार्यान्विति करें।

इस योजना की कार्यान्विति में एक केन्द्रीय निर्देश-पत्र होगा। निर्देश पत्र के निर्देशों की व्याख्या ग्रामसभाओं में होगी। प्रत्येक ग्रामसभा के भीतर विद्यालय पंचायत, सहयोग समितियाँ और दूसरी संस्थाएँ अपने कार्यकर्ताओं के सतत सहयोग से आचार्यों के मार्गदर्शन में ऐसी नयी शिक्षा योजना की कार्यान्विति करेंगे। प्रखण्ड स्तर पर शिक्षा समिति होगी जो अपने प्रखण्ड की सभी संस्थाओं के संचालन का दायित्व लेगी। इसी तरह जिला तथा राज्यस्तर पर भी नयी तालीम मंडल होंगे जिनका काम निर्देशन करना, मार्गदर्शन करना तकनीकी ज्ञान का प्रसारण करना, उत्तम विधियों का प्रदर्शन करना संस्थाओं को स्वीकृत करना, मूल्यांकन करने की स्थानीय समितियों का गठन करना, प्राप्त निर्देशन का संचालन करना, सफलता की बुनियाद पर संस्थाओं का वर्गीकरण करना इत्यादि इत्यादि होगा।

हम ऐसा मानते हैं कि इस दिशा में यदि हम व्यवस्थित होकर कदम उठायेंगे, तो निश्चय ही हम जो चाह रहे हैं, उसका आधार प्रत्येक ग्राम-संस्था में परिलक्षित होगा।●

लक्ष्मीनारायण ठाकुर

घोसरामा महाविद्यालय

श्रम आधारित शिक्षण का प्रयोग

आजादी के बाद ऊँची शिक्षा की बढ़ती माँग के फलस्वरूप शहरों में काफी कालेज तथा विश्वविद्यालय खुले हैं और खुलते जा रहे हैं। पर जमाने की माँग के सर्वथा प्रतिकूल कालेज की ऊँची शिक्षा शहरों के भारी खर्चे के कारण सब तरह से मँहगी साबित हो चुकी है। छात्रों को शहर में भेजकर पढ़ाने का खर्च जुटाने में देहात के गरीब किसानों को जमीन जायदाद तक गिरवी रखने की मजबूरी हो जाती है। हजारों होनहार छात्र महज गरीबी के कारण कालेजों में दाखिल तक नहीं हो पाते। अध्ययन के दौरान शहरी जीवन की चकाचौंध में पड़कर किशोरों का सुकुमार जीवन गलत दिशा में नहीं जाये, इसलिए गाँवों में ही कालेज की स्थापना अनिवार्य हो गयी है। शिक्षा-प्राप्ति के साथ-साथ ग्राम्य जीवन में छात्रों की दिलचस्पी और ग्रामीण समस्याओं की परख नितान्त जरूरी है ताकि डिग्री-प्राप्ति के बाद जीवन किसी भी स्थिति में भारस्वरूप न मालूम पड़े। ऐसी स्थिति में शहरों में बंद ऊँची शिक्षा को देहात के उन्मुक्त वातावरण में ले जाना युग की प्रथम जबरदस्त पुकार है।

परन्तु वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोषों का निराकरण ऊँची शिक्षा को महज देहातों में ले जाने से ही नहीं हो जायेगा। देहात तो उसकी वह अनिवार्य

पृष्ठभूमि होगी जहाँ इसके दोषों का सही निराकरण हो सकेगा। इसके लिए अन्य क्रांतिकारी कदम उठाने होंगे।

पूज्य विनोबाजी ने कहा था कि आजादी मिलने के प्रथम दिन ही सभी शिक्षण संस्थाओं को तबतक के लिए बन्द कर देना चाहिए था जबतक वर्तमान निकम्मी शिक्षा पद्धति के बदले दूसरी राष्ट्रीय शिक्षा योजना तैयार न हो जाय। देश के सभी नेताओं एवं शिक्षा शास्त्रियों ने भी यह बार बार दुहराया है कि देश की माँग के अनुरूप एक उपयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा-योजना का गठन होना नितान्त आवश्यक है। स्व० राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसेन साहब के साथ अपनी हुई बातचीत का हवाला देते हुए पूसा सम्मेलन (दिसम्बर, १९६७) में पूज्य विनोबाजी ने कहा था कि जो नहीं पढ़ते हैं वे सिर्फ मूर्ख ही रह जाते हैं और जो पढ़ते हैं वे बेकार और मूर्ख दोनों बन जाते हैं। आजादी के चौबीस वर्ष समाप्त हो गये पर इस राष्ट्रीय बेचैनी के बावजूद इस दिशा में कोई कारगर कदम अभी तक नहीं उठ पाया है।

स्वतन्त्र भारतवर्ष के लिए राष्ट्रीय शिक्षा योजना क्या हो एवं उसकी कार्यान्विति की पद्धति क्या हो इस प्रश्न पर अन्य विचारकों के साथ गांधीजी ने काफी गहराई से सोचा था और उन्होंने अपने विचार देश के सामने बेसिक शिक्षा के रूप में सन् १९३७ में रखे थे। बेसिक शिक्षा को सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा के लिए 'राष्ट्रीय शिक्षा' स्वीकार किया था। परन्तु बेसिक शिक्षा नहीं चली। यदि देश में सही एवं सफल लोकतन्त्र चलाना है तो सभी नागरिकों को ऐसी शिक्षा अवश्य मिलनी चाहिए जिससे वह अपना व्यक्तिगत जीवन सफलतापूर्वक यापन करते हुए राष्ट्रीय भावना के साथ राष्ट्रीय विकास में सहायक बन सके।

अतः इस देश की जो शिक्षा पद्धति होगी (उसे आप बेसिक कहें या न कहें) वह निम्नलिखित बातों पर आधारित होगी—

(क) शिक्षा में उपयोगी श्रम का केन्द्रीय स्थान अनिवार्य होगा।

(ख) शिक्षा ऐसे दलगत साम्प्रदायिक तथा अन्य संकीर्ण वृत्तियों से सर्वथा दूर होगी जो राष्ट्रीय एकता और लोकतांत्रिक समाज के संगठन में अवरोध उत्पन्न करती है।

(ग) शिक्षा सामाजिक जीवन में सहकारिता की भावना उत्पन्न करने में सक्षम हो।

(घ) शिक्षा सहअस्तित्व धार्मिक सहिष्णुता, अन्तर्राष्ट्रीय कल्याणकारी

दृष्टि, विश्व-बन्धुत्व, राष्ट्रीय सुरक्षा एव विकास तथा भावात्मक एकता की सम्यक् दृष्टि उत्पन्न करनेवाली हो।

उक्त मूलभूत सिद्धान्तो एव विचारों को ध्यान मे रखते हुए जब हम वर्तमान शिक्षा के सन्दर्भ मे सोचते हैं तो यह स्पष्ट विदित होता है कि वर्तमान शिक्षा की आज कोई भी सार्थकता नही है, कारण कि यह छात्रो को श्रमहीन, कामचोर, अकर्मण्य एव निकम्मा बनाती है। पुन यह नागरिको को जीने का कम नही सिखाती बल्कि उपजीवी बनाने को बाध्य करती है। व्यक्तिगत, सामूहिक एव राष्ट्रीय जीवन से इसका कोई भी मेलजोल नहीं है और न इसके सामने कोई मानवीय दृष्टि ही है। इसके चलते शोषण एव परिग्रह की भावना एव वृत्ति बढ़ती जा रही है।

इस पृष्ठभूमि मे यदि हम राष्ट्रीय शिक्षा-योजना के प्रारूप पर विचार करें तथा ससार के शिक्षा शास्त्रियो, शिक्षा आयोग की सस्तुतियों, गाधीजी के मूलभूत शैक्षिक सिद्धान्तो तथा प्रगतिशील एव शिक्षित उन्नतिशील देशो की शिक्षा-योजनाओ को सामने रखकर सोचें तो श्रम आधारित विद्यालयो तथा महाविद्यालयो की परिकल्पना सामने आती है। यह परिकल्पना कोई नूतन नहीं है बल्कि भारत सरकार द्वारा सगठित विश्वविद्यालय कमीशन ने भी अपने प्रतिवेदन मे इसकी स्थापना की सस्तुति की है। इस परिकल्पना के अनुसार विश्वविद्यालय शिक्षा-योजना समग्र जीवन की शिक्षा योजना होगी न कि जीवन की खण्डित शिक्षा-योजना। बाल्यकाल से युवाकाल तक समाजोपयोगी और उत्पादक श्रम का ताना बाना सारी शिक्षा-योजना मे होगा।

अस्तु, इन्ही सारी बातो पर गहराई से विचार विमर्श कर घोसरामा महाविद्यालय की स्थापना जुलाई, १९६७ मे की गयी ताकि बिहार विश्वविद्यालय के पाठ्य-विषयों को पूरा करते हुए कुछ ऐसे उपयोगी विषयो के भी व्यावहारिक एव सैद्धान्तिक सुलभ शिक्षण दिये जायें जिससे कालेज छोड़ने के बाद छात्र श्रमनिष्ठ तथा स्वतत्र स्वावलम्बी जीवन की ओर अग्रसर हो सकें।

विश्वविद्यालीय शिक्षाक्रम का पूरा निर्वाह करते हुए निम्नलिखित कुछ ऐसे उपयोगी विषय हैं जिनका व्यवहारिक एव सैद्धान्तिक ज्ञान आसानी से दिया जा सकता है

(१) कृषि।
(२) गोपालन।
(३) उद्योग (कुटीर उद्योग)।
(४) आरोग्य।
(५) आध्यात्मिक शिक्षा।
(६) कला।
(७) समाज-सेवा।

(१) कृषि -

(क) उपलब्ध जमीन

कालेज को रजिस्ट्री से १७ बीघा ३ कट्ठा १० धूर जमीन एक ही प्लाट मे मिल चुकी है जिसमे से १२ बीघा मे फिलहाल खेती हो रही है। उपर्युक्त प्लाट मे बिजली की लाईन पहुँच चुकी है तथा खेती की आय से ४ इंच की बोरिंग भी हो गयी है।

(ख) प्राप्त होनेवाली जमीन :

कालेज की जमीन से सटे दक्षिण बिहार सरकार (गैर मजरुआ) के दो बड़े बड़े तालाब हैं जिनका रकबा लगभग छ बीघा है। दोनों तालाब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। तालाबों की पूर्ण खुदाई कर चारों ओर की जमीन (भीण्ड) और अधिक ऊँची एवं चौरस कर दी जायेगी जिस पर कालेज के आवश्यक भवन भारतीय संस्कृति के अनुरूप रुचिपूर्ण ढंग से बनाये जायेंगे। तालाबों की खुदाई हो जाने पर उनमे मत्स्य-पालन भी हो सकेगा जो कालेज की आय का एक सुन्दर स्रोत होगा। तैराकी तथा नाव खेने का व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जा सकेगा।

(ग) प्राप्त एवं प्राप्त होनेवाली जमीन का उपयोग

कालेज के आवश्यक भवन, प्राध्यापक निवास छात्रावास, कर्मचारी निवास, खेलकूद के मैदान एवं अन्य विभिन्न प्रवृत्तियों के लिए भवन हेतु दोनों तालाबों के भीण्डो के अतिरिक्त ५ बीघा ३ कट्ठा १० धूर जमीन निकाल कर शेष १२ बीघा जमीन मे सिंचाई के सहारे पूर्ण वैज्ञानिक ढंग से उन्नत खेती की जायेगी।

(घ) छात्रों द्वारा खेती

उपर्युक्त १२ बीघा म से २ बीघा मे चुने गये २० छात्रों द्वारा खेती की जायेगी। खर्च काटकर बाकी आय का अधिकांश भाग छात्रो को तथा कम भाग कालेज को दिया जायेगा।

(ङ) छात्रों को कृषि का प्रशिक्षण।

कृषि के मौसम के अनुसार कालेज की चालू तथा लम्बी छुट्टियो के दिनो मे योग्य जानकार द्वारा छात्रो को व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक जानकारी दी जायेगी। ढोली कृषि महाविद्यालय की सेवा भी ली जा सकती है।

२—गोपालन :

कृषि की स्वतंत्र व्यवस्था के अन्तर्गत ही यह विभाग रहेगा जिसमे कम से-

कम प्रारम्भ में पाँच गायें रखी जायेंगी। धीरे-धीरे इनकी संख्या बढ़ायी जायेगी। इनका पालन पूर्ण वैज्ञानिक ढग से होगा ताकि ये अधिक से-अधिक दूध दे सकें। गोपालन से प्राप्त आय कालेज की अपनी आय होगी।

३—उद्योग (कुटीर उद्योग)

(क) इनका सचालन सहयोग समिति के आधार पर होगा। प्रारम्भ मे ग्रामीण तेल, अनाज प्रशोधन एव दाल, कताई (अम्बर चर्खा), बुनाई (नेपाल मॉडेल कर्घा) तथा नीरा एव ताड़गुड़ प्रभृति उद्योग चलाये जायेंगे।

(ख) कालेज द्वारा मधुमक्खी पालन उद्योग

खादी ग्रामोद्योग आयोग की सहायता से एक मधुमक्खी पालन केन्द्र चालू करने की योजना है जिसमें २५ बक्सो से प्रारम्भ कर चार वर्षों मे कम से कम एक सौ बक्स पूरे कर लिये जायेंगे। यह दूसरी आय कालेज की अपनी आय होगी।

(ग) छात्रो द्वारा मधुमक्खी पालन

अपने चार वर्षों के कालेज जीवन मे छात्र नीचे लिखे अनुसार कम से कम तीन मधुमक्खी बक्से रखेंगे। इनकी आय छात्रों की अपनी आय होगी।

४—आरोग्य

(क) इसके अन्तर्गत एक वनस्पति उद्यान तथा एक प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र रहेगा जिसमें प्रारम्भ में कम से कम पाँच रोगियो की सेवा की पूर्ण व्यवस्था रहेगी। बायोकेमिक तथा होमियोपैथी की कम से कम पच्चीस दवाओ के औषध लक्षण के योग्य जानकार द्वारा छात्रो के सम्मुख उपस्थित किये जायेंगे। आरोग्य-शास्त्र से सम्बन्धित कुछ अन्य आवश्यक विषयो तथा सूई देने एव आयुर्वेद तथा एलोपैथी की अपरिहार्य पेटेन्ट दवाओ की भी जानकारी मार्ग-दर्शन के तौर पर छात्रों को दी जायेगी ताकि स्वाध्याय के सहारे वे उपयुक्त विषयो का काफी ज्ञान धीरे धीरे प्राप्त कर लें। इस तरह कालेज जीवन के बाद वे बेकारी का अनुभव नहीं करेंगे और मर्यादापूर्वक समाज की सेवा करते हुए अपनी वृत्ति की व्यवस्था कर सकें।

(ख) योग क्रिया की सुलभ जानकारी देकर छात्रों के शारीरिक एव मानसिक शक्तियों को विकसित करने की निश्चित रूप से खास व्यवस्था रहेगी।

५—आध्यात्मिक शिक्षा

शिक्षा जगत मे आज जितनी भी समस्याएँ हैं उनकी बुनियाद मे आध्यात्मिक शिक्षा का सर्वथा अभाव ही सबसे प्रमुख कारण माना जा सकता है।

६—कला :

नाट्य परिषद् इसका एक प्रमुख अंग रहेगा जो वर्ष मे दो बार सुन्दर नाटकों को छात्रो एव प्राध्यापको के सहयोग से रगमच पर उतारा करेंगे।

छात्रों, प्राध्यापको एव क्षेत्र के गायकों के सहयोग से वर्ष मे कम से कम एक बार सगीत सम्मेलन हुआ करेगा।

कला-भवन मे वाद्ययन्त्रों की व्यवस्था रहेगी। सगीत एव वाद्ययन्त्रों का प्रारम्भिक प्रशिक्षण योग्य जानकार द्वारा व्यवस्थानुसार छात्रो को प्राप्त होगा।

७—समाज सेवा :

(क) घोसरामा कालेज के चारों ओर स्थित सात पोषक हा० स्कूलों (सिमरा, पीमर, सेपरी, हरथा, कांटा, जारंग तथा शरनुद्दीनपुर) तक के कुल गांव इस समाज सेवा केन्द्र के अन्तर्गत होंगे। इसका नाम घोसरामा कालेज सेवा-क्षेत्र होगा।

(ख) ग्रामदान अभियान के सिलसिले मे मुरौल का प्रखण्डदान हो चुका है। इसके कुल १६ पंचायतों मे फिलहाल ९ पचायत (गण्डक नदी के उत्तर) कॉलेज सेवा क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। इन पचायतो के गाँवों मे ग्रामसभा निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया जायेगा। कॉलेज सेवा-क्षेत्र पचायतो के आधार पर विभक्त रहेंगे और प्रत्येक भाग एक एक प्राध्यापक के जिम्मे रहेगा जो छात्रो के सहयोग से इसे पूरा करेंगे। ग्रामसभा निर्माण, निर्माण के बाद रचनात्मक कार्य तथा शान्तिसेना की स्थापना प्रमुख कार्य रहेंगे।

(ग) कॉलेज सेवा क्षेत्र के उपर्युक्त कुल १७ पचायतों के सामाजिक छात्रो के परिवारो का आर्थिक सर्वेक्षण इसका दूसरा अग रहेगा।

उपर्युक्त विभिन्न प्रवृत्तियो का प्रशिक्षण

(क) प्रशिक्षण की अवधि दशहरा, बड़ादिन, होली तथा ग्रीष्मावकाश की कुल छुट्टियों (१०६ दिन) में से ६० दिनो का उपयोग इसके लिए किया जायेगा।

(ख) अनिवार्य या ऐच्छिक :

यह सर्वथा ऐच्छिक रहेगा। पर भाग लेने के लिए छात्रों को पराक्रम करना होगा। इस तरह के जीवनोपयोगी प्रशिक्षण की सफलता प्रारम्भ में इस बात पर निर्भर नहीं करेगी कि कितने अधिक छात्रों ने इसमे भाग लिया। सफलता की कसौटी यह होगी कि कितने छात्रो ने (भले ही प्रारम्भ मे वे थोड़े ही हों) सही ढग से इससे लाभ उठाया।

(ग) परीक्षा एवं प्रमाणपत्र ।

कोई परीक्षा नहीं होगी। इन विभिन्न प्रवृत्तियों की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक वर्गों में वास्तविक उपस्थिति के आधार पर इनके लिए प्रमाण-पत्र दिये जायेंगे।

(घ) छात्रों द्वारा उपार्जन -

योजना का ऐसा लक्ष्य रहेगा कि प्रशिक्षण प्राप्त करने के साथ-साथ वर्ष में प्रत्येक छात्र इतना अर्जन कर लें जिससे कम-से-कम शिक्षण-शुल्क की आधी रकम की पूर्ति उससे हो जाय।

(ङ) मन्तव्य :

विश्वविद्यालयी शिक्षा का पूरा निर्वाह करते हुए महाविद्यालय की जो पूरक प्रवृत्तियाँ होंगी, उनके सम्पादन के तीन उद्देश्य होंगे :

१—अध्ययन काल में इन प्रवृत्तियों के सम्पादन से छात्रों में श्रम के प्रति श्रद्धा एवं आत्म-विश्वास पैदा होना, जीवन में सामंजस्य उत्पन्न होना और समुदाय के साथ गहरा सम्पर्क स्थापित करना।

२—इन प्रवृत्तियों के सम्पादन से सतर्कतापूर्वक यह मूल्यांकन करते जाना कि जो समय, शक्ति और सम्पत्ति इनमें लगती है, उनके अनुपात में ये क्रिया-शीलन महाविद्यालयी जीवन को किस हद तक और कितना प्रतिशत स्वावलम्बी आत्मनिर्भर और सुव्यवस्थित बनाते हैं।

३—इन प्रवृत्तियों और क्रियाशीलनों के सम्पादन के फलस्वरूप नयी अनु-भूतियों और निष्पत्तियों का प्रसार महाविद्यालयीन सेवाक्षेत्र में करना।

कालेज का संचालन

कुल मिला कर दो सौ छात्रों को ही नामांकित करने की योजना कार-गर होगी।

(क) प्राचार्य तथा प्राध्यापकों की नियुक्ति एवं उनका वेतन मान :

श्रम आधारित महाविद्यालय की उपर्युक्त योजना के सफल संचालन के लिए छात्रों की भीड़ से इसे बचाना होगा। ऐसी स्थिति में छात्रों से प्राप्त होने वाले शिक्षण-शुल्क की रकम इतनी पर्याप्त नहीं होगी जिससे आज का चालू वेतनमान इन्हें दिया जा सके। अतः कम वेतनमान पर काम करने के लिए तैयार प्राचार्य एवं प्राध्यापकों की नियुक्ति अनिवार्य होगी।

(ग) छात्र संसद् ।

उपर्युक्त सारी योजनाओं के सही संचालन के लिए छात्रों का सहकार अनिवार्य होगा।

अबतक की उपलब्धियां

(१) कालेज के मंत्री श्री कोदई ठाकुर से दान में १७ बी० ३ कट्ठा १० धूर जमीन रजिस्ट्री से मिल चुकी है जो एक ही प्लाट में है। कालेज की ओर से इस जमीन मे खेती इन्हीं के द्वारा प्रारम्भ से ही की जा रही है। इसकी आय से सन् १९६९ मे ४ इंच की बोरिंग कालेज की जमीन मे हो चुकी है। शेष आय इन्हीं के पास सुरक्षित है। रीजर्व फण्ड की रकम बिहार विश्वविद्यालय म जमा कर दिये जाने पर खेती की आय स कालेज के लिए भवन निर्माण का कार्य नवम्बर १९७१ से प्रारम्भ हो जायेगा।

(२) भवन १ फूस का लम्बा चौड़ा काम चलाऊ मकान प्रारम्भ मे ही बना लिया गया है। सन् १९७१ ७२ का पाँचवाँ सत्र (जुलाई ७१ से जून ७१) भी इसी म चलाया जायेगा।

(३) फरनीचर खादी केन्द्रित रचनात्मक सहयोग समिति, खादी सदन, मरसिहपुर ने ४८ बेंच तथा ४० डेस्क अनुदान मे देकर बहुत बड़ी कमी की पूर्ति कर दी है।

(४) छात्रो की संख्या मे बहुत कमी रही है। पढ़ाई एव इनकी उपस्थिति काफी सन्तोषजनक और परीक्षाफल तो कई बार शत प्रतिशत रहा है।

(५) बिहार विश्वविद्यालय से सम्बद्धता इसकी सीनेट ने ३० माघ १९६८ को आवश्यक शर्तों के साथ स्नातक (प्रथम खण्डकला) तक की सब-द्धता इस कालेज को प्रदान कर दी है।

श्री लक्ष्मीनारायण ठाकुर, हरपुर, पो० श्रीकान्त वाया पीयर, जिला-मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रेमनारायण रूसिया

टीकमगढ़

शाला-विकास-अभियान

स्वतंत्रता के बाद बहुत ही तीव्र गति से देश भर में शिक्षा का प्रसार हुआ। मध्य प्रदेश सरकार ने भी अनेक योजनाओं द्वारा प्रान्त के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा सुलभ कराने हेतु प्रयास किया, इसी के परिणामस्वरूप टीकमगढ़ जिले में प्रत्येक वर्ष नयी नयी शालाएँ खुलती जा रही हैं। इन शालाओं के लिए शासन ने शिक्षक दिये और शिक्षण सामग्री भी यथाशक्ति देने की व्यवस्था की। किन्तु इतना होने पर भी कुछ अभाव शेष रह गये। शिक्षा का काम इतना बड़ा है कि सक्रिय जन-सहयोग के बिना शालाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती है। अतः इस जिले में जनसहयोग से शाला-विकास हेतु १ अगस्त १९७० से योजनाबद्ध अभियान प्रारम्भ किया गया। इस अभियान के अन्तर्गत समाज से सम्पर्क साधा गया, शाला के प्रति आकर्षण पैदा किया गया, तथा शाला विकास समितियों की स्थापना करके समाज को शाला के निकट लाने का प्रयास किया गया। अब जिले में प्रत्येक शाला में विकास समिति की स्थापना हो चुकी है। जनता बड़े उत्साह से शालाओं की आवश्यकताओं को हल करने हेतु प्रयत्नशील है। इस अभियान के अन्तर्गत किये गये प्रयासों की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है :—

(१) जिन शालाओं का अपना भवन नहीं था वहाँ जनता ने भवन-निर्माण का काम प्रारम्भ कर दिया है। यह काम गत वर्ष १३२ शालाओं में प्रारम्भ हुआ और हमारी इन शालाओं को जन-सहयोग द्वारा बहुत ही अच्छे पक्के भवन प्राप्त हुए।

(२) शालाओं के पुराने भवनों की जनता ने अपने साधनों से मरम्मत करायी और उनको आकर्षक बनाने के लिए सफेदी कराके सुसज्जित किया। आज जिले की शालाओं के लगभग समस्त भवन सफाई, सजावट और गुलदस्ता के कारण बच्चों के आकर्षण का केन्द्र बन गये हैं।

(३) अनेक शालाओं में वाटिकाओं के लिए समाज ने पक्की चहारदीवारियाँ बनवायी हैं जिससे अब बच्चे पेड़-पौधों के माध्यम से प्रकृति के निकट पहुँचेंगे और उनको श्रम का महत्व सीखने का अवसर मिलेगा।

(४) कुछ शालाओं ने पानी की समस्याओं को हल करने के लिए अपने अपने कुएँ खोदे हैं। इन कुओं के खोदने में छात्रों, अध्यापकों और अभिभावकों ने मिलकर परिश्रम किया है। आज ये कुएँ शालाओं को पर्याप्त पानी देने के साथ साथ समाज को भी सुख दे रहे हैं।

(५) प्राथमिक शालाओं में पढ़नेवाले बच्चे इतने छोटे होते हैं कि वे अपने लिए पानी नहीं खींच सकते हैं। शासन से उन प्राथमिक शालाओं को भृत्य नहीं दिये जा सकते हैं। अतः बच्चों को पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए जिले की पंचायतों से निवेदन किया गया। हमारे निवेदन पर जिले की बहुत अधिक पंचायतों ने अपने-अपने क्षेत्र की शालाओं के लिए पनभरों की व्यवस्था अपनी ओर से बहुत ही उदारतापूर्वक कर दी है। अब पंचायतों के सहयोग से बच्चों को पीने के लिए स्वच्छ पानी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होने लगा है।

(६) टीकमगढ़ जिला आज कृषि के कारण प्रदेश में तो आगे है ही, देश में भी ख्याति प्राप्त कर चुका है, अतः यह आवश्यक है कि यहाँ के बच्चे कृषि के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करें। किन्तु अभी तक शालाओं के पास कृषि के लिए भूमि नहीं थी। अतः जनता से अपील की गयी। हमें यह कहते हुए हर्ष है कि हमारे ग्रामीण बन्धुओं ने शालाओं को अच्छे और बने-बनाये खेत उत्साहपूर्वक दान किये। विशेष महत्व की बात तो यह है कि कुछ ग्रामीण बन्धुओं ने ऐसे खेत दिये जिनमें फसलें खड़ी थीं। ये सभी खेत उपजाऊ हैं, शालाओं के निकट हैं और नहर या कुओं से सिंचाई की सुविधायुक्त हैं। इन खेतों में बच्चे अब खेती के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करेंगे और खेतों की उपज से शालाएँ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सकेंगी, शालाएँ स्वावलम्बी बन सकेंगी। इसके साथ ही जन-सहयोग के अभियान की इस गति को देखकर हमें विश्वास है कि एक दिन निश्चय ही हमारी समस्त शालाएँ अपने में स्वतः विकसित होकर सर्व साधन सम्पन्न होंगी और देश के भावी नागरिकों का समुचित विकास करेंगी।

पूज्य बापू का स्वप्न था कि शाला ग्राम का केन्द्र बन जाय। शाला और समाज के अपनत्व की यह भूमिका उस स्वप्न को साकार करेगी—इस विश्वास से शिक्षक, शिक्षार्थी और समाज ओतप्रोत हो रहा है।

शाला विकास समितियों के माध्यम से प्राप्त जन सहयोग (अगस्त ७० से अप्रैल ७१ तक)

	विद्यालयों की संख्या	शालाओं की संख्या जिनमें भवन एवं भूमि प्राप्त हुई	नव निर्मित कमरों की संख्या	मरम्मत किये गये भवनों की संख्या	भूमि, भवन, सामान आदि के रूप में अनुमानित द्रव्य
१ प्राथमिक शालाएँ	५३१	१०५	१२६	८८	२,१६,६०१.५२
२ पूर्व माध्यमिक शालाएँ	४८	२७	२३	१२	३४,५८३.५०
कुल योग	५७९	१३२	१४९	१००	२,५१,१८५.०२

आचार्य राममूर्ति

११ सितम्बर विनोबा जन्म दिवस के अवसर पर

चीन का माओ : भारत का विनोबा

माओ नेता है, शासक है, विनोबा सत है सेवक है, और नेतृत्व भी करता है लेकिन नेता नहीं है। दोनों जनसख्या की दृष्टि से दुनिया के दो सबसे बडे देश के महानतम व्यक्ति हैं। एक के पीछे राज्य की सत्ता और एक विशाल सेना की शक्ति है, दूसरे के पास अपनी साधना जनता की श्रद्धा और विचार की शक्ति है। एक बन्दूक के बिना नागरिक को पगु मानता है, दूसरा बन्दूक के कारण नागरिक को असहाय देखता है। एक ने सेना को क्रान्ति की मुख्य शक्ति बनाया है, दूसरे ने शस्त्र-मुक्ति को क्रान्ति की सिद्धि माना है। एक को विजय का यश प्राप्त हो गया है, दूसरा क्रान्ति की साधना से गुजर रहा है। दोनों इतिहास की कसौटी पर हैं।

माओ और विनोबा मे भिन्नताएँ अनेक हैं, लेकिन समानताएँ भी कम नहीं हैं। दोनों असाधारण हैं। दोनों ने क्रान्ति के इतिहास म अपना अलग अलग अध्याय जोड़ा है।

चीन और भारत दोनों खेतिहर देश हैं। दोनों की अति प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा है। दोनों ने सदियों तक घोर सामतवाद देखा है। दोनों की जनता

का भयंकर शोषण हुआ है। भारत ने प्रत्यक्ष विदेशी साम्राज्यवादी शासन देखा है, जबकि चीन ने विदेशी साम्राज्यवाद के गठबन्धन में भ्रष्ट देशी सरकार देखी है, और विदेशी आक्रमण भी झेले हैं।

भारत मे सन् १९४७ मे देशी सत्ता कायम हुई, चीन मे १९४९ मे माम्रो के हाथ मे सत्ता आयी। चीन जनसख्या और क्षेत्रफल मे बडा भाई है, लेकिन नये राजनैतिक जन्म की दृष्टि से वह हमसे दो वर्ष छोटा है। लेकिन बाईस वर्ष मे चीन का नाम दुनिया मे तीसरे नम्बर पर लिया जा रहा है। चीन एक 'सुपर पावर' हो रहा है। और, हम ? हम 'सुपर पार्टी' के शिकार हैं।

अक्सर कह दिया जाता है कि चीन मे शक्ति और समृद्धि बन्दूक की नली से निकली है। यह सही है कि चीन तानाशाही कम्युनिस्ट देश है, और उसने समाज परिवर्तन के क्रम मे अनेक लोगो को मौत के घाट उतारा है। तमाम दुनिया मे साम्यवाद सत्ता के संघर्ष मे पडकर हिंसा का शान्ति-दर्शन बन गया है। हम उस हिंसा से बचे हुए हैं, लेकिन हमने अपने लाखों लाख नागरिको—पुरुष, स्त्री, बच्चो—को घुल घुलकर मरने की छूट तो दे ही रखी है। क्या स्थिति है हमारे देश की स्त्रियो की ? क्या भविष्य है हमारे युवको का ? और, क्या जीवन है हमारे श्रमिकों का ? क्या हम चीन की नृशसता की मिसाल देकर अपनी हृदयहीनता और अकर्मण्यता का औचित्य सिद्ध कर सकते हैं ? अगर चीनी सरकार के साथ अपनी शत्रुता के कारण हम चीन की विकास-योजना के गुणो से भी मुँह मोडेंगे तो अपने और अपने देश के प्रति बहुत बडा अन्याय करेंगे।

चीन की सफलता का रहस्य वह मुक्ति है जो माम्रो की व्यवस्था मे चीन की स्त्री युवक और श्रमिक को प्राप्त हुई है। माम्रो ने इन तीनो को नया जीवन दिया है—सुखी स्वतन्त्र, सार्थक। ऐसे जीवन का वे पहले कभी स्वप्न भी नही देख सकते थे। ये ही तीन शक्तियाँ हैं जो माम्रो के चीन को बना रही हैं बचा और बढा रही हैं। माम्रो चीन की इन त्रिविध शक्तियो का निर्माता है।

विनोबा का त्रिविध कार्यक्रम भी मुक्ति का कार्यक्रम है। ग्रामदान, खादी और शान्तिसेना मे अगर श्रमिक, स्त्री और युवक की मुक्ति का सन्देश न हो तो दूसरा क्या होगा ? फिर इस कार्यक्रम मे नया समाज-निर्माण करने की शक्ति कैसे आयेगी ?

माम्रो का साम्यवाद खेतिहर साम्यवाद है, जबकि रूस का साम्यवाद

औद्योगिक है। इस नाते माओ ने शुरू से 'गाँव' के बुनियादी महत्व को समझा था। उसने गाँवों की शक्ति संगठित की, उस शक्ति से शहरों को घेरा, और सत्ता प्राप्त की, एव मुख्यत उसी शक्ति से वह अपने देश का निर्माण कर रहा है। गाँवों को उसने तोड़ा नहीं। उन्हें उनके स्वाभाविक रूप मे रहने दिया, लेकिन पतन के गड्ढे से निकाल लिया। उन्हें अपने पैरों पर खडा किया। ऐसी सगठित ग्राम इकाइयों को कम्यून के रूप मे क्षेत्रीय विकास के साथ जोड़ा। ये कम्यून नयी आर्थिक रचना की रीढ बने हुए हैं। उनका नेतृत्व साम्यवाद की कार्य पद्धति मे दीक्षित, प्रशिक्षित, स्थानीय 'केडर' के हाथ मे है। पुलिस और सेना उनके दैनंदिन जीवन से दूर हैं।

माओ ने क्रान्ति के पहले चरण मे भूमिवानों से भूमि लेकर भूमिहीनो में बाँटी। भूमिहीनता मिटी तो सहकारिता आयी। सामूहिक खेती अन्त मे आयी। हर परिवार के पास अपनी 'गृह वाटिका' है। ग्रामीण योजना मे घरेलू, ग्रामीण, और क्षेत्रीय उद्योगों को भरपूर बढ़ावा दिया गया है। कम्यून का आर्थिक सगठन अधिक से अधिक स्वाश्रयिता के आधार पर किया गया है, और उत्पादक को न्याय की पूरी गारंटी है। आपसी मामलो म निर्णय आपसी और स्थानीय हैं।

जिस तरह माओ ने चीन मे गाँव को पकड़ा, विनोबा ने उसी तरह भारत के गाँवों को स्वतंत्रता के बाद क्रान्ति का स्रोत और आधार माना। माओ का केडर' विनोबा की ग्राम-शान्तिसेना है। चीन के गाँव और कम्यून के सगठन मे ऐसे कई तत्त्व हैं जो विनोबा की ग्रामस्वराज्य सभा प्रखण्डस्वराज्य सभा की योजना में मौजूद हैं।

चीन के गाँव और कम्यून के दैनंदिन जीवन म पुलिस का हस्तक्षेप नहीं है। विनोबा के ग्रामस्वराज्य मे पुलिस अदालत मुक्ति है।

माओ की शिक्षण-योजना मे उत्पादक श्रम का जो स्थान है, तथा बौद्धिक और शारीरिक श्रम को प्रतिष्ठा मे जो समानता है, वह ऐसी है जो नयी तालीम के किसी भक्त के लिए ईर्ष्या का विषय होगी। माओ ने माना है कि मनुष्य के सास्कृतिक परिवर्तन के बिना साम्पत्तिक सम्बन्धो का परिवतन टिकाऊ नहीं होगा। विनोबा ने अन्य परिवर्तनों के साथ साथ मनुष्य के आध्यात्मिक स्वरूप की कल्पना की है जो उसका सबसे शुद्ध सास्कृतिक स्वरूप है।

माओ ने क्रान्ति के अपने कार्यक्रम मे किस शक्ति का प्रयोग किया है, और विनोबा किस शक्ति का कर रहे हैं? माओ की शक्ति दण्ड और प्रतिहिंसा की

रही है। यह शक्ति पीड़ितों को बदला लेने का भरपूर मौका देती है। इसलिए अत्यन्त व्यापक और शक्तिशाली होती है।

इस दण्डशक्ति का प्रयोग वर्ग शत्रुओं से अधिक उनके विरुद्ध किया गया है जिन्होंने माओ की राष्ट्रीय योजना का विरोध किया है। ग्रामदान की योजना में लोकमत और कानूनी दबाव की गुंजाइश उन २५ प्रतिशत के प्रति है जो मनाव से न मानें। लेकिन विनोबा किसी स्थिति में संहार का समर्थन नहीं करते। माओ के लिए, क्या पूरे साम्यवाद के लिए, संहार परिवर्तन की प्रक्रिया का बुनियादी अंग है। यह तत्त्व सेना को भी 'क्रान्तिकारी' बना देता है। क्योंकि सेना के ही संरक्षण में और उसी की शक्ति से साम्यवादी क्रान्ति पलती और बढ़ती है। विनोबा की योजना में शोषितों की मुक्ति का तो आश्वासन है, लेकिन उन्हें बदला लेने के 'सुख' से वंचित होना पड़ता है।

माओ ने सैनिक को काफी हद तक नागरिक बनाया है, और विनोबा ने नागरिक को 'सैनिक (शान्तिसैनिक) बनाने की कोशिश की है। यह अन्तर माओ और विनोबा को समानान्तर रेखाओं जैसा बना देता है, जो देखने में एक जैसी हैं, और जो काफी दूर तक साथ भी चलती हैं, लेकिन अन्त में जिनके छोर कभी मिलते नहीं।

माओ की क्रान्ति-योजना में चीन की भावी दिशा क्या होगी? यह निश्चित है कि माओ के नेतृत्व ने जिस तरह चीन की मेहनतकश जनता और नुवापीढ़ी को मुक्ति का स्पर्श कराया है उससे चीन नये जीवन के मार्ग पर अग्रसर होगा, दिनोंदिन सुसंगठित और समृद्ध होगा, लेकिन सैनिकवादी, विस्तारवादी होगा। इसलिए एशिया, मुख्य रूप से दक्षिणी और दक्षिणपूर्व एशिया के लिए खतरा बना रहेगा। भारत को चैन की नींद नहीं सोने देगा। क्रान्ति के नाम में भीतरी षड्यन्त्रों को बढ़ावा देता रहेगा। किसी दिन साम्यवाद का अन्तर्विरोध प्रकट होगा। नागरिक 'वाद' से ऊपर उठकर साम्य की मांग करेंगे। तब सारे सैनिक शासनों की तरह चीन भी सैनिक बनाम-नागरिक संघर्ष का शिकार होगा। माओ की योजना में यह कल्पना भी नहीं है कि माओ का चीन कभी स्वयं माओवाद से भी मुक्त हो। जो बन्दूक मुक्ति दिलाती है वह बाद को गुलामी का कारण बन जाती है।

और, अगर भारत में विनोबा सफल हुए तो भारत का क्या स्वरूप होगा? अगर ऐसा हुआ तो जो शक्ति आज तक दुनिया के हाथ नहीं आयी वह भारत के हाथ आ जायगी—शान्ति की शक्ति। यह शक्ति क्रान्ति को भी मानवीय बना देगी, जो किसी दूसरी शक्ति से सम्भव नहीं है। अगर विनोबा का

बताया हुआ शान्तिपूर्ण लोकशक्ति के द्वारा समाज-परिवर्तन का रास्ता भारत ने अपना लिया तो भारत गृहयुद्ध और अराजकता से बच जायगा, क्योंकि भारत में सर्वोदय का विकल्प साम्यवाद नहीं है, विकल्प है भारत का टुकड़ों में टूट जाना, और भयंकर अराजकता में पड़ जाना।

लोकशक्ति के संगठन का अर्थ है सैनिक शक्ति से चलनेवाले राज्य से मुक्ति। यह एक नये समाज और नयी सभ्यता के निर्माण की कल्पना है। सांस्कृतिक क्रान्ति की शुरुआत माओ ने भी की है, लेकिन उसे चलानेवाली शक्ति सैनिक ही है। एक बिन्दु पर पहुँचकर सैनिक-शक्ति और लोकशक्ति में कितना विरोध हो सकता है, इसका उदाहरण बंगला देश है। इस स्थिति से उबरने का उपाय माओ की मुक्तिसेना के पास नहीं है, अगर है तो विनोबा की ग्रामस्वराज्य-योजना में, और नागरिक की शक्ति में।

माओ इतिहास के प्रवाह में आ चुका है, विनोबा अभी इतिहास के गर्भ में है। माओ का प्रयोग इतिहास के साथ चल रहा है, विनोबा का प्रयास नया इतिहास बनाने का है। माओ को चीन ने स्वीकार कर लिया है, विनोबा को भारत की आत्मा अभी दूर से सराह रही है। माओ उत्तर बन चुका है, विनोबा प्रश्न और उत्तर दोनों प्रस्तुत कर रहा है।●

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
श्री राममूर्ति

वर्ष : २०
अंक : २
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

सितम्बर, '७१

दैनन्दिनी १९७२

गत वर्षों की भाँति सर्व सेवा संघ की सन् १९७२ की दैनन्दिनी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है। इस दैनन्दिनी के ऊपर प्लास्टिक का चित्ताकर्षक कवर लगाया गया है। इसकी कुछ विशेषताएँ निम्न हैं।

- इसके पृष्ठ रूलदार हैं।
- इसके प्रत्येक पृष्ठ पर मनिषियों के प्रेरक वचन दिये गये हैं।
- इसमें सर्वोदय आन्दोलन विशेषकर भूदान-ग्रामदान की जानकारी तथा सर्व सेवा संघ के कार्य की संक्षिप्त जानकारी दी गयी है।
- गत वर्षों की भाँति यह दैनन्दिनी दो आकारों में छापी गयी है जिनकी कीमत प्रति दैनन्दिनी निम्न है।

(अ) डिमाई साइज	९"×५॥"	रु० ५-००
(ब) क्राउन साइज	७॥"×५"	रु० ४-००

आपूर्ति के नियम

- विक्रेताओं को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।
- एक साथ ५० या अधिक दैनन्दिनी मँगाने पर ग्राहक के निकटतम रेलवे स्टेशन तक फ्री पहुँच भिजवायी जाती है।
- इससे कम संख्या में दैनन्दिनी मँगाने पर पैकिंग, पोस्टेज और रेलमहसूल का खर्च ग्राहक को वहन करना पड़ता है।
- भिजवायी गयी दैनन्दिनी वापस नहीं ली जाती। दैनन्दिनी की बिक्री पूर्णतया नगद वी० पी० बैंक के मार्फत रखी गयी है।
- आर्डर भिजवाते समय अपना नाम पता और निकटतम रेलवे स्टेशन का नाम सुवाच्य अक्षरों में लिखिये और यह स्पष्ट निर्देश दीजिये कि मँगायी गयी दैनन्दिनी के लिए आप रकम अग्रिम ड्राफ्ट द्वारा भिजवा रहे हैं या बिल्टी वी० पी० या बैंक के द्वारा पहुँचा दी जाय।

उपर्युक्त शर्तों को ध्यान में रखते हुए अपना क्रयादेश अविलम्ब भिजवाइये क्योंकि इस वर्ष भी दैनन्दिनी सीमित संख्या में छपायी गयी है।

मंत्री
सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट वाराणसी

नयी तालीम

सर्व सेवा संघ की मासिकी

वर्ष : २०
अंक : ३

- सामाजिक परिवर्तन मे अध्यापक की भूमिका
- सुर्खी की शव-परिक्षा
- शिक्षा मे क्रान्ति
- परीक्षा की नकल

अक्तूबर, १९७१

आचार्यकुल की शिक्षा-नीति

वर्ष : २०
अंक : ३

१२ १३ सितम्बर १९७१ को पवनार मे विनोबाजी के सान्निध्य मे केन्द्रीय आचार्यकुल समिति न आचार्यकुल आन्दोलन के लक्ष्य सगठन और कायक्रम के सम्बन्ध मे जो निणय लिये उनम सबसे अधिक महत्वपूण निणय था आचार्यकुल की शिक्षा-नीति तय करना और उसके कार्यान्वयन के लिए आवश्यक कदम उठाना। अपने समापन भाषण[1] मे विनोबाजी ने इस ओर सकेत करते हुए कहा— अगर यह पूछा जाय कि जो सबसे रद्दी तालीम का नमूना पेश करेगा उसे महावीरचक्र प्रदान किया जायगा तो शिक्षा की जो यह स्कीम देश मे भारत सरकार चला रही है उसी को महावीरचक्र मिलेगा, दूसरे को मिलेगा नही। शिक्षा मे सुधार करने के लिए तीन-तीन कमीशन बैठाये गये। एक कमीशन की रिपोर्ट तो सात आठ सौ पन्नो की है। परन्तु रिपोट वैसी की वैसी पडी रही। किसी ने कुछ किया नही। आज तो इन्दिराजी भी कहती हैं कि स्वराज्य के बाद हमने कई गलतियाँ की हैं उनमे एक गलती यह है कि पुरानी तालीम चलायी गयी।और वही का वही पुराना ढाँचा कायम रहा। तो मैं पूछता हूँ कि आखिर यह तालीम है किसके हाथ मे? केन्द्र कहता है कि तालीम राज्य का विपय है। राज्य केन्द्र का मुह ताकते हैं। कोई कुछ करता नहीं। फुटबाल का खेल चल रहा है। एक दूसरे की ओर टाल रहे हैं—इधर से उधर और उधर

१ इसी अक मे पृष्ठ १०१ पर दिया गया है।

से इधर, और आज तक कुछ भी फर्क हुआ नहीं। इस वास्ते यह सारी तालीम बदलना है। परिवर्तन का यह काम कौन करेगा? तालीम बदलने का यह काम हमारे (आचार्यकुल के) क्षेत्र मे आता है। परन्तु काम बहुत अधिक है। इतना प्रचण्ड काम आचार्यकुल कर सकेगा क्या? मेरा तो मानना है कि आचार्यकुल ही कर सकेगा। अगर यह नही करता तो दूसरा करनेवाला है नही। इसीलिए आचार्यकुल की शिक्षा-नीति निर्धारित करके आपने बहुत अच्छा काम किया है।'

और नि सन्देह काम तो बहुत अच्छा है। परन्तु स्वय मे नीति-निर्धारण के काम का उतना ही मूल्य है जितना सकल्प-पत्र को मात्र पढ जाने का। जब तक सकल्पो के अनुसार आचरण नहीं होता सकल्प फलदायी नही होते।

लक्ष्य के विषय मे जब आचार्यकुल यह कहता है कि यद्यपि शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति का स्वतत्र और मुक्त विकास है फिर भी यह विकास समाज के हित मे हो जिससे मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त किया जा सके तो मानो वह बेसिक शिक्षा के उस लक्ष्य को ही दोहराता है, जिसके अनुसार बेसिक शिक्षा वर्ग-विहीन, शोषण-मुक्त समाज की स्थापना का प्रयास करती है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के अन्त की प्रक्रिया क्या होगी? गाधीजी ने कहा था कि अगर शोषण का, जो हिंसा का ही दूसरा नाम है, अन्त करना है तो स्वावलम्बी उत्पादक व्यक्तित्व का विकास करना होगा और इसीलिए बेसिक शिक्षा के केन्द्र मे उन्होने उत्पादक दस्तकारी को रखा था। आचार्यकुल भी अपनी शिक्षा-नीति के इस घोषणा–पत्र मे स्वीकार करता है कि 'अगर हम चाहते हैं कि छात्र अपने सामाजिक वातावरण के निर्माण मे रचनात्मक रोल अदा करें तो हमे शिक्षण की ऐसी प्रक्रिया अपनानी होगी जिससे छात्र के उत्पादक व्यक्तित्व का विकास हो सके।

शिक्षण की इस प्रक्रिया को ठोस रूप देने के लिए आचार्यकुल ने जिस पाठ्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की है उस पाठ्यक्रम का निदेशक सिद्धान्त होगा उत्पादक कार्यमूलकता। दूसरे शब्दो मे समाजोपयोगी उत्पादक काम को उसने पाठ्यक्रम का अभिन्न अग बताया है और

यह साफ किया है कि यह काम प्रयोजनहीन न हो और शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर उसके निश्चित लक्ष्य निर्धारित हो। इतना ही नहीं, उसने यह भी साफ किया है कि प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम अपने मे पूर्ण इकाई हो' अर्थात् प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा का पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा के लिए और माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम उच्च विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए तैयारी मात्र न होकर जीवन के लिए तैयारी हो। पाठ्यक्रम का यह सिद्धान्त बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त के समान ही है जो बुनियादी और उत्तर बुनियादी दोनो ही स्तरो के पाठ्यक्रमो द्वारा स्वावलम्बी व्यक्तित्व का निर्माण करना चाहती थी।

बेसिक शिक्षा की भाँति आचार्यकुल ने यह भी स्वीकार किया है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। अगर आचार्यकुल अपने इन दोनो सुझावो को कार्यरूप मे परिणत कर सका तो देश मे एक बार फिर बेसिक शिक्षा जीवन्त हो उठेगी।

परीक्षा-पद्धति पर अपनी राय स्पष्ट करते हुए आचार्यकुल ने भी माना है कि बालको की क्षमताओ का अगर सही मूल्यांकन करना हो तो उनके काम का सतत् मूल्यांकन होना चाहिए। परन्तु उसने इस सम्बन्ध मे जो दूसरा सुझाव दिया है वह अधिक क्रान्तिकारी है। उसने तय किया है कि नौकरी या रोजगार देनेवाला अपनी परीक्षा स्वय ले ले और इस परीक्षा मे बैठने के लिए किसी दूसरी परीक्षा के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता न हो। इस प्रकार नौकरी पाने के लिए किसी डिग्री या प्रमाण पत्र की जरूरत न समझी जाय। अगर इस प्रकार का कदम उठाया जायगा और परीक्षा नौकरी का पासपोर्ट नहीं रह जायगी तो परीक्षा के साथ जो अनेक भ्रष्टाचार लग गये हैं उनसे छुट्टी मिल जायगी और तब विद्यार्थी परीक्षार्थी न होकर सही मानो मे विद्यार्थी बन सकेगा। आचार्यकुल का यह विचार शिक्षा की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है और आचार्यकुल को इसके शीघ्र कार्यान्वियन के लिए सगठित प्रयास करना चाहिए।

अग्रेजी माध्यम के पब्लिक स्कूलो के चलते रहने के कारण देश मे इस समय शिक्षण की दो समानान्तर धाराएँ चल रही हैं—एक आवाज उठने लगी है कि समाजवादी समाज बनाना है तो पब्लिक

स्कूलो को, जहाँ धनिक पैसा देकर अपने बच्चो के लिए शिक्षा खरीदते हैं, बन्द करना चाहिए, क्योंकि जब तक शिक्षा मे विषमता रहेगी समाज मे विषमता समाप्त नही होगी। आचार्यकुल ने इस सम्बन्ध मे अधिक रचनात्मक नीति निर्धारित की है। वह पब्लिक स्कूलों को बन्द करने की बात नही करता। उसने यह सुझाव दिया है कि इन स्कूलो मे शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो और इनमे शुल्क सरचना (फी स्ट्रक्चर) दूसरे सरकारी या गैर सरकारी स्कूलो के समान हो। परन्तु क्या समाज, जैसा आज हमारा समाज है, इसे मान्य करेगा। अगर मान्य नही करता तो आचार्यकुल इसके विरुद्ध क्या कदम उठायेगा ? आचार्यकुल और तरुण शान्ति-सेना दोनो मिलकर सोचें कि यह कदम कैसा होगा।

शैक्षिक प्रशासन के सम्बन्ध मे आचार्यकुल की नीति देश मे बढती हुई उस प्रवृत्ति के विरुद्ध चेतावनी है, जो शिक्षा का सरकारीकरण करना चाहती है। सरकारीकरण से लोकतान्त्रिक मूल्य सदा के लिए नष्ट हो जायेंगे और विचारो का 'इन्डाक्ट्रिनेशन' होगा जो लोकतत्र का सबसे बडा खतरा सिद्ध होगा। अत आचार्यकुल ने यह सुझाव दिया है कि शिक्षा विभाग स्वायत्त हो—उतना स्वायत्त तो हो ही, जितना न्याय विभाग हो। व्यावहारिक रूप मे उसने सुझाया है कि शैक्षिक प्रशासन छात्र, अध्यापक और अभिभावक का सम्मिलित उत्तरदायित्व हो।

आचार्यकुल की शिक्षानीति निश्चय ही प्रगतिपूर्ण है और बेसिक शिक्षा की असफलता के कारण तथा पुरानी शिक्षा-पद्धति के चलते रहने के कारण देश मे जो निराशा का अधकार फैल रहा था, उसमे एक आशा की किरण सी दिखाई दे रही है, परन्तु इसके मार्ग मे कई बाधायें हैं। देश का पूंजीवादी सामन्तवादी समाज है, यथा-स्थिति को बनाये रखनेवाली नौकरशाही है, स्वय अध्यापको की निष्क्रियता और कुठा है। आचार्यकुल को इनके विरुद्ध सघर्ष करना होगा और, चूंकि उसकी निष्ठा अहिंसा और हृदय-परिवर्तन मे है, अत उसके पास एक ही मार्ग रह जाता है—अपनी नैतिक शक्ति जगाने का मार्ग—विनोबा के शब्दो मे अपना तप बढाने का मार्ग।

—यशोधर श्रीवास्तव

विनोबा

आज की रद्दी तालीम को आचार्यकुल ही बदल सकेगा

[केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के बीच ब्रह्मविद्या मंदिर पवनार में १४-९ '७१ को दिया प्रवचन। सं०]

आज रद्दी से रद्दी तालीम दी जा रही है। मगर कहीं यह जाहिर किया जाय कि सबसे रद्दी तालीम का कोई नमूना पेश करो ऐसा नमूना जो पेश करेगा उसको महावीर चक्र देंगे मगर ऐसा कहीं जाहिर किया जायगा तो मेरा ख्याल है कि यह जो स्कीम है सरकार की उसी को महावीर चक्र मिलेगा। इससे बदतर शिक्षा योजना बनाना चाहें तो बना नहीं सकेंगे। पुराने जमाने की बन चुकी है एक दफा और वही जारी है। जब स्वतन्त्रता प्राप्त हुई उन दिनों मैं देहात में काम करता था। मुझे बुलाया गया कि आज तो आजादी मिल गयी है और आपका भाषण वहाँ वर्धा में है। मैंने कहा ठीक है। वर्धा में मैं गया और लोगों से पूछा, आज से पुराने साम्राज्य का जो झण्डा चलता था वह चलेगा? बोले नहीं चलेगा। आज झण्डा बदल गया है।' तो मैंने कहा कि आज अगर झण्डा बदल गया है तो तालीम भी आज ही बदलनी चाहिए। पुरानी तालीम अगर जारी है तो समझना चाहिए कि पुराना राज भी चल रहा है। नाम भले नया राज है लेकिन राज्य पुराना है। तालीम पुरानी नहीं होनी चाहिए नयी तालीम होनी चाहिए। जसे झण्डा नया वैसे तालीम नयी। और नयी तालीम की एक योजना बापू ने पेश की थी। पर मान लीजिये कि वह योजना सबको पसन्द नहीं आती तो मैं क्या करूँगा? स्वराज्य प्राप्ति के बाद मैं जाहिर करूँगा कि ६ महीने सब विद्वानों की सभाएं होंगी। और ६ महीने चर्चा करके वे लोग निर्णय करेंगे शिक्षा का और जो निर्णय होगा तदनुसार शिक्षा चलायी जायेगी। तब तक शालाएं बन्द रहेंगी और सब विद्यार्थियों को सूचना दी जा रही है कि खेतों में जाकर खूब काम करो, गाना गाओ स्वराज्य मिला है, काहे जाते हो स्कूलों में? स्कूल ६ महीने बन्द है। ऐसा मैं करता। और ६ महीने बाद जो योजना सब लोग पेश करते, तदनुसार तालीम चलती। परन्तु उलटा हुआ। वही रद्दी तालीम ही जारी रही। और उस पर दो दो कमीशन बैठाये गये और एक

एक कमीशन की रिपोर्ट मेरा ख्याल है सात ग्राठ सौ पन्नों से कम नहीं होगी। ये बड़ी बड़ी रिपोर्ट (होता भी और क्या ?) सबकी सब ऐसी हो पड़ी रहीं। और यहां तक कि हमारी प्रधान मंत्री इंदिराजी बोलीं कि स्वराज्य के बाद हमने कई गलतियां की हैं, उनमें एक गल्ती यह है कि पुरानी तालीम ही चलायी गयी। वही का वही पुराना ढांचा कायम रखा। अब सवाल यह है कि जब इन्दिराजी भी शिकायत करती हैं इस तालीम की तो आखिर यह तालीम है किसके हाथ में ? तो बोलते हैं कि यह फुटबाल का खेल है। यह कहते हैं, प्रान्तों का काम है। वह कहते हैं उसके पास। अब प्रान्तवाला कहता है कि ऊपर से आदेश मिले, तदनुसार करना अच्छा रहेगा। केन्द्रवाला कहता है प्रान्तों का काम है। तो यह फुटबाल का खेल चला टालते रहे—इधर-से उधर और आज तक कुछ भी फर्क हुआ नहीं। जो तालीम पुराने जमाने में चलती थी, जिससे ऊब करके बाबा ने तालीम लेना छोड़ दिया, वही तालीम आज भी चल रही है। आज की तालीम में तुलसीदास की रामायण पढ़ायी नहीं जायेगी। क्यों ? क्योंकि यह 'सेक्यूलर स्टेट' है, इस वास्ते रामायण नहीं चाहिए। परन्तु अब क्या करें ? रामायण भी एक साहित्य की किताब है, इस वास्ते एक थोड़ा सा अंश जिसको पीस कहते हैं अंग्रेजी में, नमूने के तौर पर रखेंगे तुलसीदास का, सूरदास का। रामायण पढ़ी नहीं जा सकती, बाइबिल चल नहीं सकती, कुरान होगी नहीं, महाराष्ट्र में ज्ञानेश्वरी सिखानी पड़ती है लाचारी से, एम० ए० के क्लासेज में, साहित्य होने के नाते। और ये कम्बख्त पुराने जो संत हो गये, उनमें कुछ साहित्यिक भी हो गये। तब क्या किया जाय ? साहित्य के नाते उनकी किताबों को थोड़ा रखना ही पड़ता है। किन्तु जहाँ तक हो सके, साहित्यिक गंध ही लगे, उनकी अपनी जो गंध है वह न लगे। यह जो नीति है क्या नीति है, वह ? सर्वधर्म के लिए समान अभाव, सर्वधर्म सम अभाव। गांधीजी का सर्वधर्म समभाव, लेकिन यह सर्वधर्म समान अभाव की तालीम चलती है। परिणाम तो उसका यह है कि विद्यार्थियों को आध्यात्मिक श्रद्धा पैदा नहीं होती। यह हालत आज की तालीम की है। इस वास्ते यह सारी तालीम बदलना, यह हमारे क्षेत्र में आ जाता है। इतना सारा प्रचण्ड कार्य यह आचार्यकुल कर सकेगा क्या ? तो मेरा मानना है कि ये ही कर सकेंगे। और ये अगर नहीं कर सकते तो दूसरा कोई कर सकनेवाला नहीं है। इतना समझ लेना चाहिए कि यह कार्य केवल आपके जिम्मे है। आप में

साहित्यिक भी पढ़े हैं और शिक्षक भी पढ़े हैं और दोनों प्रकार की शक्ति भावी दुनिया को बनानेवाली है। मैंने जाहिर किया था कि इस दुनिया में दो चीजें चलेंगी—एक तो विज्ञान, जिससे रोज जीवन बदलेगा। दूसरा अध्यात्म! और तीसरा इन दोनों को जोडनेवाला एक साहित्यिक दूसरा अध्यापक। ये दोनों विज्ञान और अध्यात्म को जोडने का काम करेंगे। यह जोडने का काम करनेवाले आप हैं। इसलिए आपका भविष्य उज्ज्वल है, और आपके कन्धे पर जो भार है, वह दूसरा कोई उठा नहीं सकता। और आपके कन्धे कुल की भावना रही, एकता की भावना रही कि हम सब एक हैं तो बहुत बडी ताकत पैदा होगी।

एकता की भावना का यह अर्थ नहीं कि हर एक को नया-नया सूझ नहीं, अलग अलग सूझे नहीं जो मुझे सूझे वही दूसरे को सूझ, वही तीसरे को भी सूझे यदि ऐसा होता तो दुनिया में इतने मनुष्य काहे को पैदा होते? फिर एक मनुष्य से ही काम चल जाता। लेकिन भिन्न भिन्न मनुष्य होते हैं भिन्न-भिन्न चिन्तन होते हैं यह अच्छा है। परन्तु एक बार मेरा ध्यान गया गीता के विश्वरूप दर्शन की तरफ और एक बात मेरे ध्यान में आयी जो तुरन्त उसे मैंने लोगों के सामने रखी कि विश्व-रूप दर्शन में हजारों हाथ, हजारों आँखें, हजारों सिर लेकिन हजारों हृदय नहीं बताया है, हृदय एक है। यह समझने की बात है।

समाना आकूतिः समाना हृदयानि वः

तुम्हारे सबके सिर में एक ही विचार होना चाहिए यह गलत बात है। अनेक विचार अनेक के होंगे, और सब मिल करके परिपूर्ण विचार बनेगा। इस वास्ते विचारों की भिन्नता जरूरी है और विचारों का जोड होना जरूरी है। परन्तु हृदय एक होना चाहिए। अब अगर विश्वरूप के हृदय अलग अलग हो जाते तो मामला बडा कठिन हो जाता।

इस वास्ते इस आचार्यकुल में अनेक के अनेक विचार चलेंगे। यह बहुत अच्छा है, और सबका मिलकर सम्मिलित जो विचार होगा, यानी सबकी राय जो समान बनेगी, वही दुनिया के सामने रखा जायगा। तो उसको एक बल मिलेगा। और यह जब होगा तो विचार की स्वतन्त्रता और हृदय की एकता होगी।

इससे ज्यादा आपका समय लेना उचित नहीं। आप जो काम कर रहे हैं उससे मुझे बहुत ही प्रसन्नता है। परमेश्वर आपको सफल करें। सबको प्रणाम। जय जगत्।●

डा० जे० डब्ल्यु० आयरन

आज के सामाजिक परिवर्तन में अध्यापक की भूमिका

[दि० १३ जून १९७१ को गांधी शिक्षण भवन में प्रमाणपत्र-वितरण-समारोह मनाया गया। उस सुअवसर पर डा० आयरनजी ने जो उद्बोधक भाषण दिया वह यहाँ प्रस्तुत है।—सम्पादक]

समाज के पुनरुत्थान तथा नूतनीकरण के महत्वपूर्ण कार्य के लिए ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है जिन्हें ईश्वरप्रदत्त प्रतिभा एवं विविध प्रशिक्षण प्राप्त हैं। अध्यापकों की भी इस प्रकार के व्यक्तियों में गणना होती है और उन्हें इस दिशा में व्यक्ति के नाते तथा वर्ग के नाते अपना योगदान करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

आज के इस परिवर्तनशील युग में समझने के लिए कि वह योगदान क्या होना चाहिए, और सुचारु रूप से वह कैसे किया जा सकता है, यह आवश्यक जान पड़ता है कि समकालीन परिस्थितियों का निरूपण किया जाय। मनुष्य का मस्तिष्क किस दिशा में चल रहा है तथा भव्य विचारों को क्रियान्वित करने में कौन-सी कठिनाइयाँ अथवा बाधाएँ आ सकती हैं इनपर भी गहराई से अध्ययन अपेक्षित है। परम्परागत एक अध्यापक का सम्बन्ध विद्याजगत् से हुआ करता था। वह ज्ञान का मूल स्रोत तथा वर्गीय अथवा राष्ट्रीय संस्कृति का रक्षक होता था। समाजरूपी शरीर को अलंकृत करनेवाले विचारों का प्रादुर्भाव

उसमे से होता था। वह वग को ऐसी सामग्री प्रदान करता था जिसके बल पर वह वग सामान्य स्थिति तथा सकटकालीन स्थिति मे अपने को कायम रख सकता था, और भविष्य मे पुनर्जीवन ला सकता था। अध्यापक का उस नवजवान लड़के से एक खास सम्बन्ध होता था जिसे वह शिष्य के रूप मे स्वीकार करता था। वह उसे इस प्रकार अपनाता था जैसे माँ शिशु को गर्भाशय म ग्रहण करती है। फिर उसमे अपनी आत्मा को प्रविष्ट करके उसे जन्म देता था। इस प्रकार शिष्य दूसरा जन्म पाकर द्विज कहलाता था और उस पर अपने गुरु का ही अधिकार होता था। गुरु ही उसके लिए प्रेरणा एव ज्ञान का एकमात्र साधन होता था। इस प्रकार के परम्परागत गुरु शिष्य सम्बन्ध जो वास्तव मे अद्वितीय है विचारो एव व्यक्तित्व दर्शन के आधार पर चलते रहे।

किन्तु अब चित्र बदल गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध ने अपना निश्चित प्रभाव अनेक ढग से दिखलाया है। राजनीतिक, आर्थिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी नीतियाँ जिन्होंने राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय जीवन का ढाँचा तैयार किया था नष्ट हो गयीं। विशाल तथा विस्तृत राज्य छिन्न भिन्न हो गये और उनके स्थान पर छोटे-छोटे अनेक राष्ट्रो ने जन्म लिया। बड़े पैमाने पर एक ऐसी उथल पुथल हुई जिसने देशों की आजादी से हटकर देशों के अन्दरवाले वर्गों तथा वर्गों के अतगत व्यक्तियो की आजादी की माँग को जन्म दिया। अत इस सन्दभ के अन्तगत अध्यापक को अपनी भूमिका खोजनी चाहिए।

क्या आज का अध्यापक अपने शिष्य के लिए ज्ञान तथा प्ररणा का एकमेव साधन है? एक विशेषज्ञ अध्यापक अपने विद्यार्थी के लिए कितना उपयोगी है जो बदलते हुए समाज की समस्याओ का उत्तर ढूढ रहा है?

यथार्थ म आज विद्यालयो एव विश्वविद्यालयो मे जानेवाले नवयुवको के लिए निवारक अध्यापक कौन है और वास्तुत साधनसामग्री क्या है? क्या ये वे व्यक्ति हैं जिन्हें प्रमाणित विश्वविद्यालयो कालेजों मे यथाक्रम विद्याभ्यास के लिए नियुक्त किया जाता है तथा निर्धारित पाठ्यपुस्तकें एव हमारे पुस्तकालयो के ग्रथ ही केवल पठन सामग्री हैं? आजकल समाचार पत्र, साप्ताहिक लोकप्रिय मासिकाएँ तथा ऐसे व्यक्ति, जो विद्यामंदिरो से प्राय सम्बन्ध न रखते हुए लोकमत को नियंत्रित करते हैं, हमारे नवयुवको को केवल आधुनिकतम ज्ञान ही नहीं प्रत्युत भविष्य मे अनिवार्य पीढ़ी की कायरूप मे रूपरेखा तैयार करनेवाले विचारों का समावेश कराते हैं। इसका यह तात्पर्य नहीं कि अद्वितीय

प्राध्यापक गण यह भूमिका नहीं अपनाते हैं। किन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हमारी नयी पीढ़ी के मस्तिष्क पर जितना अधिक प्रभाव बाह्य व्यक्तियों तथा बाह्य सामग्री का पड़ता है उतना कालेज तथा विश्वविद्यालयों के अध्यापकों एवं हमारी निर्धारित पाठ्यसामग्री का कदापि नहीं पड़ता।

क्या हमको कभी आर्थर सी० क्लार्क द्वारा लिखित "२००१-ए स्पेस ओडिसी" जैसी पुस्तकें पढ़नेवाले नवजवानों का, लोकवाद और धर्मनिरपेक्ष समाज में क्या अन्तर है यह जानने की इच्छा रखनेवालों का, पश्चिमी सभ्यता में रंगे हुए 'हिप्पी' लोग और उनकी कामोत्पादक पोशाक हमारी सभ्यता एवं संस्कृति पर कितना असर डालेगी ऐसे प्रश्न पूछनेवालों का सामना नहीं करना पड़ता? हममें से कितने साधन सम्पन्न हैं जो ऐसे विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार की अर्थहीन बातचीत में भाग लेंगे?

अध्यापक के अनेक प्रतिद्वन्द्वी होते हैं उसे इनसे डटकर मुकाबिला करना होगा। उनका सबसे अधिक शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी है जन-सम्पर्क में घुलमिल कर रहनेवाला पुरुष, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं का लेखक, रेडियो अथवा जहाँ टेलीविजन प्रचलित है टेलीविजन पर बोलनेवाला वक्ता। ऐसा प्रतिद्वन्द्वी बड़ा साहसी, झगड़ालू और बेशरम होता है। उसके लिए यह सब होना संभव है। वह विद्यार्थियों का ध्यान सदैव आकर्षित किये रहता है और कभी कभी तो उनकी प्रशंसा का पात्र भी बन जाता है। ये सब कुछ एक अध्यापक नहीं कर पाता है। परम्परागत अध्यापक यह प्रदर्शित करता है कि विद्या का राजनीति से कोई सरोकार नहीं है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि अब विद्या राजनीति से शून्य नहीं रह सकती। इसलिए आज उस व्यक्ति की आवश्यकता है जो नौजवानों को बुद्धि के स्तर से यह समझा सके कि वे कौन सी शक्तियाँ हैं जो सामान्य व्यक्ति को कुचलने तथा अमानुषिक बनाने में रुची रहती हैं। क्या वह अध्यापक जिसने किसी एक विषय में उत्कृष्ट अध्ययन किया है उसी कठघरे में सीमित रहकर यह रहस्योद्घाटन कर सकता है? कुछ लोग गंभीर प्रश्न पूछ बैठते हैं जिसका अभिप्राय होता है कि स्कूल शिक्षा पर जरूरत से ज्यादा निर्भर रहना प्रभावी शिक्षा के लिए निश्चित रूपसे बाधक है और इसीलिए वे राय देते हैं कि स्कूल शिक्षा के अतिरिक्त अन्य प्रगति के साधन खोजना शिक्षा-सम्बन्धी उन्नति के मार्ग में एक महत्वपूर्ण कदम है। यदि इस विचार को पुष्टि मिलती रही तो हमारा समाज शिक्षित व्यक्तियों की पूर्ति के लिए अनिर्धारित क्षेत्रों में अपनी नजर डालना प्रारंभ करेगा। क्या अध्यापक नयी

दिशा मे होनेवाले इस सम्भाव्य परिवर्तन के सामने अपनी परम्परागत पद्धतियो का अनुसरण करता रहेगा ?

अपने निर्धारित कार्यक्षेत्र मे भी यदि अध्यापक गुण-प्रधान शिक्षा के सपने को साकार करना चाहता है तो उसे पता चलेगा कि जब सामग्री का अभाव होता है तो सामग्री-प्रधान शिक्षा के बजाय शिक्षा के प्रसार को कम करते हुए गुण प्रधान शिक्षा की उन्नतिवाला मार्ग ही अपनाना पड़ेगा और यह मार्ग उसे अथवा उसके विश्वविद्यालय को नही बल्कि उन शक्तियो द्वारा अपनाया जायगा जिनका विश्वास है कि सारी समस्याओ का निराकरण, चाहे वे सामाजिक हों या शैक्षणिक हो, एकमात्र राजनीतिक हल द्वारा ही सम्भव है। ऐसी परिस्थितियो मे वह अध्यापक व्यवसाय की दृष्टि से भी कैसे अग्रसर होगा ?

आजकल शैक्षणिक संस्था का क्या स्वरूप है ?

शैक्षणिक सस्था की प्राचीन पद्धति को दोहराने की आवश्यकता नही है जिससे हम भली भाँति परिचित हैं। अब शैक्षणिक सस्था सबसे अलग एक सीमित सस्था के रूप मे नहीं रह गयी है, और न ही सत्य की खोज उसका प्रेरक विचार रह गया है। यह सस्था अब स्वतत्र नहीं रह गयी है और न समाज की आकाक्षाओ से प्रभावित हुए बिना अपना कार्य ही कर सकती है। शिक्षा ही सामाजिक परिवर्तन का आधार है—इस नीति को अपनाना ही होगा। शैक्षणिक सस्थाओ की स्वाधीनता छूमन्तर हो गयी है क्योंकि इस आधुनिक नीति ने उन्हें सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रो मे भाग लेने के लिए मजबूर कर दिया है। आज का सामाजिक जीवन किसी भी स्तर पर राजनीतिक जीवन से पृथक् नही किया जा सकता। कुछ लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि सामाजिक और शैक्षणिक समस्या हो या कोई अन्य समस्या हो, उसका निराकरण अन्त मे राजनीतिक हलों द्वारा ही होता है। पुरानी पीढ़ी का दावा है कि विश्वविद्यालयों मे जो विचारसारणी सिखलायी जाती है, तथा जो हलचल शैक्षणिक जीवन का अग बन जाती है, उसी के दर्शन समाज मे उभरनेवाली सामाजिक तथा राजनीतिक सस्थाओ मे परिलक्षित होते हैं, आज झूठी हो गयी है। कार्ल जेजफर अपनी पुस्तक 'दी आईडिया ऑफ दी युनिवर्सिटी' मे जोरदार शब्दों मे लिखता है कि युनिवर्सिटी मे कुछ ऐसे प्राध्यापक होने ही चाहिए जो युनिवर्सिटी के लक्ष्य तथा उद्देश्यों के विपक्ष मे हों।

हम अब उदार शिक्षा से विशिष्ट शिक्षा की ओर अग्रसर हो चुके हैं जिसके

फलस्वरूप हमारा निर्धारित पाठयक्रम ऊपर से तथा नीचे के दबाव से सीधा व सपाट हो गया है। हमारे शुरू के साल स्कूल शिक्षा में बीत जाते हैं और उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक स्कूलों में बाद के साल बीत जाते हैं। विशिष्ट शिक्षा की प्रवृत्ति ने शैक्षणिक नियमों के आधार पर अध्यापक मंडल को विभाजित कर डाला। ओहदा, आमदनी, नौकरी-सम्बन्धी बातों से सम्बन्धित समस्याओं को हल करनेवाली शेष शक्तियाँ काम करने लगी और द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त शैक्षणिक स्वतंत्रता की मांग पैदा हुई। आज की शैक्षणिक संस्था तीन विभिन्न शक्ति समुदायों में बँट गयी है—प्रशासन, अध्यापक मंडल और विद्यार्थीगण। क्या वास्तव में हम उस परम्परागत दावे को कायम रख सकते हैं कि यह संस्था है।

-स्था मे उसकी नवीन भूमिका क्या है ? यदि वह स्मरण रखे कि (अ) जो कुछ वह रहा है उसी के फलस्वरूप वह अध्यापक है (ब) क्योंकि वह एक प्रभावशाली अध्यापक बना रहना चाहता है अत उसे सदैव के लिए विद्यार्थी बनना होगा क्योंकि उसके द्वारा प्राप्त ज्ञान का अधिकांश भाग अप्रचलित हो चुका है।

(३) एक सरल ढग

यहाँ जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह अधूरा है और प्रगतिशील देशो की स्थिति की जाँच के तौर पर बनाया गया है। यदि पुष्टि चाहिए तो शिक्षा आयोग (१९६६) पर लगाये गये आरोप को दोहराना पडेगा। आयोग की सिफारिश थी कि देश मे नतिशील सस्थाओं को जन्म देना चाहिए। और राज्य सरकार की उत्कठा थी कि युनिवर्सिटियों को सरकारी विभागो मे परिवर्तित कर देना चाहिए। आर्थिक दृष्टि से अध्यापको के वेतन मे चिरकाल ■ अपेक्षित सशोधन भी होना चाहिए। अतएव क्या यह कहना गलत होगा कि देश अब ऐसी दयनीय दशा मे खडा है कि राजनैतिक झटकों पर ही निर्भर रहता है *कालेज और युनिवर्सिटी के वेतन मान तथा गुण निग्रह।* यदि हम कालेज तथा युनिवर्सिटी को शिक्षा का केन्द्र मानते हैं जहाँ प्रत्येक युग के विशिष्ट गुणो का प्रभाव जान पडता है, तो फिर वही वह स्थान भी होने चाहिए जहाँ विज्ञान तक की विद्या का भी गहरा प्रभाव पडना चाहिए क्योंकि आज के युग का परिचय इन्हीं के द्वारा मिलता है। हमारे देश मे विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षण को इतना पोषण मिलना चाहिए कि भारत की गणना विश्व के तकनीकी प्रगति वाले देशों मे होने लगे। क्या हम अपने कालेजों एव युनिवर्सिटी म यह अपेक्षा कर सकते हैं ? क्या इन शिक्षा के केन्द्रो—हमारी राष्ट्रीय रसायनशाला तथा परिणामी ढग पर खोली गयी अन्वेषण शालाओं मे सुव्यवस्थित सम्पर्क स्थापित है ? इसी सन्दर्भ म एक और सम्बन्धित प्रश्न पूछा जा सकता है। यदि विज्ञान तथा तकनीकी विद्या पर जोर अन्य स्थानों पर दिया जाये और यदि *जनता से सम्पर्क का नियत्रण युनिवर्सिटी की सीमा के बाहर* ■ हो तो हमारा परम्परागत दावा कहाँ तक ठीक होगा कि कालेज और युनिवर्सिटी 'पुरातन मूल्यों' का प्रसार करते हैं और नवीनतम मूल्यों को जन्म देते हैं।

इसी दलील को आगे बढाते हुए कि हमारे विद्यालयों को प्रभावशाली शिक्षा के केन्द्र बने रहना चाहिए यह अनिवार्य है कि अध्यापक की प्रगति के लिए कुछ प्रस्ताव रखे जायें।

(ब) उच्च शिक्षा की बढती हुई माँग के कारण कालेजो की संख्या भी तेजी से बढती जा रही है जिसके फलस्वरूप अध्यापको की वस्तुतः 'भरती' होती है—अतः यह अपेक्षित है कि कालेज सदैव विलक्षण नवयुवक व्यक्तियों की तलाश मे रहें अपनी अध्यापक मडल मे सम्मिलित करने के लिए, चाहे उनकी धार्मिक तथा राजनीतिक पार्श्वभूमिका कुछ भी रही हो।

(ब) यदि ऐसे अध्यापक है जिनकी शैक्षणिक योग्यता न्यूनतम हैं तो उन्हें पूर्ण सुविधाएँ दी जानी चाहिए, और प्रोत्साहन भी मिलना चाहिए अपनी शैक्षणिक योग्यता बढाने के लिए, ताकि वे केवल विद्यार्थी-जगत में ही नहीं वरन् समाज के बुद्धिजीवी वर्ग मे भी लोकप्रिय हो सकें।

(स) जैसा कि पहले बताया जा चुका है यदि अध्यापक को उसके प्रतिद्वंद्वी का मुकाबला करना है तो फिर ज्ञान के बिखरे हुए क्षितिज पर रहना यथेष्ट नहीं होगा। उसे आधुनिक ज्ञान की गहराइयों मे जाकर ज्ञान प्राप्त करना होगा जिससे उसका तथा उसके विद्यार्थी का मस्तिष्क ज्ञान की नयी दृष्टि ग्रहण एव आत्मसात करने के लिए तैयार होगा। पाण्डित्य का परम्परागत विचार जिसका सम्बन्ध प्राचीन ज्ञान एवं प्रज्ञा से होता था उसे भविष्य तक ले जाना होगा। यह तभी सम्भव हो सकता है जब कि हमारा पुस्तकालय से सम्बन्ध नित नया हो, जहां नयी-नयी पुस्तकें पुरानी पुस्तको की जगह लेती हैं और ज्ञान से भरी मासिक पत्रिकाओ की संख्या लोकप्रिय पत्रिकाओं की अपेक्षा अधिक हो। इसके अलावा कालेजो मे ऐसा वातावरण निर्माण किया जाना चाहिए जो अध्यापक के अन्दर विद्या अध्ययन करने की कार्य-प्रणाली मे शोध-प्रवृत्ति को जन्म दे सके। यह कार्य परिषदों, सम्मेलनों एव बहस-बाजों द्वारा अथवा बुद्धिजीवी लोगो के छोटे कक्षो द्वारा सम्भव हो सकता है बशर्ते सदस्यता अध्यापन मडल तक ही सीमित न रहे।

(द) अवरोध ने जड़ें पकड ली है और आधुनिक समाज मे उसकी वृद्धि ही होती रहेगी। पाण्डित्य की विशिष्टता अब स्वय अवरोध के मार्ग मे सहायक सिद्ध न हो सकेगी। अत अध्यापकों को जिन्होंने अपने ढग से विशेष निपुणता प्राप्त की है चाहिए कि वे अपने ज्ञान को इस ढग से परिमार्जित करें कि विविध शिक्षणो से प्रभावी सम्बन्ध स्थापित हो सके और उनके निजी शिक्षण की निश्चित नहीं तो कमसे कम प्रभावी छाप पड सके। विविध शिक्षा-सूत्रो के अन्तर्गत विद्या प्राप्ति का सुन्दर सामंजस्य होना चाहिए और यह तभी हो

सकता है जब हमारे अध्यापक उन वैचारिक प्रणालियों को अपनाएं जो शिक्षा की उन्नति के क्षेत्र म अधिकृत पुरुषों द्वारा प्रतिपादित हुई हैं।

(घ) जिस प्रकार ज्ञान का मूल विचार और ज्ञान प्राप्त करने के तरीकों मे परिवर्तन होता है ठीक उसी प्रकार हमारी संस्कृति में भी परिवर्तन होता दिखलाई पड रहा है। करीब करीब सारी दुनिया के लोग तेजी से अग्रसर हो रहे हैं और चाहते है कि विश्व म एक ही संस्कृति हो। समाज तेजी से बदल ही नहीं रहा है बल्कि दुनिया के कई भागों में पूर्ण रूप से बदल चुका है। इसलिए शिक्षा यदि देश की पुरानी संस्कृति से ही जुडी रहेगी तो बडी खींचातानी का सामना करना पडेगा। चीनियों के बीच एक मुहावरा प्रचलित है "जडें और पर" जिससे तात्पर्य है कि संस्कृति की छिपी हुई जडो को ढूंढ निकालना होगा और शक्तिशाली बनाना होगा ताकि वे लोगों के अन्दर 'परो की सी शक्ति निर्माण कर सके और लोग भविष्य मे उड़ान भर सकें। अतएव अध्यापकों के लिए अनिवार्य है कि इस कायापलट का सूक्ष्म अध्ययन किया जावे, समाज की बनावटों एव वर्गों म जो परिवर्तन आये हैं, जिन क्षेत्रों में महत्वपूर्ण बदल हुए हैं और दिशा मे परिवर्तन हुए हैं उन पर विचार अपेक्षित है। परिवर्तन की दिशा मालूम हो जाने से अध्यापक यह जान सकेगा कि परिवर्तन अच्छा हुआ या बुरा हुआ। इसी प्रकार उन क्षेत्रों की भी जानकारी आवश्यक है जो मनुष्य के नियन्त्रण म अभी तक है और जो उसके नियन्त्रण म से जा चुके हैं। यह सब करने के पश्चात् अध्यापक परिवर्तन की दुनिया से सुपरिचित हो जायगा और अपने शिष्यों का परिवर्तनशील समाज की सामाजिक एव राजनीतिक आकांक्षाओं के बारे म योग्य मार्गदर्शन करने मे समर्थ होगा।

समाज में जो अल्पसंख्यक लोगों का वर्ग है उससे हम क्या आशातीत अपेक्षा नहीं कर रहे हैं? इसका यही उत्तर है कि वे लोग जिनसे समाज महत्व पूर्ण आशाएँ रखता है सदैव अल्पसंख्या मे ही होते हैं। तो फिर समाज को ऐसे अल्पसंख्यक वर्ग की सहायता कैसे करनी चाहिए ताकि वह प्रभावी ढंग स कार्यरत रह सके। इस अल्पसंख्यक वर्ग को भरपूर सुख, सुविधाएं दी जानी चाहिए ताकि वे अपना अमूल्य समय बौद्धिक प्रवीणता, जिसकी उनसे अपेक्षा रहती है, प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की सुविधाओं म उनका वेतन भी सम्मिलित है जिसके द्वारा वे अपने परिवार की आवश्यकताओं को सरलता से पूरी कर सकें। अन्यथा उनकी पूर्ति के लिए अन्य फलदायक धधों मे जाने का

प्रलोभन न आने पाये। उनके लिए आवास की उचित व्यवस्था भी वांछनीय है जिससे समाज मे उनके कार्यक्षेत्र का पता चलता है। उनको समय-समय पर अवकाश भी मिलना चाहिए ताकि वे अन्य बुद्धिशाली महापुरुषों से सम्पर्क साध सके। कालेज-पुस्तकालयो के अतिरिक्त अध्यापको को प्रोत्साहन मिलना चाहिए कि वे व्यक्तिगत पुस्तकालय भी खोल सके।

ये सूचनाएँ दो महत्वपूर्ण प्रश्नो को उपस्थित करती हैं। (१) धन-राशि का प्रश्न (२) क्या वे सब लोग जो एक बार अध्यापन क्षेत्र मे प्रवेश करते हैं भविष्य मे भी अध्यापक बने रहेंगे ? इन प्रश्नो पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए। इन प्रश्नो का उत्तर एक साथ कदापि नही दिया जा सकता है।•

सर्व सेवा संघ के नये प्रकाशन

१. माता कस्तूरबा

लेखक डा० बाबूराव जोशी व रमेशचन्द्र ओझा

प्रस्तुत पुस्तिका मे माता कस्तूरबा के जीवन की झाँकी, दो लेखको द्वारा प्रस्तुत की गयी है। किशोर वय के लड़के-लड़कियों के लिए प्रेरक पुस्तिका।

मूल्य रु० १.२५

२. मेरा बचपन : विनोबा के सहवास मे

लेखक बालकोबा भावे

इस छोटी सी पुस्तिका मे विनोबाजी के अनुज बालकोबाजी ने अपने बचपन के संस्मरण बड़ी ही सहजता से लिपिबद्ध किये हैं। उस समय के विनोबा के व्यक्तित्व को समझने के लिए ये प्रसंग भी बहुत ज्ञान-सामग्री देते हैं।

मूल्य ०.५०

३. विवाह विधि

संपादक काकासाहब कालेलकर

काफी समय पूर्व गांधीजी की सूचना से काकासाहब ने विनोबाजी के साथ मिलकर एक आश्रमी विवाह-पद्धति तैयार की थी। उसी का यह सुन्दर संस्करण आवश्यक संशोधनों के साथ प्रकाशित किया गया है। दोरंगी छपाई। आकर्षक तिरंगा मुखपृष्ठ।

मूल्य रु० २.००

देवेन्द्र

सुर्खी की शव-परीक्षा

२० अगस्त, १९७१ के 'नवभारत टाइम्स' मे एक सुर्खी है : 'पब्लिक स्कूलों के द्वार गरीब छात्रों के लिए खुलेंगे'। सुर्खी देखकर काफी-कुछ आशा बँध सकती है। 'शिक्षा मे क्रान्ति' अभियान चलानेवालों को लग सकता है कि बिना प्रयास के ही सरकार उनकी इस माँग पर अमल कर रही है कि देश-व्यापी एक 'राष्ट्रीय शिक्षा-नीति हो', कि कम-से-कम शिक्षा-क्षेत्र मे वर्ग भेद न रहे। मगर, जो लोग अखबारबाजी की कला से वाकिफ हैं, वे सहज ही समझ सकते हैं कि इस प्रजा-कम भारत मे, सुर्खियो का मतलब सिर्फ सुर्खियाँ ही होती हैं। जो लोग इन्हे सही अर्थों मे लेने के आदी हैं, उन्हीं का मोहभंग होता है, हुआ है, और वे ही लोग ''रिएक्ट' करते हैं।

इस सुर्खी के अन्दर के समाचार इस प्रकार हैं . 'नयी दिल्ली' बुधवार, अगले वर्ष से कम तथा मध्यम आयवाले प्रतिभाशाली विद्यार्थियो को भारत के बेहद खर्चीले तथा नामी स्कूलो मे प्रवेश देने के लिए एक योजना लागू होगी। इस योजना के अतर्गत नौ से ग्यारह वर्ष तक की आयु के १२५० (बारह सौ पचास) विद्यार्थियों को अखिल भारतीय प्रतियोगिता के माध्यम से चुना जायेगा। प्रतियोगिता हालाँकि एक हजार रु० मासिक आयवाले परिवारो के बच्चो के लिए खुली रहेगी, लेकिन इसमे पाँच सौ रुपये तक की आय के श्रेष्ठ आधे विद्यार्थियों को रहने तथा खाने का कोई खर्च नही देना पड़ेगा। आज इस योजना पर विचार करने के लिए कि आर्थिक रूप से पिछड़े परिवारो के विद्यार्थियो को छात्रवृत्तियों के लिए किस प्रकार चुना जाय, देश के ७२ नामी पब्लिक स्कूलो के प्रधानाचार्यों की एक गोष्ठी हुई। इसका उद्घाटन केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्री श्री सिद्धार्थशकर राय ने किया। अगले वर्ष से जब यह योजना लागू हो जायेगी, बिशप कार्टन स्कूल, लारेंस स्कूल, माडर्न स्कूल, मिलिटरी स्कूल जैसे नामी पब्लिक स्कूल कम आयवाले परिवारो के योग्य विद्यार्थियों को दाखिला देना शुरू कर देंगे।'

इस गोष्ठी मे भाषण करते हुए श्री राय ने कहा: 'आपको एक ऐसा अवसर मिल रहा है जिसके जरिये आप पब्लिक स्कूलों को राष्ट्रीय शिक्षा-पद्धति का अग बना सकते हैं। आज जरूरत है कि पब्लिक स्कूलों के अलगावपूर्ण ढाँचे को

समाप्त करके उनके द्वार निर्धन किन्तु प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए खोल दिये जायँ......। श्री राय ने साथ ही यह चेतावनी भी दी कि 'भारत सामाजिक न्याय के लिए कटिबद्ध है, अतः या तो पब्लिक स्कूल बन्द करने होंगे अथवा इन्हें आर्थिक रूप से विपन्न प्रतिभाशाली छात्रों के लिए खोलना होगा। अतः पब्लिक स्कूलों में २५ प्रतिशत सीट सरकारी छात्रवृत्ति-प्राप्त योग्य छात्रों के लिए सुरक्षित रखनी होगी।

'यह योजना शिक्षा-आयोग की सिफारिश पर तैयार की गयी है। शिक्षा-आयोग ने कहा था कि शिक्षा-पद्धति इस प्रकार की बनानी होगी, जिससे कि अच्छी शिक्षा-प्राप्ति का आधार दौलत न होकर प्रतिभा बने, काबिलेगौर है।'

श्रद्धेय मंत्री महोदय की 'चेतावनी' अथवा संकल्प भरे आश्वासन की ओर ध्यान खींचना मेरा इष्ट नहीं, कारण जानता हूँ—पिछले चौबीस वर्षों के अखबारों के बंडल पलटकर कोई देखे, तो ऐसे ही आश्वासनों से उन्हें अखबार भरे मिलेंगे—फर्क केवल इतना ही कि आश्वासन देनेवाली जुबानें कई होंगी—और यह तो हम सभी जानते हैं कि ये सारे-के-सारे 'आश्वासन' अखबारों में ही कैद रहने के लिए हैं, कि इन्हें साकार देखने की आकांक्षा भी लोगों की अब मर चुकी है।

जिन बातों की ओर मैं आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ वे हैं, प्रथमतः मंत्री महोदय की यह स्वीकारोक्ति कि 'आज जरूरत है कि पब्लिक स्कूलों के अलगावपूर्ण ढाँचे को समाप्त किया जाय, द्वितीयत, उनकी यह उक्ति कि 'उनके द्वार निर्धन तथा प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए खोल दिये जायँ।'

गर्ज कि देशभर के असंख्य छात्रों में से मुट्ठीभर (मात्र साढ़े बारह सौ) 'प्रतिभाशाली गरीब' छात्रों के लिए ही सरकारी वरदान का यह दरवाजा खुलेगा, जबकि ताजा गणना के अनुसार प्राथमिक व माध्यमिक छात्रों की संख्या पौने सात करोड़ से भी ज्यादा है। (६,८६,४५,०००) क्या भारत भर के आम छात्रों में से सिर्फ साढ़े बारह सौ ही ऐसे हैं, जिन्हें प्रतिभाशाली माना जाय? बाकी छात्रों का भविष्य क्या इसी तरह पंचांगिक प्रयोगशालाओं में अनिश्चित अवधि तक कैद रहेगा? क्या पब्लिक स्कूलों में पढ़नेवाले सभी छात्र प्रतिभाशाली ही हैं? अगर ऐसा नहीं है, तो क्यों नहीं देश की आम जनता में भी पूँजीवादी मनोवृत्ति विकसित होगी? अपनी सरकार से मैं पूरी माजिजी के साथ अर्ज यह करना चाहता हूँ कि कम-अज-कम शिक्षा के क्षेत्र में यह दुरंगी नीति नहीं बरती जाय। पूरे भरोसे से मैं यह कह सकता हूँ कि लोक-

तंत्र व समाजवाद का ढिंढोरा पीटनेवाले इस देश मे शिक्षा का यह वर्गभेद कायम रखना लोकतंत्र व समाजवाद के मुँह पर कालिख पोतना है।

हमारे यहाँ अभी तीन तरह के स्कूल चल रहे हैं। पहला है पारम्परिक (ट्रेडिशनल) स्कूल, जिसमे देश के आम बच्चे पढते हैं, और जिसकी शिक्षा तथा शिक्षकों का स्तर, संख्या, हालात आदि से हम सभी वाकिफ हैं। दूसरे ढग के स्कूल वे हैं जिन्हे पब्लिक स्कूल के नाम से जाना जाता है, गो 'पब्लिक' से इनका दूर का भी रिश्ता नहीं है, और जहाँ सिर्फ ऐसे ही परिवारों अथवा व्यक्तियो (अफसरो) के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, जो अपने बच्चो के लिए इन स्कूलों तक पहुँचने लायक चाँदी की सीढी बना सकने की स्थिति मे होते हैं। ध्यान रहे, सरकार और सरकारी प्रशासन को चलानेवाले अफसरो का चुनाव करनेवाली परीक्षाओं मे तकरीबन नब्बे (शायद ज्यादा भी) प्रतिशत तक ये ही छात्र सफल आते हैं, कारण इनकी पढाई इन परीक्षाओं को नजर मे रखते हुए की जाती है, जबकि देश के आम बच्चों को बेकार रहकर भूखे मरने की शिक्षा दी जाती है। व्यवहारत, इन्हीं स्कूलो मे शिक्षा-प्राप्त छात्र आज हमारे देश के शासक और प्रशासक हैं। और यह कहते हमे शर्म भी नहीं आती कि भारत एक लोकतान्त्रिक देश है, भारत समाजवाद के रास्ते पर तेजी से चलने की कोशिश करनेवाला एक विकासशील राष्ट्र है। इसी सन्दर्भ मे मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर भी खींचना चाहूँगा कि आज जिन्हें आप नक्सलियों के नाम से जानते हैं, और जिनसे आतंकित होते हैं उनमे से अधिसंख्यक प्रतीत के ऐसे ही परित्यक्त छात्र हैं, जिनके साथ हमारी सरकार ने सौतेला व्यवहार किया है, जिन्हे बलात भविष्य के अधे सागर मे ढकेल दिया गया है। पश्चिम बगाल सरकार ने हाल ही मे नक्सली कैदियो का एक सर्वेक्षण कराया, जिसमे सत्तर प्रतिशत युवक ऐसे ही पाये गये, जो कुठा व निराशा का शिकार होकर प्रतिक्रियावश विध्वंसक हो गये। हमारी पीढियों को वर्तमान और भविष्यहीन बनाने का दोषी क्या सरकार नहीं है? कैसी विडम्बना है कि कानूनी कार्रवाई जबकि वाजिबन सरकार पर होनी चाहिए, तो हो रही है उन बेचारे नौजवानो पर, जो कि दण्ड के नहीं करुणा के पात्र हैं, जो कि वास्तव मे मनोरोगी हैं। और मैं सौमित्रमोहन के स्वर मे कहना चाहता हूँ, 'जिसे तुम मनोरोग कहते हो, उसे मैं देश का दुर्भाग्य कहता हूँ।'

अब मैं एक सीधा सवाल करता हूँ, सरकार से नहीं, कारण सरकार से हम अघा चुके हैं, आपसे कि क्या हमारे देश का भविष्य इसी तरह 'दुर्भाग्य' के धुध में छिपा रहना चाहिए? अगर नहीं, तो हमे शिक्षा का यह द्वन्द्व मिटाना

ही होगा। देशव्यापी एक शिक्षा-नीति बनानी होगी। शिक्षा को आम और खास के द्वन्द्व में डालना देश का भविष्य बिगाड़ना है, अतः हमारी शिक्षा-पद्धति इस प्रकार की बनानी ही होगी, जिसमें देश के सभी छात्रों को समान ढंग से, व समान ढंग की शिक्षा का अवसर प्राप्त हो सके। लोकतंत्र व समाजवाद की यही सही भूमिका हो सकती है।

तीसरे ढंग के स्कूल हैं, बेसिक स्कूल, जिसके बारे में आम राय है कि वह पद्धति 'फेल' कर गयी, इसे सरकार भी मानती है। मगर सरकार ने न तो उसे बन्द ही किया है, न ही उसकी असफलता के कारणों की खोज की है। यह भारत में ही देखने को मिलता है कि बावजूद प्रयोग असफल सिद्ध हो जाने के उसे समाप्त घोषित नहीं किया जाता। मिसाल के तौर पर आज हमारे यहाँ ऐसे बुनियादी स्कूल भी चलाये जा रहे हैं, जहाँ छात्रों से अधिक शिक्षकों की ही संख्या है। तथापि मैं यह कबूल करने के लिए कतई तैयार नहीं कि बुनियादी शिक्षा अगर हमारे यहाँ असफल हुई, तो इसे इस पद्धति की ही असफलता मान ली जाय। सिद्धांत व व्यवहार दोनों दृष्टियों से भारत तो क्या, आज दुनिया भर में शिक्षा-शास्त्री इसकी अनिवार्यता एवं इसकी वैज्ञानिकता और व्यावहारिकता स्वीकार करते हैं। अब सवाल पैदा होता है, यह पद्धति भारत में असफल क्यों हुई? इसकी असफलता का एक मजबूत कारण तो हमारी सरकार की यह दुरंगी शिक्षा-नीति ही है, जिसका जिक्र मैं कर चुका हूँ।

दूसरा प्रमुख कारण यह हुआ कि मुल्क आजाद तो हुआ, लेकिन एक नयी समाज-रचना के मार्ग पर इसे बढ़ाने का कोई प्रयास ही नहीं किया गया। इस लिहाज से हमने सुधार का, विकास का मार्ग तो अपनाया, मगर परिवर्तन के मार्ग को हमने नहीं पकड़ा। और बिना समाज के, अभिभावकों-शिक्षकों के मूल्य बदले ही हमने नयी शिक्षा-पद्धति चालू कर दी। वास्तव में आज जरूरत है कि बुनियादी शिक्षा की असफलता के अन्य कारणों की भी खोज की जाय, और आम लोगों का यह वहम दूर किया जाय कि 'यह शिक्षा-पद्धति तो 'फेल' हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति को तो हम देख-भोग ही रहे हैं। 'शिक्षित बेरोज-गारों' (कैसी विरोधाभास है इस टर्म में!) का हुजूम पैदा करनेवाली यह शिक्षा अब नहीं चलेगी। वर्तमान शिक्षा नहीं, तो फिर कौन-सी शिक्षा-पद्धति? इसी सवाल का जवाब खोजने के सिलसिले में हमें बुनियादी शिक्षा पद्धति के सभी पहलुओं को गौर करना होगा, ताकि नयी शिक्षा का एक सही स्वरूप हम यथाशीघ्र निर्धारित कर सकें।●

मोहन सिंह

परिचर्चा
शिक्षा में क्रान्ति

दा० ११-९-७१ की शाम के ७ बजे आचार्य विनोबा की जयन्ती के उपलक्ष्य में तेनाली (आंध्र) के 'मेडिकल एसोसिएशन बिल्डिंग' में शिक्षा में क्रान्ति की आवश्यकता के बारे में तेनाली के सर्वोदय सेवा संघ, गुटूर की ग्राम पुनर्निर्माण संस्था, तथा विजयवाड़ा के गांधी शान्ति प्रतिष्ठान केन्द्र के संयुक्त तत्त्वावधान में एक चर्चा-गोष्ठी चलायी गयी। चर्चा का निचोड़ इस प्रकार है :—

(१) वर्तमान शिक्षा के क्षेत्र में प्रस्तुत-अशान्ति के कुछ प्रमुख कारण :

१. विद्यार्थियों में कई तो अपनी स्वेच्छायुक्त विद्यातृष्णा से स्कूल-कालेजों में भर्ती नहीं हो रहे हैं, केवल अपने माँ-बाप की इच्छा की पूर्ति के लिए भर्ती हो रहे हैं।

२. विद्यार्थियों के माँ-बाप अपने बच्चों की रुचि तथा योग्यता के अनुसार नहीं, बल्कि मार्केट में जिस डिग्री की ज्यादा कीमत होती है, उसी की पढ़ाई के लिए उन्हें भेज रहे हैं।

३. कई अध्यापक, माता-पिता तथा छात्रों में ईमानदारी कम हो गयी है और अवसरवाद बढ़ गया है।

४. वर्तमान शिक्षा-पद्धति आजकल की बदलती हुई सामाजिक एव आर्थिक परिस्थितियो तथा जीवन-मूल्यो के अनुकूल नहीं है।

५ आजकल छात्रो के लिए ज्ञानोपार्जन का लक्ष्य होने के बदले किसी-किसी प्रकार से परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होकर बाबूगिरी की नौकरी कमाना ही ध्येय बन गया है।

६. शिक्षक तथा छात्र के बीच मे निकट सम्बन्ध बढने के अवसर आज की शिक्षा-पद्धति मे नहीं हैं।

७. अब इस बात पर जोर नहीं दिया जा रहा है कि शिक्षक का जीवन विद्यार्थियो के लिए आदर्शमार्ग दिखानेवाला हो।

८. चूँकि शिक्षक अपने जीवन में आवश्यक योग्यता को नहीं बढा पा रहे हैं, इसलिए वे विद्यार्थियो मे भी आत्मविश्वास उत्पन्न करने में असमर्थ हो रहे हैं।

९ आजकल की शिक्षा-प्रणाली मे विज्ञान-शास्त्र के विषयों के अध्ययन पर ही ज्यादा जोर दिया जा रहा है, साहित्य तथा कलाओं के अभ्यास को प्राधान्य नहीं दिया जा रहा है।

१०. वर्तमान शिक्षा-पद्धति छात्रों में इस प्रकार की समझ उत्पन्न करने में सक्षम नहीं है कि वे दूसरो को कष्ट पहुँचाये बिना खुद सुखी जीवन कैसे बिता सकें?

११. चूँकि सरकार शिक्षा-प्रणाली में आजकल बार-बार कई प्रकार के परिवर्तन कर रही है, इसलिए उसमे एक स्थायी प्रभाव नहीं रहा।

१२. वर्तमान शिक्षा-पद्धति मे सेवाभाव और श्रमप्रतिष्ठा बढ़ाने के अवसर नहीं पाये जाते।

(२) वर्तमान शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन करने के लिए कुछ सुझाव :—

१. विद्यार्थियो को अपनी रुचि के अनुसार शिक्षा पाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

२. माता पिता मार्केट के मूल्यो को ध्यान मे रखे बिना अपने बच्चो की रुचि के अनुसार शिक्षा देने की व्यवस्था करें।

३. पाठशाला मे जो पाठ पढ़ाये जाते हैं, उनके सम्बन्ध में माँ-बाप हर रोज ध्यान दें और उनकी प्रगति के लिए मार्गदर्शक बनें।

४. शिक्षा-प्रणाली राष्ट्रीय संस्कृति के अनुकूल हो और छात्रों में सांस्कृतिक मूल्यों को बढ़ानेवाला हो।

५. केवल नौकरी कमाने को ध्येय न मानकर मनुष्य के व्यक्तित्व तथा उसके आसपास की परिस्थितियों में होनेवाले सम्बन्ध के बारे में एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण सिखानेवाली शिक्षा हो।

६. अध्यापक अपने जीवन को विद्यार्थियों के लिए आदर्श बना लें और उनके जीवन में आत्मविश्वास तथा सदाचार बढ़ाये।

७. हरेक पाठशाला को शिक्षा-पद्धति में अपना विशेष प्रयोग चलाने की स्वतंत्रता हो।

८. विद्यार्थियों को केवल पाठ्य-पुस्तकों पर निर्भर हुए बिना पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़कर विस्तृत ज्ञान का समुपार्जन करने का अवसर दिया जाय।

९. सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के कारण योग्य विद्यार्थी पिछड़ न जायें, इसका ख्याल रखकर उनकी प्रगति के लिए आवश्यक सुविधाएँ देनी चाहिए।

१०. शिक्षा प्रणाली बनाने का अधिकार सरकार के हाथ में न होकर शिक्षा-वेत्ताओं के हाथ में हो।

११. बदलते रहनेवाले मूल्य, तथा जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा-पद्धति को आकार देने के लिए प्रयत्न होना चाहिए।

१२. विज्ञान शास्त्र के विषयों के साथ कलाओं की शिक्षा भी छात्रों को दी जाय ताकि छात्रों का हृदय विकास हो सके।

१३. शिक्षा-शास्त्री इस तरह की गोष्ठियों को अवसर बनाकर वास्तविक परिस्थितियों के अनुकूल होने लायक शिक्षा-प्रणाली बनाने की चेष्टा करें।

१४. छात्रों के दिलों पर ऐसे व्यापक लक्ष्य की गहरी छाप डालने की कोशिश की जाय ताकि खुद के सुखी जीवन बिताने के अलावा दूसरों के सुखी जीवन के लिए मदद करें।

१५. विद्यार्थियों में जो क्रीडा-शक्ति है, उसके द्वारा क्रिया शक्ति की वृद्धि करने के लिए शिक्षा-पद्धति सहायक हो।

—चल्ल जनार्दन स्वामी

'शिक्षा में क्रान्ति'

[पद्मविभूषण डा० मोहनसिंह मेहता भूतपूर्व उपकुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, भूतपूर्व राजदूत अधिष्ठाता सेवा मन्दिर से भेंट वार्ता]

प्रश्न—शिक्षा में क्रान्ति के विचार से आप कहाँ तक सहमत हैं? तरुण शान्ति सैनिकों ने यह काम उठाया है विद्यार्थी या युवावर्ग इस कार्यक्रम के अग्रदूत हों इस सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—शिक्षा में क्रान्ति की एकदम आवश्यकता है जिसके लिए बराबर निष्ठा से चिन्तन होते रहना चाहिए। इसके सभी पक्षों पर संजीदगी से गूढ विचार करने की आवश्यकता है और विद्वानों को इसमें आपस में बराबर परामर्श करना पड़ेगा। प्रदर्शन पक्ष—जुलूस व प्रचारात्मक सभाएँ इत्यादि—की इस बारे में बहुत ही सीमित उपयोगिता है। यदि हमारे नवयुवकों में इस तरह के चिन्तन की क्षमता और संयम है तो उनका अच्छा योगदान हो सकता है। किन्तु डर यह है कि छात्र जो इस काम में सम्मिलित होंगे वे वैसे ही काम कर बैठेंगे जैसा अन्य आन्दोलनों में करते हैं। मूल उद्देश्य को बिना समझे वे केवल भावावेग से इसमें सम्मिलित हों तो कोई लाभ नहीं। विद्यार्थी बुद्धिमानी व ठण्डे जोश से समझबूझकर इस कार्यक्रम में सम्मिलित हों इसकी सम्भावना कम है। जहाँ तक परिपक्व बुद्धिवाले छात्रों का विचार पक्ष के साथ जुड़ने का सम्बन्ध है वह तो ठीक ही है क्योंकि वे अन्य लोगों की तरह विचारकों के साथ बैठकर अच्छा योगदान कर सकते हैं।

प्रश्न—शिक्षा को बनाने और बिगाड़ने में सबसे बड़ी जिम्मेदारी किसकी है?

उत्तर—शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक का बड़ा ऊँचा व प्रमुख स्थान है। शिक्षा के क्षेत्र में सबसे कमजोर कड़ी अध्यापक हैं। दो प्रकार के अध्यापक हैं। एक वे जो विद्वान और चरित्रवान हैं व जो कर्तव्य भावना से अपना काम

करते हैं, दूसरे वे जो अपना काम ठीक प्रकार नहीं करते, बल्कि वे अपने आचरण तथा चरित्र से शिक्षक समुदाय को बदनाम करते हैं व छात्रों को बड़ी हानि पहुँचाते हैं। ये अध्यापक कई प्रकार की बुराइयों में पड़ते हैं, यथा—परीक्षा में भ्रष्टाचार होता है, स्वाध्याय द्वारा स्वयं की तैयारी नहीं करते, कक्षाएँ ठीक प्रकार नहीं लेते, सस्ते नोट्स रूपी पुस्तकें बनाते हैं, उन्हें किसी तरह सिफारिश से लागू कराते हैं, मानो हर तरह से पैसा कमाना उनका लक्ष्य होता है। ये गुटबन्दी करते हैं, अच्छे काम करनेवाले साथियों का विरोध करते रहते हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप अच्छे चरित्रवाले कर्त्तव्यशील अध्यापक विश्वविद्यालय व अन्य संगठनों के प्रशासन से अलग रहना चाहते हैं, जो बड़े दुर्भाग्य की बात है। स्थिति यह है कि न तो अच्छे अध्यापकों की प्रशंसा या उत्साह वर्धन होता है, न अयोग्य अध्यापकों की भर्त्सना। अध्यापकों को कैसे नियन्त्रण में रखा जाय इसके उपाय सोचे जायें। हिम्मत से उनकी खामियाँ बतानी चाहिए व उन्हें परिणामों को भुगतने देना चाहिए।

प्रश्न—शिक्षा शासन से मुक्त हो इसके बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर—(क) जहाँ तक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रश्न है इसकी जिम्मेदारी शिक्षाविद (एजुकेशनिस्टस) अध्यापकों की होनी चाहिए। इसमें शासन का कम से कम अधिकार चलना चाहिए।

शिक्षा में क्रान्ति और मौलिक सुधार राज्यप्रशासन की पहल से बहुधा होता नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि अच्छे शिक्षा विशेषज्ञों को और गैरसरकारी प्रगतिशील संस्थाओं को अपना काम करने में और शिक्षा में नये साधन, सुझाव व प्रयोगों को चलाने में यथासम्भव पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

(ख) अक्सर गैरसरकारी संस्थाओं के संचालक अपनी मनमानी करते हैं, अध्यापकों का शोषण करते हैं, धन का दुरुपयोग करते हैं, अ य ऐसे कार्य करते हैं जिससे शिक्षा के मूल सिद्धान्तों की अवहेलना होती है। ऐसी संस्थाओं को सरकारी नियन्त्रण से मुक्त रखने में समाज का हित नहीं है।

(ग) जहाँ तक आमद खर्च के हिसाब रखने का प्रश्न है तथा राज्य और जनता द्वारा दिये गये धन के उपयोग का प्रश्न है, इस पर आडिट इत्यादि का नियन्त्रण होना आवश्यक है।

(घ) *शिक्षा में शासन के नियन्त्रण का यह भी खतरा है कि* सत्तारूढ दल शिक्षा को अपनी नीति के अनुसार मोड़ देना चाहेगा, दलगत स्वार्थ (शासन-नीति) के लिए उसका उपयोग करना चाहेंगे। शिक्षा के लिए यह बड़ा खतर-

नाक है। इस खतरे से शिक्षा को बचाना होगा। वैसे प्रजातंत्रीय व्यवस्था के लिए भी यह परिस्थिति हानिकारक बन जाती है।

प्रश्न—अभी डिग्री व नौकरी का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। वास्तविकता यह है कि नौकरी के लिए डिग्री या परीक्षा पास करने का प्रमाणपत्र नाकाफी होता है। उत्तम स्तर के कामों के लिए व्यावसायिक-औद्योगिक-संस्था या नौकरी देनेवाले को अपनी परीक्षा लेना आवश्यक होता है। क्या यही सिद्धान्त सभी नौकरियों के लिए लागू किया जा सकता है ताकि स्कूल व कालेजों में व्यर्थ की भीड़ समाप्त हो और राष्ट्रीय साधनों का अपव्यय न हो?

उत्तर—नौकरी देनेवाले या औद्योगिक संस्थान अपनी परीक्षाएँ लें यह तो ठीक है परन्तु सभी प्रकार की नौकरियों के लिए यह सिद्धान्त लागू करना व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता है।

जहाँ तक कालेज व स्कूलों में भीड़ का प्रश्न है, अभी तो वे सभी छात्र प्रवेश पा जाते हैं जिनके पास पैसा या प्रभाव है। प्रतिभाशाली परन्तु साधन-हीन छात्र प्रवेश नहीं पा सकते। इन दोनों बातों में परिवर्तन होना चाहिए। अयोग्य किन्तु साधन सम्पन्न छात्रों के विश्वविद्यालय-प्रवेश पर प्रतिबन्ध होना चाहिए। प्रतिभाशाली परन्तु निर्धन छात्रों को विशेष छात्रवृत्ति इत्यादि के द्वारा शिक्षा प्राप्त करना सम्भव होना चाहिए। राष्ट्रीय साधनों का उपयोग प्रतिभा-शाली विद्यार्थियों (टैलेन्ट्स) के हित में होना चाहिए।

प्रश्न—शिक्षा व्यावहारिक हो, उद्योगपरक हो। अभी हमारी शिक्षा केवल पुस्तकीय या ज्ञान केन्द्रित है। शिक्षा में दस्तकारी व व्यावहारिक कार्य को स्थान मिले इसके सम्बन्ध में आपकी क्या राय है?

उत्तर—जहाँ तक प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा का प्रश्न है उसमें व्याव-हारिक कार्य या दस्तकारी की शिक्षा का स्थान भी होना चाहिए। विविध विषयों का ज्ञान दस्तकारी से समन्वित हो—गांधीजी का यह बुनियादी तालीम का सिद्धान्त बहुत ही उत्तम है, किन्तु इसका व्यावहारिक उपयोग बहुत कठिन है।

कुछ शिक्षाशास्त्री स्नातक स्तर की शिक्षा को तकनीकी शिक्षा बनाने के पक्ष में हैं अर्थात् वे चाहते हैं कि शिक्षा का लक्ष्य व सम्बन्ध रोजगार से हो जाय। केवल वैज्ञानिक व तकनीकी शिक्षा पर ही यदि विश्वविद्यालय सीमित हो जायेंगे तो विश्वविद्यालय के मूल महत्त्व को ही हम भूल जायेंगे। विज्ञान और तकनीकी शिक्षा में जिनको रुचि व आवश्यकता है, उन्हें वह तो ऊँचे-से ऊँचे

स्तर तक मिलनी ही चाहिए। इसका समाज की आर्थिक और वैज्ञानिक प्रगति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। किन्तु हमारे महाविद्यालय और विश्वविद्यालय मे साहित्य, समाजशास्त्र, दर्शन, इतिहास, भूगोल इत्यादि मानव-विद्याओं का समावेश व विकास समाज के लिए शोभा है, और उसके भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास का पोषण है। हमारी संस्कृति और सभ्यता का यह एक उज्ज्वल आभूषण है और उसका उत्तम लक्षण है। यहाँ तक कि काव्य कला, अध्यात्मवाद और दर्शन का भी ऊँचा स्थान है। हमारे शिक्षा-केन्द्रों मे इन सबका ज्ञान व्यक्ति की रुचि व योग्यता के अनुसार प्राप्त करने का हमेशा अवसर मिलना चाहिए।

प्रश्न—शिक्षा सर्वसुलभ हो जाय, गाँव गाँव में इसका शीघ्रातिशीघ्र प्रसार हो, इसके लिए आपका क्या सुझाव है?

उत्तर—अनिवार्य व सर्वसुलभ (कम्पल्सरी एण्ड यूनिवर्सल)शिक्षा के लिए सरकार कृतसंकल्प है, सरकार के वर्तमान साधनों से काफी लम्बे समय तक यह स्वप्न साकार होते नहीं दिखाई देता। अन्ततोगत्वा गाँव-गाँव मे शिक्षा के साधन खड़े करने होंगे व गाँववालों को भी बच्चों की पढाई की योजना बनाकर क्रियान्वित करनी होगी। ऐसी स्थिति को जल्दी लाने का प्रयत्न करना हमारे समाज के जिम्मेवार और प्रमुख नेताओं का कर्त्तव्य हो जाता है। सरकार का तो कर्तव्य है ही, किन्तु केवल सरकार पर ही सारी व्यवस्था और आर्थिक जिम्मेवारी छोड देना बहुत बडी भूल है। समाज के प्रौढ़ व्यक्तियों को, जो अपने जीवन के धन्धों मे लग गये हैं, उनको विविध विषयो और विविध साधनों से उनको यथासम्भव शिक्षित करना समाज के सामने एक आवश्यक कार्यक्रम होना चाहिए। इस ओर राज्य और जनता दोनों ही उदासीन हैं, यह बडे दुर्भाग्य की बात है। आज के सन्दर्भ मे इस प्रश्न (प्रौढ़ शिक्षा) की उपयोगिता एक बहुत बडी चुनौती है। शिक्षा का जो नया और मौलिक विचार आज विश्व में मान्यता पा रहा है वह यह है कि शिक्षा व्यक्ति के जन्म से प्रारम्भ होती है और वह उसकी मृत्यु तक चलती रहती है।

—प्रस्तुतकर्ता दीनदयाल दशोत्तर

शीतल प्रसाद

परीक्षा में नकल

[आज की परीक्षा नकल की परीक्षा हो गया है। 'नकल' रोकना आज की परीक्षा की सबसे बड़ी समस्या है। आँख बचाकर नकल करना तो निन्दा की बात है ही, परन्तु जब लड़के डेस्क पर छुरा और पिस्तौल रखकर नकल करें, और अलसेशियन कुत्ते को कुर्सी के पास बैठा लें तो मर्ज लाइलाज हो रहा है—ऐसा मानना चाहिए। आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने नकल की इस समस्या को हल करने के लिए इस वर्ष कुछ प्रयोग किये हैं। उसे यहाँ दिया जा रहा है। यह समस्या का स्थायी हल नहीं है—यह उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। स्थायी हल है शिक्षकों और विद्यार्थियों के नैतिक स्तर की उन्नति।—सं०]

'विश्वविद्यालय की शिक्षा में अगर कोई एक सुधार करना हो तो परीक्षा में सुधार किया जाय।'

—राधाकृष्णन् कमीशन

इस बात की आवश्यकता बहुत दिनों से महसूस की जा रही है कि विश्वविद्यालय की परीक्षा में सुधार करने के लिए, देश की परीक्षा-पद्धति में काफी परिवर्तन लाना होगा। राधाकृष्णन् कमीशन और विभिन्न दूसरे कमीशनों ने

प्रचलित शिक्षा पद्धति में बहुत सारे परिवर्तन सुझाये हैं। परन्तु दुर्भाग्य से, इस सिलसिले में जो कदम उठाये गये हैं, वे बहुत उत्साह बढ़ानेवाले नहीं हैं, और यह देखकर बहुत निराशा होती है कि विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षा का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। इसलिए मेरी समझ में स्तर उठाने के लिए और गिरावट रोकने के लिए साथ साथ कोशिश होनी चाहिए।

दुर्भाग्य से, आज की समाज-रचना में, विद्यार्थी का ज्ञान जाँचने के लिए परीक्षा-पद्धति को बिलकुल छोड़ा नहीं जा सकता, कम से कम उस समय तक के लिए, जब तक कि शिक्षा देने के तरीकों में काफी परिवर्तन न आ जाय। आज, एक पाठ्यक्रम को पढ़ाने के बाद विद्यार्थी का ज्ञान जाँचने के लिए और कोई दूसरा यंत्र नहीं है, चाहे यह कितना ही अपूर्ण हो। हमलोगों को शिक्षा की भाषा में 'अन्तरपरीक्षा लेनी चाहिए। परन्तु यह केवल तकनीकी और उद्योग-धन्धों के पाठ्यक्रम में संभव है। दूसरे पाठ्यक्रमों में, विशेष तौर से अण्डर ग्रैजुएट विद्यार्थियों के लिए, जो हजारों की संख्या में, दर्जनों महाविद्यालयों में पढ़ते हुए हैं, केवल अन्तरपरीक्षा से जाँच करना संभव नहीं है।

कोठारी-शिक्षा आयोग ने ठीक ही कहा है कि बाहरी परीक्षा हमलोगों के साथ बहुत दिनों तक रहेगी, विशेष तौर से उन विश्वविद्यालयों में जिनसे असमान स्तर के बहुत सारे महाविद्यालय जुड़े हुए हैं।

अभी हमारी कोशिश होनी चाहिए कि ईमानदारी से परीक्षा ली जाय।

इस उद्देश्य को प्राप्त करने का मार्ग

एक परीक्षा में निम्नलिखित चार घटक एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इनमें से किसी की भी असावधानी परीक्षा पर अवांछित प्रभाव डालेगी

१—परीक्षा-विभाग, जो पूरी परीक्षा-पद्धति को चलाने के लिए उत्तरदायी है, प्रश्न चुनने से लेकर परिणाम तक,

२—विश्वविद्यालय की ओर से परीक्षा लेनेवाली एजेन्सी (अर्थात् परीक्षा-केन्द्र),

३—वे व्यक्ति जिनके ज्ञान की जाँच करनी है (अर्थात् परीक्षार्थी),

४—वे व्यक्ति जो परीक्षार्थियों की योजना को जाँचते हैं।

सही तौर से परीक्षा ली जा सके, इसके लिए आवश्यक है कि विश्वविद्यालय के पदाधिकारियों, परीक्षा केन्द्र के अधीक्षकों और निगरानी रखने-

वालो, परीक्षार्थियो और परीक्षकों को गम्भीरता और ईमानदारी से काम करना चाहिए।

आगरा विश्वविद्यालय का प्रयोग

ये उद्देश्य कुछ दिनो से आगरा विश्वविद्यालय के पदाधिकारियो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये हुए थे, और यह सन्तोष की बात है कि प्रयोग के बाद के परिणाम उत्साह बढाने वाले हैं।

(क) विश्वविद्यालय

१—प्रश्न चुननेवालो की नियुक्ति उचित तौर पर हो, और वे केवल विषय के पाठ्यक्रम से परिचित न हो, बल्कि अपने विचार मे भी सन्तुलित हो। नियम के अनुसार उनमें से कम से-कम आधे विश्वविद्यालय के बाहर के हो।

२—हरएक प्रश्न चुननेवाले (बी० ए० भाग–२) को चाहिए कि वह अपने हाथ से लिखे हुए दो प्रश्न पत्र तैयार करें, जिनमे से एक को रजिस्ट्रार स्वय प्रेस भेजे।

३—प्रेस की विश्वसनीयता के आधार पर समझ बूझकर प्रेस को चुनना चाहिए।

४—हस्तलिखित प्रश्न पत्र को केवल रजिस्ट्रार रखे और भेजे।

५—जब प्रश्न-पत्र प्रेस से छपकर आये तो रजिस्ट्रार, एक 'स्टोर रूम' जो केवल इसी उद्देश्य के लिए बना हो, मे उसे स्वय अपनी निगरानी में रखे।

६—छपे हुए प्रश्न-पत्र केन्द्रो को भेजे जाने से पहले, स्वय रजिस्ट्रार के द्वारा विशेष तौर से बनाये हुए लिफाफे मे बन्द किये जायँ, जिन्हे तोडा न जा सके। ये लिफाफे केन्द्रो को दोहरे बैग मे मुहर लगाकर भेजे जायँ और बाहरी बैग में ताला लगा हो।

७—प्रश्न पत्र के ये मुहर लगे लिफाफे केन्द्र अधीक्षक खोलें और यह अनिवार्य तौर से परीक्षा मे दो निगरानी करनेवालो के सामने हो, जो यह तसदीक करें कि लिफाफे खुलने से पहले ठीक तौर से बन्द थे।

८—विश्वविद्यालय अकस्मात निरीक्षण किया करे, यह देखने के लिए कि लिफाफे फौलाद की आलमारियों मे रखे गये हैं, और कोई भी लिफाफा जो भविष्य के लिए हो, उसे खोला न गया हो।

९—विश्वविद्यालयों ने कुछ परीक्षा मे लिखित उत्तर पुस्तिकाओ पर परीक्षकों को भेजने से पहले गुप्त रोल नम्बर लिखने की योजना बनायी है। इस पद्धति

को दूसरी ओर बड़ी परीक्षा में प्रयोग में लाने की सम्भावनाएँ जाँची जा रही हैं। रोल नम्बर का कोडीफिकेशन अनुभवी और उत्तरदायी शिक्षकों के द्वारा हो।

(ख) केन्द्र :

केन्द्र का यह उत्तरदायित्व है कि प्रत्येक परीक्षार्थी को समान और बराबर सुविधाएँ परीक्षा में दी जायें। अर्थात् एक परीक्षार्थी जो कुछ भी अपनी उत्तर पुस्तिका में लिखता है, वह उसका अपना, बिना बाहरी सहायता या मार्गदर्शन के, लिखा हो। प्रचलित परीक्षा-पद्धति विद्यार्थी की योग्यता जाँचने का, निर्भर करने योग्य साधन हो। यह आवश्यक है कि परीक्षा ईमानदारी से ली जाय। इस दिशा में आगरा विश्वविद्यालय निम्नलिखित कार्रवाई कर सका है, जिसके उत्साहजनक परिणाम आये हैं।

(ग) संस्थागत पढ़नेवालों की परीक्षा अपनी ही संस्थाओं में हो :

१—*अब विश्वविद्यालय संस्थागत विद्यार्थियों की परीक्षा* उनके महाविद्यालयों में ही लेता है, अगर वे केन्द्र हों। ऐसा करने का कारण यह है कि वहीं महाविद्यालय के शिक्षक, बाहरवालों की तुलना में, निगरानी रखनेवाले की हैसियत से, अधिक नैतिक प्रभाव रखते हैं। फिर भी जहाँ बड़े पैमाने पर नकल करने का अवसर रह जाता है, विश्वविद्यालय वहाँ के छात्रों को उन केन्द्रों में भेज देता है, जहाँ सख्त निगरानी संभव हो।

२—केन्द्र में उचित स्टाफ हो :

विश्वविद्यालय के हर परीक्षा-केन्द्र में काफी संख्या में अधीक्षक, सहायक, निगरानी करनेवाले रहते हैं ताकि किसी भी केन्द्र में निगरानी रखनेवाले स्टाफ की कमी न हो। हमारे नियमों के अनुसार संलग्न महाविद्यालय के हर शिक्षक के लिए निगरानी करना उनका एक कर्तव्य है।

३—बाहर से अधीक्षकों को भेजना :

केन्द्र में परीक्षा ठीक और ईमानदारी से हो इसके लिए विश्वविद्यालय कभी-कभी अतिरिक्त वरिष्ठ अधीक्षक, सहायक, अतिरिक्त अधीक्षक और निरीक्षक, इन्वीजिलेटर दूसरे महाविद्यालयों के शिक्षकों में से नियुक्त करती है।

४—उड़ाका दल की संख्या :

किसी भी रूप में धाँधली पर रोक लगाने के दृष्टिकोण से सन् १९७० में विश्वविद्यालय ने उड़ाका दल द्वारा परीक्षा-केन्द्रों के अकस्मात निरीक्षण की योजना कार्यान्वित की। उस साल पूरे विश्वविद्यालय के क्षेत्र के

लिए नौ उड़ाका दल स्थापित किये गये। यद्यपि उड़ाका दल की योजना प्रयोग की दृष्टि से प्रस्तुत की गयी थी। इसका परिणाम बहुत ही उत्साहजनक रहा, और धाँधली के १२०० केस पकड़े गये एवं महाविद्यालयों के सामान्य वातावरण मे परिवर्तन हुआ। १९७१ की परीक्षा के लिए, उड़ाका दल की संख्या १४ कर दी गयी, प्रत्येक मे ५-६ शिक्षक थे जिसका नेता एक वरीष्ठ और उत्तरदायित्व का महत्व महसूस करनेवाला शिक्षक होता था।

उड़ाका दल को कारें भी दी गयी हैं ताकि वह एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र मे जा सके और राज्य की सरकार के निर्देशानुसार उन्हे सहायता के लिए पुलिस भी मिली हुई है। उड़ाका दल का कार्यक्रम गुप्त रखा जाता है, और उसका निरीक्षण-कार्यक्रम भी गुप्त रहता है।

उड़ाका दल का उद्देश्य विश्वविद्यालयों की परीक्षा मे नकल करने को रोकना और धाँधली को दूर करना है। साथ-ही-साथ परीक्षा मे निगरानी रखनेवालों के उत्साह को बढाना है।

५—परीक्षा देनेवालों की तलाशी लेना :

उड़ाका दल के अधीक्षकों और निगरानी रखनेवालों को यह अधिकार दिया गया है कि उसे जिस परीक्षार्थी पर यह सन्देह हो कि उसके पास नकल के साधन हैं, उसकी तलाशी ले सकता है। महिला की तलाशी लेने के लिए महिला निगरानी रखनेवालों का प्रयोग किया जाता है।

६—निगरानी रखनेवालों की सुरक्षा।

देश भर मे परीक्षा मे निगरानी रखनेवालों पर आक्रमण से निराशा का वातावरण पैदा हुआ है। परन्तु जिस समय निगरानी रखनेवालों की सुरक्षा हो जाती है, और उन्हे भविष्य मे कोई खतरा न होने का विश्वास हो जाता है तो परीक्षा के कमरे की ठीक और कड़ाई से निगरानी करने का उनका उत्साह बढ़ जाता है। इस पहलू से परीक्षा केन्द्र मे निगरानी रखनेवालों का उत्साह बढ़ाने के लिए विश्वविद्यालय ने निम्नलिखित योजनाएँ आर्थिक सुविधा की दृष्टि से चलायी है :

(१) अगर किसी निगरानी करनेवाले को किसी प्रकार की चोट लगती तो उसके इलाज का पूरा खर्च विश्वविद्यालय देगा।

(२) अगर चोट इतनी गहरी हो कि आदमी काम करने योग्य न रहे, या मर

में पास भर आ जाता था, तो पूरक परीक्षा दे सकते थे, जो जुलाई अगस्त में हुआ करती थी। परिणाम यह होता था कि पूरक में असफल रहनेवाले विद्यार्थियों का पूरा वर्ष बरबाद जाता था और वे आगे के दर्जे में उस समय तक नहीं जा सकते थे, जब तक कि वे उस विषय में सफल न हो जायें। यह पद्धति अच्छी नहीं समझी गयी और उससे मुक्ति पा ली गयी।

संशोधित सिद्धान्त के अनुसार एक परीक्षार्थी जो बी० ए० भाग १ की परीक्षा में केवल एक विषय में असफल होता है, परन्तु उस विषय में २० प्रतिशत और पास होने भर एग्रीगेट लाता है, उसे आगे दूसरे वर्ष (अगले दर्जे) में जाने दिया जाता है। लेकिन दूसरे साल उसे उस विषय की परीक्षा पास करनी होती है। साथ-ही-साथ वह बी० ए० भाग २ की भी परीक्षा देता है। नयी पद्धति में उसका एक साल बच जाता है।

३—उत्तर पुस्तकों के मूल्यांकन की योजना :

परीक्षार्थियों की शिकायत थी कि उनको जितने अंक पाने की आशा होती है, उतने नहीं मिले। इससे विद्यार्थियों में असन्तोष था, इसलिए उत्तर-पुस्तकों के पुनर्मूल्यांकन की योजना द्वारा उसका इलाज करना ही था। विश्वविद्यालय द्वारा दो परीक्षकों को अलग-अलग उत्तर-पुस्तक के मूल्यांकन के लिए कहा जाता है। दोनों का औसत लेकर परिणाम घोषित कर दिया जाता है, जो आखिरी होता है। मूल्यांकन करने में क्रमांक को संग्रह करना अनिवार्य है।

इस योजना का परीक्षार्थियों ने बहुत स्वागत किया है और १९७०—७१ में ३००० विद्यार्थियों ने अपनी उत्तर-पुस्तक पुनः जँचवायी, जिनमें से ५०० के परिणाम पर प्रभाव पड़ा।

(ड) परीक्षक -

एक विद्यार्थी के किसी विषय या बहुत सारे विषय के ज्ञान के जाँचने में परीक्षक का एक बड़ा रोल है। इसलिए आगरा यूनिवर्सिटी को इसका बड़ा ख्याल है कि परीक्षक किसी प्रकार के दबाव से प्रभावित न हों। विश्वविद्यालय चाहता है कि निष्पक्ष होकर उत्तर पुस्तक पर नम्बर दिये जायें। जो परीक्षक उत्तर-पुस्तक पर नम्बर देने में लापरवाह पाये जाते हैं, उन्हें उचित दण्ड दिया जाता है। पी० एम० टी० में, जो सन् १९७० में आगरा यूनिवर्सिटी द्वारा एम० एन० मेडिकल कालेज में प्रवेश के लिए लिया गया, यूनिवर्सिटी ने प्रयोग के लिए उत्तर पुस्तकों को परीक्षकों के एक पैनेल के द्वारा जँचवाया,

एम० कॉम	६	१	४	१	—	—
बी०कॉम भाग १ तथा २	६२	११	२७	२०	४	—
बी० एस सी० (एग्रीकल्चर) १-२	९	१	२	६	—	—
बी० एस-सी० भाग १ तथा २	३३३	५९	१७०	९७	७	—
बी०ए० भाग १ तथा २	६२७	१३३	२६२	२०१	२०	३
एल० एल० बी०	८०	२२	२८	२८	२	—
बी० एड०	१२	१	५	५	१	—
एम० बी० बी० एस०	२	—	२	—	—	—
कुल—	१,२१२	२३०	५३१	४०८	४०	३

(ग) परीक्षार्थी :

निगरानी करनेवाले अपने काम मे जितना सावधान और कड़े होगे, परीक्षार्थियो को परीक्षा मे नकल और धांधली का अवसर उतना ही कम मिलेगा। परन्तु उसी समय, परीक्षार्थियो को इसका विश्वास दिलाना चाहिए कि विश्वविद्यालय उनकी कठिनाइयो से परिचित है और विद्यार्थियों की भलाई के लिए उत्तरदायी है। एक विश्वविद्यालय इस बात का विश्वास परीक्षा की परिस्थिति मे सुधार लाकर कर सकता है। इस सिलसिले म आगरा विश्वविद्यालय ने निम्नलिखित सुधार किये हैं.

१—एम० ए० डिवीजन मे सुधार

अभी तक आगरा विश्वविद्यालय भी दूसरे विश्वविद्यालयो की तरह किसी भी एम० ए० पास को उसी विषय मे, दूसरे साल परीक्षा देने की आज्ञा नही देता था। इसका अर्थ यह होता था कि एम० ए० मे एक विषय म तृतीय श्रेणी लानेवाले के लिए अपनी श्रेणी मे सुधार लाने का कोई दूसरा तरीका नही था। अभी जो उपकुलपति हैं उन्हें यह समझदारी की बात नही लगी, और उनके कहने पर, विश्वविद्यालय ने अब फैसला किया है कि उसी विषय मे दूसरे साल फिर से परीक्षा देने की आज्ञा हो ताकि विद्यार्थी दुबारा पढ़कर अपनी अपनी श्रेणी मे सुधार ला सके।

२—पूरक परीक्षा खत्म करके पढ़ाई को आगे बढ़ाने की पद्धति

पिछले साल तक, ऐसे विद्यार्थी जो बी० ए० मे केवल एक विषय मे असफल होते थे, और उस विषय मे उन्हें कुल २० प्रतिशत और 'एग्रीगेट'

में पास भर या जाता था, तो पूरक परीक्षा दे सकते थे, जो जुलाई अगस्त में हुआ करती थी। परिणाम यह होता था कि पूरक में असफल रहनेवाले विद्यार्थियों का पूरा वर्ष बरबाद जाता था और वे आगे के दर्जे में उस समय तक नहीं जा सकते थे, जब तक कि वे उस विषय में सफल न हो जायें, यह पद्धति अच्छी नहीं समझी गयी और उससे मुक्ति पा ली गयी।

संशोधित सिद्धान्त के अनुसार एक परीक्षार्थी जो बी० ए० भाग १ की परीक्षा में केवल एक विषय में असफल होता है, परन्तु उस विषय में ३० प्रतिशत और पास होने भर एग्रीगेट लाता है, उसे आगे दूसरे वर्ष (अगले दर्जे) में जाने दिया जाता है। लेकिन दूसरे साल उसे उस विषय की परीक्षा पास करनी होती है। साथ-ही-साथ वह बी० ए० भाग २ की भी परीक्षा देता है। नयी पद्धति में उसका एक साल बच आता है।

३—उत्तर पुस्तकों के मूल्यांकन की योजना :

परीक्षार्थियों की शिकायत थी कि उनको जितने अंक पाने की आशा होती है, उतने नहीं मिले। इससे विद्यार्थियों में असन्तोष था, इसलिए उत्तर-पुस्तकों के पुनर्मूल्यांकन की योजना द्वारा उसका इलाज करना ही था। विश्वविद्यालय द्वारा दो परीक्षकों को अलग-अलग उत्तर-पुस्तक के मूल्यांकन के लिए कहा जाता है। दोनों का औसत लेकर परिणाम घोषित कर दिया जाता है, जो आखिरी होता है। मूल्यांकन करने में क्रमांक को सतह करना अनिवार्य है।

इस योजना का परीक्षार्थियों ने बहुत स्वागत किया है और १९७०–७१ में ३००० विद्यार्थियों ने अपनी उत्तर-पुस्तक पुन: जँचवायी जिनमें से ५०० के परिणाम पर प्रभाव पड़ा।

(ब) परीक्षक

एक विद्यार्थी के किसी विषय या बहुत सारे विषय के ज्ञान में जाँचने में परीक्षक का एक बड़ा रोल है। इसलिए आगरा यूनिवर्सिटी को इसका बड़ा ख्याल है कि परीक्षक किसी प्रकार के दबाव से प्रभावित न हों। विश्वविद्यालय चाहता है कि निष्पक्ष होकर उत्तर पुस्तक पर नम्बर दिये जायें। जो परीक्षक उत्तर-पुस्तक पर नम्बर देने में लापरवाह पाये जाते हैं, उन्हें उचित दण्ड दिया जाता है। पी० एम० टी० में, जो सन् १९७० में आगरा यूनिवर्सिटी द्वारा एम० एन० मेडिकल कालेज म प्रवेश के लिए लिया गया, यूनिवर्सिटी ने प्रयोग के लिए उत्तर पुस्तकों को परीक्षकों के एक पैनेल के द्वारा जँचवाया,

परीक्षा का भूत

आजकल विलायत में शिक्षा की पद्धति के बारे में काफी चर्चा चल रही है। अभी तक स्मरण शक्ति पर ज्यादा महत्व दिया जाता है, अतः परीक्षा में मुख्य तौर पर स्मरण शक्ति की ही जाँच होती है। सन् १९६६ में विलायत के शिक्षा मंत्री ने कहा था—

"हम अपने बच्चों के साथ कम्प्यूटर की तरह बरतते हैं। शिक्षक उन्हें सामग्री (डाटा) खिलाता है और अपेक्षा यह है कि बच्चा 'क्लिक-क्लिक' करके उत्तर दे देगा। लेकिन उस उत्तर में चरित्र, हृदय और आत्मा के गुण प्रकट नहीं होते और ये गुण ही गणित की पहेलियों से जादू दिखाने से, या अधपके हुए तथ्यों को उलटाने से बहुत ज्यादा आवश्यक है। मैं आशा करता हूँ कि बहुत शीघ्र ही हम सब लोग सेकेण्डरी विद्यालयों को परीक्षा के भूत से मुक्त करने का व्यावहारिक प्रयत्न करेंगे।"

अब राष्ट्रीय शिक्षक संघ ने परीक्षाओं के सुधार के लिए एक सुझाव दिया है। परीक्षा के समय यदि विद्यार्थियों को एक शब्दकोष तथा साहित्य, भाषा इत्यादि विषयों की पाठ्यपुस्तक अपने पास रखने की इजाजत मिलती तो तथ्यों के स्मरण के बदले में ज्यादा आवश्यक बातों की जाँच हो सकती।

प्रगतिशील शिक्षा के अन्य समर्थक इस पक्ष में हैं कि या तो परीक्षाओं को खत्म करना चाहिए, नहीं तो कम-से-कम उनके साथ प्राथमिक शाला से लेकर विश्वविद्यालय तक विद्यार्थियों की समीक्षा सातत्य से चलती रहे। दोनों सुझावों में कुछ सम्भावनाएँ हैं, लेकिन ये किस प्रकार और किस भावना से अमल में लाया जाय, किसी विशेष सुधार के बनिस्बत यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। मानवीय भावना अक्सर सबसे ज्यादा महत्त्व रखती है।

उपरोक्त कटिंग से हमारे सनातनी शिक्षक समझ सकेंगे कि शिक्षा में क्रान्ति लाने के लिए जो हमारे तरुणों में सुझाव हैं, कोरी बकवास नहीं है, बल्कि पश्चिम के शिक्षा-शास्त्री भी, जो उनके लिए प्रमाण हैं, इस दिशा में विचार करने लग हैं।

'आर्यन पाथ से' प्रस्तुतकर्ता—सरला देवी

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की तीसरी बैठक

स्थान—ब्रह्मविद्या मन्दिर, पवनार, दिनांक—१२ और १३ सितम्बर, १९७१।

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति की तीसरी बैठक १२ व १३ सितम्बर, ७१ को ब्रह्मविद्या मन्दिर पवनार वर्धा मे श्री शीतल प्रसाद उपकुलपति, आगरा विश्वविद्यालय की अध्यक्षता मे हुई। दो दिन मे पांच बैठकें हुईं जिनमे चार बैठको मे विनोबाजी का सान्निध्य एव मार्गदर्शन प्राप्त रहा। बैठक मे निम्नांकित व्यक्तियों ने भाग लिया—

सदस्य	आमंत्रित
१ श्री शीतल प्रसाद (उ० प्र०)	१ श्री ठाकुरदास बंग (मंत्री सर्व सेवा संघ)
२ श्री मामा क्षीरसागर (महाराष्ट्र)	२ श्री सिद्धराज ढड्ढा (राजस्थान)
३ आचार्य कपिल (बिहार)	३ श्री गुणसरण (मध्यप्रदेश)
४ श्री रोहित मेहता (उ० प्र०)	४ श्री वसंत व्यास (दिल्ली)
५ श्री डा० वन तरमन (उ० प्र०)	५ श्री रामचन्द्र राही (सर्व सेवा संघ)
६ श्री के० एस० आचालू (मैसूर)	६ श्री मनोहर दीवाण (वर्धा)
७ श्री गोविन्दराव देशपांडे (सर्व सेवा संघ)	७ श्री बाबाजी मोघे (वर्धा)
८ श्री जैनेन्द्रकुमार (दिल्ली)	८ श्री दादा साहब पंडित (वर्धा)
९ श्री पूर्णचन्द्र जैन (राजस्थान)	९ श्री गयाप्रसाद अग्रवाल (मराठवाडा)
१० श्री वंशीधर श्रीवास्तव (संयोजक)	

महाराष्ट्र की ओर से श्री मामा क्षीरसागर ने सभी सदस्यो का स्वागत किया और इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि इस तीसरी बैठक मे विनोबाजी का हम सभी को सान्निध्य प्राप्त हो रहा है। श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने सभी आगतजनो का परिचय कराया और पिछली बैठक से अब तक हुए कार्य की जानकारी दी। तदोपरान्त विनोबाजी के प्रवचन से कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

बैठक का शुभारम्भ करते हुए विनोबाजी ने कहा : बहुत खुशी की बात है कि अखिल भारतीय आचार्यकुल की बैठक यहाँ बुलायी गयी। मैंने यह बात कई बार कही है कि मैंने जो भूदान, ग्रामदान चलाया वह सहज रूप से ही शुरू हुआ। पोचमपल्ली (आन्ध्र) में ऐसा लगा कि यह परमेश्वर का आदेश है। जमीन का मसला हिन्दुस्तान का एक बुनियादी मसला है। बिना उसके हल हुए ग्रामीणों का उत्थान सम्भव नहीं है, लेकिन बाद में जो आचार्यकुल का काम शुरू हुआ उस पर मुझे बहुत श्रद्धा है, क्योंकि बाबा इसके लायक है। बाबा न तो जमींदार है न काश्तकार है लेकिन वह शिक्षक व विद्यार्थी शुरू से रहा है।

आचार्यकुल के लिए सबसे पहले जाकिर साहब ने (सन् १९६७ में) चर्चा चलायी, बाद में बिहार के शिक्षा मंत्री श्री कर्पूरी ठाकुर ने उत्साह दिलाया और सहज ही यह काम शुरू हुआ। वैसे मैं अपनी मानसिक प्रकृति से नये-नये कार्य नहीं उठाता हूँ। यह सहज था और इसके लायक मैंने अपने को समझा, इसलिए उठा लिया। इस समय देश के सामने बहुत कठिन समस्याएँ खड़ी हैं जिनमें सबका सहयोग चाहिए। ऐसा कार्यक्रम चले जिसमें देश के सज्जनों को बुद्धि को पूरी चालना मिले।

ग्रामीणों की श्रम शक्ति और विद्वानों की ज्ञान-शक्ति का मेल हो जाय तो फिर ऐसी कोई समस्या नहीं है जो न सुलझ सके। विद्वज्जनों की तटस्थ बुद्धि और समत्व बुद्धि का देश को बहुत लाभ मिल सकता है। इसीलिए मैंने आचार्यकुल के लिए कहा कि जो तटस्थ बुद्धिवाले विद्वान् और साहित्यिक हैं लोकशिक्षक के नाते इसमें सम्मिलित हो सकते हैं। अपने देश में दो हवाएँ बहती हैं—एक उत्तर में हिमालय की गुहा से और दूसरे समुद्र से। वाल्मीकि ने राम का वर्णन करते हुए कहा है कि वे समुद्र के समान गंभीर और हिमालय के समान स्थिर हैं। ऐसा कहकर वाल्मीकि ने दक्षिण और उत्तर को जोड़ दिया। बौद्ध, जैन, रामानुज, माधव, वल्लभ आदि कई आये जिन्होंने भक्ति और विचार की परम्परा से उत्तर और दक्षिण को मिलाने का काम किया। आप सब जानते हैं कि लोग गंगा से कावड़ में पानी लेकर रामेश्वर में चढ़ाने जाते हैं और रामेश्वर के लोग काशी में विश्वनाथ को जल चढ़ाने आया करते हैं। यह सब और कुछ नहीं भारत की अखण्डता को कायम रखने का कार्यक्रम है।

महाराष्ट्र, राजस्थान मध्यप्रदेश और दिल्ली में हुआ। कुछ काम, गुजरात, आन्ध्र और मैसूर में भी हुआ है। आचार्यकुल के आंदोलन का देश के शिक्षकों ने स्वागत किया है और यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आचार्यकुल की सदस्य-संख्या अधिक नहीं है (अबतक कुल संख्या ५ हजार से अधिक नहीं है) वह काफी तेजी से फैल रहा है।

(३) आचार्यकुल के प्रस्तावित संविधान पर चर्चा

इसके बाद वंशीधर श्रीवास्तव ने आचार्यकुल के प्रस्तावित विधान को पढ़ा और उस पर एक-एक आइटमवार चर्चा आरम्भ हुई।

दूसरी बैठक

(साय ३ से ६ बजे तक)

दोपहर बाद श्री विनोबाजी की उपस्थिति में फिर से कार्यवाही शुरू हुई। उनसे समत्वबुद्धि और समग्र दृष्टि के बारे में, आचार्यकुल की सदस्यता के लिए जाँच समिति रखने, एवं संविधान के सम्बन्ध में उनकी राय पूछी गयी।

प्रश्न समग्र दृष्टि और समत्व में क्या फर्क है?

विनोबा : उत्तर—समग्र दृष्टि के बिना समत्व आयेगा नहीं इसलिए आप लोगों ने जो समग्र शब्द रखा उसमें समत्व का समावेश है। जिस तरह जीवन के अनेक पहलू हैं उसी तरह से विचार के भी अनेक पहलू हैं। एक एक अलग-अलग लेंगे तो लगेगा कि एक दूसरे के विरुद्ध हैं और यदि समग्र रूप से दर्शन करेंगे तो ध्यान में आयेगा कि भिन्न-भिन्न पहलू एक ही विचार के अंग हैं। समत्वयुक्त दृष्टि स्वाभाविक रूप से बनेगी। जैनों ने तटस्थ को मध्यस्थ कहा। तट पर खड़े होकर जो निष्पक्ष होकर नदी में तैरनेवाले को मार्ग बताये वह तटस्थ और धारा में खड़े होकर सबको जो समान सहारा दे वह समत्व दृष्टि वाला है। समत्व माने समान रूप से सबको प्यार करने वाला। सब भाग मिलकर पूर्ण दर्शन होता है। माता अनेक बच्चों के विविध गुण देखती है। इसी तरह से आचार्यकुल की मातृ दृष्टि होनी चाहिए। जीवन को सब बाजू से देखनेवाले सबका गुणांश ग्रहण करनेवाले उसे पूर्ण करेंगे। विद्यार्थी अनेक प्रकार के होते हैं। आचार्य उनकी तटस्थवृत्ति, समत्वदृष्टि से उनकी उच्छृङ्खलता को सुधारता है।

प्रश्न आचार्यकुल की सदस्यता के लिए क्या कोई जाँच समिति रखी जाये अथवा नहीं?

यह जुड़ा हुआ भारत आज टूट रहा है। आचार्यकुल का काम इसको जोड़ना होना चाहिए। हिन्दी भाषा से यह अपेक्षा थी कि वह जोड़नेवाली कड़ी सिद्ध होगी और वह है भी। लेकिन इसके लिए उत्तरवालों को भी दक्षिण की भाषा सीखनी होगी। मैंने इसके लिए सुझाव रखा है कि दक्षिण की भाषाएँ देवनागरी लिपि मे लिखी जायें। आजकल तो मैं देवनागरी लिपि मे ही छपा हुआ या लिखा हुआ पढ़ता हूँ। इस तरह से सहज ही मैं अखिल भारतीयता का अभिध्यान करता हूँ। अन्य भाषाओं की लिपियाँ भी चलें उनके न चलने की बात मैं नहीं कह रहा, बल्कि वे सब यदि देवनागरी अपनायेंगी तो उससे उनका भी विकास होगा।

भारत की जनता आज भी पराधीन है। गाँव-गाँव टूटे हुए हैं। मैंने एक मंत्र दिया है—'दल-मुक्त सरकार और सरकार-मुक्त जनता'। अब यह आचार्यों की बुद्धि से ही समझ है।

आचार्यकुल के लिए प्रतिज्ञा पत्र भरना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि आर्थिक रूप मे कुछ धन देना भी आवश्यक समझा जाय। एक पैसा रोज से तीन रुपये पैंसठ पैसे का कहा गया है पर मैं तो उससे आगे की बात चाहता हूँ। जो लोग अपने वेतन से एक प्रतिशत या आधा प्रतिशत इस काम के लिए दे सकते हैं वे दें, ताकि पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता रखे जा सकें और उनको रखने की हमारी शक्ति बनें।

आचार्यकुल का जहाँ तक सर्व सेवा संघ के साथ सम्बन्ध है उसके लिए मैंने कहा है कि वह जुड़ा भी है और स्वतंत्र भी है। सर्व सेवा संघ में सर्व के अन्तर्गत आचार्यकुल भी है। एक कहावत है—यह बिना कहे हुए मान लेना चाहिए (दैट गोज विदाउट सेइंग)।

विनोबाजी के प्रारंभिक भाषण के उपरान्त विचाराधीन विषयों पर चर्चा आरम्भ हुई।

(१) पिछली बैठक की कार्यवाही की स्वीकृति

पिछली बैठक की कार्यवाही जो कि पूर्व मे परिपत्रित की जा चुकी थी, सर्वसम्मति से स्वीकृत की गयी एवं उसकी पुष्टि की गयी।

(२) राज्यों के कार्य की जानकारी

श्री वंशीधर श्रीवास्तव, संयोजक ने विभिन्न राज्यों के कार्य की रिपोर्ट, जिसे पहले परिपत्रित किया जा चुका था, प्रस्तुत की। उन्होंने बताया कि इस समय तक आचार्यकुल के विचार-प्रचार का काम उत्तर प्रदेश, बिहार

महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश और दिल्ली में हुआ। कुछ काम, गुजरात, आंध्र और मैसूर में भी हुआ है। आचार्यकुल के आंदोलन का देश के शिक्षकों ने स्वागत किया है और यह कहा जा सकता है कि यद्यपि आचार्यकुल की सदस्य-संख्या अधिक नहीं है (अबतक कुल संख्या ५ हजार से अधिक नहीं है) वह काफी तेजी से फैल रहा है।

(२) आचार्यकुल के प्रस्तावित संविधान पर चर्चा

इसके बाद वशीधर श्रीवास्तव ने आचार्यकुल के प्रस्तावित विधान को पढा और उस पर एक एक आइटमवार चर्चा आरंभ हुई।

दूसरी बैठक

(शाम ३ से ६ बजे तक)

दोपहर बाद श्री विनोबाजी की उपस्थिति में फिर से कार्यवाही शुरू हुई। उनसे समत्वबुद्धि और समग्र दृष्टि के बारे में, आचार्यकुल की सदस्यता के लिए जाँच समिति रखने, एवं संविधान के सम्बन्ध में उनकी राय पूछी गयी।

प्रश्न समग्र दृष्टि और समत्व में क्या फर्क है?

विनोबा उत्तर—समग्र दृष्टि के बिना समत्व आयेगा नहीं इसलिए आप लोगों ने जो समग्र शब्द रखा उसमें समत्व का समावेश है। जिस तरह जीवन के अनेक पहलू हैं उसी तरह से विचार के भी अनेक पहलू हैं। एक एक अलग अलग लेंगे तो लगेगा कि एक दूसरे के विरुद्ध हैं और यदि समग्र रूप से दर्शन करेंगे तो ध्यान में आयेगा कि भिन्न भिन्न पहलू एक ही विचार के अंग हैं। समत्वयुक्त दृष्टि स्वाभाविक रूप से बनेगी। जैनों ने तटस्थ को मध्यस्थ कहा। तट पर खड़े होकर जो निष्पक्ष होकर नदी में तैरनेवाले को मार्ग बतायें वह तटस्थ और धारा में खड़े होकर सबको जो समान सहारा दे वह समत्व दृष्टि वाला है। समत्व माने समान रूप से सबको प्यार करने वाला। सब भाग मिलकर पूर्ण दर्शन होता है। माता अनेक बच्चों के विविध गुण देखती है। इसी तरह से आचार्यकुल की मातृ दृष्टि होनी चाहिए। जीवन को सब बाजू से देखनेवाले सबका गुणांश ग्रहण करनेवाले उसे पूर्ण करेंगे। विद्यार्थी अनेक प्रकार के होते हैं। आचार्य उनकी तटस्थवृत्ति, समत्वदृष्टि से उनकी उच्छृंखलता को सुधारता है।

प्रश्न आचार्यकुल की सदस्यता के लिए क्या कोई जाँच समिति रखी जाये अथवा नहीं?

विनोबा : उत्तर—बाबा है नहीं ऐसा समझकर सर्वसम्मत राय से अमल किया जाय। सर्वसम्मति के साथ बाबा की राय शामिल है। मेरा एक सूत्र है 'वेदान्तो विज्ञानम्...' वेदान्त, (धर्मों का मत) विज्ञान और विश्वास तीन शक्तियां स्थिर हो जायें तो जगत में हमेशा के लिए शान्ति और समृद्धि होगी। विश्वास पर मेरा विश्वास दृढ है, समुद्र किसी को न नहीं कहेगा। बिहार में साढे बारह लाख शिक्षक हैं फिर भी शिक्षा कम है। मेरी राय मे वहाँ एक एक प्रखण्ड मे कम से-कम १००-१०० आचार्यों की एक समिति बने। कम से कम २० लाख का समूह खडा हो, इसके लिए किसी प्रकार की जाँच बाबा जरूरी नही मानता। मन मे कोई शका रखे बिना हमे कहना चाहिए कि यह काम अच्छा है आपका स्वागत है।

प्रश्न—आचार्यकुल के केन्द्रीय सगठन और उसके सविधान के बारे मे आपकी क्या राय है?

विनोबा उत्तर—बाबा ने अनेक भाषाओ और विषयो का अध्ययन किया है, कानून और सविधान का नहीं किया। यहाँ तक कि भारतीय सविधान का भी बहुत अध्ययन नही किया। लेकिन फिर भी आप लोगो ने यहाँ जो बडे चिन्तन-मनन के साथ आचार्यकुल का सविधान बनाया है वह मैंने देखा। वह ठीक है।

गोविन्दराव ने एक प्रश्न पूछा : 'क्या अहिंसक वर्ग विग्रह नही हो सकता?

विनोबा ग्राम समाज मे दो भाग नहीं बनने चाहिए। मालिक-मजदूर और महाजन यह गाँव की तीन माँ हैं। तीनों को लेकर ग्रामसभा बननी चाहिए। सबके दिल जुडने चाहिए। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जब राष्ट्रपति थे तो उन्होंने अपने कार्यकाल मे किसी को मृत्यु-दंड नहीं दिया। शिक्षकों की परम्परा राजनीतिज्ञों की परम्परा से श्रेष्ठ है, क्योंकि राजनीतिज्ञ तो ५ साल के लिए विधानसभा, या लोकसभा में जाते हैं पर शिक्षक तो ३० साल तक अपने काम पर रहते हैं। सेवा के क्षेत्र को शिक्षा से अलग करेंगे तो वह 'पालिटिक्स' म चला जायेगा। मैं अपने उद्देश्य के बारे मे नहीं सोचता, मनुष्य के विकास के लिए सोचता हूँ।

आचार्यों के पास शक्ति है इसलिए वे देश का कल्याण सही ढग से कर सकते हैं। तुकाराम कहता है—"धन, गोमास के समान।" शिवाजी महाराज ने जब तुकाराम के पास धन भेजा तो उसे अच्छा नहीं लगा। इसी तरह से

जो हमारे आचार्यगण हैं उनके लिए पैसे का इतना महत्व नहीं है। उनके लिए सेवा पैसे से कहीं बढ़कर है। मेरे पास जब दो लड़के विश्व पदयात्रा के आशीर्वाद के लिए आये तो मैंने उनसे यही कहा कि दुनिया घूमने जा रहे हो तो अपने साथ एक भी पैसा रखने की जरूरत नहीं है। आचार्यों को भी घूमना चाहिए। पदयात्रा से वे लोगों के नजदीक पहुँचेंगे। लेकिन फिर भी संगठन के लिए पैसा चाहिए इसीलिए मैंने सदस्यों के लिए एक प्रतिशत और आधा प्रतिशत वेतन की बात कही थी। अब सामने जो रखा है वह ठीक है।

आचार्यकुल का कार्य अभी उत्तर में ही कुछ है दक्षिण के लिए विशेष प्रयत्न करना होगा। संविधान हिन्दी अंग्रेजी दोनों में रहे। दक्षिण में इस विचार के लिए बहुत उत्साह है। ढेढ़ लाख ग्रामदानी गांव हैं इनसे हमारा सहज सम्पर्क आना चाहिए। देश में ८३ विश्वविद्यालय हैं उनमें अभी कुल ३० विश्वविद्यालयों तक ही पहुँच हुई है। इस ओर बढ़ना चाहिए। दक्षिण में तमिलनाडु में प्रचार जल्दी हो सकता है। दो जगह ऑफिस रखना ठीक होगा। एक दक्षिण में भी रहे जो दक्षिण के चारों राज्यों को जोड़नेवाला हो। वह बंगलौर या हैदराबाद में रखा जा सकता है।

अपने यहाँ कहा जाता है कि मरते समय जैसा स्मरण करते हैं वैसा ही अगला जन्म होता है। मैं प्रत्येक दिन का अन्त मृत्यु के रूप में और दूसरे दिन का सवेरा जन्म के रूप में मानता हूँ। निद्रा मिट्टी के समान है जो हम सोचते-सोचते सोते हैं वही विचार सवेरे मन में अंकुरित हो जाते हैं। आजकल विशेषकर शहरों में देर तक जागना विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को क्षीण कर रहा है आचार्यों को इन बातों पर ध्यान देना होगा।

तीसरी बैठक

(४) संविधान की स्वीकृति

तीसरी बैठक सेवाग्राम में रात्रि को आठ बजे से ६ बजे तक हुई, जिसमें दिन में हुई बैठकों की चर्चाएँ जारी रहीं। आचार्यकुल के प्रस्तावित संविधान के मुद्दों पर एक एक कर हुई चर्चा रात्रि को ९ बजे समाप्त हुई। संशोधित रूप में संविधान स्वीकार किया गया और संयोजक को अधिकृत किया गया कि वे उसे शीघ्र ही हिन्दी और अंग्रेजी दोनों में प्रकाशित कराने की व्यवस्था करें और देश की सभी भाषाओं में उसका अनुवाद करवाकर प्रकाशित कराने की व्यवस्था करें।

(५) आचार्यकुल की शिक्षा नीति :

पिछली बैठक में किये गये निर्णय के अनुसार उत्तरप्रदेश आचार्यकुल द्वारा नियुक्त उपसमिति द्वारा तैयार किया गया शिक्षानीति का प्रारूप श्री रोहित मेहता ने प्रस्तुत किया। शिक्षा-नीति एक एक पैरा करके पढ़ी गयी और उसमे आवश्यक संशोधन व परिवर्धन कर उसे सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया। यह भी तय हुआ कि इस संशोधित एवं परिवर्धित को यथाशीघ्र हिन्दी और अंग्रेजी मे छपाकर प्रसारित किया जाय। इसका सार समाचार पत्रों मे प्रकाशनार्थ दिया जाये। देश के समस्त ८३ विश्वविद्यालयों को उनकी एकेडेमिक कौंसिल्स के विचारार्थ भेजा जाय।

पाँचवी बैठक

पाँचवी अन्तिम बैठक विनोबाजी के सान्निध्य में सम्पन्न हुई। उन्होने अपने समापन प्रवचन मे कहा—

यहाँ आकर आप लोगों ने बहुत अच्छे निर्णय लिये। विधान एक-एक शब्द की अच्छी तरह छानबीन की जिसे देखकर मुझे पाणिनि का स्मरण हो आया। उसका व्याकरण सुंदर परिपूर्ण है। पाणिनि ने कहा—शब्दो का उपयुक्त प्रयोग मोक्षदायक होता है। आचार्यों के द्वारा नपे-तुले शब्दो का ही प्रयोग होना चाहिए।

'कुल' माने एक परिवार है। इसका पारिवारिक भाव दिनोदिन बढ़े यही मेरी इच्छा है। हमेशा खुले दिमाग (ओपेन माइन्ड) से सोचें। भिन्न-भिन्न मनुष्य हैं भिन्न-भिन्न चिन्तन होना चाहिए। परन्तु विचारो का जोड़ भी जरूरी है। दिमाग अलग अलग, परन्तु हृदय एक। गीता मे भगवान् ने जो विश्वरूप दिखलाया है उसमे हजारो हाथ, हजारों आँखें और हजारों सिर हैं परन्तु हृदय एक है। आचार्यकुल मे विचार अनेक हों परन्तु जो सबकी राय हो वह दुनिया के सामने रखी जाय।

देश की शिक्षा की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि विद्यार्थी भी जानते हैं कहाँ गड़बड़ करना ठीक है और कहाँ नहीं। एक बार विद्यार्थियो की सभा में जब मुझसे विद्यार्थियों के असन्तोष पर बोलने के लिए कहा गया तो मैंने यही कहा कि मुझे यही आश्चर्य है कि विद्यार्थी आज के निकम्मे शिक्षण को सहन कैसे कर रहे हैं।

(६) केन्द्रीय समिति के सदस्यों का पुनर्गठन :

सर्व सेवा संघ-अधिवेशन, राजगीर में केन्द्रीय आचार्यकुल की समिति बनायी गयी थी। कुछ सदस्य आगरा बैठक में को-आप्ट किये गये। अब नयी समिति पुनर्गठित की जानी है। संयोजक के सुझाव पर विचार होकर निम्नांकित सदस्यों की एक समिति गठित की गयी :

केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के सदस्य

(१) बिहार— १. डा० महेन्द्र प्रताप सिंह—अध्यक्ष, बिहार आचार्यकुल, उपकुलपति, पटना विश्वविद्यालय, पटना
२ श्री आचार्य कपिलजी—उपाध्यक्ष, बिहार आचार्यकुल, आचार्य-आर० डी० एण्ड डी० जे० कालेज, मुंगेर
३. डा० रामजी सिंह—संयोजक, बिहार आचार्यकुल, तरुण-शान्तिसेना, ३ पटलबाबू रोड, भागलपुर—१
४. श्री आचार्य राममूर्तिजी—संपादक, 'भूदान-यज्ञ', सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी—१

(२) उत्तरप्रदेश—५. श्री कालूलाल श्रीमाली—अध्यक्ष, उ० प्र० आचार्यकुल, उपकुलपति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५
६. श्री शीतल प्रसादजी—संयोजक, उ० प्र० आचार्यकुल, उपकुलपति—आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
७ श्री रोहित मेहता—सत्यधाम, कमच्छा, वाराणसी—१
८. श्री डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—भूतपूर्व रेक्टर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५
९. श्रीमती महादेवी वर्मा, १७ सी०, हेस्टिंग्स रोड, अशोक नगर, इलाहाबाद—१
१०. श्री सुमित्रानन्दन पंत, स्टरनली रोड, इलाहाबाद
११. डा० टी० आर० अनन्तरमण, धातुकी विभाग, काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय, वाराणसी—५
१२. डा० हरिहरनाथ टंडन—स्वदेशी बीमा नगर, आगरा

(३) मध्यप्रदेश—१३ श्री गुरुशरण, एम० ए०, ६८, सिंधी कालोनी, हेमसिंह परेड, ग्वालियर—१

(४) राजस्थान—१४ श्री पूर्णचन्द्र जैन—संयोजक, राजस्थान आचार्यकुल,

टुकलियाभवन, कुन्दीगरो का भैरू, जयपुर–३

१५. श्री सिद्धराज ढड्ढा–चौड़ा रास्ता, जयपुर–३

१६ श्री कृष्णराज मेहता–मार्फत-विनोबा आश्रम, सहरसा (बिहार)

(५) महाराष्ट्र—१७ श्री मामा क्षीरसागर–सयोजक, महाराष्ट्र आचार्यकुल, प्रबोधन विद्यालय, मु०–पो० : दर्यापुर, जिला-अमरावती

१८ श्री गोविन्दराव देशपाडे–११११२, ठकार बगला, तिलक रोड, पूना–३०

१९ श्री ठाकुरदास बग (पदेन)–मत्री, सर्व सेवा सघ, गोपुरी, वर्धा

(६) मैसूर— २० श्री के० एस० आचार्लु–मत्री, नयी तालीम समिति, सेवाग्राम, जिला-वर्धा

(७) दिल्ली— २१. श्री जैनेन्द्र कुमार–पूर्वोदय प्रकाशन' ७।८, दरियागज, दिल्ली–६

२२ डा० सीता–मार्फत–दिल्ली प्रदेश सर्वोदय मडल, सन्निधि, राजघाट, नयी दिल्ली–१

(८) गुजरात— २३. श्री ईश्वरभाई पटेल–अध्यक्ष, गुजरात आचार्यकुल, युनिवर्सिटी बुक-प्रोडक्शन बोर्ड, कैपिटल प्रोजेक्ट भवन, गुजरात कालेज कम्पाउण्ड, अहमदाबाद–६

२४. श्री रमेश एम० भट्ट–मत्री, गुजरात आचार्यकुल, ५ पचशील सोसाइटी, अहमदाबाद–१३

(९) तमिलनाडु—२५ श्री एस० जगन्नाथन (पदेन), अध्यक्ष, सर्व सेवा सघ, मार्फत–तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल, २२७, साउथ मासी स्ट्रीट, मदुराई–१

२६ श्री वशीधर श्रीवास्तव–सयोजक, केन्द्रीय आचार्यकुल समिति, सर्व सेवा सघ, राजघाट, वाराणसी–१ (उ०प्र०)

उपरोक्त सदस्यो के साथ साथ सर्व सेवा सघ के अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् और मत्री श्री ठाकुरदास बग को भी पदेन सदस्य रखा गया।

(७) केन्द्रीय समिति का कार्यकाल :

केन्द्रीय समिति का कार्यकाल तीन वर्ष का रखना तय हुआ । यह समिति तीन वर्षों तक कार्य करेगी ।

(८) आचार्यकुल और नयी तालीम समिति के बीच को आर्डिनेशन (समन्वय)

केन्द्रीय आचार्यकुल और नयी तालीम समिति के बीच को-आर्डिनेशन (समन्वय) होना चाहिए । दोनों की संयुक्त बैठकें होती रहनी चाहिए । कभी नयी तालीम समिति बुलाये और कभी केन्द्रीय आचार्यकुल इसका आयोजन करे ।

(९) केन्द्रीय आचार्यकुल के संयोजक का चुनाव :

केन्द्रीय आचार्यकुल के संयोजक के लिए श्री वंशीधर श्रीवास्तव से निवेदन किया गया कि वे संयोजक का कार्यभार पुनः सम्हालें और तीन वर्ष तक इस समिति के संयोजन का काम करते रहना स्वीकार करें। उनकी स्वीकृति पर उन्हें सर्व सम्मति से संयोजक निर्वाचित किया गया ।

(१०) क्षेत्रीय संगठकों की नियुक्ति

श्री जैनेन्द्रजी का सुझाव रहा कि उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम के क्षेत्रीय संगठक नियुक्त किये जायें, ताकि काम को गति मिले। इस सम्बन्ध में चर्चा करके वंशीधर श्रीवास्तव, संयोजक, केन्द्रीय आचार्यकुल को अधिकृत किया गया कि वे आर्थिक स्थिति को देखते हुए एक या दो सहायक चाहें तो नियुक्ति कर सकते हैं ।

१३ सितम्बर, ७१ की सन्ध्या ६ बजे कार्यवाही समाप्त हुई ।●

—वंशीधर श्रीवास्तव

वर्ष : २०
अंक : ३
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

अक्तूबर '७१

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये हैं और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ की ओर से प्रकाशित;
इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी—२ में मुद्रित।

दैनन्दिनी १९७२

गत वर्षों की भांति सर्व सेवा सघ की सन् १९७२ की दैनन्दिनी शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है। इस दैनन्दिनी के ऊपर प्लास्टिक का चित्ताकर्षक कवर लगाया गया है। इसकी कुछ विशेषताएं निम्न हैं।

- इसके पृष्ठ रूलदार हैं।
- इसमें सर्वोदय-आन्दोलन विशेषकर भूदान ग्रामदान की जानकारी तथा सर्व-सेवा-सघ के कार्य की संक्षिप्त जानकारी दी गयी है।
- गत वर्षों की भांति यह दैनन्दिनी दो आकारों मे छापी गयी है जिनकी कीमत प्रति दैनन्दिनी निम्न है।

(अ) डिमाई साइज	९"x५॥"	रु० ५-००
(ब) क्राउन साइज	७॥"x५"	रु० ४ ००

आपूर्ति के नियम

- विक्रेताओं को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है।
- एक साथ ५० या अधिक दैनन्दिनी मँगाने पर आग्रह के निकटतम रेलवे स्टेशन तक फ्री पहुँच भिजवायी जाती है।
- इससे कम सख्या में दैनन्दिनी मँगाने पर पैकिंग पोस्टेज और रेलमहसूल का खर्च ग्राहक को वहन करना पडता है।
- भिजवायी गयी दैनन्दिनी वापस नही ली जाती।
- दैनन्दिनी की बिक्री पूर्णतया नगद वी० पी० बैंक के मार्फत रखी गयी हैं।
- आर्डर भिजवाते समय अपना नाम पता और निकटतम रेल्वे स्टेशन का नाम सुवाच्य अक्षरों मे लिखिये और यह स्पष्ट निर्देश दीजिये कि मँगायी गयी दैनन्दिनी के लिए आप रकम अग्रिम ड्राफ्ट द्वारा भिजवा रहें हैं या बिल्टी वी० पी० या बैंक क द्वारा पहुँचा दी जाय।

उपर्युक्त शर्तों को ध्यान मे रखते हुए अपना क्रयादेश अविलम्ब भिजवाइये क्योंकि इस वर्ष भी दैनन्दिनी सीमित सख्या में छपायी गयी है।

मत्री
सर्व सेवा सघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

वर्ष : २०
अंक : ४

- ग्राम गुरुकुल
- मानव-शिक्षा का स्वरूप
- दरवाजे पर विश्वविद्यालय
- पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण
- अध्यापक-प्रशिक्षण में गुणात्मक नियंत्रण

नवम्बर, १९७१

चीन में शिक्षा का रूपान्तरण

वर्ष : २०
अंक : ४

टेबुल टेनिस के बहाने ही जब साम्यवादी चीन का द्वार एक बार फिर बाहर के लोगों के लिए खुल गया है तो चीन की बहुश्रुत और बहुचर्चित सांस्कृतिक क्रान्ति (सन् १९६६ से १९६९) का रूप अधिक अच्छी तरह समझ में आने लगा है। चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति का सबसे अधिक प्रभाव शिक्षा पर पड़ा है। माओ चीन के लिए एक 'नये मनुष्य' का निर्माण करना चाहते हैं। मानव विकास के इतिहास के इस बिन्दु पर शिक्षा ही वह साधन है जिसके द्वारा समाज 'व्यक्ति' का निर्माण करता है। अत चीन में 'नये व्यक्ति' के निर्माण के लिए माओ ने चीन की शिक्षा को ही आमूल बदलने का शिक्षा को रूपान्तरित (ट्रान्सफार्म) करने का आन्दोलन किया। यही चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति है। चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति शिक्षा की क्रान्ति है।

चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति का प्रमुख लक्ष्य रहा है चीन के सैद्धान्तिक बुद्धिवादी वर्ग (एकेडमिक इन्टेलेक्चुअल) की समाप्ति। माओ ने आधुनिक शिक्षा को बुर्जुवा की कल्पना कहा है। माओ बुर्जुवा वर्ग को साम्यवाद का शत्रु मानते हैं। चीन का बुद्धिवादी वर्ग जैसा प्राय सब जगह होता है, बुर्जुवा विचारों का सबसे मजबूत किला है और चीन में साम्यवाद को बचाना है तो इस किले को तोड़ना होगा। चीन की सांस्कृतिक क्रान्ति के आन्दोलन से माओ ने इस किले को ही तोड़ा है।

माओ बुद्धिवादियों पर विश्वास इसलिए नहीं करते हैं क्योंकि उन्होंने सतत साम्यवादी मूल्यों पर सन्देह किया है और साम्यवाद के ढांचे को कमजोर

करने को कोशिश की है। वे प्रतिक्रियावादी और साम्यवादी विचारों के स्रोत रहे हैं। उन पर 'इन्डाक्ट्रिनेशन' का भी प्रभाव नहीं होता और होता भी है तो क्षणिक। माम्रो ने पहले उन्हे शैक्षिक प्रक्रिया से बदलने का प्रयास किया, परन्तु उसमे वह असमर्थ रहे। फिर उन्होंने उनमे श्रम के माध्यम से सुधार करना चाहा। सोचा, शायद बुद्धिवादी दिमाग पर श्रमिक और साम्यवादी व्यक्तित्व को कलम लगायी जा सके, परन्तु इसमे भी वह असफल रहे। अब उनके पास एक ही मार्ग था। बुद्धिवादी को श्रमिक मे बदलने के स्थान पर उन्होने इस प्रक्रिया को ही उलट दिया और मजदूर और किसानों को बुद्धिवादी बनाने के विचार से उन्हे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालयो मे भेजा। परन्तु इसका भी परिणाम अच्छा नही हुआ। पहले तो बहुत कम श्रमिक उपलब्ध हुए। फिर विश्वविद्यालयो ने भी सहयोग नही किया, क्योंकि तथाकथित ये समाजवादी विश्वविद्यालय पुराने विचारवाले ही थे। इनमे से अब भी निम्नकोटि के ऐसे बुद्धिवादी ही निकल रहे थे जिनकी प्रवृत्ति संशोधनवादी होती थी। यहां तक कि माम्रो को घोषित करना पड़ा (और उसके इस घोषणा का सास्कृतिक आन्दोलन के समय सर्वाधिक प्रचार किया गया) कि मेरा विश्वास है कि "पार्टी के भीतर और बाहर बहुसंख्यक बुद्धिवादी मूलत बुर्जुवा हैं।' यह बड़ा भयकर आरोप था क्योंकि माम्रो बुर्जुवा को साम्यवाद का शत्रु मानते हैं।

अत इस बुद्धिवादी वर्ग को समाप्त करने का एक ही उपाय शेष था। किसी भी देश मे बुद्धिवादी वर्ग का सबसे अधिक जमाव वहां के विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा की संस्थाओ मे होना है। ये ही वे कारखाने हैं जहां बुद्धिवादी वर्ग का निर्माण और पोषण होता है। अत माम्रो ने इन कारखानों को ही बन्द करने का निश्चय किया। २७ जुलाई १९६८ को श्रमिकों के दल (और चीन मे आज सभी श्रमिक सैनिक भी हैं) विश्वविद्यालयो को कक्षाओ मे घुस गये और उन पर नियत्रण कर लिया। दूसरे शब्दो मे विश्वविद्यालय बन्द हो गये। और मार्शल लिन पियाम्रो ने पार्टी की नवीं कांग्रेस में घोषणा की कि जिन स्थानों पर बुद्धिवादियो का सबसे अधिक जमाव है वहां श्रमिकों का नियत्रण हो गया है। श्रमिकों के द्वारा

नियत्रण के साथ शिक्षा मे क्रान्ति प्रारम्भ हुई और चीन का सबसे महत्वपूर्ण सास्कृतिक सुधार पूरा हुआ।

आज साम्यवादी चीन में विश्वविद्यालय की शिक्षा सबके लिए उपलब्ध नहीं है। विश्वविद्यालय की शिक्षा सबके लिए हो, चीन की यह मान्यता भी नही है। इस समय तो विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा उन्हीं विशिष्ट व्यक्तियो के लिए सरक्षित है जिन्हे चीन अपनी पद्धति से चुनता है। इस पद्धति मे ही क्रान्तिकारिता है।

विगत दो दशाब्दियो मे चीन की शिक्षा मे इतनी प्रगति हुई है कि वहाँ निरक्षरता का प्रतिशत बहुत कम हो गया है। अभी चीन की यात्रा करनेवाले एक पाश्चात्य पत्रकार, रावर्ट गुलियन ने शघाई के दक्षिण के एक गाँव मे पूछा इस गाँव मे कितने लडके हैं? उत्तर मिला २३२। दूसरा प्रश्न था कितने लडके स्कूल जाते हैं? उत्तर मिला—सभी! सभी जाते हैं। चीन मे शिक्षा की इस प्रगति को देखते हुए आश्चर्य होता है। चीन के प्रारम्भिक पाठशालाओ मे इस समय दस करोड विद्यार्थी पढ रहे हैं और माध्यमिक विद्यालयो मे १ करोड विद्यार्थी हैं। माध्यमिक शिक्षा मे पढनेवाले विद्यार्थियो की इस सख्या से लगता है कि चीन के विश्वविद्यालयो मे लाखो विद्यार्थी पढते होगें। माध्यमिक सस्थाओ से निकलकर विश्वविद्यालयो के दरवाजे लाखो खटखटाते होगे और ये दरवाजे उनके लिए खुले होगे। परन्तु ऐसा है नहीं। शायद पहले ऐसा होता हो परन्तु अब नही है। अब दरवाजे बन्द हैं।

यही चीन की सास्कृतिक क्रान्ति का शैक्षिक पहलू है और यही से माओ के सुधार का प्रारम्भ होता है—चीन मे नया मानव बनाने की प्रक्रिया का प्रारम्भ। १६ से १८ वर्ष की आयु के बीच जब चीन का युवक अपनी माध्यमिक शिक्षा समाप्त कर लेता है तो वह सीधा विश्वविद्यालयो मे प्रवेश नही कर सकता। पहले जिस पुल को पारकर वह विश्वविद्यालय मे जाता था वह पुल टूट चुका है।

माध्यमिक शिक्षा के बाद अगला कदम है—खेत मे या कारखाने मे। विद्यार्थी को कितने ही अक क्यो न मिले हो (पता नही चीन मे अक देने की प्रथा अब भी है या नही) उसे यही निश्चय करना पडता है कि वह किसी औद्योगिक कारखाने मे श्रमिक होगा या किसी

फार्म पर कृषक। माध्यमिक शिक्षा के बाद कम से-कम ३ या ४ वर्ष प्रत्येक विद्यार्थी को कारखाने या खेत मे बिताने होगे। श्रमिक वर्ग के साथ इस लम्बे और निकट सम्पर्क के बाद ही विद्यार्थी को विश्वविद्यालयो और उच्च शिक्षा की सस्थाओ मे प्रवेश पाने का अधिकार होता है। कौन विश्वविद्यालय मे जायगा यह इसके बाद ही निश्चय किया जाता है।

चीन के विकास के इस बिन्दु पर चीन को विश्वविद्यालयो मे प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता अपेक्षाकृत सीमित है—स्नातकों की सख्या वहाँ पहले भी पर्याप्त थी। अत विश्वविद्यालयो को पुन खोलने मे साम्यवादी चीन जल्दी नही कर रहा है और अब भी (सन् १९६६ के बाद) उसके अधिकाश विश्वविद्यालय बद हैं। १९७० मे वहाँ कुछ ही विश्वविद्यालय खुले है। पेकिंग मे उच्च शिक्षा की ४० सस्थाएँ हैं, इस समय तक कुल १० सस्थाएँ खुली हैं। इस प्रकार चीन ही एक ऐसा देश है जिसने तथाकथित उच्च बौद्धिक शिक्षा से अपने को अलग कर लिया है। हो सकता है यह प्रयोग चीन के लिए महँगा पडे। परन्तु माओ और उनके साथी मानते हैं कि एक नया समाज और नया मानव बनाने के लिए उन्हे यह कीमत चुकानी होगी।

भारत मे यदि समाजवादी समाज लाना है, तो उच्च शिक्षा मे प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाना होगा। माध्यमिक शिक्षा का पूर्ण व्यवसायीकरण कर कुछ ऐसा ही करना होगा जैसा चीन ने किया है। क्या हम ऐसा नही कर सकते कि माध्यमिक शिक्षा के बाद तीन चार वर्ष तक किसी उद्योग धन्धे मे लगने के बाद ही विद्यार्थियो को विश्व विद्यालयो मे प्रवेश का अधिकार दें। अगर हम यह प्रयोग करें तो शायद हमे कुछ वर्षों तक अपने विश्वविद्यालयो को बन्द करना पडेगा। परन्तु क्या उच्च शिक्षा की स स्थाओ से निकले हुए बेकारो की इतनी बडी फौज देखकर (और अब तो डाक्टर और इंजीनियर भी बेकार हैं) भी हम इन स स्थाओ को बन्द करने का साहस नही कर सकते ? क्या इससे देश का कोई बहुत बडा नुकसान होगा ?

—वशीधर श्रीवास्तव

राममूर्ति

दरवाजे पर विश्वविद्यालय

(चीन का एक शिक्षा प्रयोग)

१ माओ के मार्गदर्शन में क्रिएन्सी कम्यूनिस्ट श्रम विश्वविद्यालय की स्थापना सन् १९५८ में हुई थी। सांस्कृतिक क्रान्ति के दिनों में विश्वविद्यालय और अधिक पूर्ण और पुष्ट हुआ। इस समय उस विश्वविद्यालय और उसकी शाखाओं के १ लाख २० हजार स्नातक समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी निर्माण के काम में लगे हुए हैं।

क्रिएन्सी का श्रम विश्वविद्यालय शिक्षण की दुनिया में एक बिलकुल नये ढंग का प्रयोग है। तेरह वर्ष पहिले उसने माओ के इन शिक्षण सिद्धान्तों के आधार पर काम शुरू किया था

(क) शिक्षण से जनता की राजनीति (प्रालिटेरियन पालिटिक्स) को प्राधान्य मिलना चाहिए।

(ख) शिक्षण का उत्पादक श्रम (प्रोडक्टिव लेबर) से समन्वय होना चाहिए।

(ग) श्रमिकों को कारीगर बनाना चाहिए।

इन सिद्धान्तों पर चलकर क्रिएन्सी विश्वविद्यालय ने शिक्षकों और विद्यार्थियों की कमाई में शिक्षा में स्वावलम्बन साधा है और एक पूरी नयी पीढ़ी को शिक्षित किया है जिसकी उंगलियों में उत्पादन का हुनर भी है और दिमाग में समाजवाद की ऊँची प्रेरणा भी।

२ विश्वविद्यालय और उसकी १३२ शाखाओ के ५० हजार विद्यार्थियो ने पिछले तेरह वर्षों मे ३९० फार्म, २५० कारखाने, तथा कितनी ही वर्कशापें, पशुपालन और जगल लगाने के केन्द्र स्थापित किये है। इन फार्मों और केन्द्रो के पास १८ हजार एकड के लगभग धान के खेत, असिंचित खेती की भूमि, जगल और बाग है।

३ विश्वविद्यालय के अभ्यासक्रम मे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक शिक्षा साथ साथ दी जाती है और उसका सीधा सम्बन्ध गाँवो तथा क्षेत्र में कम्यून और उत्पादन-टोलियो के साथ है। शिक्षण-पद्धति के तीन मुख्य पहलू हैं : एक, वर्ग-सघर्ष (क्लास स्ट्रगिल), दो, उत्पादन के लिए प्रकृति से सघर्ष, तीन, वैज्ञानिक शोध और प्रयोग। क्षेत्र की आवश्यकता को देखते हुए खेती, जगल, पशु पालन, हिसाब किताब, स्वास्थ्य, आदि विषयो पर अधिक जोर दिया जाता है। सैद्धान्तिक शिक्षण (थ्योरेटिकल नालेज) को किसानो के अनुभवों और पद्धतियो तथा विज्ञान के नये शोधो और प्रयोगो के साथ जोडा जाता है। सारे शिक्षण का मुख्य सिद्धान्त है कि 'काम करते जाओ, सीखते जाओ।' खेत, जगल, पशु आदि सभी शिक्षण, शोध और उत्पादन के आधार हैं। शिक्षण, शोध और उत्पादन की त्रयी को मिलाकर शिक्षण-पद्धति पूरी होती है। शिक्षको और विद्यार्थियो के सामने हर वक्त क्षेत्र का जीवन और वहाँ की प्रकृति रहती है। इसके कारण विद्यार्थियो को हर चीज का व्यावहारिक ज्ञान होता है, और उसे वे तुरन्त प्रत्यक्ष रूप से लागू कर सकते है।

४ इस शिक्षण-पद्धति की बुनियादी विशेषता इस उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिए कि खेती के शिक्षक विद्यार्थियो को किएगसी क्षेत्र की पहाडी लाल मिट्टी का अध्ययन कराना है तो वे सबसे पहिले यह जानने की कोशिश करेंगे कि वहाँ के किसानो ने किन उपायो से अपनी मिट्टी को सुधारने के प्रयत्न किये है और उन्हे क्या अनुभव आये है। इन अनुभवो को सामने रखकर वे शिक्षण, प्रयोग, और शोध के लिए सामग्री तैयार करेंगे। प्रयोग के बाद वे स्वय सुधार की योजनाओ मे स्थानीय लोगो के साथ शरीक होगे। इस पद्धति से काम करके एक विभाग ने एक पहाडी की बजर, लाल, मिट्टी के ५० एकड मे चाय और तेल के वृक्ष उगाये, जो काम पहले असम्भव समझा जाता था।

५ किएगसी विश्वविद्यालय के अनेक स्नातक क्षेत्र के जीवन मे खप गये हैं। वे गाँव स्तर के कार्यकर्ता है, हिसाबी है, पशुपालक, और मिस्त्री आदि के

काम कर रहे हैं। बहुत-से अपने कम्यून म या गाँव के उत्पादन ब्रिगेड म 'नंगे पाँव चलनवाले' डाक्टर हैं। व सब मिलकर समाजवादी, ग्रामीण समाज रचना का काम कर रहे हैं। समाज निर्माण उनके जीवन का लक्ष्य बन गया है।

किएन्सी विश्वविद्यालय के निर्माण म सरकार का बहुत कम खर्च हुआ है। चालू खर्च के लिए वह पूरा आत्म निर्भर है। पिछले १० १२ वर्षों में शिक्षकों और विद्यार्थियों ने मिलकर ५।। लाख वर्ग-मीटर फर्श की इमारतें बनायी हैं। एक तिहाई विभाग अपने लिए अनाज तेल, मांस, सब्जी आदि स्वयं उगा लेते हैं।

विश्वविद्यालय अपने ही अन्दर म सीमित नहीं है। उसकी ओर से निकट वर्ती पहाड़ी क्षेत्रों के गरीब किसानों के लिए शाखाएँ खुली हुई हैं। विद्यार्थियों म गाँवों के युवक भी शामिल हैं। इन शाखाओं म किसानों के बच्चों को समाजवादी चेतना और संस्कृति का शिक्षण मिलता है। उनके अलावा निरक्षर किसानों और मजदूरों को भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद माओवाद का शिक्षण मिलता है इतना ही नहीं उन्हें वैज्ञानिक और सांस्कृतिक बातें भी बतायी जाती हैं।

३० जुलाई १९६१ को माओ ने विश्वविद्यालय की इन शब्दों म प्रशंसा की 'आप लोग आधा समय काम करते हैं आधा समय पढ़ते हैं, और सरकार से एक पैसे की भी माग नहीं करते। साथ ही आप देहातों म प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल और कालेज भी चला रहे हैं। वास्तव में ऐसा ही विश्व विद्यालय होना चाहिए।

किएन्सी प्रान्त कुओमिंताग के जमाने म आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ था। यह इस विश्वविद्यालय की ही देन है कि यहाँ की जनता ने बिजली के स्टेशन खोल लिये हैं, भूमि-सुधार किया है, खेती के औजार बनाये हैं नयी खेती-पद्धति का प्रचार किया है, और एक नयी पर्वतीय अर्थनीति का विकास किया है। वहाँ के लोग कहते हैं "विश्वविद्यालय हममें से हर एक के दरवाजे पर है।' •

शिक्षा में क्रान्ति

आचार्य रजनीश ने कहा है, 'आज की शिक्षा ने प्रकृति से तो मनुष्य को तोड दिया है, लेकिन सस्कृति उसम पैदा नही हो सकी है, उलटे पैदा हुई है–विकृति। शिक्षा व्यक्ति के चित्त को इतना बोझिल कर दे कि उसका जीवन से सीधा सम्पर्क छिन्न भिन्न हो जाय तो शुभ नही है। बोझिल और बूढा चित्त जीवन के ज्ञान, आनन्द और सौन्दर्य सभी से वचित रह जाता है। विचार भरने से चित्त थकता है, बोझिल होता है और बूढा होता है। विचार-सग्रह जड़ता लाता है। विचार को तो जगाना है।

आज सर्वत्र शिक्षा म क्रान्ति की बात कही-सुनी जाती है। प्रत्येक दिन समाचार पत्रो और पत्रिकाओ मे कुछ विचारको के मत एव सुझाव पढने को अवश्य मिल जाते हैं, परन्तु वह क्रान्ति, जिसकी चर्चा वर्षों से उद्विग्न किये हुए है, लगता है मृगमरीचिका की भाँति हमसे दूर भागती जा रही है। वास्तविकता तो यह है कि उस क्रान्ति का श्रीगणेश भी होने को अवशेष है।

शिक्षा की विसगति

क्रान्ति क्यो ? हमारी प्रचलित शिक्षा नये राष्ट्रीय सन्दर्भो म बेमेल सिद्ध हुई है। अब तक वह हमारे शिशुओ एव नवयुवको मे विचार भरने का साधन भर रही है, विचार जगाने का नही। यह शिक्षा स्वतत्र विचार करने की क्षमता जाग्रत करने म सर्वथा विफल साबित हुई है। दूसरे के विचारो को रट रटाकर कोई पीढी उद्बुद्ध नही हो सकती और हमारी शिक्षा आजतक

यही करती रही है और कर रही है। शिक्षा एवं परीक्षा दोनों में ही परीक्षार्थी के स्वतंत्र बुद्धि का उपयोग नहीं हो पा रहा है। शिक्षा के माध्यम से हमारा चित्त परतन्त्रता की सूक्ष्म जंजीरों में जकड़ गया है। चित्त को परतन्त्र बनाने की साजिश पहले धर्म ने और फिर राज्य ने की और उसके साधन के रूप में ढूंढ निकाला शिक्षा को। यही कारण है कि पहले शिक्षा पर धर्म हावी था और अब राज्य। लेकिन यह तय करना होगा कि इस प्रकार की शैक्षणिक विसंगतियों के मध्य हमारा स्वतंत्र राष्ट्रीय जीवन कब तक असहाय बना बिलखता रहेगा ?

शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए 'मनुष्य के अन्दर जो कुछ परम उदात्त है उसका प्रस्फुटन और विराम करना।' यही भारतीय आदर्शों के अनुरूप होगा, परन्तु हमारी आज की शिक्षा भय, प्रलोभन, ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा सिखाती है। यह शिक्षा महत्वाकांक्षा के ज्वर में दीक्षा देती है। ऐसी शिक्षा ज्ञान का प्रसारक कैसे होगी ?

शिक्षक विद्रोही बनें

आचार्य रजनीश के विचार से शिक्षक का कर्तव्य है—विद्रोह सिखाना। जिस दिन भी शिक्षा विद्रोही बनेगी, उसी दिन से एक बिलकुल नयी मनुष्यता का जन्म होगा। विद्रोह का तात्पर्य है मूल्यों में क्रान्ति। क्रान्ति का तात्पर्य है—परिवर्तन। जीवन-मूल्य बदलने होंगे। मनुष्य के लिए नये जो मूल्य चाहिए, उसके लिए एक बड़े विद्रोह की तैयारी आवश्यक है। शिक्षक के अतिरिक्त अन्य कोई भगीरथ नहीं है जो विद्रोह की गंगा को इस जगती पर लाने के लिए तैयार हो सके। किन्तु खेद की बात है कि आज के शिक्षक को झूठा मान देकर उसके अहंकार को पोषित किया जाता है, फिर उसके द्वारा नयी पीढ़ियों को पुराने ढांचे में ढालने का काम लिया जाता है। ऐसे उसका शोषण होता है। पुराने मूल्यों के खोखलेपन पर आधृत आज की शिक्षा नये युगानुरूप मनुष्य का निर्माण करने में सर्वथा अव्यावहारिक प्रमाणित हुई है। इसलिए इस जर्जरित शिक्षा एवं परीक्षा-प्रणाली के विरुद्ध आंदोलन छेड़ने के लिए शिक्षक समाज को ही आगे बढ़ना होगा।

आचार्य रजनीश कहते हैं कि शिक्षा पर मनुष्य की आत्मा को निर्भर करना है। जड़ संस्कारों का भार चेतना के बीज को अंकुरित ही नहीं होने देता। इसलिए शिक्षण की पद्धति ही आमूल बदलनी होगी। शिक्षक होना बड़ी साधना है। शिक्षक होने के लिए अत्यन्त विद्रोही, सजग और सचेत आत्मा चाहिए। जिस शिक्षक में ये गुण नहीं हैं, वह जाने-अनजाने किसी

स्वाथ, किसी धम सम्प्रदाय, किसी राजनीति का दलाल हो ही जायगा। शिक्षक के अन्दर एक अग्नि होनी चाहिए—चिन्तन की विचार की विद्रोह की।

शिक्षा प्रणाली बदले

मूल्य बदलते रहते हैं परिस्थितियाँ परिवर्तित होती रहती हैं। इसलिए साधन का परिवतनशील अथवा लचीला होना अपेक्षित है। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। बहुत से लोग गाधीजी की तुलना मार्क्स से करने लगते हैं परन्तु उनके अन्दर निहित वास्तविक भेद को नजरअन्दाज कर जाते हैं। मध्यकालीन सन्तो का मत था कि जीवन का परम लक्ष्य निजी मोक्ष है और उसका साधन सन्यास। मार्क्स ने इस बात को गलत ठहराते हुए कहा था कि मोक्ष व्यक्ति का नही समाज का होना चाहिए। तदन्तर गाधीजी आये और उन्होंने बतलाया कि मोक्ष तो व्यक्ति का ही होता है मगर उसका रास्ता सन्यास नही समाज-सेवा का काय है। मोक्ष किसका होता है और उसके साधन क्या हैं इसपर बदलते हुए मूल्यो का प्रभाव पडे बिना नही रहा। यह उपयुक्त उदाहरण म स्पष्ट है। इसी प्रकार जीवन के हर क्षेत्र म मूल्यो म अप्रत्याशित परिवतन हुआ है परन्तु हमारी शिक्षा और परीक्षा प्रणाली आज भी वही है जो शताब्दियो पूव थी।

ऊपर हमने कहा है कि शिक्षा आज राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने की साधन है कभी वह धम का अस्तित्व बनाये रखने की साधन थी। परन्तु जब से धम का स्थान राजनीति ने ले लिया तब से शिक्षा राज्य के रगो म प्राणसचार का साधन मात्र बनकर रह गयी है। विडम्बना यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत मे राज्य एव सरकार दोनो के स्वरूप म परिवतन हुआ है परन्तु हमारी शिक्षा और परीक्षा प्रणाली ज्यो-की-त्यो रह गयी है अथात् मैकाले की शिक्षा-परीक्षा प्रणाली म आज भी कोई परिवर्तन नही हुआ। ऊपर हमने आचाय रजनीश के इस विचार का भी उल्लेख किया है कि शिक्षक का कतव्य है—विद्रोह सिखाना अर्थात् मूल्यों मे परिवतन लाना। आज के शिक्षक के सम्मुख नये मूल्यो से सन्दर्भित पीढी नयी हो और शिक्षा की परिपाटी पुरानी हो इन दोनो मे मेल नही बैठता और वह अपने कतव्यो का पूरी ईमानदारी से निवहन भी नही कर पाता क्योकि समय का प्रतिबध पाठ्यक्रम का बधन प्रशासन की यातनाए और छात्रो की सामयिक जिज्ञासाओं ने (?) इस ममपिपासु को यदि कमकठित कर दिया हो तो कोई आश्चय की बात नही।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि विद्रोह के लिए शिक्षक को ही आगे आना होगा। वर्तमान शिक्षण प्रणाली से असहयोग एवं वर्तमान परीक्षा-प्रणाली से निष्क्रिय सहयोग हेतु कदम उठाना चाहिए। 'परीक्षा-प्रणाली से निष्क्रिय सहयोग' का तात्पर्य परीक्षा-काल में उत्तर-पुस्तिकाओं एवं प्रश्नपत्रों को मात्र वितरित कर देने एवं समयोपरान्त उत्तर-पुस्तिकाओं के संग्रह कर लेने से है। इस प्रकार की दूषित शिक्षा एवं परीक्षा का सीधा प्रभाव पहले शिक्षक पर ही पड़ता है। जाने-अनजाने इसकी लपेट में उसका बहुत-कुछ उत्सर्ग हो जाता है। बिना इस प्रकार के असहयोग आन्दोलन के उत्तरदायी लोगों के कान पर जूँ न रेंगेगी और इस ज्वलन्त प्रश्न की ओर किसी का ध्यान न जायगा। परीक्षा भवन में परीक्षार्थी क्या करता है? उससे शिक्षक का कोई सरोकार नहीं, शिक्षक 'शिक्षक' है, 'पुलिस' नहीं। उसका कर्तव्य शिक्षण है, पहरेदारी और रोकथाम नहीं। आज की बदली हुई परिस्थितियों के सन्दर्भ में शिक्षकों को अपने कर्तव्यों का पुनः निर्धारण करना आवश्यक है और तभी इस सड़ी हुई जर्जरित शिक्षा-परीक्षा-प्रणाली के ठेकेदार कुछ सोचने एवं करने को बाध्य होंगे।

सम्भव है, इस क्रान्ति में शिक्षा के हर पक्ष को न्यूनाधिक हानि उठानी पड़े, शिक्षकों का कुछ नुकसान हो सकता है और छात्रों को भी हानि उठानी पड़ सकती है। लेकिन इस संघर्ष से अंकुरित जो नयी शिक्षा-व्यवस्था आयगी वह अवश्य ही 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' होगी।

—प्रस्तुतकर्ता सोमनाथ लाल

अनिल मोहन गुप्त

पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण

पिछले चन्द वर्षों से भारत के अधिकतम राज्यो ने पाठय-पुस्तको का खासकर प्रारम्भिक स्तर पर राष्ट्रीयकरण करना शुरू कर दिया है। अनेक राज्यो के बोर्ड आफ सेकेन्डरी एजुकेसन भी अपनी अपनी पाठय-पुस्तके तैयार कराते है और प्रकाशित करते हैं। अप्रैल १९६९ म द नैशनल बोर्ड आफ स्कूल टेक्स्ट बुक्स की बैठक दिल्ली मे हुई। अन्यान्य प्रस्तावो के साथ इसने यह प्रस्ताव भी स्वीकृत किया विद्यालयो म दशवी श्रेणी तक पढायी जानेवाली पाठय-पुस्तको की राज्य सरकारो के अधीन और देखरेख म तैयार कराया जाय यह वाछनीय है। इससे इसके स्तर को सुधारना और इनपर लागत खच घटाना सम्भव हो सकेगा। जिन पाठयपुस्तको को ब्योरेवार नही पढाया जाता परन्तु जो इन वर्गो के लिए स्वीकृत की जाती है उनके निर्माण को भी राज्य सरकारें क्रम क्रम से अपने हाथ म ले ल। इस काम के लिए हर राज्य सरकार को एक क्रमिक कायक्रम तयार करना चाहिए। पाठयपुस्तको के निर्माण को प्राथमिकता देनी चाहिए। निजी क्षत्र म सिर्फ उन्ही पाठयपुस्तको का या ब्योरे वार अध्ययन के लिए चलायी गयी पुस्तको का निर्माण हो जिनका निर्माण राज्य सरकारो ने अभी अपने हाथो मे नही लिया हो।

यह प्रस्ताव सवसम्मति से पास कर दिया गया। इसके विरुद्ध चेतावनी देनेवाली एकमात्र आवाज उठी नगालैण्ड के राज्य शिक्षा मत्री श्री डब्ल्यू० काम्पो की। उन्होंने कहा पाठय-पुस्तको के राष्टीयकरण का अथ है कि

विद्यार्थियो मे सही दृष्टिकोण, आधुनिक विचार, चिन्तन मनन, और तर्कशक्ति का विकास हो, इस दृष्टि से पाठ्यपुस्तको का पुनर्निर्माण । इसके द्वारा सकुचित और प्रतिबन्धित ज्ञान देने से बचने की सावधानी रखनी होगी । उन्होने आगे इस प्रश्न को उठाया, "अच्छा लेखक पारितोषिक के लिए स्पर्धा म क्यो पडे ?" और 'जो असाधारण प्रतिभावाले हैं उनकी लिखी किताबो को जाँचनेवाली कमिटी का सदस्य कौन होगा ?' उनका कथन अरण्य रोदन साबित हुआ । किसी ने उस पर कुछ भी ध्यान नही दिया । तथापि यह मानने के यथेष्ठ वजनवाले तक हैं कि बोर्ड का निर्णय अपरिपक्व चिन्तन पर आधारित है। इस निर्णय से भारत ने गणतान्त्रिक विकास को और उसकी शिक्षा प्रणाली के वैज्ञानिक प्रसार को भारी धक्का लग सकता है ।

यह तर्क दिया जाता है कि पाठयपुस्तको और अन्य पाठ्य-सामग्रियो के राष्ट्रीयकरण से पुस्तको के मूल्य म बहुत कमी आयेगी और उससे अभिभावको का बोझ हल्का होगा। इसमे शक नही कि उत्पादन म एकाधिकार होने से खर्च एव मूल्य कम किया जा सकता है । परन्तु असल प्रश्न है किसी गण-तान्त्रिक देश मे आर्थिक चेष्टा का एकाधिकार क्या वाछनीय है ? यदि यह ठीक है तो फिर हम बडे-बडे व्यवसायियो के विरुद्ध गला फाड-फाडकर क्यो चिल्लाते हैं ? यदि किसी व्यावसायिक प्रकाशक सस्था ने विद्यालयो के सभी पाठय-पुस्तको एव विद्यार्थियो के अन्य पाठय-सामग्रियो के प्रकाशन का एकाधिकार प्राप्त किया होता तो वह अधिक कम मूल्य म उन्हें प्रकाशित करता । कारण स्पष्ट है प्रकाशन का उसका विशिष्ट ज्ञान उसका सुसगठित कारबार, पुराना अनुभव गहरी तह मे बैठा हुआ उसका आर्थिक स्वार्थ और इस उद्योग मे उसकी सुविकसित रुचि । सरकारी व्यवस्था तो इस काम के लिए निश्चित रूप से अयोग्य है । लोग सरकारी नौकरियो मे इसलिए नही आते कि वे होशियार व्यवसायी हैं अथवा आर्थिक खतरे उठाने मे उन्होने विशिष्टता प्राप्त कर ली है बल्कि इसलिए कि वहाँ वे इन झझटो से बचे रहते हैं। सरकारी नौकरो का रुख अवैयक्तिक होता है। फिर उनकी जगह हरदम अस्थिर होती है। इसलिए कम-से कम खर्च मे पुस्तक किस तरह तैयार होगी इस बात मे वे न तो अपनी रुचि विकसित करते हैं और न उसम विशिष्टता हासिल कर पाते हैं ।

पाठ्य-पुस्तको के उत्पादन का खच निकालते समय सरकार से प्राय यह भूल होती है कि पुस्तको के उत्पादन और वितरण में लगनेवाले सब खर्चों को वह नही जोडती । पाठ्य-पुस्तक के निर्माण म जितने लोगो की शक्ति लगती है

उन सबका यदि खर्च कूता जाय तो पुस्तक का मूल्य जितना कम दिखलाया जाता है वह उतना कम होगा इसम बहुत सन्देह है।

पर यदि राज्य सरकारें बहुत ही कम दाम पर पुस्तक बाजार म भज भी दें तो भी इसस अभिभावकों को बहुत सहायता नही मिलेगी। सरकारी अफसर खरीदे जाने (पूस) के परे नही हैं। आज की हालत म नोटबुक अपरिहार्य हैं। अधिकतर तो देखा यह जाता है कि राष्ट्रीयकरणवाली किताबें खुले बाजार म आने के पहले नोट बाजार म पहुच जाती है। बेईमान प्रकाशक नाटबुक तैयार कर उनके बहुत ऊँचे दाम रखते है और फिर इनके बिना पाठ्यपुस्तकें को बेचते ही नहीं। इस हालत में अभिभावकों को तो ऊँचे दाम देने ही पडते हैं। वग का वष प्रारम्भ होने के समय राष्ट्रीयकृत पाठय-पुस्तकें उपलब्ध नही होती। इससे बहुत झपझा पैदा हो जाता है। पुस्तकें खोजने के लिए अभिभावकों को खासकर गांवा म रहनवाल अभिभावकों को बार-बार दूर-दूर की यात्रा करनी पडती है। एसी हालत म पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण के प्रस्ताव का पहलू बडा ही फीका और अनाकर्षक है।

यह तो सब लोगो को मालूम ही है कि शिक्षकों का, खासकर प्रायमरी पाठ शालाओं के शिक्षकों को, कितना कम वेतन दिया जाता है और वे कितने अधिक उपेक्षित है। यह अब खुला रहस्य है कि प्रकाशक किस तरह उन्ह घूस देकर अपनी प्रकाशित पुस्तकें उनके विद्यालयो म चलवाते है। इनसे यह आसानी स समझ म आ सकता है कि पाठय पुस्तको के राष्ट्रीयकरण से उन्हे क्रोध होता है। दुर्भाग्य की बात यह है कि हमारे देश के प्रौढ जनसमुदाय का बहुत बडा भाग निरक्षर और इन बातो से अपरिचित है इस कारण उन्हे ज्ञान ही नही हैं। वे हृदय से इस बात म विश्वास करते हैं कि उनके बच्चो को जितनी अधिक किताबें 'पढायी जायेंगी उनको उतना अधिक ज्ञान होगा। नतीजा यह होना है कि बच्चो के लिए जितनी पाठय-पुस्तके और अन्य पाठन सामग्री नियत की जाती है उससे कई गुना अधिक बोझ उनपर पडता है। राष्ट्रीयकरण के बावजूद बच्चों और अभिभावकों को कष्ट उठाना पडता है। दूसरी ओर भूखे शिक्षकों को कुछ खिला पिलाकर प्रकाशक माल उडाते है। प्रायमरी और माध्यमिक विद्यालयो मे पुस्तकालय करीब-करीब नही है, कही-कहीं नाम मात्र के है। इस अभाव के कारण बच्चों से अधिक किताब खरीदवाना शिक्षक की विद्वता का स्वरूप ले लेता है। विद्यालयो का निरीक्षण कितना ढीला ढाला है, इसे सब जानते हैं। इस कारण यह आर्थिक बोझ वर्ष दर वर्ष चलता रहता है।

प्राय: होता यह है कि राष्ट्रीयकरणवाली पुस्तकों के वितरण और हिसाब रखने का काम विद्यालय निरीक्षकों पर थोप दिया जाता है। अनिच्छा से लगने पर भी महीनों उन्हें व्यापार के इस काम में बधना पड़ता है और इससे उनका सामान्य काम उपेक्षित होता है। यह सर्वविदित है कि अपने देश में शैक्षिक निरीक्षण सन्तोषजनक नहीं है। निरीक्षकों पर निरीक्षण के लिए दिये गये विद्यालयों की संख्या का बोझ भारी रहता है। विद्यालय निरीक्षकों के माफत राष्ट्रीयकृत पाठ्य-पुस्तकों के वितरण में अनेक संगठनात्मक तथा आर्थिक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। इससे उनके अपने काम की दक्षता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उससे अनेक दूसरी समस्याएं पैदा होती हैं और शैक्षिक प्रगति में बहुत ऐसी बाधाएँ आती हैं जिनका लेखा-जोखा रुपयों-पैसों में नहीं लिया जा सकता।

दूसरा पहलू यह है कि पाठ्यपुस्तकों के राष्ट्रीयकरण से यह माना जाता है कि उनके स्तर में सुधार होगा। बातों को बहुत सरल करके देखने से इस तरह की मान्यता बनती है। इसमें शक नहीं कि केन्द्रीय और राज्य सरकारों में यह शक्ति है कि वे आज से अच्छी पाठ्यपुस्तकों एवं अन्य पाठ्य सामग्रियों के निर्माण में सहायता देकर बहुत प्रभावपूर्ण पार्ट अदा कर सकती है। वे देश विदेश से शिक्षण में सम्बन्धित सूचनाएं एवं पाठ्यपुस्तकों की सामग्री के स्रोत उपलब्ध कर लेखकों और प्रयोगकारों को दे सकती हैं। प्रयोगों से प्राप्त उपलब्धियां को सभी प्रयोगकारों तक पहुंचाने में वे समय माध्यम का काम कर सकती हैं। आज वे यह काम एन० सी० इ० आर० टी० (नेशनल कमिटी आफ एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग) राज्य शिक्षण-संस्थान (स्टेट इन्स्टीच्यूटस आफ एजुकेशन) एवं विश्वविद्यालय शिक्षा विभाग द्वारा करती है। इससे आगे बढ़कर वे यह भी कर सकती हैं कि पूरे देश में अनेक प्रयोग विद्यालय स्थापित कर विभिन्न विषय पढ़ानेवाले शिक्षकों के अध्ययन दल बनायें और आवश्यकता पड़ने पर योग्य लेखकों को आर्थिक सहायता दें। इन क्षेत्रों में व्यक्तिगत पहल करनेवाले स्वयं बहुत कुछ नहीं कर पाते। सरकार इन क्षेत्रों में मदद करे इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह सभी पाठ्य-सामग्रियों पर एकाधिकार कर ले।

राष्ट्रीयकरण के दोष

ऊपर जिन निर्णयों का जिक्र किया गया है उनके खतरनाक खामियों पर कोई खास ध्यान नहीं दिया गया है। संक्षेप में वे ये हैं।

(क) अच्छे लेखक जन्मजात होते हैं। अपनी मर्जी और आवश्यकता के मुताबिक उन्हें गढा नही जा सकता। ट्रेनिंग से उनकी दक्षता थोडी बढ सकती है परन्तु लिखते तो वे स्वय अनुभूति से हैं। राष्ट्रीयकरण से स्वत. स्फूर्ति (स्पान्टेनियटी) का गला घुंट जायगा और उदीयमान लेखक को जब तक लोग पहचान पायेंगे उसके पहले ही वे हिम्मत हार बैठेंगे। बाजार का जब कोई ठिकाना ही न हो और क्षेत्र जब बहुत सकुचित हो तो कोई लिखे किसके लिए? बच्चो के लिए किताबें लिखनेवाले अच्छे लेखको की सख्या बहुत है नही। राष्ट्रीयकरण से उनके पूर्ण विकास में बहुत कठिनाइयां खडी होगी।

(ख) इस कथन से इनकार करना निरर्थक है कि हमलोगो ने प्रशासन का जो ढांचा विरासत मे पाया है वह अत्यन्त ही अफसरशाही और अधिकारवादी प्रवृत्ति का है।

आजादी के बाद स्वतत्र राष्ट्र की आकाक्षाओ की पूर्ति के अनुरूप इस ढांचे को पुनर्गठित करने का करीब-करीब कोई प्रयास नही हुआ। सरकारी अधिकारियो का जो मिथ्या वैभववाला दम्भ होता है उसका सरक्षण प्राप्त करने के लिए उसके आगे आत्म-सम्मान की बलि देने और घुटने टेकने की बात शायद ही किसी ख्याति प्राप्त लेखक के गले उतरे।

'सर्वोत्तम व्यक्तियो का—लेखको, समालोचको, स्तर-निर्धारको (मॉडरेटर्स) आदि का—चुनाव, 'उपयुक्त चुनाव समितियो' का गठन, 'उचित पारिश्रमिक' का भुगतान, आदि चीजो को, यदि पूर्णत न भी सही तो, यथार्थत इस ढांचे के ही हाथ मे छोडना पडेगा। ऐसे चुनावो के पीछे राजनैतिक दांव-पेच के खतरे भी रोज-रोज बढते ही जा रहे है। ऐसी हालत मे राष्ट्रीयकरण का अर्थ सिर्फ यह होगा कि भ्रष्टाचार एव पक्षपात को जन्म देनेवाले अरखेज अवाछित क्षेत्र का और अधिक फैलाव किया जाय। इस रोग से हमारा राष्ट्रीय चरित्र इस तरह ग्रसित हो रहा है कि 'मूल्यो की चेतना' बेतहाशा वेग से खत्म हो रही है। क्या इसे और गतिशील बनाया जाय?

(ग) आमतौर पर सभी सरकारें, और खासकर गणतात्रिक देशो की सरकारें, उनलोगो की प्रतिच्छाया होती है, जिन पर वे शासन करती है। आम लोगो की राय के अनुकूल वे झुकते रहे यह सम्भावना तो है ही। हमारे देश के प्रौढ समुदाय मे से ७० प्रतिशत निरक्षर और अनभिज्ञ है। ऐसे लोगो की राय निश्चित रूप से पुरातनवादी और एक हद तक प्रतिक्रियागामी होगी। ऐसी हालत मे गणतात्रिक सरकार को कम-बेस यथास्थितिवादी एव अप्रगतिशील होना ही

पडगा । दूसरी ओर शिक्षा तो प्रगति का ही नाम है इसम समझौते की कोई गुजाइश नहा । सत्य ही इसका एकमात्र लक्ष्य है और प्रगति इसकी श्वास-वायु है । सरकार कोई भी नया प्रयोग करन म समथ नहा होती कारए वे बनी और टिकी ही रहती हैं कुछ पूव निर्मित मूल्यो के सहारे । सरकार चलानेवालो की चिन्ता समाज की यथास्थिति को बनाय रखने की रहती है कारए प्रचलित मूल्यो के पोषए के बल से ही सत्ता उनके हाथ म आयी होती है । फिर उनके दल जिन मूल्यो का प्रचार करते रहते हैं उनकी हिफाजत करते रहना वे अपना धम मानते हैं । आखिर दल की ही शक्ति से वे सत्ता म आय हुए होते हैं । उनकी तमन्ना मात्र एक ही हो सकती है और वह यह कि तथा-कथित प्रयोगो द्वारा उनके कथनो का समथन होता रहे और उनका शासन-यन्त्र उनके कथनो एव विचारो को लोगो म फलाता रह । दूसरे शब्दो म इसका अथ यह हुआ कि सरकार चाहे कुछ भी कहे—प्रगति की भाषा कितनी भी क्यो न बोले—सरकार द्वारा सभी पाठ्य-ग्रन्थो के एकाधिकार मे घिसे पिटे उपदेशो (इनडाक्ट्रिनेशन) को बच्चो के सिर थोपे जाने को बढावा मिलेगा । इसलिए शुद्धि की दृष्टि से पुस्तको को सुधारने के बदले यह तथ्यो को तोड मरोड कर प्रस्तुत करेगी । नतीजा यह होगा कि सत्य इसका सबसे पहला शिकार होगा ।

(घ) पाठ्यपुस्तको के राष्ट्रीयकरण से प्रतियोगिता अवरुद्ध होगी और मुक्त उपक्रम (फ्री इटरप्राइज) का रास्ता बन्द होगा । इससे जो परिस्थिति पदा होगी उसम ऊचा स्तर बनाये रखन के लिए उत्कट और सतत चेष्टा की वृद्धि के लिए स्वस्थ वातावरण शायद ही रहे । एकाधिपत्य से आलस्य को बढावा मिलता है प्रगति की गति धीमी पड जाती है और गुण-स्तर घट जाता है ।

(ङ) अन्तिम बात । जब सरकार ही पाठ्य ग्रन्थो की रचयिता और उनको परखनेवाली उसका स्तर निर्धारण करनेवाली बनती है तब पुस्तको के गुण स्तर पर वह जो भी राय प्रगट करेगी वह पूव आग्रह युक्त होगी ही । गरणतन्त्र म एक के बाद दूसरी सरकार जल्दी जल्दी बदल सकती है । परन्तु उनकी गलतियो और पूर्वाग्रहो को पाठ्यग्रन्थो म जो सुरक्षित कर दिया जायगा उससे बढने वाली पीढी की बुद्धि प्रभावित होती रहेगी । इसका असर राष्ट्र के भविष्य पर पडगा । उससे राष्ट्र का अधिक नुकसान होने की सम्भावना है ।

एक दावा यह किया गया है कि पाठ्य-पुस्तको के राष्ट्रीयकरण से एकरूपता आयेगी । यह कहा गया है कि राष्ट्र की एकात्मकता के विकास के लिए तथा कई अन्य उद्देश्यो की सिद्धि के लिए देश म कुछ पाठ्य-पुस्तको को समान होना

आवश्यक है।" यह भी माना गया है कि पाठ्य-पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण से राष्ट्रीय एकता बढ़ेगी।

राष्ट्र के सभी बच्चे यदि एक ही पाठ्य-पुस्तक पढ़ें, एक समान ही तथ्य कंठाग्र करें, जो तथ्य उनके सामने एक समान ही रूप में प्रस्तुत किये गये हों, तो उनकी धारणा एक रूप में ढलेगी, इसमें सन्देह नहीं। पर मूल प्रश्न यह है कि क्या यह वाछनीय है? क्या इससे बच्चे के पूर्ण विकास में सहायता मिलेगी?

(अ) प्रयोगों ने निर्विवाद रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि बच्चों को अपने अनुभवों से और अपनी अभिव्यक्तियों द्वारा नवीन पाठ सीखना शुरू करना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी पाठ्य-पुस्तकों में जो सामग्रियाँ रहें वे उनके आसपास के वातावरण से प्राप्त की गयी हों। उन सामग्रियों का जीवन से नजदीक का सम्बन्ध हो। पाठ्य-पुस्तकें ऐसी हों जिनसे बच्चों को अपने रोज-रोज के प्राप्त अनुभवों में से सार्वत्रिक सिद्धान्त खोज निकालने में सहायता मिले। यह निष्कर्ष यदि ठीक है तो केन्द्रित रूप से तैयार किये गये और प्रकाशित पाठ्य-पुस्तकों से, जिनसे सीखनेवालों के जीवन की परिस्थिति से शायद ही कोई ताल-मेल बैठता हो, बच्चों को सहायता के बदले बाधा ही अधिक होगी। ऐसी पुस्तकों को समालोचनात्मक ढग से समझने और उनके तत्त्वों को ग्रहण करने के बदले विद्यार्थी उन्हें सिर्फ रट लेंगे, इसकी सम्भावना अधिक है।

(आ) यह बात भी अब निर्विवाद रूप से सिद्ध हो गयी कि रुचि, योग्यता, दृष्टिकोण, वृद्धि-दर (बुद्धि और शरीर के विकास की गति) में एक बच्चा दूसरे से भिन्न होता है। एक ही उम्र और एक ही बुद्धि-स्तर के बच्चों में भी ये वैयक्तिक अन्तर काफी अधिक होते हैं। उन लोगों को एक ही पाठ्य-पुस्तक से पढ़ाकर उनके विकास में एकरूपता नहीं लायी जा सकती।

आधुनिक शिक्षण-पद्धति की माँग यह है कि हर बच्चे को एक व्यक्ति मान कर बरता जाय। अपने अनुसन्धान से सीखने का उन्हें अवसर मिले। उन्हें सिर्फ बता-बता कर न सिखाया जाय (स्पून फीडिंग नहीं हो)। उत्तरोत्तर बढ़ा हुआ ज्ञान देनेवाली (ग्रेडेड) पाठ्य-पुस्तकों के सहारे वे सहायता लेना सीखें जो पुस्तकें उनकी व्यक्तिगत योग्यता और रुचि के अनुकूल हों। एक ही किताब से सब बच्चों को ऐसी सहायता मिल जाय, यह सम्भव नहीं। शिक्षण से बच्चों में यह क्षमता विकसित हो जाय कि वे पुस्तकालय की किताबों का उपयोग कर सकें। इसके लिए मात्र एक पाठ्य-पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ लेना

यथेष्ट नहीं है। नीरस एकरूपता से उनका विकास सम्भव नहीं। उनकी योग्यता और विविध रुचि के अनुकूल उन्हें पुस्तकें चाहिए जिनके आधार पर उनका ओजपूर्ण विकास हो। सबको, एक पूरे वर्ग को भी, एक ही पाठ्य-पुस्तक से पढ़ाने की धारणा अब एकदम पुरानी पड़ गयी है और अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुकी है।

(इ) इसके अतिरिक्त भारत में एक नीरस एकरूपता है नहीं। उसकी संस्कृति का निचोड़ यह है कि उसकी गोद में जो विविध लोग रह रहे हैं वे बुद्धिपूर्वक एक-दूसरे को समझें और आदरपूर्वक एक-दूसरे के साथ रहें। राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के ही संरक्षण में तैयार किये गये पाठ्य-पुस्तक से इस लक्ष्य के साथ शायद ही कुछ न्याय हो—क्योंकि वे किताबें चन्द लोगों द्वारा तैयार की गयी रहेंगी, वे चाहे कितने भी बुद्धिमान क्यों न हों, सबके लायक सामग्री उनकी कल्पना के बाहर की चीज है।

(ई) एक बात और। वर्तमान स्थिति में इस प्रस्ताव के राजनैतिक सम्भावनाओं को ध्यान में रखकर इसपर विचार किया जाना चाहिए। राजनैतिक रूप से अब भारत में कई दलों का प्रभाव है। उस समय भी जब केन्द्र और राज्यों में एक ही दल के हाथ में शासन था तब भी राज्य संकुचित बातों के लिए आपस में तथा केन्द्र से भी लड़ते थे। एक राज्य की दूसरे के साथ कटुता अब कुछ बढ़ी ही है। अधिकतर राज्यों की सरकारें अस्थिर हो गयी हैं। कई राज्यों में संयुक्त सरकारें हैं। सरकार में शामिल दलों के राजनैतिक आदर्श भिन्न हैं। देश के सामने जो समस्याएँ हैं वे उनका जो ऐतिहासिक, राजनैतिक और आर्थिक विश्लेषण करते हैं एवं उनके जो समाधान पेश करते हैं वे एक-दूसरे से मेल नहीं खाते। वर्तमान विचित्र परिस्थिति में महत्वहीन छोटे-छोटे अल्प-संख्यक दलों को भी बेहद अधिक महत्व मिल जाता है। वे शिक्षा पर हानिकारक प्रभाव डाल सकते हैं। आज भी इस देश में वोट अधिकतर जाति और धर्म के आधार पर दिया जाता है। नतीजा यह है कि अधिकतर राजनैतिक दलों में ऐसे प्रभावशाली गुट हैं जो इन स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते हैं। दबाव डालनेवाले ये गुट पाठ्य-पुस्तक तैयार करनेवाली सरकारी यंत्र पर इतना अधिक प्रभाव डाल सकते हैं कि पाठ्यपुस्तक में तथ्य तोड़-मरोड़ कर रखे जायें जिससे उनके गुट का हित सधे।

इसके अलावा, स्वराज्य के दिनों में आम लोगों की कठिनाइयाँ बहुत बढ़ी हैं। उनका क्षोभ अब हिंसापूर्ण विस्फोट के चौखटे के करीब आ चुका है।

ऐसे राजनैतिक दल मौजूद है जो इन सही या काल्पनिक दुखो का उपयोग कर अपना मतलब गाँठना चाहते है। वे उनके क्रोधाग्नि से अपने दल का हित साधने की ताक मे तुले बैठे है। उनका विश्वास न तो गणतात्रिक लक्ष्या मे है और न अहिंसक साधनो मे। वे विभिन्न कारणो से विभिन्न स्थानो मे सत्ता म आ रहे हैं। उनके विश्वास म य सब अध्याय पहले से मौजूद हैं राजनैतिक स्वार्थों की सिद्धि के लिए शिक्षा का उपयोग करना, सामाजिक विज्ञानो का एक खास बँधी दृष्टि से माप्य करना, भौतिक विज्ञान के अध्यापन का भी उपयोग अपने आदर्शों की सिद्धि म करना, आम लोगो को उभाडने के लिए असत्य और अर्द्ध-सत्य का उपयोग करना। इस तरह उनके द्वारा वे अपने दल के स्वार्थ की सिद्धि करते हैं।

ऐसी स्थिति म राज्य सरकारो को यदि सभी पाठ्यपुस्तको के निर्माण का एकाधिकार दे दिया जाता है तो इस बात की हर क्षण सम्भावना है कि देर या सवेर, उन पुस्तको की सामग्री राष्ट्रीय एकता को बढावा देने के बदले बेतुकी, तोडी-मरोडी बातो और मिथ्या वर्णनो से भर जायें। उन पुस्तको मे दल के एक टुकडे के हित साधन के लिए जो राजनैतिक अर्द्ध सत्य कथन होंगे, उनकी जडें बढनेवाली पीढी के मन पर जमेगी जिससे भविष्य मे देश का अहित होगा।

इसलिए यह आवश्यक है कि पाठ्य-ग्रन्थो के राष्ट्रीयकरण के खतरो से लोग शीघ्र अवगत हो जायें और उसके विरोध म बुलन्द आवाज उठायें।

(मूल अंग्रेजी मे)—अनुवादक हेमनाथ सिंह

नयी तालीम सम्मेलन

सव सेवा सघ द्वारा निर्मित नयी तालीम समिति के तत्वावधान मे अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन, सेवाग्राम, वर्धा महाराष्ट्र मे १६ और १७ दिसम्बर १९७१ को सम्पन्न होगा। बुनियादी शिक्षण-सस्थाओ के शिक्षक, सर्वोदय कार्यकर्ता, जो रचनात्मक काम तथा ग्रामदानी क्षेत्रो मे शिक्षण का काम कर रहे है, शिक्षक और अन्य व्यक्ति जो गाधीजी द्वारा बताये गये शैक्षणिक समस्याओं क हल म अभिरुचि रखते है, उन सबको इस सम्मेलन मे भाग लेने के लिए आमन्त्रित किया जाता है।

श्रीमती द० दे० राय

अध्यापक-प्रशिक्षण में गुणात्मक नियंत्रण

इधर गत वर्षों म अध्यापक प्रशिक्षण म गणना की ओर ध्यान दिया गया ताकि अधिक-से अधिक प्रशिक्षित अध्यापक शिक्षा का प्रसार कर सकें। शिक्षा की कमी की पूर्ति के लिए तुरन्त अध्यापको की बहुतायत की आवश्यकता है। अतः इस ओर विशेष ध्यान देकर अनेक प्रशिक्षण सस्थाओ का निर्माण किया गया तथा प्रशिक्षित अध्यापको की गणना म सन्तोषजनक वृद्धि की गयी।

अब स्थिति यह है कि प्रशिक्षित अध्यापक अधिक सख्या म तैयार होते है और उनको अपना व्यवसाय प्राप्त करने म कठिनाई होती है। कुछ अध्यापक बेकार भी रह जाते है। अब समय आ गया है कि अध्यापको के प्रशिक्षण म गुणात्मक नियत्रण किया जाय और कायक्रम बनाकर प्रतिवर्ष उतनी सख्या म अध्यापक तैयार किये जायें जो सफल होने पर काय प्राप्त कर सकें।

शिक्षक प्रक्रिया का आधार अनेक तत्वो पर रहता है परन्तु यह क्रिया मुख्यत शिक्षक एव शिक्षार्थी के सहयोग से निरन्तर अविरल गति से प्रवाहित होती रहता है। इस क्रिया को उन्नत बनाने मे पाठ्य-पुस्तकें पाठ्यक्रम तथा अन्य उपकरणों का हाथ तो होता ही है परन्तु इन सब मे प्रधान है अध्यापक का गुण एव उसकी विशेषता। अध्यापक से तात्पय उसकी शिक्षण-कला मे है। व्यक्ति म अनेक प्रवृत्तियाँ प्रकृतिदत्त होती हैं। ऐसी प्रतिभा के निर्वाचन मे सावधानी स कायक्रम करना चाहिए। इस विषय मे गुणात्मक नियत्रण पर विचार करन के लिए हम तीन बातो पर ध्यान देना होगा। १—भरती (input) अर्थात छात्राध्यापक जो इस क्षेत्र म भरती हो। २—वातावरण की श्रेष्ठता जिसकी प्रतिक्रिया से उनका मानसिक तथा सर्वांगीण तथा सामाजिक स्तर उन्नत होगा।

३—शिक्षक निर्माण (out put) जो अध्यापक इस प्रतिक्रिया से तैयार होंगे उनका मूल्याकन उपादेयता तथा समाज म स्थान।

अध्यापक समाज का निर्माता है। वह भावी नागरिको का सर्वांगीण विकासकर्ता है। वह समाज का गुणात्मक उन्नयन करता है। अत यह अनिवाय है कि भारत को आज के विश्व की उन्नति की दौड मे वरिष्ठ स्थान देने के लिए अच्छे गुणोवाल उच्च श्रणी के अध्यापक तैयार किये जायँ तथा उनके निर्माण मे गुणात्मक नियत्रण किया जाय। किसी भी देश के पुनर्निर्माण म उन्नत शिक्षा का पथ महत्त्वपूण है। शिक्षा का गुणात्मक उन्नयन शिक्षक की योग्यता उसके मानसिक स्तर एव उसकी भावी आकाक्षाओ पर निभर है। अत प्रशिक्षण विद्यालयो म जहा हमारे अध्यापको का निर्माण होता है ऐसी विधिया ग्रहण करनी अभीष्ट होगी जिनसे कि प्रशिक्षार्थियो का गुणात्मक नियत्रण हो तथा उच्चस्तरीय अध्यापक तैयार हो।

शिक्षक का चुनाव

शिक्षा को उन्नत एव नियत्रित दिशा दने मे प्रशिक्षण विद्यालयो का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूण है। प्रशिक्षण विद्यालय एक वकशाप के समान है और उसकी सफलता एक उच्च गुणोवाले अध्यापक के निर्माण म है। अध्यापक शिक्षा का गुणात्मक नियत्रण यही से प्रारम्भ होता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सवप्रथम हमे प्रशिक्षण विद्यालयो म प्रवेश के लिए निर्वाचन म सावधानी बरतनी होगी। यह काय यद्यपि कठिन है परन्तु शिक्षण कला को महत्त्वपूण बनाने मे हम निर्वाचन करते समय विशेष ध्यान देना होगा। अयोग्य तथा निम्न श्रणी के विद्यार्थियो के निर्वाचन से हम शिक्षण को समुन्नत नही बना सकते। यदि हम शैक्षिक व्यवसाय के प्रवेश मे उत्तम एव योग्य व्यक्तियो का प्रवेश नही करते तो हम किसी भी सृजनात्मक आदशवाद को अपने देश मे प्ररणा नही दे सकते। प्रशिक्षण विद्यालयो म प्रवेश के चुनाव म क्रियात्मक एव उचित विधियो को अपनाना चाहिए।

इस व्यवसाय के लिए केवल ऐसे प्रशिक्षार्थी चुने जायँ जिनकी प्रशिक्षण काय म रुचि हो जिनके हृदय म मानव-सेवा की भावना हो तथा इसके साथ साथ उनकी शैक्षिक योग्यता भी उच्चस्तरीय हो। इसकी जाँच करने के लिए, निर्वाचन करत समय हमे अभ्यर्थियो के एकत्रीभूत रेकड की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। इनम हम उनकी शैक्षिक योग्यता के साथ-साथ उनकी सामाजिक रुचि, क्रियात्मक अभिरुचियाँ प्रकृति व्यवहार-कुशलता, अनुशासन की गुणात्मक प्रवृत्ति का वास्तविक चित्र मिलगा। यह भी देखा जाय कि अभ्यर्थी

ने अपने शिक्षा-काल में सहगामिनी क्रियाओं में (जैसे खेल, सांस्कृतिक कार्यक्रम, आदि में) कितनी रुचि ली है तथा उसका व्यवहार कैसा रहा है।

इसके साथ-साथ प्रवेश के लिए चुनाव के समय अभ्यर्थी की शैक्षिक योग्यता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए। उसके प्रवेश के लिए चुनाव-परीक्षा में योग में प्राप्तांक कम-से-कम ५० % हो, तथा जिस विषय में वह विशेष योग्यता प्राप्त करना चाहता हो उसमें उसका प्राप्तांक न्यूनतम ६० % हो। उदाहरण-स्वरूप यदि कोई व्यक्ति विज्ञान का विशेष अध्यापक बनना चाहता है तो उसका विज्ञान में ६० % प्राप्तांक होना चाहिए। इस प्रकार चुनाव करने से प्रशिक्षण पर गुणात्मक नियन्त्रण सम्भव है तथा इस प्रकार एक अच्छे अध्यापक का निर्माण सम्भव होगा। योग्य व्यक्तियों के प्रवेश से शैक्षिक भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ जायगी। और हम एक नये आदर्शवाद को जन्म दे सकेंगे। मौलिकता एवं नैतिकता उत्पन्न करना कोई एक या दो मास का काम नहीं यह प्रक्रिया तो निरन्तर चलती रहती है पर इसका बीजारोपण यहीं होता है। अभी तक हमारी योजनाएँ केवल संख्यात्मक वृद्धि में सफल हुई। अधिकांश व्यक्ति दुर्भाग्यवश शिक्षण-कार्य में रुचि से प्रवेश नहीं करते वरन् हीन आर्थिक अवस्था के वशीभूत होकर आते हैं। अन्य व्यवसायों में वे प्रवेश नहीं पा सकते, अतः शिक्षण-कार्य में प्रवेश पा लेते हैं। परन्तु अब समय आ गया है कि इस दिशा में ध्यान दिया जाना चाहिए। गुणात्मक नियन्त्रण का अर्थ है राष्ट्र में गुणात्मक उन्नयन करना और देश के भविष्य को उन्नत करना।

शिक्षक प्रशिक्षक का चुनाव

शिक्षक प्रशिक्षण के लिए अच्छी योग्यतावाले चुने गये प्रशिक्षार्थियों में उच्चस्तरीय योग्यता तथा गुणों का उन्नयन करने के लिए यह अनिवार्य होगा कि प्रशिक्षण विद्यालयों के प्रवक्ता भी श्रेष्ठ शैक्षिक योग्यतावाले अनुभवी, सदाचारी कर्तव्यपरायण एवं अध्ययनशील हों। उनके हृदय में अपने छात्रों का उच्चस्तरीय निर्माण करने की सराहनीय लगन हो। वह अपने प्रशिक्षार्थियों में रुचि लें तथा उनमें जीविका उपार्जन के अतिरिक्त निःस्वार्थ मानव-सेवा देश-सेवा, आदि दृष्टिकोण विकसित करें। प्रशिक्षण विद्यालयों में ऐसे प्रवक्ता भेजे जायें जो अपने सेवाकाल में विभाग में प्रशंसनीय कार्य कर चुके हों तथा उनमें सेवा भाव हो। ऐसे प्रवक्ताओं की नियुक्ति में प्रधानाचार्य का भी मत एक सीमा तक होना चाहिए। प्रशिक्षण विद्यालय के प्रधानाचार्य भी ऐसे व्यक्ति होने चाहिए जो अपनी योग्यता, व्यवहार एवं व्यक्तित्व से प्रशिक्षार्थियों

पर गुणात्मक उन्नयन कर, भावना को प्रतिबिम्बित कर अपनी छाप अपने कार्यकर्ताओ एव अपने प्रशिक्षणार्थियो पर डाल सकें तथा उनमे अनुप्रमाणित कर सकें।

शिक्षक प्रशिक्षण म गुणात्मक नियत्रण रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रशिक्षण विद्यालयो के भवन, साज सज्जा, पुस्तकालय आदि भी उचित स्तर के हो। प्रशिक्षार्थियो को इससे एक उचित वातावरण मिलेगा। इन विद्यालयों के कायक्रम, क्रियाकलाप भी सुयोजित हो जो कि प्रशिक्षार्थियो को एक अच्छा अध्यापक बनाने म सहायक हो तथा उनम अन्वेषण एव कलात्मक शक्ति जाग्रत कर सकें।

परीक्षा

अब हमारा ध्यान प्रशिक्षण विद्यालयो की परीक्षण विधि की ओर भी जाना आवश्यक है। यह विधि ऐसी होनी चाहिए जिससे हम यह जाँच वास्तविक रूप म कर सक कि हमारे प्रशिक्षार्थी ने वास्तव म अच्छे स्तर की योग्यता प्राप्त की या नही। इनके पास डायरी होनी चाहिए जिससे इनकी मासिक जाँच तथा सहगामिनी क्रियाओ तथा सामाजिक गुणो का प्रतिमास मूल्याकन हो। यह प्रशिक्षार्थियो को प्रारम्भ स उक्त उद्देश्य प्राप्ति के लिए एक मनोवैज्ञानिक प्रेरणा भी देगा। प्राय देखा गया है कि वर्ष भर ध्यान न देकर छात्राध्यापक सत्र के अन्तिम कुछ महीनो म प्रयत्न कर परीक्षा म अक प्राप्त करने की लालसा रखत हैं। इस प्रकार उनम वास्तविक योग्यता, उच्च श्रेणी की जागृति नही होती। हम अपनी परीक्षण विधि म मासिक परीक्षाओ को महत्त्व देना चाहिए। उनका परीक्षाफल इन मासिक परीक्षाओ के योग का ५०% तथा अन्तिम परीक्षा का ५०% मिलाकर बनाया जाय ताकि परीक्षार्थी सत्र भर प्रगति के लिए प्रयत्नशील रहे तथा उनका ज्ञानार्जन उत्तम कोटि का हो। प्रशिक्षण विद्यालयो म सशिक्षकीय वर्ग (ट्यूटोरियल ग्रूप्स) भी होने चाहिए। प्रत्येक ग्रूप का सरक्षक एक प्रवक्ता हो जो कि उनका विवरण रखे, उनके सर्वांगीण विकास की ओर ध्यान दे उनकी कठिनाइयो का निवारण कर उनका पथ निर्देशन करे। परीक्षाफल म केवल दो ही श्रेणी सम्मिलित की जाय—प्रथम व द्वितीय।

शिक्षण म गुणात्मक नियत्रण रखने के लिए उनकी अच्छी सुविधाओ का भी प्रबन्ध करना चाहिए। इससे शिक्षक सन्तुष्ट रहकर अपने गुणो मे निरन्तर वृद्धि करता हुआ कर्तव्य-पथ पर स्थिर रहकर देश का एक अच्छा सेवक बन सकेगा।●

सूर्यनाथ सिंह

मानव-शिक्षा का स्वरूप

सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया

मनुष्य की सीखने की प्रक्रिया उसके जन्म से प्रारम्भ होकर जीवन पर्यन्त चलती रहती है। उसकी ज्ञानेन्द्रियों के खुले द्वारा से बाह्य वातावरण के विविध दृश्यों, क्रियाकलापों, घटनाओं परिस्थितियों एवं वस्तुओं के प्रत्यक्ष अनुभव उसके मानस को मिलते रहते हैं। ये प्रत्यक्ष अनुभव ज्ञान प्रदान करने के सबसे सबल साधन हैं। जन्म लेने के पश्चात् शिशु आश्चर्यभरी दृष्टि से अपने चारों ओर देखता है। उस समय भाव-संचार की उसकी शक्ति सीमित होती है। अतः भूख की पीड़ा वह अपने रुदन से व्यक्त करता है। माँ के स्तन से वह दूध पीना सीखता है। फिर तो माँ को देखकर उसकी आँखें हास से खिल जाती हैं। वह उसे समीप बुलाने के लिए हाथ-पाँव फेंकता है, किलकारी भरता है और इस प्रकार वह अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है।

कुछ बड़ा होकर वह घुटनों के बल चलने लगता है या भूमि पर डगमग पाँव देने लगता है। वह घर की हर दृश्य वस्तु के समीप जाता है। उसे स्पर्श कर, चख कर, उसे हिला डुलाकर उसके विषय में जानने का प्रयत्न करता है। बड़ा होकर वह चलने तथा बोलने लगता है उसकी जिज्ञासा तीव्र होती है। हर व्यक्ति, वस्तु घटना या परिस्थिति के बारे में वह अपने माँ-बाप से अनेक प्रश्न पूछता है। प्रश्नों के ठीक उत्तर प्राप्त कर उसकी जिज्ञासा शान्त होती है, वह सीखता है। कभी-कभी तो इतने प्रश्न करता है कि माँ-बाप झुंझला उठते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में उन्हें बच्चे के साथ बड़े धैर्य एवं साव धानी से व्यवहार करना चाहिए। उनकी झुंझलाहट बच्चे की सीखने की प्रक्रिया

म बाधक होती है। इस प्रकार माँ-बाप स्वय अपने बच्चो के विकास को अवरुद्ध कर देते हैं।

इसके पश्चात् बच्चे बालक-बालिकाओं के रूप मे हमारे सामने आते है। आपने बालक-बालिकाओ को विविध खेल रचाते अवश्य देखा होगा। कभी व घर घरौंदे का खेल खेलते हैं जिसम वे अपनी गृहस्थी सजाते हैं। कभी वे गुड्ड गुडियो का विवाह रचाते हैं तो कभी राम रावण-युद्ध मे रत दिखाई पडते है। ऐसे सभी खेलो म वे माँ-बाप या अपने बडो के क्रिया-कलापो की नकल करते हैं। इस प्रकार खेल-खेल म य भावी नागरिक सामाजिक जीवन मे अपने कतव्यो को निभाना सीख जाते हैं।

घर घरौंदे के खेल म नन्ही गृहिणी की काय-व्यस्तता तथा अपने घरवाल पर उसके रौब रुआब को देखकर दशक के मन की कली खिल जाती है। क्या उसम उसे भावी गृहिणी का आभास नही मिलता? राम रावण युद्ध म बालक सैनिक या सेनापति का काय करता हुआ पहले कतव्यनिष्ठा श्रम एव अनुशासन का पाठ सीखता है। गुड्ड-गुडिया के विवाह म बालिकाएँ बारात के लिए भोजन तैयार करती हैं विवाह का मण्डप सजाती हैं दीवारो पर चित्र बनाती हैं विवाह के गीत गाती है। बालक बारात सजाकर लाते हैं और द्वारचार करते हैं। विवाह होता है विदाई होती है। बालक-बालिकाओ को उनके सफल भावी जीवन के लिए तैयार करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है जिसकी पूर्ति इन खेलो द्वारा स्वाभाविक ढग से होती रहती है।

बालक प्रौढ बनकर किसी व्यवसाय म व्यस्त हो जाता है किन्तु इसम यह नही समझ लेना चाहिए कि उसकी सीखने की क्रिया बन्द हो गयी। मनुष्य की खुली ज्ञानेन्द्रियाँ उसे हर समय नये-नये अनुभव प्रदान करती रहती हैं। उदाहरण स्वरूप भारत के उत्तरी मैदान का एक कृषक बद्रीनाथ की यात्रा पर जाता है। जस जैसे वह हिमालय के ऊपर चढता जाता है उसे अधिक ठढक का अनुभव होता है। इस अनुभव से वह सीख जाता है कि ऊचाई पर अधिक सर्दी पडती है और वहाँ के लिए मैदानो म पहने जानेवाले सूती वस्त्र पर्याप्त नही है। वहाँ के खेतो को देखकर वह समझ जाता है कि ढलुआँ भूमि म सीढीदार खेत ही कारगर हो सकते हैं। वहा के फलो के बाग देखकर जान जाता है कि सेव आदि फलो के लिए कैसी जलवायु की आवश्यकता है। किस ऊचाई पर कैसी पत्तियो वाले जगल है इसका वह प्रत्यक्ष अनुभव करता है। अलकनन्दा आदि नदियो को देखकर उसे मैदानी नदियो के प्रारम्भिक स्वरूप एव निकास का ज्ञान होता

है। उनकी गहरी घाटियों को देखकर वह अनुमान लगा लेता है कि ऐसी ही घाटियों पर बाँध लगाकर बड़े-बड़े जलाशय बनाये जाते हैं जिनसे नहरें निकाल कर उससे खेतों की सिंचाई की जाती है। वह समझने लगता है कि उसका समतल मैदान कैसे और कहाँ की मिट्टी तथा बालू से बना है। वह पर्वतवासियों के कठिन जीवन खानपान रहन-सहन रीति रिवाज और आमोद प्रमोद का ज्ञान प्राप्त करता है। यह मनुष्य के सीखने का स्वाभाविक एवं प्रभावकारी ढंग है जिससे वह जीवनभर सीखता रहता है।

हर नये दृश्य, क्रियाकलाप, घटना वस्तु या परिस्थिति से मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ उद्दीप्त होती हैं और उसका मानस एक नया अनुभव ग्रहण करता है। यह नया अनुभव पूर्वसंचित अनुभवों से जुड़कर उनकी एक संख्या ही नहीं बढ़ाता, बल्कि उनका मंथन कर उनमें क्रान्ति पैदा कर देता है। मनुष्य कल्पना एवं चिन्तन-मनन द्वारा इस नये अनुभव का अपने पुराने अनुभवों के साथ सामंजस्य स्थापित करता है। फिर वह एक नया निर्णय लेता है नया विचार स्थिर करता है। इस नये विचार के प्रकाश में उसके दृष्टिकोण एवं उसकी प्रवृत्तियाँ बदलती हैं तथा उसके व्यवहार में परिवर्तन आता है। मनुष्य के तन मन का यह क्रिया-समूह सीखने की प्रक्रिया कहलाता है। उसके सीखने की यह स्वाभाविक प्रक्रिया सतत चलती रहती है। हर व्यक्ति प्रतिक्षण अपने को बना रहा है।

शिक्षा व्यक्ति के अपने जीवन के परिवर्तन का विज्ञान है। वह तभी सीख सकता है, जब सीखने की प्रक्रिया की प्रत्येक क्रिया वह स्वयं सम्पादित करे—वह अनुभव करे चिन्तन मनन करे नये पुराने अनुभवों का समन्वय करे, विचार स्थिर करे और उसके अनुसार अपने दृष्टिकोण एवं व्यवहार को बदले। सीखने की प्रक्रिया का मूलाधार व्यक्ति का स्वयं का अनुभव है। दूसरा कोई अनुभव करे और वह सीखे ऐसा सम्भव नहीं है। मनुष्य दूसरों के अनुभव चिन्तन-मनन एवं विचार को समझ तो सकता है, याद भी कर सकता है पर उससे सीख नहीं सकता। समझना तथा सीखना दो अलग क्रियाएँ हैं। सीखने की क्रिया से मनुष्य के जीवन एवं व्यवहार में क्रान्ति आती है पर समझने की क्रिया से उसमें ऐसा कोई परिवर्तन नहीं आता।

शिक्षण विधि का विकास

इतिहास के आदिम काल में शिक्षण एवं शिक्षण-संस्थाएँ बहुत कुछ ऐंद्रिक अनुभव के आधार पर ही शिक्षा देती रही हैं। प्राचीन शिक्षण-पद्धति के अन्तर्गत

बालक को स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा सीखने के अधिक अवसर प्राप्त थे। पर मध्य युग में धर्मोन्मादी शक्तियाँ प्रबल हो उठी और समाज पर पुजारियों, पुरोहितों, पादरियों एवं मुल्लाओं का आतंक छा गया। शिक्षा मठों, मस्जिदों एवं गिरजाघरों की कारा में बन्द हो गयी। उस समय उपनिषद्, कुरान या बाइबिल के श्लोकों या आयतों को रटा देना ही बालक की वास्तविक शिक्षा समझी जाती थी। शिक्षा शब्द-केन्द्रित हो गयी और उसका समाज अथवा बालक के वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। उस समय शिक्षण क्रिया में बालक की रुचि की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। शिक्षा निरर्थक शाब्दिकता के भार से निर्जीव बन गयी और वास्तविक अर्थों में शास्त्रीय हो गयी।

शब्द ! शब्द वस्तुओं, दृश्यों एवं क्रियाओं के नाम या प्रतीक मात्र हैं। जिस प्रकार किसी व्यक्ति का नाम सुनकर सुननेवाले को उसका बोध तभी हो पाता है जब वह उसे पहले देख चुका हो या उसके बारे में सुना हो। वैसे ही कोई शब्द सुननेवाले को तभी सार्थक होता है जब उस वस्तु या क्रिया का उसे पूर्व अनुभव हो जिसका वह शब्द प्रतीक है। 'ऊँट' शब्द एक विशिष्ट चौपाये का प्रतीक या नाम है। ऊँट को देखने के पूर्व बालक को ऊँट शब्द का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता चाहे हम ऊँट का विवरण कितने ही अधिक शब्दों में क्यों न प्रस्तुत करें। इन उदाहरणों से बिलकुल स्पष्ट है कि शब्दों का स्वयं में कोई अर्थ नहीं होता। अपने अर्थ के लिए उन्हें पढ़ने या सुननेवाले के पूर्वानुभव की अपेक्षा होती है। ये अनुभव वास्तविक अथवा आयोजित स्थितियों में वस्तुओं, दृश्यों, घटनाओं एवं क्रिया-कलापों अथवा उनके प्रारूपों के देखने-सुनने से प्राप्त होते हैं। वस्तुओं एवं क्रियाओं द्वारा प्राप्त अनुभव मूर्त होने के कारण जल्दी समझ में आ जाते हैं। अनुभवों को प्रदान करनेवाली विभिन्न मूर्त वस्तुओं एवं क्रियाओं को बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करना परम आवश्यक है। अपने पूर्व अनुभवों के प्रकाश में बालक शब्दों का अर्थ स्थिर करता है एवं विषय को समझता है। इस प्रकार हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि प्रत्यक्ष अनुभव हमारी सीखने की प्रक्रिया के मूलाधार हैं।

पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी में यूरोपीय जन-समाज नवजागरण की लहरों से उद्वेलित हो उठा। उस समय के शिक्षा शास्त्री एवं विचारक ऐन्द्रिक अनुभवों द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रदान करने पर बल देने लगे। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में रूसो ने 'प्रकृति की ओर लौटो' का नारा बुलन्द किया और बालक को शिक्षण क्रिया का केन्द्र माना। उसने निरर्थक शाब्दिकता की भर्त्सना करते हुए

कहा—"अध्यापक क्या सिखाते हैं ? शब्द ! शब्द ! शब्द ! " उसने घोषणा की 'अपने शिष्य को मौखिक शिक्षा मत दो। उसे प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा सिखाना उचित है।' इस प्रकार रूसो ने सीखने की स्वाभाविक प्रक्रिया को बल प्रदान किया और शिक्षण विधि में बालक एवं ऐन्द्रिक अनुभवों को सबसे महत्त्वपूर्ण बनाया।

नव जागरण ने शिक्षा को मठों-मस्जिदों और गिरिजाघरों की कारा से मुक्त कर दिया। नये ढंग के स्कूल खुलने लगे। पर उन्नीसवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने मनुष्य-समाज के स्वरूप को बदल दिया। नये-नये कल कारखानों के खुलने से कितने ही गाँव शहर बन गये। जनसंख्या की अप्रत्याशित वृद्धि के फलस्वरूप एक अध्यापक वाले स्कूल बड़ी शिक्षण-संस्थाओं में परिवर्तित हो गये। शिक्षार्थियों की बाढ़ के कारण पढ़ाई कक्षावार होने लगी। इन नये स्कूलों की बड़ी कक्षाओं में बालक की व्यक्तिगत रुचि एवं उसकी अनुभव-पृष्ठ-भूमि की ओर ध्यान देना सम्भव नहीं रह गया। फल यह हुआ कि बालक को स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर समाप्त-सा हो गया। शिक्षा जीवन से अलग हो गयी। यह सदोष कक्षावार शिक्षण विधि हमारी परम्परागत शिक्षण प्रणाली बन गयी।

आज शिक्षा को परम्परागत शिक्षण प्रणाली के दोषों से मुक्त करने हेतु विविध शिक्षण प्रयोग हो रहे हैं जिनमें सबसे आधुनिक श्रव्य दृश्य उपादानों की सहायता से शिक्षा देने की विधि है। शिक्षण की यह श्रव्य दृश्य पद्धति बालकों को प्रत्यक्ष अनुभव एवं स्वाभाविक प्रक्रिया द्वारा सीखने का अवसर प्रदान कर, शिक्षा को वास्तविक एवं प्रभावकारी बनाने में सफल होगी ऐसा शिक्षाविदों का विश्वास है।•

श्री रामेश्वर ठाकुर

रूपौली प्रखंड का शैक्षिक आयोजन

[ग्रामदान ग्रामस्वराज्य आन्दोलन की शर्तों के अनुसार रुपौली (पूर्णियाँ, बिहार) प्रखड का ग्रामदान हुआ। सर्वोदय नेता श्रीयुत् वैद्यनाथ प्रसाद चौधरीजी के मार्ग दर्शन में अनौपचारिक रूप से ग्रामदान पुष्टि होकर ग्रामदान एक्ट के अनुसार ग्रामस्वराज्य के प्रथम चरण का कार्य पूरा हुआ है। फलस्वरूप रूपौली प्रखड के सर्वतोमुखी विकास के लिए मजबूत बुनियाद मिली है। प्रखड में ६७ ग्रामसभाएँ बन चुकी हैं। ग्रामसभाएँ हमारे विकास कार्य का माध्यम होंगी। इनके माध्यम से ग्रामदानी गाँवों के लिए शिक्षा की योजना पर विचार करना होगा। इसी दृष्टि से शिक्षा के आयोजन की यह पंचवार्षिक रूपरेखा बनायी गयी है। आयोजन की यह भौतिक रूपरेखा है। ग्रामदानी गाँवों में शिक्षा और शिक्षण की पद्धति क्या होगी इस पर यहाँ विचार नहीं किया गया है।—सपादक]

विकास-कार्य के लिए जनमानस में परिवर्तन करना आवश्यक है। जिस क्षेत्र में विकास कार्य होंगे उस क्षेत्र की जनता को यह भान होना चाहिए कि विकास कार्य उनके प्रखड के लिए है और उन्हें स्वयं इस जिम्मेदारी को उठाना है। आचार्यकुल (शिक्षक समुदाय) जनमानस के परिवर्तन के कार्य में दिलो जान से लग जाय तो यह काम प्रयत्न साध्य हो सकता है। प्रस्तावित शिक्षा का पंचवार्षिक आयोजन उपरोक्त दृष्टिकोण से तैयार किया गया है।

प्रखंड में शिक्षा की स्थिति

शिक्षा-आयोजन के पूर्व हमे जान लेना चाहिए कि प्रखंड मे शिक्षा की वर्तमान स्थिति क्या है, क्योंकि हमें आगे क्या करना है, उसका स्पष्ट चित्र सामने रहना चाहिए। इस सन्दर्भ में सन् १९६१ तथा सन् १९७१ की जन-गणना से तुलनात्मक आंकड़े दिये जाते है।

वर्ष	जनसंख्या	साक्षर	निरक्षर	साक्षरता प्रतिशत	निरक्षरता प्रतिशत
१९६१	७९९८५	११५३८	६५३४७	१५	८५
१९७१	९३६१३	१३९३८	७९६७५	१५	८५

स्वराज्य-प्राप्ति के २४ वर्षों के अन्दर कई पंचवार्षिक योजनाओं के बीतने के बाद साक्षरता के प्रतिशत में कोई वृद्धि नही हो पायी है। प्रखंड मे ० से १० वर्ष तक की आयु के ३१२०४ बच्चों को बाद करने पर २३ प्रतिशत साक्षरता होती है। यह बात जरूर है कि विगत १० वर्षों में जनसंख्या में लगभग ३७ प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

शिक्षा की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

क्र०	विवरण	१९६१		१९७१		वृद्धि संख्या	
१.	प्राथमिक विद्यालय	३६		४७		११	
२.	माध्यमिक "	७		९		२	
३.	उच्च बुनियादी "	३		३		—	
४.	" विद्यालय	१		३		२	
५.	प्रशिक्षण "	१		१		—	
६	छात्र, छात्राओं की संख्या	छात्र	छात्राएँ	छात्र	छात्राएं	छात्र	छात्राएँ
	प्राथमिक-उम्र ग्रूप-६-११	३८६७	१०७६	४५३२	१४६८	६६५	३९२
	माध्यमिक } " ११-१४ बुनियादी } "	४३३	४४	५६०	६०	१२७	१६
७	उच्च वि० " १५-१८	४५०	५५	६००	७५	१५०	२०

ऊपर की सारणी से ज्ञात होता है कि ११ वर्ष उम्र के बाद छात्र-छात्राएँ पढ़ना छोड़ देती हैं। सन् १९७१ मे भी यही स्थिति रही है। ११-१४ उम्र ग्रूप के ज्यादा छात्र-छात्राएँ मिडिल स्कूल एवं बुनियादी विद्यालय मे पढ़ती हैं। इसके कारणों की छानबीन होनी चाहिए। क्योंकि छात्रों की संख्या मे ह्रास हो जाता है। क्या गरीबी के कारण छात्र-छात्राएँ पढ़ना छोड़ देती हैं अथवा शिक्षकों की

अनुपस्थिति एवं अन्यमनस्कता अध्यापन-कला में ह्रास के कारण ऐसा होता है? शिक्षा और समाज का आपसी सम्बन्ध क्या रह गया है? शिक्षा विभाग द्वारा इसका सर्वेक्षण होना चाहिए। दो बुनियादी विद्यालयों का उदाहरण जिला ग्राम स्वराज्य समिति के कार्यालय में आया है। उससे ज्ञात होता है कि उक्त दोनों विद्यालय में शिक्षकगण बारी-बारी से अनुपस्थित रहते हैं। पर यह अनुपस्थिति वैध या अवैध आकस्मिक निरीक्षण एवं जाँच से ही कही जा सकती है। पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि विद्यालयों के व्यापक निरीक्षण करते रहने की आवश्यकता है। क्या यही स्थिति अन्य विद्यालयों में भी है? शिक्षा के स्तरोन्नयन के लिए शिक्षक एवं छात्रों की उपस्थिति ८० प्रतिशत होनी आवश्यक है। इसके लिए शिक्षक समुदाय को पहल करना कर्तव्य के साथ नैतिक धर्म है। वे भविष्य के नागरिक के प्रबुद्ध निर्माता हैं।

अभी तक रूपौली प्रखंड में ४६ चौरासी राजस्व गाँव के हिसाब से प्रत्येक राजस्व गाँव में एक-एक प्राथमिक विद्यालय है। प्रखंड में १८४ प्राथमिक विद्यालयों की आवश्यकता है। हर वर्ग एवं वर्ण के १५०१३ पढ़ने योग्य बच्चे पढ़ने नहीं जा रहे हैं। फिर ६४५६२ युवकों एवं प्रौढ़ निरक्षरों की शिक्षा की क्या व्यवस्था हो यह विचारणीय प्रश्न है। अभी शिक्षा का केवल साक्षरता से तात्पर्य नहीं है बल्कि उनके मानसिक उन्नयन के लिए विविध मार्ग अपनाने के बारे में विचार करना है। शिक्षा के इस व्यापक एवं विराट समस्या को हल करने के लिए शिक्षक समुदाय शिक्षा विभाग के निरीक्षण पदाधिकारी समुदाय अभिभावक एवं ग्रामसभा को आपस में समन्वय स्थापित कर एक जुट होकर और संकल्प के साथ काम में लग जाना होगा।

आयोजन अवधि में शिक्षा विस्तार के लिए लक्ष्य माना गया है कि प्रत्येक पंचायत में एक एक माध्यमिक विद्यालय होगा। रूपौली में २१ पंचायतें हैं। ९ मिडिल स्कूल मौजूद हैं। १२ नये माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना होनी चाहिए। इस प्रखंड में कुल छोटे-बड़े १८४ गाँव हैं। मौजूदा ४६ प्राथमिक विद्यालयों के अतिरिक्त १३८ प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करनी होगी।

जनसम्पर्क एवं प्रौढ़ों की शिक्षा की व्यवस्था की दृष्टि से हर माध्यमिक एवं बुनियादी विद्यालय—गाँव या पंचायत का सांस्कृतिक केन्द्र—प्रौढ़ शिक्षा का भी काम करेगा। इसलिए प्रत्येक माध्यमिक एवं बुनियादी विद्यालय में सक्रिय पुस्तकालय सह प्रौढ़ शिक्षा-केन्द्र होगा।

शिक्षक अभिभावक एवं ग्रामसभा के प्रयास से प्रत्येक पंचायत में एक बालवाड़ी सह मातृसेवा केन्द्र चलाने की व्यवस्था की जा सकेगी। लोक-

मनोरजन तथा सांस्कृतिक अनुष्ठान के निए प्रति पंचायत एक लोकमंच सह स्वाध्याय मंडल का सगठन हो।

कमजोर वर्गों के लिए प्रखंड स्तर पर एक आवासीय विद्यालय खोला जा सकेगा। धीरे धीरे सभी माध्यमिक एवं बुनियादी विद्यालयों में मात्र निवास छात्रावास चलाया जाना आवश्यक है। इन सभी स्तर के छात्रावासों में स्वाध्याय, स्वावलम्बन, तथा सस्कार, त्रिविध कार्यक्रम चलाया जायगा। आपसी सद्भावना एवं सहयोग बढ़ने से शिक्षा का सुन्दर वातावरण बनेगा। बेशक इन छात्रावासों के कार्यक्रमों में शिक्षकों की निःशुल्क सीमा के भीतर उपयुक्त भोजन-व्यवस्था रहनी चाहिए।

स्वाध्याय से तात्पर्य, छात्र नियमानुसार यथासमय से स्वाध्याय करें, शिक्षक मदद करेंगे। शिक्षक भी प्रतिदिन स्वाध्याय करें।

स्वावलम्बन से तात्पर्य—छात्र एवं शिक्षक निजी कार्य स्वय करें सार्वजनिक एवं सामुदायिक कार्य आपसी सहयोग से करें।

सस्कार से तात्पर्य—(१) आपस की बोलचाल में आदरसूचक शब्दों का व्यवहार।

(२) हर स्तर के अभिभावकों तथा अतिथियों का सम्मान।

(३) निजी सफाई सामुदायिक सफाई।

(४) स्वास्थ्य चर्या-उपाय।

(५) प्रेरणादायक सांस्कृतिक एवं मनोरंजन कार्यक्रम।

(६) राष्ट्रीय उत्सव एवं त्योहारों का विधिपूर्वक पालन।

(७) व्यसन मुक्ति।

बाल शान्ति सेना, तरुण शान्ति-सेना—छात्रों में सहायता, सयम और अनुशासन के सस्कार-वर्द्धन के लिए सभी माध्यमिक बुनियादी एवं उच्च विद्यालयों में बाल शान्ति-सेना एवं तरुण शान्ति-सेना का प्रशिक्षण दिया जायगा।

शिक्षा प्रदर्शनी एवं सम्मेलन—प्रत्येक स्तर के विद्यालयों में प्रतिवर्ष एक शिक्षा प्रदर्शनी का आयोजन हो। इस प्रदर्शनी में छात्रों के लेख साहित्य पाठ्य समीक्षा, लिखावट, चित्रकारी एवं उद्योग के नमूने अवश्य रखे जायें। खेल-कूद एवं सांस्कृतिक मनोरंजन का आयोजन हो। विविध विषयों पर योग्य छात्रों को पुरस्कृत किया जाय।

अभिभावक सम्मेलन—वार्षिक प्रदर्शनी के अवसर पर ही विद्यालय का वार्षिकोत्सव मनाया जाय और उसमें अभिभावकों को आमन्त्रित कर विद्यालय के कार्यक्रमों से अवगत कराया जाय। इस अवसर पर शिक्षाविदों एवं निरीक्षक पदाधिकारियों को भी आमन्त्रित किया जाय।

निरीक्षण व्यवस्था—निरीक्षण पदाधिकारी पदेन निरीक्षण करने के लिए अधिकृत हैं ही, ग्रामसभा के पदाधिकारियों को भी निरीक्षण एवं व्यवस्था-कार्य का उत्तरदायित्व मिलना चाहिए।

आयोजन-अवधि में शिक्षा का प्रस्तावित कार्यक्रम निम्नलिखित तालिका में की गयी है।

तालिका

क्रमांक	विवरण	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष
	शिक्षा प्रतिशत	१५	३०	३०	४५	५०
१.	बालवाड़ी सह मातृ सेवा केन्द्र (संख्या)	४	४	४	४	५
२.	माध्यमिक विद्यालय "	—	४	४	४	—
३.	प्राथमिक " "	३८	२५	२५	२५	२५
४.	पुस्तकालय " "	४	५	४	४	५
५.	(क) आवासीय विद्यालय "	—	१	—	—	—
	(ख) ग्राम आवासीय छात्रावास "	४	४	४	४	५
६.	लोकस्तंभ–सह स्वाध्याय "	४	४	४	४	५
७.	प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र "	४	४	४	४	५
८	बाल शान्ति-सेना "	१००	१००	१००	१००	१००
	तरुण " "	२००	२००	२००	२००	२००
९	ग्राहक-संख्या "	१००	१००	१००	१००	१००
१०.	साहित्य-प्रचार "	१०००	१०००	१०००	१०००	१०००

नोट—निरीक्षण पदाधिकारी एवं प्रखंड स्वराज्य सभा मिलकर प्रखंड शिक्षा समिति की स्थापना करें और पदाधिकारी का चुनाव करें। इनकी मासिक बैठक हो।•

उत्तर प्रदेश में
आचार्यकुल व तरुण शान्तिसेना की गतिविधि

उत्तर प्रदेशीय स्तर का आचार्यकुल तथा तरुण शान्तिसेना शिविर दयानन्द डिग्री कालेज, गोरखपुर के प्रांगण में १३ जून से १६ जून '७१ तक आयोजित हुआ। शिविर में ५० शिविरार्थियों, शिक्षाशास्त्रियों और आचार्यों ने भाग लिया। शिविर का संचालन दयानन्द डिग्री कालेज के प्राचार्य श्री हरिशंकर लाल, प्राध्यापक एवं छात्रों की एक समिति ने किया। शिविर की अर्थव्यवस्था का प्रबन्ध गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बालकृष्ण राव ने किया। कालेज प्रबन्धसमिति के प्रबन्धक श्री उमाशंकर लाल ने, जो जिला आचार्यकुल समिति, गोरखपुर के संयोजक भी हैं, समस्त शिविर व्यवस्था का भार वहन किया। शिविर के आयोजक श्री रामबचन सिंह का, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश के आचार्यकुल के प्रतिनिधि हैं प्रयास सफल रहा।

शिविर कुल सात सत्रों में सम्पन्न हुआ। इसका शुभारम्भ १३ जून को ११ बजे प्रख्यात समाज सेवी और शिक्षाशास्त्री श्रीरोहित मेहता के द्वारा हुआ। सर्वप्रथम श्री उमाशंकरजी ने मुख्य अतिथि और दूसरे शिविरार्थियों का स्वागत किया। इसके बाद केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के संयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने शिविर के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि शिविर का उद्देश्य छात्रों एवं युवकों में व्याप्त असन्तोष के सन्दर्भ में विचार विनिमय करके इन समस्याओं का कोई सर्वमान्य हल निकालने का प्रयास करना है। अब यह समस्या केवल शासकों और नेताओं के भरोसे नहीं छोड़ी जा सकती, क्योंकि उन्होंने ही ये सारी समस्याएँ पैदा कीं और बढ़ायी हैं। उन्होंने विश्वास और निष्ठा के साथ कभी सोचा ही नहीं। इसलिए उनके प्रयास नितान्त असंगत और हानिकारक भी होते जा रहे हैं। इस समस्या का निराकरण केवल नागरिकों से ही सम्भव है और आचार्यकुल तथा तरुण शान्तिसेना ही ऐसे नागरिकों को संगठित कर सकती है और उनका मार्गदर्शन भी कर सकती हैं।

गोष्ठी की अध्यक्षता श्री सिंह ने की। श्री बालकृष्ण राव के आवश्यकता-वश बाहर चले जाने से उनके स्थान पर श्री सिंह स्वागताध्यक्ष बनाये गये थे। श्री सिंहासन सिंहजी ने प्रस्तुत शिविर संयोजन की भूमिका बतायी। उन्होंने कहा कि इस शिविर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें शिक्षा-संसार के दो प्रमुख तत्व आचार्य और शिष्य या तरुण एक साथ भाग ले रहे हैं। एक साथ रहेंगे, बैठेंगे और विचार-विनिमय करेंगे। उन्होंने कहा कि विनोबाजी का दिया गया यह आचार्यकुल का विचार श्रेष्ठतम विचार है। आचार्यकुल अधिकार पर नहीं, कर्तव्य-भावना पर आधारित है। संविधान, सुप्रीम कोर्ट, सभी अधिकारों की बात करते हैं, आचार्यकुल कर्तव्य की ही बात करता है क्योंकि यह करनेवाला कोई नहीं है जबकि अधिकारों की माँग करने के लिए अन्य संस्थाएँ भी हैं। उन्होंने छात्र, शिक्षक समाज, राजनीतिज्ञ सबका आह्वान किया कि वे अपने-अपने अन्दर यह भाव जागृत करें कि उनका अपना कर्तव्य क्या है और वे कहाँ तक उसे पूरा कर पाये हैं और जो नहीं पूरा कर पाये हैं उसे कैसे पूरा करें।

द्वितीय और तृतीय सत्र में छात्र और युवा असन्तोष पर विचार किया गया। विषय का प्रतिपादन करते हुए भारतीय खाद निगम गोरखपुर के जेनरल मैनेजर श्री एन० आर० शेषाद्रि ने कहा कि इस असन्तोष का मुख्य कारण हमारे वर्तमान मूल्यों और सामाजिक संरचना में विद्यमान है। हमने जिन पश्चिमी मूल्यों को स्वीकार किया है वे हमारी परम्परा और स्वभाव से मेल नहीं खाते। हमने पश्चिम की तरह की राजनीति और अर्थ-व्यवस्था जबरदस्ती देश पर लादी है जबकि देश उसके लिए तैयार नहीं है। इसलिए इस प्रकार के असन्तोष को यदि समाप्त करना हो तो हमें देश के समग्र वर्तमान ढाँचे में बुनियादी परिवर्तन करने होंगे।

चर्चा में अनेक वक्ताओं ने भाग लिया। केन्द्रीय आचार्यकुल के संयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने कहा कि—हमें इस युवा असंतोष का स्वागत करना चाहिए और इसे रचनात्मक दिशा देने का प्रयास करना चाहिए। शिक्षा में क्रान्ति किये बिना हम यह काम नहीं कर सकते। कानपुर के तरुण शान्ति-सेना के प्रतिनिधि छात्र श्री कृष्णदेव सिंह ने कहा "वर्तमान शिक्षा शोषण और दमन को बनाये रखने का साधन है इसीलिए युवकों में असन्तोष है।" शाहजहाँपुर के एक छात्र प्रतिनिधि राजेश शुक्ल ने कहा कि "अध्यापकों का भ्रष्ट चरित्र और शिक्षा की व्यर्थता ही इस असन्तोष का मुख्य कारण है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के छात्र नेता श्री योगेश पाल ने कहा कि आज स्कूल और कालेज गुटबन्दी जातिवाद और भ्रष्टाचार के केन्द्र बन गये हैं। सरकार राजनीतिक दलों के नेता और विश्वविद्यालय तथा कालेज के अध्यापक सब लोग मिलकर अपने स्वार्थों के लिए छात्रों का दुरुपयोग करते हैं। सर्व सेवा संघ वाराणसी के प्रतिनिधि श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने कहा कि जिसे आजकल छात्र अथवा युवा असन्तोष कहा जाता है उसे असल में असन्तोष कहना उचित नहीं है। छात्रों में अगर सचमुच असन्तोष होता तो वे शिक्षा और समाज को तत्काल बदलने के लिए संगठित और क्रियाशील हो जाते। मनुष्य के मन में असन्तोष तब होता है जब वह अपने किसी लक्ष्य को प्राप्त करने में अनेक प्रयासों के बावजूद असफल रहता है। किन्तु यहां तो छात्रों अथवा युवकों के सामने कोई ऐसा लक्ष्य ही नहीं है जिसकी प्राप्ति के लिए वे प्रयास कर रहे हों। यह तो केवल एक प्रकार की चिढ़ या कुढ़न है जो समाज के वर्तमान ढांचे में दूसरों के मुकाबिले के होड़ में सुख सुविधा प्राप्त करने में असफल होने पर पैदा होती है। सर्वोदय युवकों को आवाहन करता है कि वे सचमुच असन्तुष्ट होवें और वर्तमान समाज को बदलने के लिए संगठित एवं क्रियाशील हो जायें। भाटपाररानी डिग्री कालेज देवरिया के प्राचार्य श्री केशवचन्द्र मिश्र ने जो सत्र की अध्यक्षता कर रहे थे अपने भाषण में कहा कि इस समय छात्र में असन्तोष का कारण हमारी वर्तमान दूषित शिक्षा तो है ही—किन्तु आज के अध्यापकों का चिन्तन का स्तर और अपने छात्रों के प्रति उनका व्यवहार भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं है। जब तक अध्यापकों का अध्ययन चिन्तन और चरित्र का स्तर ऊंचा नहीं होता तब तक इस समस्या का समाधान दिखता नहीं। आचार्यकुल अध्यापकों के इस स्तर को बनाने के लिए ही प्रयास कर रहा है।

चौथे सत्र में शिक्षा में क्रान्ति विषय पर चर्चा आरम्भ हुई। विषय का आरम्भ करते हुए केन्द्रीय आचार्यकुल के संयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने शिक्षा में क्रान्ति क्यों और कैसे नामक प्रबन्ध पढ़ा। अपने प्रबन्ध में उन्होंने अनेक उपयोगी सुझाव दिये और इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा की दृष्टि और कार्यक्रम में सामंजस्य लाना आवश्यक हो गया है। वर्तमान असमान स्कूल पद्धति को समाप्त करके समान पड़ोसी स्कूलों की प्रणाली चालू करनी चाहिए। पाठ्यक्रम को सामाजिक जीवन से संयुक्त करके कृषि औद्योगिक आधार देना चाहिए। अध्यापकों के वेतन में समान योग्यता समान वेतन का सिद्धान्त

लागू करके वेतन की वर्तमान ▪ गुनी से भी अधिक असमानता को अधिक से-अधिक तीन गुना पर लाना चाहिए और शिक्षा-प्रशासन मे शिक्षण-संस्थाओं की स्वायत्तता मान्य की जानी चाहिए। प्रशासन में छात्रों और अभिभावकों तथा शिक्षकों का सहयोग होना चाहिए। परीक्षा-प्रणाली को समाप्त कर दिया जाय और डिग्रियों से नौकरियों का सम्बन्ध भी समाप्त कर दिया जाय।

चर्चा मे भाग लेते हुए वक्ताओं ने आम तौर पर इन सुझावों का समर्थन किया। गोरखपुर विश्वविद्यालय के राजनीति विभाग के प्राध्यापक प्रो० के० एम० त्रिपाठी ने कहा—"यों तो शिक्षण-संस्थाओं को स्वायत्तता आज भी प्राप्त है किन्तु सरकार को उनका सम्पूर्ण आर्थिक दायित्व लेना चाहिए।" बलरामपुर डिग्री कालेज के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा० भोलानाथ ने शिक्षण-संस्थाओं की स्वायत्तता पर भी जोर दिया। कानपुर के छात्र-प्रतिनिधि श्री कृष्णदेव सिंह ने कहा कि सम्पूर्ण शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाना चाहिए। शाहजहाँपुर के छात्र-प्रतिनिधि ने कहा कि राष्ट्रीयकरण करने से शिक्षा की समस्या और जटिल हो जायेगी। कानपुर के आचार्यकुल के प्रतिनिधि श्री शिवसहाय मिश्र ने भी शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का विरोध किया। गोरखपुर विश्वविद्यालय के छात्र प्रतिनिधि श्री योगेशपाल का विचार था कि शिक्षा को विद्यार्थी व अध्यापक के हाथ मे सौंप दिया जाना चाहिए। केन्द्रीय आचार्यकुल के श्री बहुगुणाजी ने कहा कि यदि शिक्षा मे सचमुच कोई क्रान्ति करनी हो तो वह एकांगी नहीं हो सकती। इसलिए समाज मे परिवर्तन और शिक्षा मे परिवर्तन असल मे एक ही चीज है और इसलिए आचार्यकुल को समाज-परिवर्तन का काम भी हाथ मे उठाना होगा। गोरखपुर डिविजन के शिक्षा उपनिदेशक श्री हरद्वारी लाल शर्मा ने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा, "असल मे शिक्षा मे परिवर्तन से ही समाज की समस्याओं का हल किया जा सकता है। मगर हम शिक्षा में कोई परिवर्तन नहीं करते तो आम असन्तोष को दूर नहीं किया जा सकता।" गोरखपुर विश्वविद्यालय के कोषाध्यक्ष श्री ठाकुर सिंहासन सिंहजी ने इस बात पर जोर दिया कि शिक्षा का केन्द्रीकरण कर देना चाहिए यानी शिक्षण-संस्थाओं का वित्तीय दायित्व पूर्णतः केन्द्रीय सरकार पर होना चाहिए। शिक्षा प्रणाली और प्रशासन मे उसे कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० गोपीनाथ तिवारी ने, जो सत्र की अध्यक्षता कर रहे थे, कहा कि इस प्रबन्ध मे जितनी बातें सुझायी गयी हैं, शिक्षा मे न्यूनतम परिवर्तन के लिए अति आवश्यक हैं।

छठें सत्र में आचार्यकुल और तरुणशान्तिसेना तथा उसके भावी कार्यक्रम पर विचार हुआ। सत्र के अध्यक्ष श्री रामबचन सिंह ने विषय का प्रतिपादन करते हुए इस बात पर जोर दिया कि अब हमारे प्रत्यक्ष कार्यक्रम से ही हमारी सफलता का आकलन हो सकेगा। वाराणसी गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के श्री रामवृक्ष शास्त्री ने तरुणशान्तिसेना तथा आचार्यकुल द्वारा शिक्षा में क्रांति के कार्यक्रम पर प्रकाश डाला। केन्द्रीय आचार्यकुल के श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा ने श्री धीरेन्द्र मजूमदारजी का एक नोट पढ़कर सुनाया जिसमें उन्होंने आचार्यकुल को ग्राम विश्वविद्यालय की अपनी कल्पना एवं योजना का प्रयोग करने की सलाह दी है। श्री बहुगुणा ने इस योजना पर व्यापक प्रकाश डाला और बिहार में सहरसा जिले तथा मुसहरी प्रखण्ड में किये गये ग्रामस्वराज्य-पुष्टि अभियान की चर्चा की। बलरामपुर कालेज के डा॰ भोलानाथ ने इस बात पर जोर दिया कि आचार्यकुल और तरुणशान्तिसेना का विस्तार किया जाय और सदस्य भरती किये जायें। इसके लिए वर्तमान सदस्यों को सक्रिय होना चाहिए। केन्द्रीय गांधी शताब्दी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति के श्री एस॰ एन॰ सुब्बारावजी ने सुझाव दिया, जो जहाँ है उसको वहीं कुछ-न-कुछ तात्कालिक कार्यक्रम हाथ में लेना चाहिए, जैसे महीने में कम-से कम दो बार या तीन बार बैठने का कार्यक्रम। उसमें कुछ चर्चा और मनोरंजन का कार्यक्रम अवश्य रखा जाय। बाद को जब लोगों की संख्या बढ़ने लगे तो फिर गाँव या नगर के मुहल्लों में कुछ सेवा सफाई और निर्माण-कार्य हाथ में लिये जा सकते हैं। उसी तरह से जिला स्तर पर साल में कम से-कम दो बार और प्रान्त-स्तर पर साल में कम से-कम एक बार अवश्य बैठक की जाय। चर्चा के अन्त में नीचे लिखे निर्णय किये गये।

(१)—तरुणशान्तिसेना और आचार्यकुल की सदस्य-संख्या बढ़ायी जाय। (२) जहाँ सम्भव हो वहाँ मिलकर तरुणशान्तिसेना और आचार्यकुल के संयुक्त शिविर लगाये जायें। (३) प्रत्येक विद्यालय में कम-से-कम पच्चीस फीसदी लड़के-लड़कियाँ तरुण-शान्तिसेना के सदस्य हों, आचार्यकुल इसका प्रयास करे। (४) ग्राम विश्वविद्यालय की कल्पना को साकार करने के लिए ग्रामस्वराज्य का कार्यक्रम उठाना पहली आवश्यकता है, इसलिए जहाँ सम्भव हो वहाँ आचार्यकुल अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार एक या अधिक गाँवों को दत्तक के रूप में लेकर वहाँ ग्रामस्वराज्य का कार्य प्रारम्भ करे। (५) परस्पर सम्पर्क और संयोजन बनाये रखने के लिए हर विद्यालय की इकाईयों के प्रतिनिधियों को लेकर प्रखण्ड समिति और उनके प्रतिनिधियों से जिला समितियों

का गठन प्रारम्भ कर दिया जाय। फिलहाल हर जिले मे हर हाई स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय मे तथा प्रखण्ड और जिला स्तर पर आचार्यकुल और तरुण शांतिसेना का एक-एक संयोजक नियुक्त कर दिया जाय। वे दोनों मिलकर अपने-अपने क्षेत्रो म सभी विद्यालयों में आचार्यकुल और तरुणशांति-सेना का कार्य करें। (६) आन्दोलन की प्रचलित धाराओ और संगठन की देश-व्यापी गतिविधियो से सम्पर्क बनाये रखने के लिए 'नयी तालीम', 'भूदान-यज्ञ', 'गाँव की आवाज' 'तरुण मन' और 'भूदान तहरीक' के ग्राहक बनाने और साहित्य प्रचार पर ध्यान दिया जाय।

यह भी निश्चय किया गया कि शिविर क अनुभवो को देखते हुए अब यह और उचित लगता है कि अब आगे से जब भी शिविर हो तो आचार्यकुल और तरुणशान्तिसेना का संयुक्त शिविर ही किया जाय।

शिविर मे बाहर के अतिथियों, व श्री रोहित मेहता, श्री यशोधरजी, श्री सु०बाराव और श्री कामेश्वर बहुगुणा के अलावा सर्वोदय के प्रसिद्ध विचारक श्री आचार्य राममूर्तिजी और अखिल भारतीय तरुणशान्तिसेना की शिक्षा म क्रान्ति दिवस की तैयारी समिति के संयोजक श्री सतोष कुमार भारतीय ने भाग लिया। श्री राममूर्तिजी १४ १५ जून को शिविर में रहे। उन्होंने छात्र असन्तोष, शिक्षा मे क्रान्ति, सर्वोदय तत्व दर्शन, ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन और आचार्यकुल तथा तरुणशान्तिसेना विषयो पर प्रवचन किये। उनके भाषण शिविर के लिए अत्यन्त प्रेरणादायी और मार्ग दर्शक सिद्ध हुए। श्री भारतीय ने शिक्षा मे क्रान्ति दिवस की रूपरेखा लोगों के सामने रखी और इसको सफल बनाने की अपील की। सत्र की अध्यक्षता पडरौना डिग्री कालेज के भूतपूर्व आचार्य ठाकुर जे० पी० सिंह ने की।

शिविर का समारोह १६ जून की शाम को गोरखपुर विश्वविद्यालय के कुलपति श्री डा० बालकृष्ण राव के हाथो सम्पन्न हुआ। कालेज समिति के प्रबन्धक श्री उमाशंकरजी ने शिविर की ओर से कुलपतिजी का स्वागत किया और शिविर को उनके द्वारा दी गयी आर्थिक सहायता के लिए कृतज्ञता व्यक्त की। अपने समापन भाषण मे श्री कुलपतिजी ने कहा—आचार्यकुल आज के सन्दर्भ में सर्वोत्तम विचार है। उन्होने कहा कि यद्यपि आचार्यकुल से अध्यापक और छात्र समाज का हित साधन होगा, उन्होंने अध्यापको और खासकर कालेज एव विश्वविद्यालयों के प्राध्यापको और अधिकारियो को चेतावनी देते हुए कहा कि अगर अब वे अपने पाखण्डपूर्ण भ्रष्ट और झूठे मूल्यो

पर आधारित जीवनक्रम को नहीं बदलेंगे तो समाज में अब उनकी सुरक्षा एव सम्मान कायम नहीं रह सकती। अपने हाल के पश्चिम बंगाल के दौरे में कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों और अधिकारियों से चर्चा से प्राप्त अनुभवों के प्रधार पर कहा कि आज वहाँ का अध्यापक क्षण-क्षण जीवन-मरण की शकाओं से ग्रस्त है। उसने और उसके परिवार ने अब यह निश्चय जान लिया है कि वह किसी दिन विद्यालय जाकर घर वापस लौटने मे नाकाम हो सकता है। कुलपतिजी ने कहा कि अध्यापकों की यह हालत बहुत कुछ उनकी अपनी करनी का फल है। उन्होंने आशा प्रगट की कि शायद आचार्य-कुल उस स्थिति से अध्यापक को मुक्ति दिला सकेगा।

सत्र मे शिविर की सक्षिप्त रिपोर्ट और अनुभव सुनाते हुए श्री सुब्बाराव ने कहा कि यह शायद भारत मे पहला शिविर है जहाँ आचार्य एव छात्र साथ-साथ बैठे हों। शिविर मे प्रदेश के अनेक जिलो से ५० से ऊपर शिक्षक-छात्र प्रतिनिधियों ने भाग लिया और खुले वातावरण में सहजीवन का अनुभव प्राप्त किया। एक साथ भोजन करना, एक साथ श्रमदान करना, एक साथ बैठना और एक साथ सास्कृतिक कार्यक्रम मे हिस्सा लेना यह सब शिक्षक एव छात्र दोनों के लिए नयी बात थी। इस अनुभव का आगे लाभ उठाया जाना चाहिए।

सत्र के अध्यक्ष श्री सिंहासन सिंहजी ने इस बात के लिए शिविर के निदेशक श्री सुब्बारावजी के प्रति आभार प्रकट किया कि उन्होंने एक ऐसे शिविर की व्यवस्था की। उन्होंने कहा मुझे आशा है कि इस शिविर से शिक्षक एव छात्र-समुदाय कुछ प्रेरणा ग्रहण करेगा।। कुलपतिजी को धन्यवाद देते हुए शिविर सचालक तथा कालेज के प्राचार्य श्री हरिशकर लालजी ने कहा कि अगर कुलपति महोदय का प्रोत्साहन नहीं मिला होता तो यह शिविर करना सम्भव नहीं होता। उन्होंने शिविर मे आये हुए सभी प्रतिनिधियो, युवकों को धन्यवाद दिया।

शिविर का अत श्री सुब्बारावजी के द्वारा 'भारत की सन्तान' नामक एक सुन्दर गीत से हुआ, जिसमे उन्होंने भारत की सब भाषाओं को एक ही गीत मे पिरोया है। इसी गीत से शिविर का आरम्भ हुआ था। श्री सुब्बाराव के मधुर कण्ठ और गायन शैली ने गीत के सौन्दर्य को और भी आनन्दकारी बना दिया। शिविर का निर्देशन उन्होंने ही किया था। वे ४ दिनो तक अपने गीतो और मनोरंजन कार्यक्रमो से शिविर मे लोगों की रुचि बराबर जगाये रहे।

शिविर की भोजन-व्यवस्था का समस्त भार कालेज के अध्यापकों एवं छात्रों ने उठाया, यद्यपि उनकी मदद के लिए शिविरार्थियों की, सत्य, प्रेम, विजय और शान्ति टोलियों ने अलग अलग दो दिन काम किये।

शिविर की चर्चाओं का सार एक प्रतिवेदन के रूप में तैयार किया गया। छात्र असन्तोष पर प्रतिवेदन तैयार करने के लिए सर्वश्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुना प्रो० श्री रामकृष्णमणि त्रिपाठी, डा० भोलानाथ और छात्र राजेश चन्द्र गुप्त की एक उपसमिति गठित की गयी थी जिसने अपना प्रतिवेदन शिविर में पेश किया। उसपर चर्चा हुई और वह स्वीकृत किया गया। शिक्षा में क्रान्ति का प्रतिवेदन श्री वशीधरजी के प्रवन्ध को ही कुछ संशोधनों के साथ मान लिया गया। कालेज के आचार्यकुल के संयोजक प्रो० रामरक्षा पाण्डेय तथा प्रो० आर० जे० दास प्रो० टी० एस० सिन्हा प्रो० लालबाबू आदि ने बड़े ही लगन से अपने अपने कर्तव्य का निर्वाह किया जिससे कि शिविर का आयोजन सफल हुआ।

शिविर के तत्वावधान में १५ जून को सायंकाल कालेज मैदान में बगला देश पर एक आम सभा का भी आयोजन किया गया, जिसमें श्री सुब्बाराव ने बगला देश से आये शरणार्थियों के शिविरों में, जो आजकल सर्व सेवा संघ, शान्ति सेना मंडल और गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के निर्देशन में पश्चिमी बंगाल त्रिपुरा और अन्य स्थानों पर लगाये जा रहे हैं, अपने अनुभव सुनाये। उन्होंने बताया शिविरार्थियों को जब अपनी टोलियाँ बनाकर इनका नामकरण करने को कहा गया तो उन्होंने तुरन्त ही बिना कुछ देर लगाये ही ५ टोलियों के नाम क्रमशः शेखमुजीबुर्रहमान, रवीन्द्र नाथ टैगोर, बगला देश की शहीद छात्रा रोशन आरा, महात्मा गांधी, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस और प्रसिद्ध कवि काजीनजरुल इस्लाम के नाम से अवगत करा दिये। यह उनकी भावनाओं का प्रतीक है। श्री सुब्बाराव ने बगला देश के अपने अनुभवों के आधार पर कहा अब चाहे जो हो लेकिन अब वे लोग स्वतंत्रता से कम कोई चीज शायद ही पसन्द करें। वे यद्यपि आज दमन के शिकार हैं किन्तु उनकी आँखों में चमक और आशा में झलक दिखाई देती है। हमें चाहिए कि हम अपने देश से धन वस्त्र से तथा साम्प्रदायिक सद्भाव बनायेरख कर उनकी मदद करें, इससे उनको अत्यन्त बल मिलेगा।

—श्री रामवचन सिंह

मध्यप्रदेश आचार्यकुल का प्रथम अधिवेशन

(भोपाल, ३१ अक्तूबर, '७१)

रवीन्द्र भवन मे आयोजित मध्यप्रदेश आचार्यकुल के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए गाधीजी के निकटतम साथी श्री धीरेन्द्र मजूमदार ने वर्तमान शिक्षा के प्रति गहरा असन्तोष प्रकट करते हुए कहा कि राजा महाराजाओ के जमाने मे समाज का नेतृत्व गुरुओ के रूप मे समाज के अनेक प्रतिभाशाली विद्वानो के हाथ मे होता था। आज लोकतन्त्र मे नेतृत्व नेता के हाथ मे निकलकर तेजी से गुण्डो के हाथ मे आता जा रहा है।

आपने कहा कि शिक्षा के साथ सरकार का सम्बन्ध न्याय विभाग की तरह होना चाहिए। आचार्यकुल शिक्षको की कोई ट्रेड यूनियन न बने। जिस प्रकार घर के पडोस मे आग लगने पर हर व्यक्ति पानी से भरा घडा लेकर उसे बुझाने के लिए दौड पडता है उसी तरह आज देश के हर शिक्षक को, चाहे वह स्कूल-शिक्षक हो और चाहे समाज सेवा मे लगा हुआ लोक शिक्षक हो, दोनो को ही समाज मे हाथ से काम न करनेवाला ही श्रेष्ठ है इस मान्यता को बदलकर उत्पादन-कार्य करनेवाले किसान-मजदूर की प्रतिष्ठा बढाने के लिए सक्रिय प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षा का सारा-का-सारा सन्दर्भ (पर्सपेक्टिव) ही बदलना चाहिए। शिक्षा यदि नौकरी के लिए है तो देश के सबसे बडे ग्राहक, जो कि देश की जनता ही हो सकती है, उसके नियत्रण पर शिक्षा चलनी चाहिए। वह सरकारो के चगुल से मुक्त हो और उसे डिग्री से भी जितनी जल्दी मुक्त किया जा सके उतनी ही जल्दी देश का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

इस अवसर पर केन्द्रीय आचार्यकुल के सयोजक श्री वशीधर श्रीवास्तव ने आचार्यकुल के लक्ष्यों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यह देश के शिक्षकों की ऐसी सस्था है जो स्वतत्र रूप से रहकर शिक्षा मे क्रान्ति तथा समाज-परिवर्तन की दिशा मे प्रयत्नशील रहेगी। इसकी कल्पना डा० जाकिर हुसेन से बात करते समय विनोबाजी के मन मे आयी। श्री वशीधरजी ने कहा "आज की विषम परिस्थितियो मे तालीम को बदलने का प्रचण्ड कार्य आचार्यकुल कर सकेगा। विज्ञान, अध्यात्म और इन दोनों को जोडनेवाला आचार्य, तीनो मिलकर समाज का उद्धार कर सकते हैं। देश मे विभिन्न राजनैतिक दल हैं और हर दल अपने

दल की बात को सत्य मानता है और दूसरो से मनवाने का आग्रह करता है। इससे भिन्न आचार्यकुल राजनैतिक दलबन्दी से पृथक रहकर शिक्षा की स्वतंत्रता और स्वायत्तता के लिए प्रयत्नशील रहेगा। सरकारी योजनाओ की तरह आज सर्वोदय आन्दोलन मे भी स्थानीय अभिक्रम की कमी का बार-बार जिक्र किया जाता है। आचार्यकुल इस दिशा में सर्वोदय आन्दोलन के लिए वरदान सिद्ध हो सकता है।

मध्यप्रदेश मे आचार्यकुल के संयोजन का काम हाल ही मे डेढ माह से श्री गुरुशरणजी को सौंपा गया। उन्होने इस अल्प अवधि मे काफी काम किया है। आशा है इस अधिवेशन से यह कार्य दिनोदिन पुष्ट होता जायगा।

अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष डा० भगवती प्रसाद शुक्ल विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हमीदिया महाविद्यालय भोपाल ने कहा कि अब समय आ गया है कि हमें शिक्षको के संगठन के बारे मे नये ढग से सोचने की आवश्यकता है। शिक्षको के लिए विचार का स्वातन्त्र्य बहुत जरूरी है। आज की शिक्षा-नीति व्यक्ति के उन्नयन का साधन तो है पर उससे समाज का भला नही हो पा रहा है। इस दिशा म हम सबको मिलकर सोचना है और मेरी आकांक्षा है कि मध्यप्रदेश मे आचार्यकुल इसके लिए सतत् प्रयत्नशील हो।

अधिवेशन के अध्यक्ष श्री दादाभाई नाईक ने सभी का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया कि देश के भाग्यविधाता आज के नेता और विधायक नहीं हैं बल्कि वे लोग हैं जो समाज को शिक्षित करने मे अपनी शक्ति लगा रहे है चाहे वे शिक्षा संस्थाओ के माध्यम से कार्यरत हो और चाहे रचनात्मक संस्थाओ के माध्यम से। आचार्यकुल सभी बंधनो से मुक्त रहकर एक ऐसा प्रादेशिक संगठन बने जो स्वतंत्र रूप से अपने मत की अभिव्यक्ति करे और उस अभिव्यक्ति का शासन पर भी असर हो।

मध्यप्रदेश आचार्यकुल के संयोजक प्राध्यापक गुरुशरण ने प्रदेश म हुए अब तक के काम पर संक्षेप मे प्रकाश डाला और यह आशा व्यक्त की कि अभी तक जो काम हुआ है वह और जिलो के कामो पर भी असरकारक हो रहा है। प्रदेश के सोलह जिलो म विधिवत् आचार्यकुलो की स्थापना हो चुकी है। और वे क्रियाशील हैं। अब संगठन को सुदृढ बनाने की दृष्टि से संभागीय स्तर पर सम्मेलनो का निश्चय किया गया है और मध्यप्रदेश आचार्यकुल की एक तदर्थ समिति बनाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है जो प्रदेश के कार्य को आगे बढ़ाने मे अपना योगदान दे।

अन्त मे आचार्यकुल भोपाल के संयोजक डा० गंगानारायण त्रिपाठी ने प्रदेश भर से आये हुए आचार्यकुलो के सदस्यो के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा कि देश जिस निराशाजनक स्थिति मे चल रहा है उसमे आचार्यकुलो से उसी तरह आशा की जा सकती है जैसा कि गुरुदेव रवीन्द्र ने अपने एक गीत मे व्यक्त किया है कि सन्ध्या को अस्त होते हुए सूर्य ने जब धरा से पूछा कि अब अन्धकार मे कैसे कार्य हो सकेगा तो एक छोटे से दीप ने बड़े विनम्र भाव से कहा कि भले ही हम सारा तिमिर न हर सकें, पर हम अपनी जलती हुई ज्योति से कल फिर सबेरा होने तक अपने आस-पास के अन्धकार को दूर करते रहेंगे। उसी तरह से आचार्यकुल पूरे प्रदेश मे अपनी भक्ति और शक्तिभर इस निराशाजनक स्थिति को बदलने मे प्रयत्नशील रहेगा।

निम्नांकित सदस्यो की प्रादेशिक तदर्थ समिति की घोषणा की गयी।

१. डा० भगवती प्रसाद शुक्ल, भोपाल	सदस्य
२. डा० गंगानारायण त्रिपाठी, भोपाल	"
३. श्री काशिनाथ त्रिवेदी, इन्दौर	"
४. श्री दादाभाई नाईक, इन्दौर	"
५ श्री छोटालाल संघवी, इन्दौर	"
६. श्री मोहम्मद हुसेन, इन्दौर	"
७. श्री रामकुमार शर्मा, छिंदवाडा	"
८ श्री प्रेमनारायण रुसिया, टीकमगढ	"
९. श्रीमती सरस्वती दुबे, रायपुर	"
१०. श्री नर्मदा प्रसाद शर्मा, बिलासपुर	"
११. श्री ग० उ० पाटणकर, बैतूल	"
१२. श्री ओम प्रकाश वैश्य, ग्वालियर	"
१३. अध्यक्ष, म० प्र० सर्वोदय मण्डल	पदेन सदस्य
१४. मन्त्री, म० प्र० सर्वोदय मण्डल	"
१५ श्री गुरुशरण, ग्वालियर	संयोजक

स्थायी निमंत्रित :

१. श्री वशीधर श्रीवास्तव, संयोजक, केन्द्रीय आचार्यकुल, वाराणसी।
२ श्री चतुर्भुज पाठक, संयोजक, मध्य प्रदेश शान्तिसेना समिति, छतरपुर।
३. डा० रामचन्द्र बिल्लौरे, १०२, जानकीनगर, इन्दौर।

—गुरुशरण

दिल्ली आचार्यकुल समिति

१८-८-७१ को सायं ५ बजे सन्निधि में आचार्यकुल समिति की बैठक हुई। बैठक की अध्यक्षता श्री जैनेन्द्र कुमारजी ने की। इस बैठक में आचार्यकुल के संगठन तथा आचार्यकुल के अन्तर्गत लेनेवाली जीवन-शिक्षण-परीक्षा की योजना को आकार देने की दृष्टि से चर्चा की गयी।

दिल्ली सर्वोदय मंडल के संयोजक श्री वसंत व्यास ने कहा कि इन परीक्षाओं का उद्देश्य वर्तमान शिक्षा और समाजरचना के प्रति छात्रों और युवकों के मन में विद्रोह की भावना पैदा करके उनकी शक्तियों को रचनात्मक दिशा देने का है। इसलिए वर्तमान परीक्षा-पद्धति में तथा शिक्षा में क्रान्ति और नये समाज के निर्माण के लिए साधन-स्वरूप ये परीक्षाएँ बननी चाहिए और उसे ध्यान में रखकर उसके प्रश्नपत्र और अभ्यासक्रम आदि बनना चाहिए।

श्री यशपालजी ने इस बात का समर्थन किया और जोर दिया कि सबसे पहले इसका पाठ्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए। उन्होंने अभिमत प्रकट किया कि तीन परीक्षाओं के तीन अलग-अलग नाम दिये जायें।

श्री जैनेन्द्रजी ने कहा कि परीक्षा के प्रश्नपत्र, स्वरूप आदि सारे कार्य परीक्षा-समिति पर निर्भर करते हैं, इसलिए एक परीक्षा-समिति बना ली जाय।

तय हुआ कि श्री यशपालजी, श्री वसंत व्यास, सुश्री सीता बिम्ब्रा मिलकर इस पर सोचें और परीक्षा का खाका तैयार करें तथा इस कार्य में जिनकी मदद चाहिए उनको परीक्षा-समिति में 'कोआप्ट' कर लें।

चूंकि (अ) आचार्यकुल के विचार का प्रचार करना, व्यापक रूप से सदस्य बनाना और (ब) परीक्षा को चालू करना—इन दोनों पक्षों को न्याय देना है इस दृष्टि से मंडल के संयोजक तथा श्री सीता बहन मिलकर काम करें ऐसा निश्चय हुआ। साहित्य प्रचार करना, आचार्यकुल के कार्य में सहयोग करना, पत्रिकाओं के ग्राहक बनाना आदि कामों के लिए सुश्री वीना माथुर पूरा समय लगायेंगी।

अभी तक के कार्यानुभव के आधार पर तथा आचार्यकुल के व्यापक उद्देश्यों तथा विभिन्न कार्यों के सन्दर्भ में आचार्यकुल समिति की नयी संरचना सर्वानुमति से निम्न प्रकार हुई :

(१) आचार्य काका साहब कालेलकर	(८) सुश्री सीता बिम्ब्रा
(२) श्री जैनेन्द्र कुमार	(९) श्रीमती पद्मा श्रीवास्तव
(३) श्री भीमसेन सच्चर	(१०) बाबा लाल सिंह
(४) श्री यशपालजी	(११) श्री मदन मोहन सूरी
(५) श्री वसत व्यास	(१२) श्री विश्वनाथ जालान
(६) सुश्री इन्दिरा कश्यप	(१३) श्री राधेश्याम योगी
(७) श्रीमती ऊषा चोधरी	(१४) सुश्री बीना माथुर

जो सदस्य विभिन्न स्कूल-कालेजो मे आचार्यकुल के कार्य को आगे बढाने का प्रयत्न करें उनम से आवश्यकतानुसार समिति मे शामिल किये जा सकते हैं।

× × ×

ता० २२ ७ ७१ को साय चार बजे सन्निधि म आचार्यकुल की शिक्षा-परीक्षा समिति की बैठक हुई, जिसकी अध्यक्षता श्री यशपालजी ने की।

श्री यशपाल जैन
श्री वसत व्यास
सुश्री सीता बिम्ब्रा
श्री बाबा लाल सिंह (निमत्रित)
सुश्री बीना माथुर (निमन्त्रित)

परीक्षा की नियमावलि सम्बन्धी विचार विमर्श हुआ। सभी ने अपनी अपनी राय प्रकट की। बाद मे श्री यशपालजी ने उसके सार को निश्चित भाषा दी। श्री यशपालजी ने परीक्षा के प्रश्नो के कुछ नमूने पेश किये। प्रवेश आदि के नियम भी निश्चित किये गये।

जो विचार विमर्श हुआ उसके आधार पर एक खाका तैयार करने का कार्य सुश्री सीता बिम्ब्रा को सौंपा गया।

—वसत व्यास

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष : २०
अंक : ४
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

नवम्बर, '७१

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है ।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा [illegible] रुपये है और एक अंक के ५० पैसे ।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक सख्या का उल्लेख अवश्य करें ।
- रचनाओं मे व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है ।

श्री श्रीकृष्ण दत्त भट्ट, द्वारा सर्व सेवा सघ के लिए प्रकाशित,
एव इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ मे मुद्रित ।

नयीतालीम . नवम्बर, '७१

पहले ही डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

साहित्य-प्रचार : नमूना-योजना

सर्वोदय-साहित्य का प्रचार करनेवाली संस्थाओं एवं पुस्तक विक्रेताओं को सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित साहित्य का छपते ही नमूना मिल जाय, इस दृष्टि से यह योजना बनायी गयी है।

१. इस योजना के सदस्यों को हिन्दी-अंग्रेजी हर नयी किताब की एक या अधिक प्रतियाँ उसके मूल्य के प्रमाण में रु० ६.०० से रु० १०.०० तक कीमत की रु० १.०० से रु० २.०० तक कमीशन बाद करके व्ही० पी० द्वारा भेजी जायँगी। रुपये ६.०० से कम मूल्य की किताबें नहीं भेजी जा सकेंगी, न उनपर कोई कमीशन दिया जा सकेगा।

२ किताबों के मूल्य के प्रमाण में कितनी प्रतियाँ भेजी जायेंगी, कितना कमीशन मिलेगा तथा व्ही० पी० कितने की होगी, इसका नक्शा इस प्रकार है

किताब का मूल्य	प्रतियाँ	कीमत	कमीशन	व्ही० पी० रु०
१ ००	६	६ ००	१ ००	५ ००
२ ००	३	६ ००	१ ००	५ ००
३ ००	२	६ ००	१ ००	५ ००
३ ५०	२	७ ००	१ २५	५ ७५
४ ००	२	८ ००	१ ५०	६.५०
४ ५०	२	९ ००	१.७५	७ २५
५ ००	२	१० ००	२ ००	८ ००

रु० ६ ०० से रु० १० ०० तक मूल्य की किताबों की केवल एक-एक प्रति भेजी जायगी। कमीशन ऊपर के अनुसार होगा। व्ही० पी० खर्च करीब रु० २ ०० संघ बर्दाश्त करेगा।

३ योजना के सदस्य बननेवालों को रु० ५.०० भेजने चाहिए। इसमें रु० १.०० सदस्यता शुल्क का होगा शेष रु० ४.०० पेशगी जमा रहेंगे। व्ही० पी० वापस आयी, तो उसका खर्च रु० २.०० जमा रकम में से कट जायगा। दो बार व्ही० पी० वापस लौटने पर जमा रकम और सदस्यता समाप्त हो जायगी।

४ योजना ता० १ जनवरी १९७२ से चालू होगी। सदस्य अभी से बनाये जायेंगे। पुस्तक विक्रेता, खादी भण्डार, सर्वोदय मंडल, शान्तिसेना केन्द्र, आचार्यकुल केन्द्र, ग्रामसभाएँ आदि सर्वोदय विचार का प्रचार करनेवालों को इस योजना का सदस्य अवश्य बनना चाहिए, ताकि नवप्रकाशित हर किताब तुरन्त उनके पास पहुँच जाय।

[योजना के सम्बन्ध में अपने सुझाव देने की कृपा करें।]

—राधाकृष्ण बजाज

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

आवरण मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी १

आँधी बोयी है तूफान काटोगे

अंग्रेजी म एक कहावत है आंधी बोओ और तूफान काटो । हिन्दी मे इसीसे मिलती-जुलती दूसरी कहावत है बबूल का पेड़ रोपा है तो आम का फल नहीं पाओगे । स्वराज्य के बाद के चौबीस वर्षों मे हमने शिक्षा के खेत मे आंधी ही बोयी है और अब तूफान काट रहे हैं । और यह तूफान है छात्रो का विक्षोभ विद्रोह जिसकी परिणति हिंसा म हुई है और जिसने शिक्षा मदिर के तथाकथित पवित्र वातावरण को लगता है सदा के लिए नष्ट कर दिया है ।

वर्ष : २०
अक : ५

कलकत्ता विश्वविद्यालय ने इस वर्ष कानून की परीक्षा रद्द कर दी थी। असन्तुष्ट छात्रों ने इस फैसले के विरुद्ध हाई कोर्ट मे 'रिट दायर किया था जिसे हाई कोर्ट ने नामजूर कर दिया। इस पर क्षुब्ध होकर विद्यार्थी कलकत्ता विश्वविद्यालय के दरभगा भवन गये दरवान को डरा धमका कर इमारत की कुजी छीन ली और भीतर घुसकर मनमानी तोड फोड की और हॉल मे लगे रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र को जो एक प्रसिद्ध चित्रकार का बनाया हुआ था टुकडे टुकडे कर दिया। यह तो छात्र उपद्रव का एक उदाहरण है। छात्रो के उपद्रवो से त्रस्त होकर इस वर्ष भी एक के बाद दूसरे विश्वविद्यालय अनिश्चित काल के लिए बन्द हुए हैं । पहले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बन्द हुआ था फिर राजस्थान विश्वविद्यालय बन्द हुआ और अभी इलाहाबाद विश्वविद्यालय अपने समस्त सलग्न डिग्री कालेजो के साथ बन्द हो गया है— अनिश्चित अवधि के लिए।

और अभी हाल में शान्ति-निकेतन के विजिटर ने, (शान्ति निकेतन के विजिटर भारत के राष्ट्रपति हैं) एक अध्यादेश द्वारा मनोनीत सदस्यों को, जो सब उन्हीं द्वारा मनोनीत हैं, विश्वविद्यालय के समस्त प्रशासनिक अधिकार दे दिये हैं। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ के इस विश्व-विश्रुत विद्यामन्दिर को वाराणसी और अलीगढ़ विश्वविद्यालयों के ओहदे पर ला दिया है। और जब यह हो गया है तो खुल्लमखुल्ला चिल्लाकर कहा जा रहा है कि विजिटर के इस अध्यादेश का कारण शान्ति-निकेतन के 'छात्रों' का व्यवहार है। परन्तु दबे-दबे यह भी स्वीकार किया जा रहा है कि शान्ति-निकेतन के अध्यापक-वर्ग को भी इसका कम श्रेय नहीं है।

इस घटना से दुखी होकर २९ नवम्बर १९७१ को अंग्रेजी के दैनिक अखबार 'स्टेट्समैन' ने 'हमारे प्यारे बच्चों' शीर्षक से एक सम्पादकीय लिखा है। वह लिखता है 'विद्यार्थी जो आज कर रहे हैं, उसकी सबसे अधिक जिम्मेवारी मध्यवर्गीय अभिभावकों की है जिन्होंने यह माँग की कि विश्वविद्यालय बेरोजगारी के प्रतीक्षालयों में बदल दिये जायँ, और जिस माँग का परिणाम हुआ है उच्च शिक्षा का स्फीतीकरण (इन्फ्लेशन)। यही वह वर्ग है जिसने गम्भीर अध्ययन की परवाह न कर अपने बच्चों को परीक्षा पास करने के लिए नोट, कुंजियाँ और गेसपेपर्स खरीदने के लिए उत्साहित किया है और फिर भी जब उनके 'बच्चे' फेल हुए हैं, तो 'ग्रेस मार्क्स' (कृपांक) के लिए शोर मचाया है। और जब अपनी शिक्षा से हताश होकर इन बच्चों ने विश्वविद्यालयों की मेज-कुर्सियाँ और खिड़कियों के शीशे तोड़ने शुरू किये तो इन्होंने ही यह कहा कि यह 'हमारे प्यारे बच्चों' का काम नहीं है--बाहरी लोगों का काम है।, लेकिन अब जब उनके प्यारे बच्चों ने खुल्लमखुल्ला, पिस्तौल बन्दूक और बम का इस्तेमाल शुरू कर दिया है, कालेज के भवन और प्रयोगशालाएँ जला रहे हैं, परीक्षाओं में अवरोध उत्पन्न करने लगे हैं, वाइसचान्सलरों की हत्याएँ करने लगे हैं और उच्च न्यायालय के आदेशों की अवमानना करने लगे हैं, तो यही अभिभावक कहने लगे हैं यह कुछ मुट्ठीभर लड़कों का काम है, जिनके कारण अधिकांश लड़कों की पढ़ाई-लिखाई का नुकसान हो रहा है। यानी अब वे यह स्वीकार करने लगे हैं कि इन उपद्रवों में लड़कों का हाथ है, भले ही वे लड़के थोड़े

हो। परन्तु सच तो यह है कि इन मध्यवर्गीय अभिभावकों ने आंधी बोयी है और अब तूफान काट रहे है।

परन्तु इससे अधिक सच यह है कि अभिभावकों ने ही नहीं, शिक्षा से जिसका भी सम्बन्ध रहा है सभी ने आंधी ही बोयी है। क्या उन शिक्षा-शास्त्रियों ने आंधी नही बोयी है जिन्होंने यह जानते हुए भी कि जो अनुत्पादक शिक्षा दी जा रही है, उसका कोई सम्बन्ध उनके यथार्थ जीवन से नही है और इससे उनको अपने पैरो पर खडा होने और रोजी-रोटी कमाने की किसी प्रकार की सहायता नही मिलेगी, उन्होंने उसी शिक्षा को जारी रखने की सलाह दी है? क्या आंधी बोने का यह उत्तरदायित्व उन नेताओं का नहीं है जिन्होंने लोक-प्रतिनिधि के पवित्र आसन पर बैठ कर भी लोकहित-विरोधी इस निकम्मी अनुत्पादक शिक्षा को चलते रहने दिया है? अथवा आंधी बोने का यह काम क्या उन शैक्षिक प्रशासकों ने नहीं किया है, जिन्होंने अपने निहित स्वार्थों के कारण बेसिक शिक्षा जैसी प्रगतिशील शिक्षा-योजना के शिशु-गृह में ही उसका गला घोट दिया? और आंधी बोने का यह उत्तरदायित्व क्या उन अध्यापकों का नही है, जिन्होंने अपने प्रमाद के कारण पुरानी निकम्मी शिक्षा को ही नही स्वीकार किया, कुंजियाँ, नोट्स और गेसपेपर्स खरीदने-खरीदवाने में अभिभावकों का साथ भी दिया और अध्ययन-अध्यापन का अपना पवित्र काम छोड़कर दूसरे देशो से पैसा कमाकर अपना घर भरते रहे? अथवा यह उत्तरदायित्व क्या उन विद्यार्थियों का नहीं है जिन्होंने परीक्षा पास करने के लिए गम्भीर अध्ययन का मार्ग छोड़कर सस्ते और भ्रष्ट तरीकों को अपनाया। और सबसे पहले क्या आंधी बोने का यह उत्तरदायित्व उन राजनीतिज्ञों का नहीं है जिन्होंने अपने राजनीतिक स्वार्थ साधने के लिए विद्यालयों के विद्यार्थियों और अध्यापकों को अपनी संकीर्ण सत्तानीति का मोहरा बनाया है? और उस सरकार ने क्या आंधी नहीं बोयी है जिसने जब स्वतन्त्र देश के विकास का काम प्रारम्भ किया तो विकास योजनाओं में शिक्षा को अत्यन्त नीचे स्थान दिया? अधिक सच तो यही कहना होगा कि पूरे देश ने आंखें बन्द कर शिक्षा के खेत में आंधी ही आंधी बोयी है और अब तूफान काटने के अलावा उनके पास कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

—यशोधर श्रीवास्तव

धीरेन्द्र मजूमदार

नयी तालीम का अनुभव और चिन्तन

[श्री धीरेन्द्र मजूमदार स्वयं नयी तालीम के प्रयोग हमेशा करते रहे हैं। उन्होंने जब प्रयोग किया और उसके जो परिणाम निकले उनको उन्होंने लिपिबद्ध किया है। बिहार के पूर्णिया जिले के बलिया गाँव में उन्होंने ग्रामभारती का जो प्रयोग किया उसका चिन्तन और अनुभव उन्होंने पत्र के रूप में श्री सिद्धराज को लिखा है। उनका यह चिन्तन और अनुभव नयी तालीम के कार्यकर्ताओं शिक्षकों का मार्गदर्शन करेगा ऐसी आशा है।—सं०]

ग्रामभारती की शुरुआत सात लड़कों में हुई। क्रमशः आज वह संख्या १२ तक पहुँच गयी है। अपनी कुटिया के सामने थोड़ी-सी जमीन जोतकर इसका 'श्रीगणेश' हुआ था। उस जमीन पर खेती तथा बच्चों के घर के काम शिक्षा के माध्यम रहे। इस प्रक्रिया से तालीम की दृष्टि से काफी प्रगति होने लगी फिर भी बच्चों को पूरे समय शिक्षक के साथ रहने को मिले इसका कोई छोर नहीं निकल रहा था। विभिन्न कार्यक्रमों के समवाय में विषयों की जानकारी कैसे दी जा सके इसके प्रयोग में हम लोग लगे रहे।

अनुकूल प्रगति रही है, लेकिन बच्चों में मिलकर काम करने के फलस्वरूप परस्पर क्रियात्मक सहकारिता के भी दर्शन होने लगे। फसल-कटाई में सहकार वृत्ति निश्चित रूप से प्रकट हुई यद्यपि विजय भाई ने उनसे कह दिया था कि वे अलग अलग कटाई कर सकते हैं। फिर भी उन्होंने यही तय किया कि वे सामूहिक रूप से कटाई करेंगे। जितनी मजदूरी मिली उसमें से काफी हिस्सा सामूहिक रूप से रख लिया जिससे वे एक साथ खर्च कर सकें।

फसल-कटाई समाप्त होने पर ग्रामभारती की प्रगति के लिए एक नया अवसर हाथ में आया वह यह कि खेत खाली हो जाने पर सबके पशु एक तरफ चरने जाने लगे। मैं हमेशा ग्रामीण जनता से कहा करता हूँ कि भाई इस विज्ञान के युग में हरएक को ज्ञान प्राप्त करना ही होगा। इसके लिए यह आवश्यक होगा कि सब लोग स्कूल जायें। लेकिन अगर सब लोग स्कूल चले जायेंगे तो घर गृहस्थी का काम नहीं चल सकेगा। इसलिए यह जरूरी है कि गाँव भर के सारे घर गृहस्थी के काम भी स्कूल के काम के रूप में परिणत किये जायें। उदाहरण मैं कहता हूँ कि अगर भैंस की पीठ पर बैठनेवाले बच्चों को स्कूल भेजना सम्भव नहीं तो स्कूल को ही भैंस की पीठ पर ले जाना होगा।

फसल कट चुकने के बाद इस विनोद को साकार करने का अवसर मिला। ग्रामभारती के बच्चों के घर के सब पशुओं को एक तरफ चराने की योजना बनी। शिक्षक भी उनके साथ जाने लगे। पशु चराने के स्थान पर जो वर्ग लिया जाता था उसका नाम बहियार-वर्ग रखा गया। बहियार का मतलब है, खेती के लिए मैदान। आसपास के लोगों को यह एक दिलचस्प चीज लगी। उन्होंने कभी इस प्रकार की शिक्षा का स्वप्न भी न देखा होगा। इस बहियार वर्ग से आकर्षित होकर चारों तरफ से लोग अपने बच्चों को ग्रामभारती में शामिल करने लगे। थोड़े ही दिनों में बच्चों की संख्या १२ से बढ़कर ४५ तक हो गयी। अधिक संख्या में बच्चे होने के कारण तीन शिक्षक तीन बहियार में जाने लगे। इस बहियार वर्ग के अलावा भैंस की पीठ पर स्कूल ले जाने की एक प्रक्रिया निकाली गयी। बच्चे अलग अलग भैंस की पीठ पर बैठकर चराने जाते और रात को ग्रामभारती में आकर पढ़ते थे। उनकी किताबों में रस्सी बाँधकर उनके गले में लटका दिया जाता था और वे मस्ती से भैंस की पीठ पर बैठकर पढ़ा करते थे। इस प्रकार पूरे क्षेत्र में एक अजीब वातावरण फैल गया। वहाँ पहले पशु चरानेवाले बच्चे आपस में लड़ने, गाली देने तथा दूसरे की सम्पत्ति बरबाद करने के काम में लगे रहते थे। वहाँ अब वे पशु चराते समय

पढ़ाई अच्छे अच्छे गीत गाने तथा रामायण का उच्चारण करने लगे। इसमें ग्रामभारती के प्रति क्षेत्रभर के लोगों की दिलचस्पी बढ़ी। लेकिन बच्चे जो बढ़े, वह इसलिए नहीं कि लोग ग्रामभारती के विचार को समझ रहे थे, बल्कि इसलिए कि हम लोगों के नये तरीके देख उनके दिमाग में अजीब किस्म की अभिरुचि की प्रतिक्रिया होती थी। अतः थोड़े दिनों में छात्रों की संख्या ४५ से घटकर १५-१६ हो गयी लेकिन इस दिलचस्पी के कारण हम लोगों को व्यापक रूप में विचार प्रचार का मौका मिल गया।

यह सब हुआ लेकिन बाबू-वर्ग के दिमाग से मजदूर स्कूल की भावना नहीं मिटी। गाँव में जो बाबू लोग ग्रामभारती का प्रचार और मजदूरों के बच्चों को शामिल कराने की कोशिश करते थे, वे भी अपने बच्चों को वहाँ नहीं भेजते थे। यद्यपि वे कहते थे कि ऐसी पढ़ाई कहीं नहीं होती फिर भी वे सोचते थे कि मजदूरों के साथ अपने बच्चों को कैसे बैठायें। इसका कारण है कि यह क्षेत्र घोर सामन्तवादी मानस से भरा हुआ है।

बाबू लोगों के बच्चों को न भेजने का एक दूसरा भी कारण है। वह यह कि वे मानते हैं कि शिक्षित व्यक्ति को नौकरी ही करनी है और ग्रामभारती में नौकरी के लिए कोई सर्टिफिकेट उपलब्ध नहीं है। यह समस्या पिछले २८ साल से नयी तालीम जगत के सामने निरन्तर खड़ी है। यह ऐसा प्रश्न है, जिस पर नयी तालीम जगत के समस्त कार्यकर्ताओं को सोचने की जरूरत है। तालीम का लक्ष्य नौकरी है इस मान्यता का निराकरण कैसे हो ? और जब तक इसका निराकरण नहीं होता, तब तक नयी तालीम का स्वरूप क्या हो, जिससे वर्तमान मान्यता के बावजूद नयी तालीम प्रक्रियाओं के लिए लोक-सम्मति प्राप्त हो, इस दिशा में सोचने पर मुझे लगा कि नयी तालीम की प्रक्रिया अलग से बच्चों को लेकर नहीं हो सकती। अगर पूरे समाज को लेकर नयी तालीम की पद्धति चलेगी, तो समाज की इकाई—परिवार ही नयी तालीम की इकाई हो सकता है। इस विचार के आधार पर ही इस शिक्षा पद्धति की रूपरेखा तैयार हो सकती है। उसी की 'टेकनीक' निकालना नयी तालीम के कार्यकर्ताओं के लिए बुनियादी कार्यक्रम है।

किसी को शिक्षा दी नहीं जाती। शिक्षा की चाह होने पर उसकी पूर्ति ही वास्तविक तालीम है। हम जब यह सोचते हैं कि हमें नयी तालीम का काम चलाना है और उसकी पद्धति अमुक होगी, तो निस्सन्देह हमारे दिमाग में अपनी तरफ से कुछ तालीम देने का विचार है, ऐसा मानना पड़ेगा। अतएव नयी

तालीम के लिए आवश्यक है कि वह खोज करे कि देश की जनता क्या चाहती है। निस्सन्देह आज की जनता की उत्कट माँग बच्चों की तालीम है। लेकिन उसका कारण यह नहीं कि देश का जन समुदाय यह चाहता है कि बच्चों का सांस्कृतिक विकास हो और उसके माध्यम से देश सुसंस्कृत हो। बल्कि वे मानते हैं कि आज अपने आर्थिक प्रश्न हल करने के लिए नौकरी चाहिए और नौकरी के लिए शिक्षा चाहिए। अर्थात् नयी तालीम का जो लक्ष्य है, वह लक्ष्य जनता का नहीं है। अतः केवल बच्चों की तालीम आज की परिस्थिति में नयी तालीम नहीं हो सकती।

बच्चों की पढ़ाई के प्रयोग

अब प्रश्न यह है कि जनता चाहती क्या है? अभी ऊपर कहा है कि वह आर्थिक कारणों से बच्चों को पढ़ाना चाहती है अर्थात् उसकी चाह आर्थिक समृद्धि की प्राप्ति है। जब तक हमारी तालीम की प्रक्रिया इस लक्ष्य-पूर्ति का माध्यम भावित नहीं होगी, तब तक उसके लिए लोक-सम्मति प्राप्त नहीं हो सकेगी। यही कारण है कि मैं आजकल कहता हूँ कि गाँव के जितने कार्यक्रम हैं, उन सबकी तरक्की ही नयी तालीम है और चूँकि वे कार्यक्रम पूरे परिवार के हैं, इसलिए पूरे परिवार ही विद्यार्थी की इकाई हो सकते हैं, न कि अलग अलग बच्चे।

गाँव के बाबू लोग इन्हीं कारणों से अपने बच्चों को भेजते नहीं थे, फिर भी ग्रामभारती की प्रगति देखकर उनमें काफी सन्तोष था और दूसरे साल उन्होंने २ बीघा जमीन बच्चों की खेती के लिए अलग कर दी। बच्चे मिलकर उत्साह से उसमें खेती करने लगे। इससे कृषि विज्ञान तथा देश के भिन्न भिन्न आर्थिक प्रश्न समझाने के लिए भिन्न भिन्न प्रसंग उपस्थित होने लगे और बच्चों का बौद्धिक स्तर काफी ऊँचा उठा। लेकिन बच्चों की इस दिलचस्पी के साथ मेहनत करने से एक दूसरी समस्या खड़ी हो गयी। वह यह कि उनके माता पिता के मन में लालच का उदय होने लगा। जो बच्चे पहले घर का काम नहीं करते थे, वे ग्रामभारती में विजय भाई और दूसरे लोगों के साथ जब मेहनत करने लगे और उसके फलस्वरूप अपने हिस्से की प्याज, पाट आदि सामग्री घर ले जाने लगे तो उन्होंने समझा, अगर ये बच्चे मेहनत करके पैदा कर सकते हैं तो ग्रामभारती में क्यों मेहनत करें? घर के काम में क्यों न करें? यह सोचना धीरे धीरे बढ़ने लगा और किसी-न किसी बहाने वे अपने बच्चों के लिए शाला से छुट्टी लेने लगे। यह छुट्टी इतनी अधिक

होने लगी कि बाद को विजय भाई के लिए दो बीघा की खेती भी सम्भालना कठिन हो गया।

हम जब बच्चों के पालकों को समझाते थे, तो वे विचार समझ जाते थे, लेकिन कुछ दिनों के बाद फिर वही पुराने ढर्रे पर चले जाते थे। काफी दिनों तक इस प्रकार समझा-समझा कर काम चला और किसी तरह मकई की फसल सम्भाल पाये। फसल काटने के बाद हम लोग इस प्रश्न पर फिर से विचार करने लगे। हमने देखा कि बच्चों को भी घर के कामों में अधिक दिलचस्पी है बनिस्पत ग्रामभारती की खेती से, यद्यपि भदई की फसल में उनका हिस्सा सन्तोषजनक था। वह इतना अधिक था कि वह गाँव भर की चर्चा का विषय रहा। जो कोई भी मुझसे मिलता, यही कहता कि आपने तो बहुत बड़ी बात कर दी। पढ़ाई के साथ-साथ इतनी कमाई हो जाय तो कहना ही क्या!

यह सब हुआ, लेकिन न बाबू लोगों ने अपने बच्चे भेजे और न ग्रामभारती के बच्चों की हाजिरी के रवैये में कोई परिवर्तन ही हुआ। घूम फिर कर पालक और बच्चे, दोनों इसी बात पर आ जाते थे कि घर का काम ही करना है। हम लोगों ने सोचा कि ग्रामभारती में प्रथम श्रेणी और द्वितीय श्रेणी के रूप में दो विभाग रखे जायें। प्रथम विभाग में वे बच्चे रहें, जो २४ घण्टे गुरुकुल में ही रहें, सिर्फ खाना खाने के लिए घर जायें। अर्थात् हमने ग्राम-भारती के साथ एक मुक्त छात्रावास का भी सिलसिला शुरू किया। हमने सब पालकों से कहा कि जिन बच्चों को वे घर के काम से खाली करके गुरुकुल में रख सकेंगे, वे प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी होंगे। वे ग्रामभारती की भूमि पर खेती करके मुख्यत खेती का विज्ञान सीखेंगे और साथ ही प्रातःकाल और रात्रि में गणित, भाषा आदि भी पढ़ेंगे। द्वितीय श्रेणी के बच्चे वे होंगे, जो केवल प्रात और रात्रि में पढ़ने आयेंगे और बाकी समय घर के काम करेंगे। हमने सोचा कि इतने दिनों के सास्कृतिक विकास के कार्यक्रम के कारण बच्चों की स्थिति ऐसी हो गयी है कि वे घर के काम को शिक्षा के माध्यम के रूप में पहले से अधिक व्यवस्थित कर सकेंगे। पालकों ने २-३ दिन तक विचार किया। वे मानते थे कि अगर पूरा समय विजय भाई के साथ बच्चे रहें, उनके साथ काम करें और पढ़ें तो बच्चों में उत्पादन शक्ति और सास्कृतिक विकास, दोनों काफी बढ़ेंगे। लेकिन परम्परागत स्वार्थ उनके इस विचार को भी दबाता रहा। आखिर में १२ में से ८ बच्चों के पालकों ने कह दिया कि वे अपने बच्चों को प्रथम श्रेणी में ही रखना चाहते हैं। धीरे धीरे उसमें ११

बच्चे हो गये। जो एक बच्चा शामिल नहीं हुआ, वे दो भाई थे। उनके पिता ने छोटे बच्चे को ग्रामभारती में शामिल कर बड़े बच्चे को घर के काम में लगा लिया। इससे स्पष्ट है कि लोग निश्चित रूप से ग्रामभारती की प्रक्रिया का महत्व समझने लगे।

दो समस्याएं

बच्चों के पूरे समय के लिए छात्रावास में आ जाने पर उनके जीवन पर प्रभाव डालने का मौका अधिक मिलने लगा। उनका सांस्कृतिक विकास तेजी से आगे बढ़ने लगा। खेती के काम भी सुव्यवस्थित होने लगे। लेकिन इसमें से दो-एक ऐसी समस्याएं खड़ी हुईं, जिन पर हर एक नयी तालीम के सेवक को विचार करने की आवश्यकता है। बच्चे जब घर के काम में लगे रहते थे, उस समय जितना आराम चाहते थे, उससे अधिक आराम यहां चाहने लगे। यह सही है कि ग्रामभारती में जो मेहनत करते थे उसका फल उन्हीं को मिलता था और वह प्रत्यक्ष रूप में था, जब कि घर के काम में कोई नतीजा उन्हें दिखाई नहीं देता था। फिर भी हजारों वर्ष की व्यक्तिगत सम्पत्तिवादी *मनोवृत्ति के कारण ग्रामभारती के काम में घर के काम जैसी अभिरुचि न* पैदा हो सकी। हम भी मानते हैं कि दैनिक कार्यक्रम में हर एक को विश्राम चाहिए इसलिए इस समस्या पर हमने अधिक ध्यान नहीं दिया और उनके लिए उतने आराम की व्यवस्था कर दी।

लेकिन दूसरी समस्या अधिक चिन्तनीय हो गयी, वह यह कि हमारे साथ रहने के कारण उनमें सफाई की आदत, सुव्यवस्थित ढंग से रहने का अभ्यास *तथा सामाजिक शिष्टाचार के विकास के कारण उनका जीवन-स्तर घरवालों के* जीवन-स्तर से काफी ऊंचा हो गया। धीरे-धीरे कुछ लड़कों में ऐसा भी मानस बनने लगा, जिसमें वे घर के दूसरे लोगों से घृणा करने लगे। मैंने सुना था कि किसी कालेज के छात्रावास के एक लड़के से जब उसके पिता मिलने आये थे, तो उस लड़के ने अपने साथियों से कहा कि घर का नौकर उससे मिलने आया है। मैं मानता था कि शहर के आडम्बरपूर्ण रहन-सहन और जीवन-क्रम के कारण लड़कों में ऐसी मनोवृत्ति बनती है, लेकिन गांव में किसान जैसे ६-७ घण्टे खेत में काम करनेवाले तथा अपने घर की झोपड़ी जैसे स्थान पर रहनेवाले बच्चों के मन में भी ऐसी मनोवृत्ति पैदा होती है, तब शिक्षा-पद्धति के बारे में ही विचार करने की आवश्यकता हो जाती है। विचार का किसी निश्चित नतीजे पर पहुंचना कोई आसान काम नहीं। हम चाहे जितनी खेती-बारी आदि उत्पादक श्रम करें, और चाहे जितनी टूटी झोपड़ी में रहें, हमारा

सांस्कृतिक स्तर निश्चय ही ऊंचा रहेगा और हमारे सम्पर्क में तालीम पाये हुए बच्चों का स्तर भी ऊंचा हो ही जायगा। फिर जब ये बच्चे घर के लोगों के मले और अव्यवस्थित जीवन को देखेंगे तो स्वभावत अपने को कुछ अलग समझने लगेंगे। हम चाहे कोई भी शिक्षा पद्धति अपनायें शिक्षित बच्चे निस्संदेह विकसित होंगे और उनका मन घर में दूसरे लोगों में नहीं बढ़ेगा। जब स्थिति ऐसी है तब शिक्षा द्वारा समाज में भेद भाव के निराकरण की लक्ष्य-पूर्ति तो दूर रही बल्कि हम तत्काल ही शिक्षा द्वारा परिवार में ही भेद भाव पैदा कर देते हैं। चले थे हरिभजन को ओटन लगे कपास वाली कहावत के मुताबिक हम ग्रामभारती द्वारा चले थे सामाजिक विषमता का निराकरण करने लेकिन उस प्रक्रिया द्वारा हमने पारिवारिक विषमता का ही निर्माण कर डाला।

इस प्रश्न पर हम लोग गम्भीरता से सोचने लगे आपस में चर्चा करने लगे लेकिन कोई तात्कालिक हल नहीं निकाल सके। पूरे परिवार ही नयी तालीम के विद्यार्थी हों यह विचार यद्यपि पहले ही हमारे मन में आ गया था लेकिन उसका तुरन्त कोई छोर न दिखाई देने के कारण इस परिस्थिति के बावजूद बच्चों के शिक्षण को बन्द करने की बात सोच नहीं सकते थे। लेकिन इस बीच कुछ दूसरी परिस्थितियों ने हमको फिर से पारिवारिक शिक्षण की दिशा में सोचने के लिए प्रेरित किया। यद्यपि पालकों ने बहुत उत्साह से बच्चों को पूरे समय के लिए ग्रामभारती के छात्रावास में शामिल कर दिया था तथापि व्यक्तिवादी संस्कारों के कारण धीरे धीरे बच्चे गैरहाजिर होने लगे। और २-३ महीने में फिर उसी स्थिति पर पहुंच गये जिस स्थिति पर से मुझे छात्रावास की कल्पना मुखरित हुई थी। बच्चे फिर से केवल पढ़ने के लिए हाजिर होते थे। इस परिस्थिति के कारण आखिर हमने निर्णय ही कर डाला कि बच्चों को घर से अलग करके तालीम की व्यवस्था समग्र नयी तालीम की पद्धति में नहीं बैठेगी। एक दिन बच्चों को बुलाकर उनसे कह दिया कि केवल पढ़ने के लिए जब गांव में स्कूल मौजूद है तो फिर हम केवल पढ़ाई का काम नहीं करेंगे और गांव में जो स्कूल चल रहा है उसमें जाकर वे भरती हो जायें। हमने गांव भर के लोगों को कह दिया कि पढ़ने के लिए गांव का स्कूल काफी है उसके लिए हम ग्रामभारती नहीं चलायेंगे। इतनी सेवा हम अवश्य कर देंगे कि कोई भी छात्र कभी भी हमारे पास मदद के लिए आ जायेगा तो हम मदद अवश्य कर देंगे।

बच्चे नहीं, पूरा परिवार विद्यार्थी

इस प्रकार सालभर के अनुभव के बाद बच्चों की अलग से तालीम के कार्यक्रम को बन्द करके पूरे परिवार की तालीम के विचार को ग्रामवासियों के सामने रखना शुरू कर दिया। पूरे परिवार ही ग्रामभारती के विद्यार्थी हो सकते हैं। इस नतीजे पर हम किन परिस्थितियों के अनुभव से पहुँचे, यह जानना तुमलोगों के लिए दिलचस्प होगा।

१ सामूहिक खेती के अनुभव से यह प्रकट हुआ कि गाँव के लोगों के आज जो पारस्परिक सम्बन्ध हैं, उन्हें देखते हुए परिवार में आपस का सहकार किसी प्रकार के राजनैतिक कानून या आर्थिक कार्यक्रम द्वारा विकसित नहीं हो सकता। इसके लिए *समग्र शिक्षण की आवश्यकता है। यह शिक्षण व्यक्तिगत न होकर* पारिवारिक ही हो सकता है, क्योंकि समाज की इकाई व्यक्ति नहीं परिवार है।

२. अगर गाँव के सारे कार्यक्रम शिक्षा के माध्यम हैं तो आज की परिस्थिति में यह कार्यक्रम निःसन्देह पारिवारिक धन्धे ही हैं। ग्रामभारती के लिए अलग धन्धा नहीं बनाया जा सकता। अगर वैसा बनाया गया, तो उस धन्धे के लिए शिक्षार्थियों की उतनी दिलचस्पी नहीं हो सकती जितनी कि अपने घर के धन्धे के प्रति रहती है। और यह भी स्पष्ट है कि बिना अभिरुचि के कोई भी धन्धा शिक्षा का माध्यम नहीं हो सकता है। अगर पारिवारिक धन्धा शिक्षा का माध्यम है, *तो चूँकि परिवार का हरएक सदस्य उस धन्धे में* लगा रहता है, इसलिए धन्धे का विकास पूरे परिवार के विकास से ही सध सकता है।

३. अगर समाज का सांस्कृतिक विकास करना है तो वह विकास सारे समाज के साथ-साथ ही चल सकता है। बच्चों को अलग से विकसित करने की प्रक्रिया का परिणाम क्या होता है यह हम ऊपर बता चुके हैं। इस परिस्थिति की माँग हो जाती है कि *समग्र नयी तालीम* की इकाई पूरा परिवार ही हो।

इन तीनों कारणों से हमने निश्चित रूप से यह तय कर लिया कि परिवार-शिक्षण का सन्दर्भ निकालकर ही व्यवस्थित तालीम का प्रारम्भ किया जाय और जब तक ऐसा सन्दर्भ नहीं निकलता है, तबतक उस सन्दर्भ का निर्माण ही समग्र नयी तालीम का कार्यक्रम माना जाय। हमने अब यह निश्चय किया है कि हम लोग अपने स्वावलम्बन के लिए सबके साथ खेती करें, पारिवारिक उद्योग चलायें और सामूहिक खेती के भूमि-सदस्य और श्रम-सदस्य परिवार को अपना विद्यार्थी मानकर उनसे सम्पर्क कर, उनकी खेती-बारी घर द्वार, आहार विहार के तरीकों में सुधारने की कोशिश करें और इसी कोशिश के सिलसिले में कुछ व्यवस्थित तालीम की पद्धति का छोर ढूँढें।•

ज्योतिभाई देसाई

ग्रामदानी गाँवों का शैक्षणिक विकास

विचार और सुझावों के लिए एक प्रायोगिक प्रस्ताव

[मुजफ्फरपुर जिले के मुसहरी प्रखण्ड में श्री जयप्रकाशनारायण ग्राम-स्वराज्य की स्थापना का कार्य कर रहे हैं। इस प्रखण्ड में शिक्षा में परिवर्तन के लिए भी वह चिन्तित हैं। यह प्रस्तुत निबन्ध इसी सन्दर्भ में तैयार हुआ है। श्री ज्योतिभाई देसाई, जो गांधी विद्यापीठ (गुजरात) के शिक्षक प्रशिक्षण विभाग के आचार्य हैं, के मार्ग दर्शन में मुसहरी प्रखण्ड का शिक्षण-कार्य प्रारम्भ किया जा रहा है। स०]

किसी शैक्षणिक सुधार-कार्यक्रम को स्थानीय परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप अनुकरणीय नमूना बनने के बजाय एक आन्दोलन बनाने के लिए अनेक तत्वों की गहरी समझदारी आवश्यक है

१ अध्यापकों का रुझान

२ सामाजिक अपेक्षाएँ

३ ग्रामीणों और अध्यापकों के द्वारा नये मूल्यों की समझदारी

४ प्राप्त परिस्थितियाँ—जिम्मेदारी और निष्ठा की सामान्य निम्न स्तर की कमियाँ—साथ ही ग्रामदान के कारण ग्रामीण जीवन के चिन्तन में पैदा हुई ताजगी और सम्पन्नता, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों की सम्पन्नता।

ये कुछ बुनियादी तथ्य हैं जिनकी जड़ों और प्रकृति की समझदारी के आधार पर ही सारा आन्दोलन सकारात्मक या नकारात्मक दिशाओं में प्रभावित

होगा। इन सबको एक निश्चित उद्देश्य की दिशा मे लगाना काफी कठिन कार्य है। फिर भी इसके लिए प्रयास करने होंगे। शिक्षा को जो कि समाज तथा उसके नये बदलते रूपो पर प्रभाव डालती है, निम्नांकित पर विचार करना होगा

समाज की किस्म
(संस्कृति)
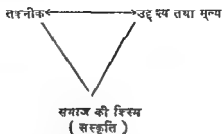
किसी समय मे एक समाज की प्रगति इन दो शक्तियो के मत प्रभावो से प्रभावित होती है।—(अ) समाज के प्रमुख उद्देश्य और मूल्य (ब) उसे प्राप्त तकनीकी प्रगति का स्तर (ग्रोटोरे द्वारा एजुकेशन एण्ड सोसायटी म पृ० ४१ से उद्धृत) इस दृष्टि से शिक्षा को इन दोनो शक्तियों पर प्रसरकारी होना चाहिए। जीवन के नये मूल्य तथा उद्देश्यो का सृजन करना है और गाँव की आर्थिक प्रगति मे गाँव की मदद के लिए तकनीकी जानकारी को भी तेज करना है।

इस तरह से शैक्षणिक प्रयासो को मस्तिष्क मे रखते हुए ही विकास कार्यक्रमो को विकसित होना है। इस प्रकार से शिक्षा के उद्देश्यों मे नीचे लिखी बातें भी अनिवार्यत जुडी होगी —

१ आत्म विश्वास का सृजन
२ वैज्ञानिक दृष्टिकोण का सृजन
३ आयोजन-चेतना
४ विचार मुक्तता
५ नये मूल्यो का पोषण—जैसे यह कि अन्तिम व्यक्ति की चिन्ता करने वाली एक इकाई के रूप मे गाँव को समझना—अंतिम व्यक्ति तक भी।
६ उत्तरदायी नागरिक

इन बातो को दैनिक जीवन म उतारने की तकनीक की ही हमे आवश्यकता है। यह तकनीक अग्रगामी योजनाओ से समाज शिक्षण-योजनाओ से, जिसमे समस्त गाँव भाग लें, विकसित की जा सकती है। इन दोनो का ही अभ्यास करना होगा।

शिविर क्यों ?

किसी विचार के लोकतान्त्रिक विकास के लिए शिविर या कैम्प जीवन के अनेक लाभ हैं। एक निश्चित अवधि में एक उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में सारे शिविर-जीवन को तेजी से लगाया जाता है। शिविर के सम्पूर्ण कार्यक्रमों में पूरा भाग लेनेवालों में विचार तथा नये परिवर्तन गहरी जड़ पकड़ते हैं। ऐसे लोग कम हो सकते हैं किन्तु वे थोड़े ही लोग दीर्घकालीन असर पैदा करते हैं। इनकी रचनाओं में भी सुनियोजित परिवर्तन अच्छी तरह लाये जाते हैं। प्रयासों के लिए कम समय रहने से सही और बुनियादी नये परिवर्तनों के लिए अधिक अवसर रहते हैं। बिना किसी निश्चित उद्देश्य के प्रयास करनेवाला व्यक्ति बेतरतीब और दिशाहीन हो जाता है।

इन शिविरों को अधिक सफल और असरकारी बनाने के लिए स्वैच्छिक सयोग बहुत मददगार होता है। शिविर में भाग लेनेवाले किसी भी शिविरार्थी को आयोजकों पर बिना कोई आर्थिक भार डाल स्वेच्छा से उसमें भाग लेना चाहिए।

क्षैतिज तथा शिखरात्मक विकास कार्यक्रम

नीचे लिखे चारों कार्यक्रम क्षैतिज हैं। इनका शिखरात्मक रूप भी हो सकता है। दो माह की निश्चित सीमा में एक कार्यक्रम को लेकर एक निश्चित उद्देश्य की ओर ऊपर बढ़ने पर विचार हो सकता है। किन्तु क्षैतिज कार्यक्रमों से लाभ तो स्पष्ट ही है। यदि प्रगति की ओर उन्मुख कोई गाँव कार्यक्रम उठाता है तो फिर ग्रामीण जीवन के सभी पहलुओं का विकास और इस प्रकार उन्हें एक निश्चित विधायक दिशा में परिवर्तित होने के लिए प्रयास किया जाना लाभप्रद है। शिखरात्मक कार्यक्रमों के लिए अधिक समय की आवश्यकता है और सम्भवतः केवल एक ही दिशा में प्रयास करने से वे उतने असरकारी भी न हों।

फिर भी यदि कुछ उत्साही युवकों का एक समूह, चाहे वे अध्यापक, सचिव या इसमें रुचि रखनेवाला कोई अन्य व्यक्ति प्रस्तावित कार्यक्रमों में भाग लेता है तो फिर शिखरात्मक कार्यक्रम भी सुनिश्चित हो सकते हैं।

(१) ग्रामीण आयोजन शिविर
(२) ग्रामीण विकास शिविर
(३) अग्रगामी योजनाएँ
(४) शान्तिसेना और आचार्यकुल शिविर

इन चारो कार्यक्रमो के बारे मे विस्तृत जानकारी परिशिष्टो मे दी गयी है। आयोजन शिविर तो पूर्णत ग्रामीणो के सहयोग पर ही निर्भर करता है। इसका उद्देश्य गाँव के आयोजन के साथ-साथ गाँव का समग्र समन्वय है। शिक्षा, आर्थिक विकास, शान्ति-सेना, नवीन मूल्यो की स्थापना के लिए सामाजिक शिक्षण और ग्रामीण महिलाओ का पूर्ण नागरिक के रूप मे इस सारे कार्यक्रम मे सहभाग, इस आयोजन के ये प्रस्तावित मुद्दे हैं।

विकास-शिविर मे गाँव का कोई ऐसा विकास-कार्यक्रम कार्य का केन्द्रबिन्दु होगा जिसे गाँव के लोग आवश्यक मानकर हाथ म उठाना चाहते हो। इस कार्य के लिए आयोजन के साथ-साथ एक निश्चित उद्देश्य प्राप्त करने का इसमे प्रयास रहेगा। ग्रामीणशाला के इस कार्य से सयोग होने के कारण बालको की प्रगति के साथ गाँव की शिक्षा का कार्य भी सम्पन्न होगा।

अग्रगामी योजना खासकर शिक्षण-संस्थाओ से सम्बन्ध रखती है। इसमे प्राथमिक, माध्यमिक या प्रशिक्षण विद्यालयों की योजना हाथ मे ली जा सकती है। इसमें ग्रामदान की नवीन अवस्थाओ के अनुरूप रुझान तथा तकनीको के विकास पर भी विचार होगा।

शान्ति-सेना और आचार्यकुल तो आसानी से ग्राम-शिक्षण का आन्दोलन बन सकता है। सेवादल-जैसे सगठनो ने यह सिद्ध कर दिया है कि ताजा जीवन, उसके मूल्य तथा उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहारो की दिशा मे कुछ किया जा सकता है।

इस कार्यक्रम का सर्वाधिक दुस्तर पहलू इसका भविष्य है। किन्तु उचित सयोग मिलने पर नये विचारो का उदय हो सकता है। यो भी शिक्षा बहु-समय साध्य क्रिया है। किन्तु निश्चित बातो पर जोर तथा ध्यान देने के प्रयासो से यह दूरी कम की जा सकती है। अत कोई भी परिवर्तन लाने के लिए शिविर या कैम्प-जीवन ही सही दृष्टिकोण प्रतीत होता है। अध्यापको, ग्रामीणो, ग्रामसभाओ और सभी सम्बन्धित लोगो के सहयोग से निश्चय ही वर्तमान वैयक्तिक और सामाजिक जीवन मे अपेक्षित परिवर्तन के लिए हवा बनायी जा सकती है।

परिशिष्ट—स

शान्तिसेना नायक तालीम शिविर

लोग—यह प्रशिक्षार्थियो का शिविर होगा। प्रखण्ड के कुछ चुने हुए शान्ति-सेना नायक भी लिये जा सकेंगे।

उद्देश्य—१—प्रशिक्षार्थियों का पुनर्नवीकरण—ग्रामदान आन्दोलन, स्थानीय परिस्थितियों की समझदारी समस्याओं का अहिंसक हल।

२—शांति की गत्यात्मकता

३—शोषण के पहलू और उनकी समझ

४—रचनात्मक कार्य तथा ग्राम निर्माण के नये आयाम

सहकार—१—गांधी विद्यापीठ के शान्तिसेना विद्यालय ने यह कार्यक्रम करने का दायित्व लिया है।

२—ग्रामदान आन्दोलन के सभी प्रमुख चिन्तक

परिशिष्ट—ब

इस नये दृष्टिकोण के लिए शैक्षणिक प्रयासों के विकास के लिए एक स्कूल (यह संख्या ५ तक भी हो सकती है) लिया जा सकता है। इसमें अध्यापकों को—खासकर नये दृष्टिकोणों तथा आचार्यकुल के उद्देश्यों की समझ के लिए खुला मन रखनेवाले अध्यापकों को—संयोजित करना होगा।

ग्रामीण जीवन के सभी पहलुओं को लेनेवाला एक सप्त दिवसीय उद्देश्य नीति मूलक कार्यक्रम अपनाया जायेगा। यह मुख्यत अध्यापकों को ग्रामदान के नये सन्दर्भ में अपने आदर्श पाठ्यक्रमों का विकास करने में सक्षम करने के उद्देश्य से होगा।

इसमें ग्रामीणों अध्यापकों तथा चयन कृत विद्यालयों के बालकों का सहयोग लिया जायेगा।●

धीरेन्द्र मजूमदार

ग्राम-गुरुकुल

सहरसा जिले मे ग्राम-स्वराज्य अभियान का पहला साल तथा पहला चरण पूरा हुआ। इस अवधि मे कुछ प्रखण्डो मे प्रत्यक्ष पुष्टि के काम तथा पूरे जिले मे विचार-शिक्षण के फलस्वरूप सामान्यजन ग्रामस्वराज्य के विचार की सम्भावना पर आस्था जमाते जा रहे है। जिले के आचार्यों ने धीरे-धीरे यह महसूस करना शुरु कर दिया है कि वास्तविक स्वराज्य म शिक्षकों के नेतृत्व से ही समाज का काम चल सकता है। आज तो स्वावलम्बी तथा सर्वसम्मति प्रक्रिया टिक नही सकती है और परिणाम म सचालित तथा हुकूमती समाज म रहकर जनता शोषण और दमन से मुक्त नही हो सकती है।

जिले के साधारण लोगो ने भी यह महसूस किया है कि शिक्षा मे आमूल परिवर्तन के बिना समाज की भिन्न भिन्न समस्याओ का हल नही हो सकता है। यही कारण है कि पिछली ९ अगस्त को अखिल भारतीय 'शिक्षा मे क्रान्ति' दिवस के अवसर पर देश भरके तमाम केन्द्रो म सहरसा केन्द्र ऐसा रहा जहाँ शिक्षको, छात्रो तथा अभिभावको ने सबसे अधिक सख्या मे योगदान किया है।

जिले के आचार्यो ने हर प्रखण्ड म आचार्यकुल तथा शान्तिसेना का ठोस सगठन बनाने का सकल्प किया है।

अतएव अब समय आ गया है कि जिले के भिन्न भिन्न प्रखण्डो मे 'शिक्षा मे क्रान्ति' का सक्रिय रूप निकले। इस दृष्टि से भिन्न भिन्न प्रखण्डो के आचार्यकुल को कम-से-कम एक गाँव चुनकर शिक्षा मे क्रान्ति के व्यवस्थित प्रयोग मे लगना जरूरी है।

गांधीजी ने 'समग्र नयी तालीम' की योजना पेश कर इस दिशा में स्पष्ट चित्र का संकेत किया था। उन्होंने कहा था कि समाज में हर मनुष्य को शिक्षित होना अनिवार्य है और इसलिए शिक्षा की अवधि गर्भ से मृत्यु तक होना चाहिए और उसका क्षेत्र पूरा समाज हो। इसी संकेत के अनुसार सन्त विनोबाजी कहते हैं कि पूरा गाँव ही विश्वविद्यालय हो। गांधीजी ने दूसरी बात यह कही है कि शिक्षा स्वावलम्बी हो और विनोबा कहते हैं वह सरकार-मुक्त हो। अतएव शिक्षा म क्रान्ति का प्रयोग सम्पूर्ण रूप से जनाधारित ही हो सकता है और उसके लिए यह आवश्यक है कि प्रारम्भ म कुछ आचार्य त्याग और समर्पण की वृत्ति से इस प्रकार के प्रयोग के काम म लगें।

यद्यपि यह आवश्यक है कि शिक्षा जनाधारित तथा सरकार-मुक्त हो, फिर भी प्रारम्भिक स्टेज म स्वतंत्र लोक-शक्ति तथा सरकारी शक्ति के समन्वय से प्रयोग चले। इसके लिए ग्राम-गुरुकुल के निम्न सुझाव पर आचार्यकुल विचार करे। गाँव चुनने के लिए निम्नलिखित शर्तों पर ध्यान रखना होगा —

१. गाँव म ऐसा मिडिल स्कूल या बेसिक स्कूल हो जिनके शिक्षक चार घंटा छात्रो के साथ कृषि के काम म लगने को तैयार हो।

२ गाँव मे ग्रामदान की चारो शर्तें पूरी हो गयी हो।

३ 'ग्रामदान-समिति' के माध्यम से गाँव अदालत मुक्ति की दिशा में काफी प्रगति कर चुका हो।

४ भूमि के प्रश्न पर गाँव के सदस्यो मे अधिक विषमता न हो।

५ गाँव वासियों म मिलजुल कर कुछ करने की प्रवृत्ति हो।

इस प्रकार के चुने हुए गाँवों म प्रखण्ड आचार्यकुल की ओर से ऐसे गाँवों में दो ऐसे आचार्यों की आवश्यकता होगी, जो शिक्षा म क्रान्ति के प्रयोग को अपना जीवन मिशन बनाकर बैठने को तैयार हो। इन दो आचार्यों के नेतृत्व तथा मार्गदर्शन मे गाँव के प्रौढो तथा बच्चो के लिए समग्र तालीम की व्यूह रचना करनी होगी।

शिक्षण के लिए गाँव के किसान सदस्य अपने को ग्राम-गुरुकुल के छात्र के रूप मे शामिल करने की स्वीकृति दें। जितने किसान उसम शामिल होगे वे सब गुरुकुल के सदस्य होगे। ये सदस्य, विद्यालय के अध्यापक तथा दो आचार्य मिलकर छात्र किसान के खेती-गृहस्थी की योजना बनायेंगे और उसी योजना के अनुसार आचार्यों के मार्गदर्शन म एक एक कक्षा के अध्यापक तथा छात्र, एक-एक किसान के खेत मे प्रतिदिन चार घंटा वैज्ञानिक खेती के लिए काम करेंगे।

फिर दोपहर के बाद तीन घंटा पढ़ाई करेंगे। यह पढ़ाई सरकारी विभागों के विद्यालयों के अनुसार ही चलेगी। सरकारी विभागों से इजाजत लेनी होगी कि इस प्रायोगिक विद्यालय में सुबह चार घंटा खेती और उद्योग तथा तीसरे पहर तीन घंटा पढ़ाई का रुटीन वे मंजूर करें। शिक्षा विभाग से यह भी मंजूर कराना होगा कि विद्यालय के अध्यापकों को पाँच साल तक स्थानान्तरित न करें।

प्रति आचार्य के परिवार गुजारे के लिए पूरे प्रखण्ड से १०० मन अनाज (गेहूँ और धान) का दान प्राप्त किया जाय। इस प्रकार एक ग्राम गुरुकुल के लिए वार्षिक दो सौ मन अनाज आचार्यों के सपरिवार योगक्षेम के लिए तथा २५ मन विविध खर्चों के लिए संग्रह करना होगा। इसमें कितना हिस्सा उस गाँव का होगा जिसमें ग्राम-गुरुकुल की स्थापना होगी और कितना पूरे प्रखण्ड से संग्रह करना होगा इसका निर्णय प्रखण्ड आचार्यकुल उस गाँव की शक्ति को देखकर करेगा।

गुरुकुल के लिए दो परिवारों का निवास, एक छोटी गोशाला, छात्रावास का स्थान, सभा समितियों के लिए मैदान तथा परिवारों की बाड़ी के लिए एक एकड़ जमीन की व्यवस्था ग्रामसभा को करनी होगी तथा प्रखण्ड भर से साधन माँग कर श्रमदान से गुरुकुल के भवन का निर्माण करना होगा।

मार्गदर्शक आचार्य को विज्ञान का अध्ययन होना चाहिए तथा कृषि शास्त्र का अभ्यास कर लेना होगा। इसके बिना गुरुकुल का प्रयोग सफल नहीं होगा।●

परीक्षा-प्रणाली सुधार में एक प्रयोग

१ परियोजन की आवश्यकता—वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमारे छात्रों की सामर्थ्य तथा योग्यताओं अथवा उपलब्धियों का सही रूप में निर्धारित करने में सहायक सिद्ध नहीं हुई है। इसका अभिप्राय केवल उनकी स्मरण शक्ति का जाँचना ही है। इस भाँति विद्यालयों, अध्यापकों और अभिभावकों के समस्त प्रयास छात्रों को रटन्त विद्या की ओर ले जाते हैं। उनमें वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति के लिए सम्प्रत्ययात्मक (Conceptual) ज्ञानार्जन और सृजनात्मक चिन्तन के विकास की ओर कम बल दिया जाता है।

अध्यापक के नैतिक पक्ष की ओर जो बच्चे के समुचित विकास में सहायक होता है हमारे अध्यापकों और विद्यालयों का ध्यान आकर्षित करने की दृष्टि से यह निश्चित किया गया कि इस प्रकार के प्रश्न पत्रों की रचना की जाय जिसमें छात्रों और अध्यापकों में स्वतः चिन्तन करने की रुचि उत्पन्न हो। वह रटन्त विद्या के संकीर्ण मार्गों में सीमित न रहना पड़े।

यह भी निश्चित किया गया कि प्रश्न पत्र इस प्रकार के हों कि यदि छात्रों को पुस्तकों के प्रयोग करने की छूट प्रदान कर भी दी जाय तो उनकी उपलब्धियों में किसी प्रकार का प्रभाव न पड़ेगा। इस प्रसंग में यह आशा थी कि प्रश्न-पत्रों के स्वरूप और निर्माण में इस प्रकार के परिवर्तन से परीक्षा भवनों में गुप्त रूप से अनुचित साधन प्रयोग करने अथवा अपने साथ पुस्तकें, टिप्पणियाँ आदि ले जाने की ओर बच्चों का ध्यान कम जायगा।

२ लक्ष्य—

परियोजना के निम्नांकित लक्ष्य थे—

इस प्रकार के प्रश्न-पत्रों की रचना करना जिससे

(क) छात्रों को वर्तमान समय में प्रचलित रटन्त अभ्यास से रोका जा सके।

(ख) सम्प्रत्ययात्मक ज्ञानार्जन और रचनात्मक चिन्तन की क्षमता को विकसित किया जा सके और

(ग) छात्रों को परीक्षा भवन में पुस्तकों, टिप्पणियों आदि से नकल करने के रूप में अनुचित साधन के प्रयोग को रोका जा सके।

३ परियोजना की सीमाएँ—(अ) वर्तमान अध्ययन को इस संस्थान से संलग्न राजकीय इण्टर कालेज की कक्षा ८ के दोनों वर्गों में परिसीमित किया गया।

(आ) इस परियोजना के अन्तर्गत हिन्दी अंग्रेजी गणित और सामान्य विज्ञान विषयों को लिया गया।

४—शोध के उपकरण—निम्नलिखित उपकरण प्रयोग में लाये गये—

(क) संशोधित प्रकार के प्रश्न-पत्र।

(ख) इण्टरमीडिएट कालेज द्वारा संचालित षटमासिक परीक्षा का समेकित परीक्षाफल।

५—कार्य विधि—सितम्बर १९६९ की मासिक परीक्षा के लिए कक्षा ८ के दोनों वर्गों के १०२ छात्रों को ६ छोटे-छोटे समूहों में विभाजित किया गया। प्रत्येक छोटे समूह में १५ से २० तक छात्र सम्मिलित थे और प्रत्येक समूह संस्थान के एक छात्राध्यापक के संरक्षण में था। प्रत्येक प्रश्न पत्र के पूर्णांक २० थे और प्रत्येक प्रश्न-पत्र की समयावधि ३५ मिनट थी। छात्राध्यापकों ने छात्रों की परीक्षा का संचालन और मूल्यांकन किया। संस्थान के सम्बंधित विषयों के विशेषज्ञों द्वारा मूल्यांकन के परिणामों की अन्तिम रूप से जाँच की गयी।

जनवरी १९७० की परीक्षा के लिए छात्र छः कमरों में बैठाये गये। इण्टरमीडिएट कालेज के अध्यापकों ने निरीक्षकों का काम किया।

६—प्रस्तुतीकरण और प्रदत्तों (डेटा) का विश्लेषण—

सितम्बर और जनवरी मास की परीक्षाओं के प्रश्न मुख्यतः कुछ सम्प्रत्ययों के द्वारा प्रदत्त ज्ञान के प्रयोग पर आधारित थे। पाठ्यसामग्री के रटन्त विद्या पर आधारित तथ्यों की पुनरावृत्ति सम्बन्धी प्रश्न नहीं थे। इस कारण पहले से कण्ठस्थ किये हुए ज्ञान का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रयोग करने का छात्रों को

कोई अवसर नहीं रह गया। प्रश्नों के उत्तरों को प्रस्तुत करने के लिए सृजनात्मक चिन्तन और वास्तविक बोध की आवश्यकता थी। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कण्ठस्थ करने और रटन्त विद्या के दूषित अभ्यास को समाप्त करने का लक्ष्य प्राप्त किया गया। इसके अतिरिक्त, संशोधित रूप के प्रश्न-पत्रों के द्वारा, जिनका सितम्बर और जनवरी की परीक्षाओं में प्रयोग किया गया था, परीक्षा की यह प्रणाली छात्रों के संकल्पनात्मक ज्ञान और सर्जनात्मक चिन्तन पर बल देती थी जिससे उन्हें परीक्षा में सफलता प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में यह प्रणाली वास्तविक ज्ञानार्जन के लिए संप्रत्ययात्मक ज्ञान और रचनात्मक चिंतन की क्षमता का विकास करती है। प्रत्येक विषय के सम्बन्ध में कुछ शब्द उपर्युक्त कथन को और अधिक स्पष्ट कर देंगे।

हिन्दी और अंग्रेजी भाषा के प्रश्न पत्रों में ऐसे प्रश्न दिए गए थे जिनमें पूर्वार्जित ज्ञान को भी परिस्थितियों में प्रयोग करने की आवश्यकता थी। उनमें उन परम्परागत प्रश्नों को नहीं रखा गया था जो केवल रटन्त विद्या का मूल्यांकन करते हैं। इस प्रकार संशोधित प्रश्नों द्वारा यह मूल्यांकन हो जाता था कि छात्रों को समस्त विषय का कहाँ तक बोध हुआ है और उनके मस्तिष्क में समग्र वस्तु की स्पष्ट संकल्पना कहां तक अंकित हुई है।

गणित में भी सूत्र अथवा समीकरण अथवा प्रमेय प्रत्यक्ष रूप से नहीं पूछे गये थे। इसके स्थान पर बोध और प्रयोग पर आधारित प्रश्न पूछे गये थे। जब कोई परिभाषा दी गयी तो उसके अन्तर्गत प्रश्न का दूसरा भाग भी संनिविष्ट किया गया जिससे यह विदित हो सका कि छात्र परिभाषा के वास्तविक अर्थ को समझने में कहाँ तक समर्थ हुआ।

इसी प्रकार सामान्य विज्ञान के प्रश्न पत्र में ऐसा कोई प्रश्न नहीं था जिसमें पाठ्य-सामग्री से प्रत्यक्ष रूप में कोई वैज्ञानिक तथ्य पूछा गया हो। इसके स्थान पर प्रश्न पाठ्यक्रम में सम्मिलित संकल्पनाओं के द्वारा प्राप्त ज्ञान के प्रयोग पर आधारित थे। किसी विशेष प्रश्न का सफलता के साथ उत्तर देने के लिए छात्रों में संकल्पना के स्पष्ट परिज्ञान और बोध की आवश्यकता थी।

परीक्षा भवन में पाठ्य-पुस्तकों तथा सहायक पुस्तकों टीकाओं आदि से नकल करने के रूप में अनुचित साधन प्रयोग को समाप्त करने का इस परियोजना का तीसरा लक्ष्य है जिसके लिए निम्नांकित चार्टों के विश्लेषण की आवश्यकता है —

सितम्बर की परीक्षा, जनवरी की परीक्षा और छमाही परीक्षा मे सफलता प्राप्त करनेवाले परीक्षार्थियो के प्रतिशत का चार्ट —

विषय	सशोधित प्रश्न-पत्र के आधार पर सितम्बर की परीक्षा	सशोधित प्रश्न-पत्र के आधार पर जनवरी की परीक्षा	परम्परागत प्रश्न पत्र के आधार पर छमाही परीक्षा
हिन्दी	३०	२३	९२
अंग्रेजी	२७	५६	८७
गणित	२०	१९	८५
सामान्य विज्ञान	५० ५	१६	८६

उक्त चार्ट से स्पष्ट है कि छात्रो ने सशोधित प्रश्न-पत्रो पर आधारित परीक्षाओ मे उतना उत्तम कार्य नही किया जितना परम्परागत परीक्षा म किया। परम्परागत परीक्षा के प्रत्येक विषय मे छात्रो की सफलता का प्रतिशत बहुत ऊँचा था। इसके अतिरिक्त सितम्बर की परीक्षा म अग्रेजी को छोड कर शेष विषयो में उत्तीर्ण परीक्षार्थियो के प्रतिशत जनवरी परीक्षा के प्रतिशत से अधिक ऊँचे थे।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सितम्बर की परीक्षा छात्रो के लिए प्रथम अनुभव की थी। इस कारण यह उचित ही था कि छात्रो को जनवरी की परीक्षा मे अधिक उत्तम परीक्षाफल दिखाना चाहिए था। किन्तु वास्तव मे बात बिलकुल ही विपरीत रही। इसके लिए केवल यही सम्भावित व्याख्या है कि सितम्बर की परीक्षा केवल एक मासिक परीक्षा थी और इस कारण पाठ्यक्रम सीमित था। सितम्बर मास मे जो विषय-सामग्री पढायी गयी थी उसी पर प्रश्न आधारित थे। परन्तु इसके विपरीत जनवरी की परीक्षा म अधिक विस्तृत पाठ्यक्रम, अर्थात् जो कुछ जुलाई से दिसम्बर तक पढाया गया था सम्मिलित था। अतएव परीक्षा-फल म अवनति स्वाभाविक है।

छमाही परीक्षा के परीक्षा फल से सितम्बर और जनवरी की परीक्षाओ के परीक्षाफलो की तुलना करने पर यह स्पष्टत विदित हो जाता है कि यद्यपि छात्रो को सितम्बर और जनवरी की परीक्षाओ मे हर प्रकार की सामग्री प्रयोग करने की सुविधा थी तथापि उन्होंने छमाही परीक्षा मे जिसमे उक्त सुविधा नही प्रदान की गयी थी अत्यधिक उत्तम परीक्षाफल दिखाये। इससे सिद्ध होता है कि सशोधित रूप के प्रश्न-पत्रो से छात्रो म परीक्षा भवन् मे पाठ्य-पुस्तको, अथवा सहायक पुस्तको अथवा टिप्पणियो आदि से नकल करने के रूप म अनुचित साधन के प्रयोग की प्रवृत्ति कम होती है।

सितम्बर, जनवरी और छमाही परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त करनेवाले छात्रों के प्रतिशत को दिखानेवाला चार्ट—

विषय	संशोधित प्रश्न पत्र पर आधारित सितम्बर की परीक्षा	संशोधित प्रश्न पत्र पर आधारित जनवरी की परीक्षा	परम्परागत प्रश्न-पत्र पर आधारित छमाही परीक्षा
हिन्दी	५	१	३०
अंग्रेजी	१४	१८	४१
गणित	५	२	५०
सामान्य विज्ञान	८	४	२६

जब हम उन छात्रों की संख्या के सम्बन्ध में विचार करते हैं जिन्होंने सितम्बर और जनवरी की परीक्षाओं और छमाही परीक्षा में प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त किये, तब हम उसी प्रकार की स्थिति पाते हैं जो सफल छात्रों के प्रतिशत के सम्बन्ध में पायी गयी थी। परम्परागत प्रश्न-पत्रों पर आधारित परीक्षा के समस्त विषयों में प्रथम श्रेणी प्राप्त करनेवाले छात्रों का प्रतिशत बहुत ऊँचा है। किन्तु सितम्बर और जनवरी की परीक्षाओं के प्रत्येक विषय में प्रथम श्रेणी प्राप्त करनेवाले छात्रों का प्रतिशत बहुत कम है। इसके अतिरिक्त जनवरी की परीक्षा का परीक्षाफल सितम्बर की परीक्षा के परीक्षाफल से निम्नकोटि का रहा है, जैसा कि उत्तीर्ण परीक्षार्थियों के प्रतिशत के अन्तर्गत भी विवेचन किया जा चुका है। वास्तव में यहाँ भी सितम्बर की परीक्षा के समान, अंग्रेजी एक अपवाद है। वही सम्भावित व्याख्या जो उत्तीर्ण परीक्षार्थियों के प्रतिशत के अधीन दी गयी है, यहाँ भी ठीक उतरती है। इससे यह अर्थ निकलता है कि अच्छे छात्र ही सितम्बर और जनवरी की परीक्षा में अच्छा परीक्षाफल दिखा सके।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि प्रथम श्रेणी के छात्र भी सितम्बर और जनवरी की परीक्षाओं में छमाही परीक्षा की अपेक्षा अच्छा परीक्षाफल न दिखा सके। उनके परीक्षाफल इस तथ्य को स्पष्टतः प्रमाणित करते हैं कि छात्रों में प्रेरणा की भावना का अभाव निम्न प्रतिशत के लिए उत्तरदायी है। वास्तव में छात्रों में प्रेरणा की भावना का अभाव वर्तमान परियोजना के सम्पादन में एक स्वाभाविक कठिनाई थी क्योंकि छात्र यह जानते थे कि इसका उनकी कक्षोन्नति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

सितम्बर और जनवरी की परीक्षाओं में सोचनीय परीक्षाफल का कारण यह तथ्य ठहराया जा सकता है कि संशोधित रूप के प्रश्न पत्रों में केवल ज्ञान व प्रयोग पर आधारित प्रश्नों का समावेश था। सूचना स्तर पर ज्ञान की परीक्षा करनेवाले प्रश्नों को पूर्णरूपेण हटा दिया गया था।

यहाँ यह उल्लेख कर देना भी अप्रासंगिक न होगा कि संशोधित प्रश्न पत्रों पर आधारित नवीन परीक्षा प्रणाली विद्यार्थियों की चिन्तन शक्ति तर्क करने की क्षमता तथा प्रत्यात्मक ज्ञानार्जन पर तो बल देती है किन्तु शिक्षा का अथवा विद्यार्थी के विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि उसे कुछ सूचना-स्तर तथा स्मृति पर आधारित ज्ञान प्राप्त हो। उसके लिए वस्तुनिष्ठ प्रश्न या इन पर आधारित प्रश्न-पत्र उपयोगी हो सकते है।

७—परियोजना के निष्कर्ष

संशोधित प्रश्न-पत्रों पर आधारित परीक्षा प्रणाली शिक्षा के उन लक्ष्यों की पूर्ति करती है जिनमें मौलिक तथा तर्कयुक्त चिन्तन का विशेष स्थान है। इस परीक्षा प्रणाली को प्रारम्भ करना एक क्रान्तिकारी कदम होगा और यह विश्वास किया जा सकता है कि यदि इस प्रकार के प्रश्न-पत्र परीक्षा में दिये जायें तो शिक्षकों को अपनी शिक्षण विधि में भी परिवर्तन करना होगा क्योंकि जब शिक्षक अपने विद्यार्थियों को मौलिक तथा तर्कयुक्त चिन्तन का अभ्यास करायेंगे तभी उस प्रकार के प्रश्न-पत्रों के आधार पर विद्यार्थियों का मूल्यांकन किया जा सकता है। उपलब्ध आँकड़ों से स्पष्ट है कि गणित में लगभग २० प्रतिशत विद्यार्थी नवीन परीक्षा प्रणाली में सफल हो सके हैं। अन्य विषयों में भी उत्तीर्ण होनेवालों का प्रतिशत परम्परागत परीक्षा प्रणाली की अपेक्षा बहुत कम है। प्रश्न यह उठता है कि विद्यार्थियों के लिए कक्षोन्नति प्राप्त करने में नवीन परीक्षा प्रणाली द्वारा मूल्यांकन का क्या स्थान होगा। वस्तुस्थिति यह है कि यदि हम नवीन परीक्षा प्रणाली के आधार पर मूल्यांकन करके केवल २० प्रतिशत को कक्षोन्नति देंगे तो अभिभावकों में बड़ा असंतोष होगा। इसलिए सुझाव यह है कि प्रारम्भ में हर विषय के विभिन्न क्षेत्रों पर ऐसे प्रश्नों का संकलन किया जाय जो मौलिक चिन्तन और तर्क शक्ति के विकास को प्रेरणा देते हों और प्रश्नों के इस संकलन को हर स्तर के विद्यालयों में प्रसारित कर दिया जाय। इससे शिक्षकों को एक नयी दिशा मिलेगी और वे न केवल इन प्रश्नों का प्रयोग अपने प्रश्न-पत्र बनाते समय कर सकेंगे अपितु अपनी शिक्षण विधि को भी उनके अनुसार बदलने का प्रयास करेंगे।

नवीन परीक्षा प्रणाली के प्रश्न पत्रों को तैयार करने के प्रसंग में यह भी निष्कर्ष निकाला कि गणित विज्ञान और भाषा में इस प्रकार के प्रश्न बनाने में अधिक कठिनाई नहीं है किन्तु इतिहास जैसे विषय में इस प्रकार के प्रश्न तैयार करने में बड़ी कठिनाई है क्योंकि इतिहास के अध्ययन में तथ्यों का प्राचुर्य है और मौलिक चिन्तन की आवश्यकता कम-से-कम विद्यालयी शिक्षा में कम पड़ती है। अतएव यह भी परिणाम निकलता है कि नवीन परीक्षा प्रणाली का प्रयोग अभी विज्ञान गणित तथा भाषा तक ही सीमित रखा जाय। इन विषयों में जो प्रश्न पत्र बनाये जायँ उनमें प्रश्नों की संख्या अधिक-से अधिक रखी जाय जिसमें पाठ्यक्रम का अधिक-से अधिक समावेश हो सके, छात्रों को बातचीत का अवसर न मिले और वही छात्र पुस्तक का लाभ उठा सकें जिन्होंने पुस्तक को अच्छी तरह पढ़ा है।

परीक्षा प्रणाली में परिवर्तन करने से सम्बन्धित प्रयोग करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि विद्यालयों में शिक्षण का कार्य पुराने ढंग से चलता है। नये ढंग से परीक्षा लेने के लिए कक्षा शिक्षण भी नये ढंग से चलाना होगा और उसी के आधार पर उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण घोषित करने के मापदण्ड भी निर्धारित करने होंगे। वर्तमान नियमों की व्यवस्था में कक्षोन्नति के सिद्धान्त को बदलना सम्भव नहीं हो पाता। निश्चय ही पाठ्य क्रम का संगठन भी बदलना आवश्यक होगा। ऐसी स्थिति में जब तक विद्यालयों को पूर्ण स्वतंत्रता न मिले तब तक परीक्षा प्रणाली को बदलने का प्रयोग सफल होना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है।

अन्त में यह उल्लेख करना है कि एक या दो वर्ष के अन्त में एक भारी-भरकम परीक्षा लेकर विद्यार्थियों का मूल्यांकन करना अत्यन्त अनुचित है। वास्तव में मूल्यांकन दैनिक साप्ताहिक तथा मासिक होना चाहिए और बालक के विकास के सभी पक्षों बौद्धिक संवेगात्मक चारित्रिक तथा कौशल अभिरुचि आदि से सम्बन्धित होना चाहिए और इसके लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि बालक के बहुमुखी विकास का मापन करने के लिए कोई एक ही विधि कदापि पर्याप्त नहीं हो सकती। इसलिए विद्यालयों को यह सुझाव दिया जाय कि वे बालकों के बहुमुखी विकास के मूल्यांकन की आन्तरिक व्यवस्था करें और उसका ऐसा अभिलेख रखें जिससे देखनेवाले को बालक की हर प्रकार की क्षमता का ठीक ठीक ज्ञान हो सके। जब तक किसी बाह्य संगठन द्वारा विद्यार्थियों के विकास का मूल्यांकन चलता रहेगा तब तक बालक के व्यक्तित्व का व्यापक मूल्यांकन सम्भव न हो सकेगा। जहाँ तक स्तर

म एकरूपता रखने की बात है, इसके लिए पाठ्यक्रम का निरूपण ठीक प्रकार से होना चाहिए। प्रशासकीय अधिकारियों द्वारा जिनका शिक्षण से कोई सम्बन्ध नहीं होता, शिक्षकों के कार्य का निरीक्षण कराना अनुचित है और ऐसी व्यवस्था कहीं भी प्रगतिशील देशों में नहीं है। शिक्षकों के कार्य का निरीक्षण करना प्रधानाचार्य अथवा विषय के विशेषज्ञों का कर्तव्य होना चाहिए।

उदाहरण के लिए नीचे एक संशोधित प्रश्न पत्र दिया जा रहा है।

मासिक परीक्षा, सितम्बर १९६९

कक्षा ८ (अ तथा ब)

समय—३५ मिनट हिन्दी पूर्णांक—२०

१—(क) निम्नलिखित उदाहरणों से सम्बन्धित पाठों के शीर्षक तथा प्रसंग लिखो — २

(क) बन्धुत्व में व्यापार नहीं होता।

(ख) राम राज की पृष्ठभूमि त्याग और तपस्या के आधार पर तैयार हुई थी।

(ग) छिन्न भिन्न कर दो हे प्रभु तुम
तम की प्रस्तर कारा।

(घ) शुद्ध कर्म तुम्हारे संचित कर
युग धर्म जगा युग धर्म तना।

(ख) उपर्युक्त उदाहरणों के भाव स्पष्ट करो। ६

२—(क) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो— ४

(१) 'एक पुरानी कथा' को लेखक ने 'मनोरथों की सच्ची कहानी' क्यों कहा है ?

(२) नर हो, न निराश करो मन को नामक कविता में संसार को निरा स्वप्न न समझने की बात क्यों कही गयी है ?

अथवा

(ख) मान लो कि 'एक पुरानी कथा' नामक कहानी में मछुवा शाप पाने के पश्चात् मछली से पुनः मिलता है। बताओ वह मछली से क्या बातें करेगा ?

३—पौराणिक कहानियों के अनुसार ऋषि अगस्त्य ने समुद्र का पान कर लिया था। इस कथन का वास्तविक तात्पर्य स्पष्ट करो।

अथवा

बताओ कि गदा युद्ध म भीम का दुर्योधन की जाँघ पर प्रहार करना कहाँ तक उचित था जब कि यह कार्य तत्कालीन युद्ध नियम के अनुसार वर्जित था।

४—'राग-द्वेष' तथा 'जड-चेतन' शब्द-युग्मो की रचना पर ध्यान दो और बताओ कि निम्नलिखित मे से कौन-कौन से शब्द युग्म इसी प्रकार बने है — २

धन-दौलत, जीवन मरण, घर द्वार, यश अपयश, काट छाँट, हानि-लाभ, पाप-पुण्य।

अथवा

निम्नलिखित के लिए एक एक शब्द लिखो—

(क) पीछे चलनेवाला

(ख) क्या करें यह न समझ पानेवाला

(ग) दूसरे देश मे जाकर बस जानेवाला

(घ) न प्राप्त हो सकनेवाला

५—(क) निम्नलिखित म से जिनकी वर्तनी अशुद्ध है उनके शुद्ध रूप लिखो — २

बृजभाषा निश्चित, अक्षौहिणी, निष्कष

(ख) निम्नलिखित वाक्यो म जिनकी रचना अशुद्ध हो उन्हें शुद्ध करके पुन लिखो—

१—सीता ने तीनो आम खा लिया।

२ —मैंने इनमे से दो पुस्तकें पढा है।

३—जब श्री कृष्ण जी उपदेश दिये तब अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हुए।

४—प्रात काल होते ही पक्षियाँ चहचहाने लगती हैं।

—राजकीय सेण्ट्रल पेडागाजिकल इस्टीच्यूट, इलाहाबाद

—साभार प्रकाशित

दिनेशसिंह

हमारे विद्यालय तथा भाषा के पाठ्यक्रम : एक समीक्षा

भारत ने १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्रता प्राप्त की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के आज २४ वें वर्ष तक दिन प्रतिदिन भारत अपनी समस्याओं को गहन एवं विस्तृत करता दृष्टिगत हो रहा है। समस्याओं के समाधान के लिए जो भी प्रयास किये गये, एवं किये जा रहे हैं, उनसे सफलता मिलना तो दूर की बात रही वरन् हमारी सभी समस्याएं विस्तार एवं गहनता का रूप धारण करती जा रही हैं। हमारे शिक्षा-शास्त्रियों का सदैव से यह कहना रहा है कि शिक्षा के माध्यम से जिस प्रकार का समाज चाहें निर्मित कर सकते हैं। विश्व की प्राचीन संस्कृतियों ने अपनी शिक्षा के अनुरूप ही समाज की रचना की थी। प्रश्न यह उठता है कि वर्तमान भारत शिक्षा के द्वारा अपने संविधान में उल्लिखित उद्देश्यों की प्राप्ति क्यों नहीं कर पा रहा है। संविधान ही नहीं देश के राजनैतिक नेता एवं शिक्षा शास्त्री उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपने भाषणों में बेहद परेशान दिखाई पड़ते हैं। परन्तु इसके बावजूद भी आज देश में शिक्षा का विस्तार नगण्य हुआ है। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में तो एक कदम भी सफलता का नहीं रहा, यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। इसके लिए अनेक कारण हमारे शीर्ष के नेता तथा शिक्षा-शास्त्री देते रहते हैं। कभी-कभी तो हमारे शीर्ष के शिक्षा शास्त्री भी यह कहते दिखाई पड़ते हैं कि 'शिक्षा को उत्तरोत्तर पंचवर्षीय योजनाओं में अधिक सम्मानपूर्ण स्थान नहीं मिला। इन

योजनाओं में उत्पादन क्रियाओं को जितना अधिक महत्त्व मिला उतनी ही अधिक उपेक्षा शैक्षिक तथा सांस्कृतिक क्रियाओं एवं सामाजिक क्रियाओं की हुई है।'[१] हमें इस प्रकार की एकांगी एवं असंतुलित योजनाओं पर बल नहीं देना चाहिए था। इसके दोषी तो देश के शीर्षनेता एवं योजना-कर्णधार ही कहे जायेंगे। यदि इस तथ्य को भी यहीं छोड़ दें तो भी हम देखते हैं कि आज देश में चारों ओर असामाजिक तत्त्वों की प्रगति इस स्वतंत्रता काल में अत्यधिक तीव्रगति से हुई है। गांधीजी ने अपने सपनों के भारत में यह कहा था कि 'ऐसा भारत जिसमें कोई जाति या सम्प्रदाय दूसरे से श्रेष्ठ नहीं माना जायगा और न जिसमें धनी और अधिकार सम्पन्न लोगों का बोलबाला होगा।' नेहरूजी ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये थे—'मैं चाहता हूँ धर्म और जाति, भाषा और प्रांत के नाम पर होनेवाले संकुचित प्रवृत्ति जन्य संघर्ष खत्म हो और ऐसे वर्गहीन और जातीयता के भाव से रहित समाज की रचना हो, जिसमें हर आदमी को अपने गुणों और योग्यता के आधार पर आगे बढ़ने के लिए पूर्ण अवसर सुलभ हो।'[२]

हमारे देश के शीर्ष के नेताओं एवं शिक्षा शास्त्रियों के उच्च एवं महान विचारों के होते हुए भी देश में सबल अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता, जातीय श्रेष्ठता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता आदि के विचारों की जड़ें गहराई की ओर जा रही हैं। इस प्रकार के विचारों के लिए अवश्य ही उपयुक्त वातावरण प्राप्त हो रहा है। क्या शिक्षा के द्वारा इस प्रकार के असामाजिक विचारधाराओं एवं कृत्यों का निवारण सम्भव नहीं है? मेरी दृष्टि से इनके समाधान का एक मात्र उपाय शिक्षा है। परंतु शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में कोठारी आयोग ने भी कहा है कि 'भारतीय शिक्षा में शक्तिशाली पुनर्निर्माण की क्रान्ति की आवश्यकता है।'[३] क्रान्ति का अर्थ है श्रेयस्कर जड़ से परिवर्तन। शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन के द्वारा ही पुनर्रचना सम्भव है। हमारी वर्तमान शिक्षा समाज के बदलते परिवेश से मेल नहीं खा रही है। विज्ञान को हम औद्योगिक क्षेत्रों तथा कक्षाओं के वैज्ञानिक विषयों के अध्ययन एवं अध्यापन तक सीमित रखे हुए हैं। हमको इस सीमित दायरे को बढ़ाकर जीवन के हर पहलू में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करने की आवश्यकता है। आज हम देश में भाषा शिक्षण के द्वारा विभिन्न भाषाओं के

---

१ के० जी सैयदैन 'भारतीय शैक्षणिक विचारधारा'

२ जवाहर लाल नेहरू—'आजाद मेमोरियल लेक्चर्स' पृ० ४३

३ कोठारी आयोग।

महान पंडित निर्मित करते दिखाई पड़ते हैं। कुछ को तो पी० एच० डी० और डी० लिट्० की उपाधि से भी विभूषित कर देते हैं। बड़ी-बड़ी शिक्षण-संस्थाओं के कर्णधार एवं संचालक पदों पर भी आसीन कर देते हैं। राजनैतिक क्षेत्र में दीर्घ के नेता भी बनते दिखाई पड़ते हैं। परन्तु यदि इन सभी के जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण भाषा शिक्षण के माध्यम से नहीं पैदा किया जा सका तो अन्धविश्वास, धर्मान्धता, रूढ़िवादिता, जातीय श्रेष्ठता तथा साम्प्रदायिकता आदि असामाजिक तत्त्वों की भावना से ग्रसित होना स्वाभाविक है। अब इस प्रकार के शिक्षाविदों एवं राजनैतिक नेताओं को हम उक्त प्रकार के असामाजिक तत्त्वों के निवारण का कार्यभार सौंप देते हैं एवं असामाजिक तत्त्वों के निवारण की आशा करते हैं। ऐसी अभिलाषा बालू में दीवार निर्मित करने का असफल प्रयास मात्र ही तो है! हमको प्राथमिक कक्षा से लेकर उच्च कक्षाओं तक के भाषा विषयक पाठ्यक्रमों एवं पाठ्य-पुस्तकों से उक्त प्रकार के असामाजिक तत्त्वों को विस्तार देनेवाले सन्दर्भों एवं प्रसंगों को निकाल फेंकना होगा। आज देश में सर्वत्र जाति धर्म तथा विभिन्न सम्प्रदायों की ओर से विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्व विद्यालय तक संचालित हो रहे हैं। केन्द्रीय सरकार एवं प्रदेशीय सरकारें इस प्रकार की संस्थाओं को दिन प्रतिदिन आर्थिक अनुदान भी प्रदान कर रही है। ध्यान रहे उक्त प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं के नाम भले ही परिवर्तित कर दिये गये हों परन्तु आन्तरिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उक्त प्रकार की संस्थाएँ असामाजिक तत्त्वों के प्रशिक्षण का केन्द्रस्थल बनी हुई है। डा० राधा कृष्णन् भी सार्वजनिक शिक्षा के किसी स्तर पर धार्मिक मतों की शिक्षा देने के पक्ष पाती नहीं हैं। उनका मत है कि ऐसी शिक्षा देने पर पाठ्यचर्या के अन्य विभागों में जो अनुसन्धान की आलोचनात्मक और तार्किक पद्धतियाँ अपनाई गई हैं उनमें बाधाएँ उत्पन्न होंगी। भिन्न धर्मों में मुक्ति के परस्पर विरोधी द्वार और साधन बतलाये गये हैं। यदि विद्यार्थियों को इस धर्मों के आचार्यों और विद्वानों से शिक्षा दिलायी जायगी तो बन्धुत्व और समानता की उस भावना पर आघात होगा जिसकी स्थापना के लिए महाविद्यालय और विश्वविद्यालय बनते हैं।[४] जब विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए तो विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय, जाति के नाम अथवा इनके समर्थक गुटों द्वारा संचालित शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता निश्चय ही

---

४ 'रिपोर्ट आव दि यूनिवर्सिटी कमीशन' पृ० ४०

उक्त प्रकार से असामाजिक तत्वों के प्रचार के लिए दी जा रही है। उक्त विषय अत्यधिक गम्भीरता से सोचने एवं विचारने का है।

स्वतंत्र भारत के विद्यालयों में अध्ययन हेतु जानेवाले सभी छात्र-छात्राएँ प्राथमिक कक्षाओं, उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं तक किसी-न किसी भाषा का शिक्षण अवश्य प्राप्त करते हैं। भाषा-विषयक अध्ययन प्राप्त करनेवाले छात्र एवं छात्राओं का प्रतिशत महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में भी अन्य विषयों की अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है। विश्वविद्यालय के समावर्तन समारोहों में भी भाषा-विषय से एम० ए० तथा पी० एच० डी० की उपाधि प्राप्त करनेवाले छात्र-छात्राओं की पंक्ति अपेक्षाकृत काफी लम्बी होती है। इन प्रकार के छात्र-छात्राओं को भाषा के तत्वों का ज्ञान, साहित्य की विविध विधाओं का ज्ञान तथा विषय-वस्तु का ज्ञान आदि सर्वोपरि रहता है। हम भाषा के शिक्षण द्वारा भाषा के महान पंडित भले ही निर्मित करते दृष्टिगत हो रहे हों परन्तु इनको हम समाजवादी दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने में पूर्णत असमर्थ रहे हैं। क्योंकि हमारे भाषा के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित पाठ्य पुस्तकें इन छात्र-छात्राओं में वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करने में पूर्णत असफल रहे हैं। उक्त प्रकार की पाठ्य-पुस्तकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव ही नहीं पाया जाता है वरन् वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रतिकूल विचारधाराओं की जड़ें जमाने के प्रभावपूर्ण सन्दर्भ निर्धारित किये पाये जाते हैं। हमको कम-से-कम प्रारम्भिक कक्षा से उच्चतर माध्यमिक कक्षा के भाषा के पाठ्यक्रमों से उक्त प्रकार के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखनेवाले सन्दर्भों को निकाल फेंकना होगा। हमारी भाषा सम्बन्धी पुस्तकों में जब धार्मिक शिक्षा प्रदान करना एक प्रमुख अंग मान लिया जाता है तो हम अपने अपने धर्मों की महत्ता प्रदान करने के लिए अवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखनेवाले उद्धरणों को भी महत्ता प्रदान करने में गर्व का अनुभव करते हैं। राज्य सरकारों द्वारा प्रकाशित हिन्दी भाषा की पाठ्य-पुस्तकों तक में भी इस प्रकार के अवैज्ञानिक दृष्टिकोण रखनेवाले सन्दर्भ सर्वत्र देखने को मिलते हैं। इन पाठ्य-पुस्तकों के अनेक सन्दर्भ तो छात्र छात्राओं में सदिग्ध एवं अनिर्णीत धारणाएँ घर कर लेती हैं। इन धारणाओं में जीवन पर्यन्त परिवर्तन लाना दुष्कर एवं असाध्य कार्य है। भाषा की प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों में राजा-रानियों एवं महाराजाओं की प्रशंसा भरी निर्मूल, अस्वाभाविक एवं आडम्बर युक्त कहानियाँ[५], भैंसे पर सवार यमराज का वर्णन एवं ढोंगपूर्ण काल्पनिक

५—नवभारती भाग २ पृ० २४, सम्पादक शिक्षा निदेशक, शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश।

चित्र,[६] समुद्र मन्थन का वर्णन जिसमें बतलाया गया है कि जब राहु चन्द्रमा को और केतु सूर्य को अपना पूरा-पूरा बदला लेने के लिए ग्रस लेता है, तब ये ग्रहण (चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण) पड़ते हैं[७]। परियों की अवैधानिक एवं अमनोवैज्ञानिक तथ्यों से परिपूर्ण कहानियाँ (सोती सुन्दरी)[८], बाबर और हुमायूँ के मरने-जीने की अव्यावहारिक एव अवैज्ञानिक मनगढ़त कहानी,[९] शाप दान की रूढ़वादी, अन्धविश्वासी तथा धर्मान्धतापूर्ण कहानियाँ इत्यादि हमारे भाषा शिक्षण के प्रमुख अंग हैं। उक्त प्रकार के साहित्य से भाषा का शिक्षण एवं ज्ञानवर्द्धन अवश्य हो जाता है परन्तु समाज की समाजवादी एवं प्रजातान्त्रिक पुनर्रचना असम्भव है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार की प्रारम्भिक पाठ्य-पुस्तकों में स्वास्थ्य शिक्षा, नागरिक शिक्षा आदि से सम्बन्धित सन्दर्भ ढूँढने पर भी नहीं मिलते हैं। क्या इस प्रकार के विषयों की प्रमुखता देनेवाले साहित्य को महत्ता नहीं दी जा सकती है ? हम अपने छात्र-छात्राओं को निश्चित एवं वैज्ञानिक ज्ञान देने में असमर्थ पाठ्यक्रमों एवं पाठ्य-पुस्तकों को निर्मित करते जा रहे हैं। हम रूढ़वादी ज्ञान और वैज्ञानिक तथ्यपूर्ण ज्ञान में से किसे दिया जाय, यह निश्चित नहीं कर पाये हैं। इस प्रकार की धारणाएँ शिक्षा के क्षेत्र के केन्द्रबिन्दु हैं। इनका समाधान किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रारम्भिक कक्षा के छात्र-छात्राओं को, जिनका मस्तिष्क कच्चे घड़े के समान है हमारे शिक्षा-शास्त्री गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते हैं, बतलाना होगा कि गंगा नदी हिमालय पर्वत के गंगोत्री नामक स्थान से निकलती है अथवा "ब्रह्मा ने कमंडल से गंगाजी को छोड़ दिया। गंगाजी बड़े वेग से चलीं। हर-हर की ध्वनि आकाश में गूँज गयी। उनके तेज बहाव को देखकर ऐसा मालूम होता था कि वे संसार को बहा ले जायेंगी। परन्तु पृथ्वी तक पहुँचने से पहले ही वे शिवजी की जटाओं में उलझ गयीं और वहीं चक्कर काटने लगीं। भगीरथ की प्रार्थना पर शिवजी ने अपनी जटा की एक लट खोल दी। गंगाजी की एक छोटी-सी धार बह निकली। भगीरथ आगे चले और गंगाजी उनके पीछे हो लीं। हरिद्वार, प्रयाग और काशी होती हुई वे समुद्र के किनारे

६—नवभारती भाग २ पृ० ४४–५१, " " "
७—बेसिक हिन्दी रीडर भाग ४, पृ० १०६ " " "
८—बेसिक हिन्दी रीडर भाग ३ पृ० १६ " " "
९—बेसिक हिन्दी रीडर भाग ३ पृ० ५२ ५४ " " "

कपिल मुनि के आश्रम में पहुँची। गंगाजल के पाते ही भगीरथ के पुरखे तर गये।[१०]

भाषा के क्षेत्र में अवैज्ञानिक एवं अमनोवैज्ञानिक धारणाओं को घनीभूत करने एवं पोषक तत्त्व प्रदान करनेवाला बाल साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में निर्मित हो रहा है। इस प्रकार साहित्य ही हमारे विद्यालयों के छात्र छात्राओं का जीवन पथ प्रदर्शक बनता है। भाषा सम्बन्धी पत्र पत्रिकाएँ तो सामाजिक दृष्टिकोण से पथभ्रष्ट दिखायी पड़ती है। उनका उद्देश्य तो व्यावसायिक है। इस प्रकार हम देखते है कि भाषा सम्बन्धी पाठ्यक्रमो की पुस्तकों के निर्धारण भाषा सम्बन्धी बाल साहित्य का निर्माण और भाषा की उच्च-स्तरीय पत्र पत्रिकाओं के लिए केन्द्रीय एवं प्रदेशीय सरकारों को वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना अत्यधिक आवश्यक है। इस प्रकार का परिवर्तन शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण समाज-वादी कदम होगा। अगर शिक्षा में क्रान्ति करनी है तो समाजवादी विचारकों, शिक्षा शास्त्रियों एवं राजनैतिक नेताओं को इस प्रयास के लिए ठोस मार्ग एवं प्रयास करने होंगे।•

१०—बेसिक हिन्दी रीडर भाग ३ पृ० २७

एक परियोजना

उत्तर प्रदेश के इण्टरमीडिएट प्रचलित गणित नवीन पाठ्यक्रम का अध्ययन

अध्ययन का उद्देश्य

सत्र १९६३-६४ मे माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश की इण्टरमीडिएट परीक्षा मे गणित के प्रथम द्वितीय तथा तृतीय प्रश्न-पत्रों म छात्रो के उपलब्धि-स्तरो मे असमानता की समस्या का अध्ययन किया गया था। उस अध्ययन की समस्या के अनुसार प्रथम प्रश्न-पत्र मे परीक्षार्थियो का उपलब्धि स्तर द्वितीय तथा तृतीय प्रश्न-पत्रो की उपलब्धि-स्तरो की अपेक्षा बहुत ऊँचा था। उदाहरणार्थ, उस अध्ययन के प्रतिदर्श (सेम्पुल) म प्रथम प्रश्न पत्र मे उत्तीर्ण प्रतिशत ६७ ३ तथा द्वितीय एव तृतीय प्रश्न-पत्रो के उत्तीर्ण प्रतिशत क्रम से ४० ५ तथा ४५ १ थे।

इस अध्ययन सम्बन्धी तीनो प्रश्न-पत्रो मे समान उपलब्धि-स्तर के हेतु दिये गये शिक्षण विधि सम्बन्धी सुझाव गणित अध्यापको के लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुए। इस प्रकाशन म हाई स्कूल गणित के पाठ्यक्रम का भी अध्ययन किया

गया था। परन्तु १९७० म सचमुच प्रश्न पत्र या उपलब्धि-स्तर सबसे निम्न था। प्रथम प्रश्न-पत्र से द्वितीय प्रश्न-पत्र का और द्वितीय से भी तृतीय प्रश्न-पत्र का उपलब्धि-स्तर अधिक ऊँचा था। अतएव इस समस्या के कारणो को जानने तथा औपचारिक सुझावो को प्रस्तुत करने की दृष्टि से विस्तारपूर्वक अध्ययन के बाद निम्नांकित सुझाव दिये जा रहे हैं।

औपचारिक सुझाव

(क) पाठ्यक्रम—

प्रथम प्रश्न-पत्र के उपलब्धि-स्तर गिरने का बहुत कुछ कारण पाठ्यक्रम का असन्तुलन है जिसे दूर करने के लिए निम्न सुझाव दिये जा रहे हैं—

१—इण्टरमीडिएट म बीज गणित का पाठ्यक्रम बहुत विस्तृत हो गया है। यह पहले भी अधिक और दुरूह था। सन् १९६७ के बाद से तीन-चार प्रकरणो क और बढ जाने क कारण यह अब छात्रो की क्षमता के बाहर हो रहा है। अतएव बीज गणित क पाठ्यक्रम को फिर से संशोधन करने की आवश्यकता है। कुछ पुराने प्रकरणो को निकाला भी जा सकता है और कुछ को हलका किया जा सकता है। जिन प्रकरणो की उपयोगिता आगे के गणित म नही है अथवा जिनकी उपयोगिता इजीनियरिंग आदि के प्राविधिक कोर्सों म नही है उन पर यहाँ अत्यधिक बल देने की आवश्यकता नही है। माडर्न बीज गणित के सदर्भ मे ऐसा संशोधन अब बहुत ही आवश्यक हो गया है। गणित की पाठ्यक्रम समिति क समक्ष माध्यमिक शिक्षा परिषद को इस समस्या को रखने की अविलम्ब आवश्यकता है।

२—मेन्सुरेशन को इण्टरमीडिएट क पाठ्यक्रम से हटा देने की आवश्यकता है। मेन्सुरेशन का व्यावहारिक अश हाईस्कूल म पढाया जाने लगा है। जो अश अब इण्टरमीडिएट म पढ़ाया जाता है उसे बी० एस०सी० स्तर पर कैलकुलस के द्वारा पुन पढाया जाता है। कैलकुलस से पढना अपेक्षाकृत अधिक सरल है। अतएव अब इण्टरमीडिएट के पाठ्यक्रम म फस्टा ऑफ पिरामिड कोन तथा स्फियर रखने की कोई आवश्यकता नही है।

३—यदि मेन्सुरेशन के इस भाग का रखना बहुत ही आवश्यक हो, तो इसे इसी रूप म द्वितीय प्रश्न पत्र के अन्तर्गत कर दिया जाय या कैलकुलस के अन्तर्गत इसका समावेश कर दिया जाय। कैलकुलस की सहायता से इण्टर मीडिएट के छात्रो को इन ठोसो का पृष्ठ तथा आयतन निकालना सिखाना कठिन नही होगा।

(ख) प्रश्न-पत्र का प्रतिरूप (पैटर्न)—

प्रत्येक प्रश्न-पत्र में कुल १४ प्रश्न पूछे जाते हैं जिनमें से छात्र को सात प्रश्न करने होते हैं। प्रत्येक प्रश्न में क तथा ख दो भाग होते हैं। इन भागों का एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। प्रत्येक भाग में स्वतन्त्र प्रश्न पूछा जाता है। फिर भी प्रत्येक प्रश्न के क तथा ख भाग को एक प्रश्न मान लेने के कारण छात्र को चयन करने का अवसर सीमित हो जाता है। पीछे एक मूर्त उदाहरण द्वारा दर्शाया जा चुका है कि किस प्रकार कोई छात्र प्रश्न-पत्र के अन्तर्गत के प्रश्नों में सात प्रतिशत अंक प्राप्त करने की क्षमता रखते हुए भी केवल ५० प्रतिशत अंक ही प्राप्त कर पाता है। जिस खण्ड से केवल दो प्रश्न करना होता है उसमें यदि वह किसी प्रश्न का क भाग और किसी दूसरे का ख भाग कर देता है, तो उसे बाध्य होकर उन्हीं प्रश्नों के ख तथा क भागों को करना होता है। वह अन्य प्रश्नों के क अथवा ख भागों को नहीं कर सकता है।

ऐसी स्थिति में सुझाव यह है कि किसी प्रश्न में क ख, आदि भाग न रहें। सभी प्रश्नों की क्रम-संख्या अलग अलग हो। इस प्रकार गणित के प्रत्येक प्रश्न में लगभग २७ या २८ प्रश्न पूछे जायें। खण्ड क से ६ प्रश्न खण्ड ख से ४ प्रश्न तथा खण्ड ग से भी कोई ४ प्रश्न करने का निर्देश हो। प्रश्न-पत्र के रूप में यह परिवर्तन कर देने से उत्तीर्ण प्रतिशत में काफी वृद्धि हो जायगी और छात्रों को प्रश्नों के चयन में किसी प्रकार की असुविधा न होगी। यह असुविधा तब और दुखप्रद हो जाती है जब किसी प्रश्न के क भाग में कैलकुलस के प्रश्न और उसी प्रश्न के ख भाग में मेन्सुरेशन के प्रश्न पूछे जाते हैं।

प्रश्न पत्र में २७ या २८ प्रश्नों के रखने से उत्तर-पुस्तक के मुखपृष्ठ पर अंक किस प्रकार चढ़ाये जायेंगे इसका एक नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है।

सारणी ७—उत्तर-पुस्तक का प्रस्तावित मुखपृष्ठ

प्रश्न संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
प्राप्तांक												
प्रश्न संख्या	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
प्राप्तांक												
प्रश्न संख्या	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६
प्राप्तांक												
सम्पूर्ण योग												

उपर्युक्त विधि से मुखपृष्ठ पर प्रश्नों की संख्या लिखने से प्रत्येक प्रश्न-पत्र में ३६ प्रश्नों का मूल्यांकन सरलता से हो सकता है। आवश्यकता तो इस बात

की है कि किसी भी विषय के प्रश्न-पत्र में किसी प्रश्न के क, ख, ग, आदि भाग न रखे जायें। सभी प्रश्नों की क्रम-संख्या अलग से होनी चाहिए।

ज्ञातव्य है कि जिन गणित अध्यापकों से साक्षात् करने का अवसर प्राप्त हुआ था वे सभी प्रश्नों को अलग अलग क्रम-संख्या देने के पक्ष में थे, किन्तु उन्हें केवल इसी बात का भय था कि मुखपृष्ठ पर प्रत्येक प्रश्न के अंकों का लिखना किस प्रकार सम्भव होगा। इसीसे यह सुझाव देना आवश्यक समझा गया है।

(ग) शिक्षण—

(१) शिक्षण की समस्या का भी विवेचन पहले किया जा चुका है। पाठ्य-क्रम इतना भारी हो गया है कि सप्ताह में ९ या ८ घंटों (पीरियडों) की व्यवस्था में कोर्स पूरा होना सम्भव नहीं है। कक्षा ११ में प्रति सप्ताह १२ घंटों तथा कक्षा १२ में भी प्रति सप्ताह १२ घंटों की व्यवस्था रखना आवश्यक हो गया है। ध्येय यह होना चाहिए कि कक्षा १२ में अधिक-से-अधिक जनवरी तक समस्त कोर्स समाप्त हो जाय जिससे जनवरी के पश्चात् कोई नया प्रकरण पढ़ाने को न रहे।

(२) अधिकांश छात्रों की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होती है। उन्हें गणित के अध्ययन में अध्यापक के अतिरिक्त सहायता की आवश्यता पड़ती है। वे निजी शिक्षक रखने की सामर्थ्य नहीं रखते हैं। दूसरी ओर महँगाई के कारण प्रत्येक अध्यापक को भी ट्यूशन करना आवश्यक हो जाता है। उन्हें इतना समय नहीं होता है कि वे विद्यालय में या घर पर कमजोर तथा गरीब छात्रों की सहायता कर सकें। अतएव त्रैमासिक तथा षट्मासिक परीक्षाओं के आधार पर कक्षा ११ तथा १२ में औपचारिक शिक्षण (Remedial teaching) की व्यवस्था विद्यालय की ओर से होनी चाहिए। कमजोर छात्रों से ५ रुपये प्रतिमास लेकर किसी योग्य अध्यापक को लगभग २० छात्रों में औपचारिक शिक्षण का कार्यभार सौंप देना चाहिए। लगभग ८० मिनट प्रति दिन शाम को पढ़ा कर इन कमजोर छात्रों की कमजोरी दूर की जा सकती है। इस व्यवस्था से छात्रों का हित होगा और अध्यापकों का भी।

(३) अधिकांश विद्यालयों के पुराने गणित के अध्यापकों को माडर्न गणित (सेट आदि) का ठीक से ज्ञान नहीं है। अतएव विस्तार सेवा विभाग की ओर से इण्टरमीडिएट के गणित के अध्यापकों का पुनः शिक्षण (रीफ्रेशर) कोर्स आयोजित होना चाहिए। ऐसा प्राय: देखने में आया है कि जिन अध्यापकों

को नय प्रकरणों का स्म्बोध स्पष्ट नही है व इनको छोड देते हैं। फलत छात्रो का उपलब्धि-स्तर गिर जाता है।

(घ) परीक्षा-पद्धति

इण्टरमीडिएट विज्ञान म कृषि की भाँति प्रथम वष तथा द्वितीय वष की परीक्षाए माध्यमिक शिक्षा परिषद स ली जानी चाहिए। पाठ्यक्रम इतना अधिक हो गया है कि पूरे पाठ्यक्रम को एक ही परीक्षा के लिए तयार रखना छात्रो के लिए काफी असुविधाजनक हो रहा है। इसी बात को दृष्टि म रखकर इण्टरमीडिएट कृषि परीक्षा तथा विश्वविद्यालय की स्नातक एव स्नातकोत्तर परीक्षाओ को दो भागो म विभाजित किया गया है। इस प्रकार की व्यवस्था से एक और बडा लाभ यह होगा कि जिन्होंने गणित का चयन समझ-बूझकर नही किया है उन्हे एक वष के बाद ही इस पर पुनर्विचार करने का अवसर मिल सकता है और उपयुक्त विषय लकर वे आगे प्रगति कर सकते हैं। इस व्यवस्था से दो वर्षो के स्थान पर एक ही वष नष्ट होगा और इस प्रकार जीवन के अमूल्य समय के १ वष की बचत हो जायगी।●

—गवनमेंट सेंट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीच्यूट इलाहाबाद

डा० उमापतिराय चन्देल

आज की शिक्षा : समाज से कितनी दूर, कितनी पास

आज की युवा पीढ़ी क्रुद्ध है विक्षुब्ध है और विद्रोह की राहें पर चल पड़ी है। उसका क्रोध विक्षोभ और विद्रोह दिखाई पड रहा है—पथराव, घराव हड़ताल तोड़-फोड आगजनी नक्सली हिंसा आदि के रूप मे। उसका असन्तोष कुछ अन्य रूपो म भी प्रकट हो रहा है जैसे कि रूढियो परम्पराओ वेशभूषा और सामाजिक आचार के नियमो का उल्लघन करने या उनके बारे म स्वेच्छाचारी हो जाने मे। काफी हाउसो मे घटो बैठकर बौद्धिक या आवेशपूर्ण वाद विवादो क द्वारा अपनी दिमागी खुजली मिटाना और स्थापित सब कुछ का विध्वस करने के लिए कम से-कम वैचारिक स्तर पर उदग्र होना भी इस पीढी के आक्रोश का ही एक रूप है, भले ही अपने परिणाम म वह कितना ही निरर्थक हो। इस विक्षोभ का ही एक आत्मघाती प्रकार है चरस गाजा और एल० एस० डी० के नशे म अपने को खो देने की चेष्टा करना—डिसकाथेक्स' मे रहस्यमय धुधलके म युवक-युवतियो या किशोर किशोरियों द्वारा अपनी दमित वासना के विरेचन की कोशिश भी युवा असतोष का ही एक प्रकार है। हिप्पी बाना धारे युवक और मिनी या लुगी-कुर्ता पहने युवतियाँ भी जडीभूत परम्परा के प्रति अपनी खीझ निकालने का ही मार्ग ढूढती प्रतीत होती हैं।

ये सब युवक-युवतियाँ आज की शिक्षा की उपज है—उसी शिक्षा की जिसने इस देश को तिलक गोखले गाधी सुभाष और जवाहर दिये हैं।

ये सब युवक युवतियाँ हमारे समाज की सन्तानें हैं और उनका विक्षोभ विद्रोह इस समाज के विरुद्ध है।

प्रश्न है कि समाज इन्हें नही समझ पा रहा है या ये समाज को नही समझ पा रहे हैं ? आज की शिक्षित युवा-पीढ़ी समाज से कितनी दूर है कितनी पास है ?

युवा आक्रोश को युवजन म अपने भविष्य के प्रति व्याप्त निराशा का प्रतिफल बताया जाता है। यह आरोप भी लगाया जाता है कि आज की शिक्षा जीवन स कटी हुई है इसलिए यह शिक्षित युवको को जीवन-सघर्ष के लिए तयार नही कर पाती। यह भी कहा जाता है कि नयी पीढी और पुरानी पीढ़ी क बीच 'जेनरेशन-गैप' आ गया है—दोनो म विचार विश्वास

दृष्टिकोण और लक्ष्य मेल नहीं खाते, इसलिए घर-घर में विक्षोभ और विद्रोह की आग सुलग रही है। आज्ञापालन और अनुशासन को, चरित्र तथा नैतिकता को, पुरानी पीढ़ी का घिसा पिटा नारा मान लिया गया है।

एक बात तो यह विचारणीय है कि आज की शिक्षा-पद्धति कहाँ तक उत्तरदायी है हताश, सन्त्रस्त और दिशाहारी इस नयी पीढ़ी की वर्तमान मनोदशा के लिए ? दूसरी बात यह सोचने की है कि आज की शिक्षा-पद्धति को बनाये रखने में आज का समाज कहाँ तक उत्तरदायी है ? तीसरी बात यह देखनी है कि आधुनिक शिक्षा की उपज इस नयी पीढ़ी की भूमिका समाज निर्माण के सन्दर्भ में कितनी रचनात्मक और कितनी विध्वंसात्मक है ?

यह आरोप कि आज की शिक्षा जीवन में कटी हुई है असत्य नहीं है। कक्षाओं में छात्रों को जो कुछ पढ़ाया जाता है, उसका अधिकांश उनके जीवन में कभी काम नहीं आता, न उस सबमें छात्रों की बुद्धि का विशेष विकास ही होता है। सब कुछ एक निष्फल व्यायाम बन कर रह जाता है आर्ट्स या मानविकी (ह्यूमैनिटीज) के नाम से पढ़ाई जानेवाली विद्या अधिकांशतः छात्र को अतीतोन्मुखी, बासी ज्ञान ही दे पाती है, सो भी पल्लव-ग्राही, एकदम छिछला, सतही ज्ञान। छात्र की रटन्त-क्षमता पर आधारित परीक्षा प्रचलित गोपन प्रणाली इस निरर्थक ज्ञानार्जन को इतना अधिक महत्त्व दे देती है और छात्रों के इतने मूल्यवान वर्षों की बलि लेती है कि सम्पूर्ण युवावस्था को खोकर, अधकचरे ज्ञान की पाथेय-पोटली बाँधे आज का युवक जब रोजगार के बाजार में दर-दर भटकता हुआ हताश हो जाता है तब उसमें एक खीझ भर उठती है और वह अपनी दुर्दशा के लिए शिक्षा, सरकार, समाज तथा अर्थव्यवस्था को जिम्मेदार ठहराता है और उनसे प्रतिशोध लेने पर उतारू हो जाता है। केवल मानविकी के विद्यार्थियों के साथ ऐसा होता हो सो नहीं, वाणिज्य, विज्ञान और तकनीकी के विद्यार्थियों का हाल भी कुछ बेहतर नहीं है। कक्षाओं में वाणिज्य का जो ज्ञान सिखाया जाता है, वह छात्रों को न अच्छा क्लर्क बना पाता है, न व्यापारी। उद्योग एवं वाणिज्य संस्थानों में जिस तरह के ज्ञान की आवश्यकता है, उसकी शिक्षा कॉमर्स कॉलेजों में दी ही नहीं जाती। बी० कॉम० और एम० कॉम० की उपाधि-प्राप्त युवकों को व्यावसायिक एवं औद्योगिक संस्थानों के लिए वांछित ज्ञान का ककहरा फिर से पढ़ना पड़ता है। विज्ञान के स्नातकों की भी रोजगार के बाजार में कुछ कम दुर्दशा नहीं हो रही है। कालेजों में उन्होंने जो कुछ पढ़ा या सीखा होता है, उसके बल पर ज्यादा-

से ज्यादा किसी स्कूल में मास्टरी मिल जाय, शोधार्थी मेधा का विकास उनमें नहीं हो पाता। स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त किये विज्ञान के छात्र भी अच्छे वैज्ञानिक नहीं बन पाते। और तो और, केन्द्रीय वैज्ञानिक एवं औद्योगिक शोध संस्थानों तथा राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला आदि में होनेवाली शोधें भी जीवन की आवश्यकताओं से कितनी जुड़ी हुई हैं उनके साथ कितनी संगत है यह भी कम विवादास्पद नहीं। तकनीकी क्षेत्र का हाल भी बेहाल है। एक डिग्रीधारी इंजीनियर से कारखानों का मामूली पढ़ा लिखा या बेपढ़ा मिस्त्री ज्यादा होशियार और अपने फन का उस्ताद साबित होता है। कई इंजीनियर तो अपने मिस्त्रियों की खुशामद करके अपनी शेखी बरकरार रखते देखे गये हैं।

यह सारी शैक्षिक विडम्बना एक ही सत्य को उजागर करती है कि आज का शिक्षा जीवन से जुड़ी हुई नहीं है। जीवन की मांग कुछ और है और शिक्षा दे कुछ और रही है। दूसरे विकसित देशों में जो मानविकी साइन्स और तकनीकी वर्षों पहले पुरानी अव्यवहार्य एवं निरुपयोगी बन चुकी होती है, उनसे हमारे देश के छात्रों का मस्तिष्क बोझिल करके उनको जीवन के अथाह सागर में तैरने के लिए छोड़ देने का गुनाह आज की शिक्षा कर रही है। जब तक रोजगार के बाजार में भीड़भाड़ कम थी तब तक तो इस गुनाह पर युवकों का ध्यान कुछ गया कुछ नहीं गया, लेकिन अब जब बेरोजगारी भयंकर विस्तार पा चुकी है, तब युवकों के मन में शिक्षा की वर्तमान प्रणाली और इसको बनाये रखने के लिए जिम्मेदार सारी व्यवस्थाओं के प्रति आक्रोश भर उठा है और वे अपनी झुंझलाहट में विवेक गवाँ बैठे हैं सन्तुलन खो चुके हैं।

भारत में लोकतान्त्रिक व्यवस्था अपनी रजत जयन्ती मनाने जा रही है लेकिन उसके बावजूद यहाँ का समाज कुछ सड़ी-गली जीर्ण जर्जर एवं निरुपयोगी व्यवस्थाओं को ढोते चलने में इतनी लाचारी अनुभव कर रही है जिसकी मिसाल ढूंढ़ नहीं मिलती। इस देश में न जाने कितने शिक्षा आयोग पिछले चौबीस वर्षों में नियुक्त हुए न जाने कितनी भारी भरकम रिपोर्टें तैयार होकर दफ्तरों की आलमारियों में बन्द हो गयी न जाने कितनी बार संसद और संसद के बाहर राजनेताओं शिक्षा शास्त्रियों और समाज शास्त्रियों ने शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता पर जोर दिया और आवाजें उठायी लेकिन सारा हो-हल्ला सरकार के बहरे कानों से टकरा-टकरा कर निष्फल हो रहा है और स्थितप्रज्ञ सरकार की समाधि न टूटी। शायद युवा पीढ़ी

की दिनोदिन उग्र होती विषमता उसके होश हवास दुरुस्त कर दे ! स्पष्ट ही, आज की शिक्षा प्रणाली को यथावत् बनाये रखने मे न शिक्षको की दिलचस्पी है, न समाज की—अभिभावक भी जिसके अग हैं—लेकिन सरकार का रुख समझ से परे है। आखिर यह बहाना सरकार की निष्क्रियता और अदूरदर्शिता को कब तक ढँक सकेगा कि उच्च शिक्षा चाहनेवालो की सख्या निरन्तर बढती जा रही है, सरकार उसी अनुपात म साधन नही जुटा पा रही है। लोकतत्र म शिक्षा पाने के मूलाधिकार से किसी को वचित किया नहीं जा सकता, छात्र और शिक्षक का सम्बन्ध-सम्पर्क क्रमश क्षीण होता जा रहा है फलत छात्रा म अनुशासनहीनता है।

यह बहाना एक हद तक ही ठीक हो सकता है सारी बुराइया को इसी के मत्थे मढ देने की प्रवृत्ति उचित नहीं है।

दिल्ली म दिल्ली परिवहनवाला से हानेवाला झगडा कितनी जल्दी छात्र-पुलिस-सघर्ष का रूप ले लेता है इसके कारणो को समझने म अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए। युवा वग जिन जिन ताक्तो को निहित स्वाथ का रगम समझ रहा है, उन उनको वह मौका पाते ही हिट कर रहा है। आज सयम, नैतिकता और आदर्श के उपदेश उसके गले इसलिए भी नही उतर रहे क्योकि वह अपने इद गिद घर-बाहर असयम, अनैतिकता और आदर्शों के साथ सुविधापूर्ण समझौता का वातावरण देख रहा है। समाज-सुधारकों को वह ढोगी पाता है और राजनेताओ को लबार तथा मक्कार। शिक्षको को वह उस योग्य नही पा रहा कि उन्हे दीपस्तम्भ मान सके। चारो ओर उसे आस्था के कगाल दिखाई दे रहे है। इस मानसिक और वैचारिक भटकाव की स्थिति म वह अपने को सब ओर स प्रवचित पा रहा है। उसे लगता है कि सब, मानो उसके भविष्य के साथ खिलवाड कर रहे हैं, सब शैतान मानो उस देवदूत बनने का उपदेश द रहे हैं। उपदेशो और आश्वासनो के खोखलेपन को वह समझ गया है, लेकिन सवग्रासी निराशा क कुहरे क पार वह देख नही पा रहा इसलिए आज उसे निर्माण की चिन्ता कम है, विध्वस की व्यग्रता अधिक।

अभी हमारे देश म 'पढो और कमाओ तथा 'कमाओ और पढो का न प्रचलन है, न उसके लिए सुविधाएँ ही। अत विद्यार्जन के पद्रह-बीस वर्षों तक विद्यार्थी अपने अभिभावक पर आर्थिक दृष्टि से बोझ बना रहता है। चाह ममतावश या विवशतावश, अभिभावक अपने लडके-लडकिया को

अपनी उलझनो और परेशानियो से अलग, अनजान रखने की कोशिश करते हैं। फलत आज का छात्र जीवन के कटु यथार्थ से अपरिचित रहते हुए अपने को एक 'सुविधाप्राप्त वर्ग' मान बैठता है, और समाज की मूलधारा से अलग कटा एक ऐसा द्वीप बन जाता है, जिसको लहरें स्पर्श करते सकुचाती है। ऐसे ही मे कुसगति उसे 'ब्ल्यू' फिल्मो का दर्शक, 'ड्रगडेन' मे रमनेवाला लतियल नशेडी, 'फस्ट्रेटेड ईव-टीजर' 'डिस्कोथेक विजिटर' और टी हाउसो तथा कॉफी हाउसो का निष्क्रिय बैठकबाज और बातूनी 'इटलेक्चुअल' तथा 'सूडो रिवोल्यूशनरी बना देती है।

निश्चय ही, तथाकथित शिक्षित युवको का यह समूह समाज को इस ढग से नही बदल सकता कि रक्षणीय बच जाय और ध्वसनीय से पीछा छूट जाय। असल मे, उसे यह पता ही नही कि वह जिस समाज का अग है वशानुक्रम या सयोग से, उसकी कोई अपनी गौरवपूर्ण विरासत भी है। वह देश की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और ऐतिहासिक गतिविधियो से अनजान या अधजान रहता है और भारतीय सस्कृति, परम्परा, शील-सौजन्य तथा कर्तव्य से शून्य होता है। फिल्मी सितारो और क्रिकेट-खिलाडियो, जन्म कुडली रटने तथा भौतिक ऐश्वर्य बाहुल्य से आक्रान्त विकृत मन पाश्चात्य देशो के उच्छिष्ट विचारो का उपजीवी होने और बेहूदे फैशनो का नकलची बनने की कोशिशो में उसे अवकाश ही नही मिलता कि वह किसी भी समस्या पर गम्भीरता से विचार कर सके और अपने को बौद्धिक एव वैचारिक दृष्टि से इतना समृद्ध बना सके कि सामाजिक क्रान्ति का नेतृत्व करने मे सक्षम हो, उसका यह बौद्धिक और चारित्रिक दिवालियापन उसे और भी समाज की जटिल समस्याओ से आमना-सामना नही होने देता, वह मुँह चुराता है और दिग्भ्रमित होकर 'सास्कृतिक क्रान्ति' का धोखा खडा करता है। जिसको यही पता नही कि पुरातन का कितना-कुछ वरेण्य और रमणीय है, वह ध्वस की सनक मे विवेक से काम कैसे ले सकता है ?

लेकिन अपरिपक्व बुद्धि युवको को सही दिशा निर्देशन करने और उनके सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तथा सुविधा प्रदान करने की ओर से जो समाज या सरकार उदासीन रहे, उसको भी क्षमा कैसे किया जा सकता है ?

'अणुव्रत' से साभार

आचार्य राममूर्ति

हम और हमारा स्वास्थ्य

आदमी शहर में रहता है और बीमार पड़ता है तो सोचता है कि गाँव में लोग खुली हवा में रहते हैं सूरज की धूप लेते हैं शुद्ध चीजें खाते हैं इसलिए खूब काम करते हैं और स्वस्थ रहते हैं। लेकिन गाँव में आने और कुछ दिन रह लेने पर बात ऐसी नहीं दिखाई देती। एक मजदूर है जिसका आज हट्टा कट्टा शरीर है जाड़ा गर्मी बरसात को कुछ नहीं समझता और घंटों काम करता है खूब खाता है और मस्त रहता है। उसे ज्यादा नहीं पाँच ही साल बाद देखिए। अरे क्या हो गया ? कहाँ गया उसका वह शरीर और क्या हुई उसकी अथक परिश्रम करने की वह शक्ति ? अचरज होता है कि शरीर इतनी जल्दी खिसक जाता है।

अभी कई देशों के वैज्ञानिक दिल्ली में इकट्ठा हुए थे। वे पानी के सवाल पर विचार कर रहे थे। कई वैज्ञानिकों की यह राय थी कि हम लोग जो खाना खाते हैं उसका थोड़ा ही भाग हमारे शरीर में लगता है बाकी सब अनपचा बाहर निकल जाता है। जब तक हम चारपाई नहीं पकड़ लेते हम मानते रहते हैं कि सब ठीक है। पता तब चलता है जब हम बीमार पड़ते हैं। पानी के वैज्ञानिकों का यह विचार है कि भोजन के अच्छी तरह न पचने का एक बड़ा कारण यह है कि हम जो पानी पीते हैं वह स्वस्थ नहीं है गंदा है और उसमें तरह तरह के कीटाणु हैं।

तन्दुरुस्ती ही जीवन है यह बात अपने और अपने परिवार के लिए तो ठीक है ही देश पर भी उतनी ही लागू है। काम के बिना किसी देश या समाज का विकास नहीं हो सकता और काम स्वस्थ शरीर के बिना नहीं हो सकता। रूसी और जर्मन लोगों को देखिए। अपने ही देश में कई जगह वे काम करते दिखाई देते हैं। बिलकुल भूत की तरह काम करते हैं जैसे थकते ही नहीं। पंजाबी लोग दिनभर डटकर काम करते हैं और अगर दस रुपया कमाते हैं तो आठ रुपया खाते हैं। खाने में कंजूसी नहीं करते। अगर शरीर में शक्ति न हो तो काम कम होगा।

यह दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश में अधिक लोग इतने गरीब हैं कि उन्हें भर पेट भोजन नहीं मिलता अच्छा भोजन मिलने की बात ही अलग है। जो कुछ अभी भी मिलता है वे खाते हैं, और किसी तरह जीते हैं। उनका सवाल अलग है। लेकिन उन लोगों का क्या हाल है जो इस तकलीफ में नहीं

है और खाते पीते है। एक चिकित्सालय में चलिए। देखिए वहाँ कौन-कौन लोग रोगी बनकर पड़े हुए हैं। एक कमरे में पति पत्नी है। सम्पन्न किसान है। पति को गठिया है और पत्नी की आँतो में दर्द होता है। दूसरे कमरे में कौन है? एक सामाजिक कार्यकर्ता है। क्या हुआ है इनको? रक्तचाप कम है, कमजोरी है। तीसरे कमरे में कौन है? इंजिनियरिंग के एक युवक प्रोफेसर हैं। रक्तचाप बहुत अधिक है, गुर्दों की बीमारी है। कई बड़ी जगहों में इलाज करा चुके हैं। चौथे कमरे में मजिस्ट्रेट साहब है। पेट में फोड़ा है। टी० बी० की भी शिकायत रही है। जनरल वार्ड में भी यही दृश्य है। स्त्रियाँ भी हैं जिन्हें मासिक का रोग है और तरह-तरह के कष्ट हैं। कई है जिन्हें हिस्टीरिया है।

इन तीस रोगियों में सिर्फ एक ऐसा है जो पेशे से मजदूर है। उसे साइटिका है। रोगियों में कुछ ही हैं जो वृद्ध हो या जो भोजन न मिलने के कारण बीमार पड़े है। उनकी बीमारी के कई दूसरे कारण हैं।

डाक्टर साहब कहते है कि इन तीस में ज्यादा रोगियों के खून में रोग से लड़ने की शक्ति नहीं है या बहुत कम है। ऐसा क्यों है? कारण यह है कि गर्भ में जिस खून से शरीर बना उसमें गर्मी-सुजाक की छूत है। माता पिता दादा दादी नाना-नानी की लाइन में कोई इस रोग से पीड़ित था जिसका खून रोगी के शरीर में आया है। इस तरह का खून इतना कमजोर होता है कि रोग का मुकाबिला नहीं कर पाता।

वंश का रक्त स्वास्थ्य में बहुत बड़ी बात है। जिसको माता पिता से स्वास्थ्य की अच्छी पूंजी मिलती है उसका शरीर कठिनाइयों के होते हुए भी बहुत बरसों तक टिकाऊ और काम का बना रहता है। जिन लोगों का अपना रक्त रोगी है उनकी सन्तान स्वस्थ नहीं होती। उन्हें सतान पैदा करने का अधिकार भी नहीं होना चाहिए। लेकिन हम करोड़ो लोग जो जन्म ले चुके और करोड़ो जन्म लेते चले आ रहे है उनके सामने क्या उपाय है सिवाय इसके कि अपने स्वास्थ्य सम्भालें और शरीर को ऐसी हालत में रखें कि ज्यादा-से ज्यादा बरसों तक वह अच्छी तरह काम दे सके।

जानकार लोग कहते हैं कि बीमारी के तीन कारण मुख्य होते है—एक अपने वंश का दूषित खून दो गलत लालन पालन गलत खान-पान और असयम का आहार विहार तीन हमारे चारो तरफ की गन्दगी और छूत। इन तीन कारणों में से दो ऐसे है जिनसे हम कोशिश करें तो अपना काफी बचाव कर सकते है। अगर हम नहीं करते तो वह हमारा अज्ञान है। हम

अपने बच्चों को बहुत अधिक खिलाते और बहुत अधिक कपड़े पहनाते हैं, क्यों ? हम मान लेते हैं कि अधिक खाने में शरीर अधिक अच्छा रहता है। कपड़ा पहनने से प्रतिष्ठा होती है।

हममें से जिन्हें भरपेट भोजन मयस्सर है वे जरूरत से ज्यादा खाते हैं। सुबह भरपेट नाश्ता, दोपहर को भरपेट भोजन शाम को भरपूर भूजा फिर रात को भरपेट भोजन। निश्चित ही इतना भोजन स्वस्थ शरीर के लिए नहीं चाहिए। इतना खाना शरीर को खराब करना है। जो लोग खूब मेहनत का काम करते हैं उन्हें जरूर कुछ अधिक भोजन चाहिए लेकिन जो लोग शरीर की मेहनत नहीं करते उन्हें कदापि नहीं चाहिए। दूकान पर बैठनेवाले या दिमाग चलानेवाले के लिए दो समय का भोजन काफी है।

अधिक खाना जितना बुरा है उतना ही बुरा जल्दी-जल्दी खाना है। भात या चूड़ा-दही को लोग चूसते ही नहीं। 'औरत का नहाना और मर्द का खाना कोई देखे, कोई न देखे' कहावत मशहूर हो गयी है। गांव में बहुत कम स्त्रियों को भरपूर पानी मयस्सर होता है। बेचारी क्या करें, थोड़े में पानी से कितनी देर नहायें ? लेकिन पुरुष अपना भोजन चबा चबाकर क्यों नहीं खाता ? वह जल्दी-जल्दी खाकर क्यों भागना चाहता है ?

अधिक भोजन करना जल्दी-जल्दी खाना खराब पानी पीना, दोपहर को खाकर आराम न करना घर के आस पास गन्दगी रखना आदि गलत काम करके जब हम या घर के लोग बीमार पड़ते हैं तो टिकिया के लिए बाजार दौड़ते हैं या डाक्टर के पास सूई के लिए। दवा में रुपये भले ही खर्च हो जायें लेकिन वक्त बेवक्त भोजन करना हम नहीं छोड़ सकते।

अगर हम शुरू से ध्यान रखें तो बीमारी से बच सकते हैं और अपनी श्रमशक्ति को ज्यादा बरसों तक कायम रख सकते हैं। उचित मात्रा में भोजन करें, चबा चबा कर खायें बीमारी में खाने रहने की जिद न करें मौसम में जो फल मिले उसे लें, कपड़ा कम पहनें धूप से न घबड़ायें और अगर बीमार पड़ ही जायें तो उसका तुरत उचित उपाय करें—अगर अभी से हम इतना ख्याल भी सीख जायें तो कोई कारण नहीं कि हम लोगों की तन्दुरुस्ती इतनी खराब रहे।

हमारे देश के सामने जहाँ दूसरे सवाल हैं वहाँ करोड़ों लोगों के स्वास्थ्य का सवाल बहुत बड़ा है।●

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष २०
अंक ५
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

दिसम्बर ७१

•

निवेदन

• नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
• नयी तालीम का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
• पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
• रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्ण दत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित
एवं इण्डियन प्रेस प्रा० लि० वाराणसी-२ में मुद्रित।

नयीतालीम . दिसम्बर, '७१
पहिले डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

साहित्य-प्रचार · नमूना-योजना

सर्वोदय साहित्य का प्रचार करनेवाली संस्थाओं एवं पुस्तक विक्रेताओं को सर्व सेवा संघ प्रकाशन द्वारा प्रकाशित साहित्य का छपते ही नमूना मिल जाय, इस दृष्टि से यह योजना बनायी गयी है।

१ इस योजना के सदस्यों को हिन्दी-अंग्रेजी हर नयी किताब की एक या अधिक प्रतियाँ उसके मूल्य के प्रमाण में रु० ६.०० से रु० १०.०० तक कीमत की रु० १.०० से रु० २.०० तक कमीशन बाद करके व्ही० पी० द्वारा भेजी जायेंगी। रुपये ६.०० से कम मूल्य की किताबें नहीं भेजी जा सकेंगी न उनपर कोई कमीशन दिया जा सकेगा।

२ किताबों के मूल्य के प्रमाण में कितनी प्रतियाँ भेजी जायेंगी कितना कमीशन मिलेगा तथा व्ही० पी० कितने की होगी इसका तख्ता इस प्रकार है

किताब का मूल्य	प्रतियाँ	कीमत	कमीशन	व्ही० पी० रु०
१.००	६	६.००	१.००	५.००
२.००	३	६.००	१.००	५.००
३.००	२	६.००	१.००	५.००
३.५०	२	७.००	१.२५	५.७५
४.००	२	८.००	१.५०	६.५०
४.५०	२	९.००	१.७५	७.२५
५.००	२	१०.००	२.००	८.००

रु० ६.०० से रु० १०.०० तक मूल्य की किताबों की केवल एक-एक प्रति भेजी जायगी। कमीशन ऊपर के अनुसार होगा। व्ही० पी० खर्च करीब रु० २.०० संघ बर्दाश्त करेगा।

३ योजना के सदस्य बननेवालों को रु० ५.०० भेजने चाहिए। इसमें रु० १.०० सदस्यता शुल्क का होगा, शेष रु० ४.०० पेशगी जमा रहेंगे। व्ही० पी० वापस आयी, तो उसका खर्च रु० २.०० जमा रकम में कट जायगा। दो बार व्ही० पी० वापस लौटने पर जमा रकम और सदस्यता समाप्त हो जायगी

[योजना के सम्बन्ध में अपने सुझाव देने की कृपा करें]

—राधाकृष्ण बजाज

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमन्दिर, वाराणसी १

नयी तालीम

सर्व सेवा संघ की मासिकी

- शिक्षा का उद्देश्य
- गाँवों के लिए शिक्षा
- यंत्र-युग और बुनियादी शिक्षा
- शिक्षकों की शिक्षा का स्तर
- शिक्षण की नवीनतम् आधुनिक विधियाँ

फरवरी, १९७२

मूल ग्रन्थि

उत्तर प्रदेश मे ही नहीं अधिकांश उन प्रदेशों में भी जहाँ नया सत्र जुलाई से प्रारम्भ होता है, वार्षिक परीक्षाएँ फरवरी मार्च से शुरू हो जाती हैं। प्रायोगिक परीक्षाएँ तो फरवरी महीने से ही प्रारम्भ हो जाती हैं। मेरे एक मित्र व्यग्य करते हैं–'मास्टरों के फसल काटने का समय आ गया।' और यह ठीक है कि इन दिनो हजारो अध्यापक घूम घूमकर फसल काटते हैं—ऐसी फसल जिससे राष्ट्र को केवल भूसा मिलता है, भले ही शिक्षको को कुछ पैसे मिल जायें।

वर्ष : २०
अंक : ७

तो फरवरी का महीना फिर आ गया है और अध्यापक फसल काटने के लिए निकल पड़े हैं। दौड़-धूप शुरू हो गयी है। इन अध्यापको को पारिश्रमिक तो मिलता ही है इनकी खूब खातिर भी होती है। अगर नगर मे मित्र सम्बन्धी हुए, तो उनसे मिलने-जुलने का कार्यक्रम बनता है। अगर पास पडोस मे कोई दर्शनीय स्थान हुआ तो सैर-सपाटे का प्रबन्ध भी किया जाता है और लगे हाथ तीन चार घटो मे चालीस-पच्चास परीक्षार्थियो की प्रायोगिक परीक्षाएँ ले ली जाती हैं।

और होता क्या है इन प्रायोगिक परीक्षाओं मे? लगभग वही जो स्थानीय परीक्षक (विद्यार्थियो को पढ़ानेवाले) चाहते हैं। शत-प्रतिशत नही तो पचानवे प्रतिशत परीक्षार्थियो के सम्बन्ध मे बाह्य परीक्षक स्थानीय शिक्षको का मूल्यांकन मान लेते हैं—मान लेना चाहिए भी क्योंकि आखिर सालभर जिन्होंने इन विद्यार्थियों को देखा-परखा है, वे स्थानीय शिक्षक परीक्षक ही तो हैं। तो फिर बाहरी

परीक्षको द्वारा प्रायोगिक परीक्षाएँ लेने के लिए इस काम को, व्यर्थ के इस ढोंग को, बन्द क्यो नही कर दिया जाता। ऐसा करने से राष्ट्र का धन, समय और शक्ति बचेगी। प्रायोगिक परीक्षाएँ आन्तरिक ही हो—ऐसा सुझाव अनेक समितियो द्वारा दिया जा चुका है। परन्तु अध्यापकों के निहित स्वार्थ, इसे कार्यरूप मे परिणत नही होने देते।

रही सैद्धांतिक विषयो की बाह्य परीक्षा की बात। वह भी जब बीस-पच्चीस दिन के बाद शुरू होगी, तो एक बार वही पुराना नाटक फिर दोहराया जायगा। परीक्षार्थी डेस्क पर छुरा और पिस्तौल रखकर धड़ल्ले से नकल करेंगे। पिछले साल एक परीक्षार्थी ने अपने डेस्क के पास एक खोफनाक अल्सेशियन कुत्ता ही बैठा लिया था। इस वर्ष कोई दूसरा परीक्षार्थी फिर परीक्षा-भवन मे कुत्ता नही ले आयेगा, इसकी क्या गारण्टी है? इस बार फिर परीक्षा-केन्द्रों के बाहर पर्चे नही पहुंचा दिये जायेंगे और लाउडस्पीकरो से उत्तर नहीं बताये जायेंगे इसकी भी क्या गारण्टी है? नकल करते पकड़नेवाले निरीक्षको को पीटा जाता है—उनकी हत्या तक कर दी जाती है, तो अपना प्राण सकट मे डालकर कोई क्यो नकल करनेवालो को पकड़ने की कोशिश करेगा! गत वर्ष उत्तर प्रदेश की हाई स्कूल की परीक्षा मे लगभग ५ लाख विद्यार्थी बैठे थे जिनमे से लगभग २२ हजार नकल करते हुए पकड़े गये थे। इतने तो पकड़े गये थे, इससे कई गुना अधिक ने नकल की होगी, जिनकी हरकतो को नजर-अन्दाज कर दिया गया होगा। इन सारी घटनाओ की, सारे भ्रष्टाचारो की, एक बार पुन पुनरावृत्ति होगी।

तो फिर क्या किया जाय? समस्या का कोई समाधान है भी या नहीं? स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कोशिश तो बहुत की गयी है कि कोई हल निकले। परन्तु अब तक सफलता नही मिली है। सबसे पहले यह समाधान प्रस्तुत किया गया कि आन्तरिक परीक्षा को अधिक महत्त्व दिया जाय। जिन्होंने साल भर छात्रो को पढाया-लिखाया है उनसे अधिक अच्छी तरह उनका दूसरा कौन मूल्यांकन कर सकेगा! और कुछ विश्वविद्यालयो और शिक्षा-परिषदो मे प्रयोग के तौर पर २०-२५ प्रतिशत अक भीतरी परीक्षको के लिए छोड़ दिया गया। परन्तु यह प्रयोग सफल नही हुआ। दबाव अथवा प्रलोभन के कारण शिक्षको ने अपने इस अधिका का दुरुपयोग किया और उनके और

बाह्य परीक्षा के अंकों में बहुत बड़ी असमानता मिली। फलस्वरूप अनेक शिक्षा-संस्थाओं ने (उदाहरणार्थ मध्य प्रदेश के माध्यमिक शिक्षा परिषद ने) आन्तरिक परीक्षकों द्वारा सत्रांक (सेशनल मार्क्स) देने के प्रयोग को वापस ले लिया। इसी प्रकार अमेरिका की नकल कर कुछ विश्वविद्यालयों में सेमेस्टर पद्धति प्रारम्भ की गयी। लक्ष्य था कि एक ही परीक्षा के स्थान पर अगर दो-तीन बार परीक्षाएँ ली गयी तो विद्यार्थी अधिक सातत्य से अध्ययन भी करेंगे और उनकी योग्यता का अधिक सही मूल्यांकन भी हो सकेगा। परन्तु इस पद्धति के विरुद्ध विद्यार्थियों ने स्वयं विद्रोह कर दिया क्योंकि इस पद्धति से विद्यार्थियों को, जाहिर है कोई लाभ नहीं हुआ। अगर हुआ तो शिक्षक-परीक्षकों को। प्रयोग की असफलता के दूसरे कारण जो भी रहे हों, एक प्रमुख कारण यह था कि हमने सेमेस्टर पद्धति तो अपनायी परन्तु परीक्षा-प्रणाली पुरानी ही रखी। विद्यार्थियों पर बोझ तो बढ़ा परन्तु उत्तीर्ण के प्रतिशत में कोई अन्तर नहीं पड़ा।

एक तीसरा समाधान प्रस्तुत किया गया। आजकल की निबन्धात्मक परीक्षा पद्धति के सुधार के सम्बन्ध में, जिसमें केवल स्मरण शक्ति की परीक्षा होती है और प्रश्नों के जाँचने में आत्मनिष्ठता (सब्जेक्टिविटी) बहुत काम करती है। समाधान यह प्रस्तुत किया गया कि छोटे छोटे प्रश्न दिये जायँ—ऐसे प्रश्न जिनके उत्तर एकाध वाक्यों में ही लिखे जा सकें, अथवा 'हाँ' या 'ना' में दिये जा सकें अथवा कभी-कभी प्रश्नों पर ही केवल सही या गलत का चिह्न लगा दिया जाय। इस प्रकार के प्रश्न पाठ्यक्रम के अधिक क्षेत्र को भी घेरेंगे और उनका मूल्यांकन भी अधिक वस्तुनिष्ठ (आब्जेक्टिव) हो सकेगा। परन्तु परिणाम उल्टा हुआ। सामूहिक नकल (मास कापींग) के लिए दरवाजा खुल गया। परीक्षा-केन्द्र के कमरों के दरवाजे बन्द कराकरके प्रश्नों के उत्तर बता दिये जाने लगे। नकल का भ्रष्टाचार बढ़ा ही, घटा नहीं। तो फिर इस समस्या का हल क्या है? इस भ्रष्टाचार को, जिसने हमारे तरुणों का ही नहीं शिक्षकों और अभिभावकों का भी पतन हो रहा है खत्म कैसे किया जाय? केवल एक ही समाधान है—एक ही मार्ग है—मूल ग्रन्थि को ही काट दीजिए। वह मूल ग्रन्थि है—प्रमाण-पत्र का नोकरी से सम्बन्ध।

आज हर नौकरी के लिए किसी परीक्षा के प्रमाण पत्र की आवश्यकता होती है। परीक्षाएँ नौकरी का पासपोर्ट बन गयी हैं। बात यह है कि इस शिक्षा को पाकर हम कोई समाजोपयोगी धन्धा करने के लायक तो होते नहीं। एक मात्र नौकरी का ही चारा रह जाता है। अतः किसी भी कीमत पर हम प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की कोशिश करते हैं और शिक्षक और अभिभावक भी इस काम में छात्रों की सहायता करते हैं—गेस पेपर्स और संक्षिप्त नोटस खरीदवाने से लेकर नकल करवाने तक के काम में। इसलिए अगर वास्तव में हम परीक्षा के भ्रष्टाचार को समाप्त करना चाहते हैं तो हमें नौकरी और प्रमाण-पत्र का सम्बन्ध विच्छेद करना होगा। हम विद्यार्थियों को पढ़ायें। सालभर उनके सतत मूल्यांकन का प्रबन्ध भी करें और इस मूल्यांकन के लिए उन्नत से उन्नत मनोवैज्ञानिक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन पद्धतियों का प्रयोग करें परन्तु जो प्रमाण-पत्र हम दें वह केवल वर्णनात्मक हो और उस पर केवल इतना लिखा हो कि अमुक परीक्षार्थी अमुक कक्षा में इतने दिन तक उपस्थित रहा है और उसने अमुक अमुक विषयों का अध्ययन किया है, जिनमें उसको इतने इतने अंक मिले हैं—प्रमाण-पत्र पर न तो उत्तीर्ण अनुत्तीर्ण लिखा जाय और न श्रेणियाँ लिखी जायँ। जिसको नौकरी देनी है वह नौकरी चाहनेवालों की परीक्षाएँ खुद ले ले। अगर कुछ काट छाँट करनी है तो इन प्रमाण पत्रों का सहारा यदि वह चाहे तो ले चाहे तो न ले।

राधाकृष्णन् कमीशन से पूछा गया था कि अगर उसे केवल एक सुधार का सुझाव देना हो तो वह कौन सा सुझाव देगा तो उसने कहा था—परीक्षा पद्धति में सुधार का। और मेरा सुझाव है कि परीक्षा पद्धति में भी अगर केवल एक सुधार करना है तो प्रमाण-पत्र का नौकरी से सम्बन्ध विच्छेद कर दीजिए। यह मूल ग्रन्थि है। इसे सुलझा दीजिए काट दीजिए तो शेष ग्रन्थियाँ अपने आप सुलझ जायँगी और फिर लड़के परीक्षा पास करने के लिए नहीं, पढ़ने के लिए पढ़ेंगे।

—वंशीधर श्रीवास्तव

ब्रह्मदत्त दीक्षित

शिक्षा का उद्देश्य

विषय है—'शिक्षा का उद्देश्य'। किन्तु 'शिक्षा' का सम्बन्ध तो अनेकांगी मानव जीवन से है अतः उसका क्षेत्र भी उतना ही व्यापक हो जाता है जितना जीवन का। विस्तृत अर्थ में मनुष्य आजन्म शिक्षा ग्रहण करता रहता है और उसमें विद्यालयी शिक्षा सामाजिक तथा धार्मिक प्रभाव अथवा व्यक्ति के विकास की वह सारी प्रक्रिया आ जाती है जिसे रूसो ने प्रकृति की शिक्षा कहा है। परन्तु साधारणतः शिक्षा का अभिप्राय उस पूर्वनियोजित प्रभावोत्पादक व्यवस्था से होता है जो राष्ट्र अथवा समाज द्वारा एक क्रमबद्ध रूप में विशेषतः बालकों एवं नवयुवकों को दी जाती है।

हम आगामी पंक्तियों में शिक्षा के उद्देश्य निरूपण का प्रयत्न इसी दृष्टि से करेंगे कि विषय के पारिभाषिक विवेचन से अनभिज्ञ श्रोता भी उसे समझ सकें। शिक्षा के प्राचीन तथा आधुनिक क्षेत्र में भी अब एक मौलिक अन्तर आ गया है। पहिले बालक को किञ्चित् परिमित विषयों में शिक्षा दी जाती थी और अध्यापक उन विषयों का जानकार होता था जिन्हें वह अपने छात्रों को घोल कर पिला दे जैसे किसी घड़े में कोई तरल वस्तु डाल दी जाती है। किन्तु आजकल अध्यापक के लिए विषय से भिज्ञता के अतिरिक्त छात्र की अवस्थानुसार

मनोवैज्ञानिक जानकारी सर्वोपरि आवश्यक हो गयी है। अब छात्र कोई ऐसा पदार्थ नहीं जिसे जिस रंग मे चाहा जाय रंग लिया जाय जैसे कुम्हार गीली मिट्टी को ढाल देता है। आधुनिक अर्थ मे शिक्षा का कार्य एक उगते हुए पौधे को धूप, पानी, हवा, खाद, आदि दी जानेवाली प्रक्रिया से अपेक्षाकृत अधिक समता रखता है। जिस प्रकार पौधे की विकास शक्ति बीज मे निहित होती है उसी प्रकार बालक की भी योग्यता, प्रवृत्तियाँ आदि अधिकाश म जन्मजात होती है। अध्यापक का तो एकमात्र लक्ष्य यह होता है कि अपने सरक्षण मे बालक के शरीर, मस्तिष्क तथा उसकी भावनाओ आदि को सर्वांगीण रूप से विकसित होने की व्यवस्था करे। अत बालक की रुचि के अनुकूल खेल तथा सक्रियता को प्रधानता दी जाती है और कहा जाता है कि ऐसी परिस्थितियो मे वह ज्ञेय विषयो को सरलतापूर्वक हृदयगम कर लेता है जो मनोवैज्ञानिक सत्य भी है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य बालक की आन्तरिक शक्तियो के उभार एव परिष्कार होता है। मानव जाति ने ही इसी उभार तथा विकास की पद्धति से कुछ बातों को छोडते और कुछ को ग्रहण करते हुए उन्नति की है। सम्भवत इसी दृष्टि से शिक्षा-शास्त्रियो ने कहा है कि विद्योपार्जन के उपरान्त जो कुछ भी मनुष्य के मन, मस्तिष्क तथा आचरण मे रह जाय, वही शिक्षा है।

शिक्षा-शास्त्रियों मे मतभेद

परन्तु समाज की बनावट मे देशकाल के अनुसार अन्तर होता ही है और इसी से शिक्षा के दृष्टिकोण, विषय तथा प्रणाली मे भी भेद उत्पन्न हो जाता है। कठिनाई यह है कि यह भेद विस्तार म ही नही प्रत्युत मूल सिद्धातो मे भी आ जाता है। शिक्षा-शास्त्रियो द्वारा शिक्षा के क्षेत्र के प्रति विस्तृत होने के अतिरिक्त शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य बताये जाने का एक यह भी कारण है। कुछ उदाहरण सुनिये। कोई शिक्षा का लक्ष्य सुखी जीवन मानता है तो कोई समाजोपयोगिता, कोई चरित्रगठन तो कोई व्यक्ति की परिपक्वता, आदि। सुखी जीवन का लक्ष्य बना लेने पर शिक्षा का उद्देश्य अवश्यम्भावी रूप से परिस्थिति की अनुकूलता की प्राप्ति हो जाती है। किन्तु ये लक्षण तो पशुओ मे भी होते हैं। उसकी विशेषता स्वार्थ-चातुर्य ही नही, नैतिकता भी है। इसीलिए हरबर्ट स्पेन्सर ने शिक्षा की विस्तृत व्याख्या देते हुए उसके उद्देश्यो म जीवन को प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से सुरक्षित रखने की क्रियाओ के अतिरिक्त सन्तति विकास, समाज-रक्षा तथा अवकाश-काल के निमित्त साहित्य, कला, आदि के सेवन का भी समावेश कर लिया है। परन्तु इसमे साहित्य को गौण स्थान मिला, धर्म को

कोई नही और इसीलिये स्पेन्सर द्वारा प्रतिपादित शिक्षाक्रम भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उचित नहीं ठहरता। इसी प्रकार चरित्र गठन को यदि शिक्षा का लक्ष्य मान लिया जाय तो उसका सम्बन्ध सम्पूर्ण जीवन से नही स्थापित होता। निःसशय मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति ही सब कुछ नही। चरित्र-गठन अवश्य सर्वोपरि है किन्तु चरित्र एक अस्पष्ट शब्द है जिस पर नीति एव धर्मशास्त्र भी एकमत नही। यह देश-काल सापेक्ष भी है। इसके अतिरिक्त इस धारणा मे रुचि वैचित्र्य को अवकाश कहाँ ? विशेष व्यक्तित्व के गठन पर भी कुछ लोग बल देते हैं। अर्थात यदि किसी की गायन मे प्रवृत्ति है तो उसे उसी मे दीक्षित किया जाय। परन्तु इसमे प्रत्येक छात्र के हेतु पृथक् प्रबन्ध की कठिनाई आ सकती है और इससे मनुष्य का एकदेशिक विकास ही हो सकता है। साथ ही इसमे स्वच्छन्दता तथा मनमानेपन को आवश्यकता से अधिक विकास मिल जायगा और फलस्वरूप अन्तत स्थापित स्वार्थों के कुछ इने गिने लोग सम्पूर्ण समाज पर शासन करने लगेंगे।

इसके विपरीत साम्यवाद का सिद्धात शिक्षा के विषय म ग्रहण किया गया है। यह व्यक्तिवाद का प्रतिकार सा ही है और इसमे प्राय व्यक्ति को समाज के हित मे अपना अस्तित्व खो देना पड़ता है। तदनुसार समाज का चिन्तन, कल्याण तथा उसके प्रति सर्वस्व त्याग ही व्यक्ति का उद्देश्य बन जाता है और पाठ्यक्रम मे श्रम प्रतिष्ठा, जिसके आवश्यक अग हैं साम्य तथा स्वावलम्बन, समाजोपयोगिता तथा क्रियात्मक ज्ञान, को प्रधानता होती है। इसम सन्देह नही कि इसमें विश्वबन्धुत्व की भावना का आभास मिलता है किन्तु प्रश्न यह है कि कौन यह निश्चय करेगा कि समाज का हित किसमे है। यह बहुत बडा प्रश्न है। विकासवाद के सिद्धान्त का आधार भी शिक्षा के उद्देश्यो के निर्धारण मे लिया जाता है। इसके अनुसार शिक्षा का कार्य बालको के लिए ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करना है जिसमें वे स्वाभाविक रूप से अपना विकास कर सकें, उनके विकास में किसी बाह्य सत्ता का हस्तक्षेप न हो। इसमे जीवन को भौतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो के अनुसार सतत् परिवर्तनशील माना गया है। इसके प्रवर्तको का कथन है कि शिक्षा शास्त्री भविष्य म रहने के आदी हो गये हैं और बालक को भी वर्तमान म नही रहने देते। इसके अनुसार शिक्षा जीवन की तैयारी नही है वरन् शिक्षा ही जीवन है और इस प्रकार की शिक्षा से आत्मविश्वास का उदय होता है तथा सहायता एव दमन द्वारा उसका नाश। यह परिभाषा भी स्वावलम्बन की दृष्टि से अवश्य उपयोगी है क्योंकि इसका

ध्येय मुख्यत व्यावहारिक ज्ञान की वृद्धि है किन्तु यह ध्येय भी संकुचित है। इसम इन्द्रिय, मन, बुद्धि के परे किसी का अस्तित्व नही माना गया है, आध्यात्मिकता का भी नही।

सामंजस्यपूर्ण विकास

शिक्षा के उपयुक्त कुछ प्रमुख उद्देश्य यद्यपि हम एक निर्णीत सम्मति नही बनाने देते, तथापि उनसे शिक्षा के सम्भव आदर्श का विस्तृत पर्यालोचन मिल जाता है। सौभाग्य ■ इनके प्रगट विरोधाभास में वास्तविकता की मात्रा कम है। उक्त उद्देश्य यथार्थ म एक दूसरे के पूरक हैं और मूल म कुछ सामान्य बातें अकाट्य ठहरती हैं। इस प्रकार बालक को कोई नयी वस्तु बाहर से नही दी जाती। जो वह वंशानुक्रम स प्राप्त करता है उसी को विकसित करना, उसके सर्वोच्च गुणा को बहिर्मुख बनाना तथा उसके प्रत्येक अग को सम्पूर्ण मनुष्य को प्रस्फुटित एव परिमार्जित करना ही शिक्षा का लक्ष्य रह जाता है। साथ ही मनुष्य के विचार, भावना तथा क्रिया की जो शक्तियाँ हैं उनका विकास अत्यन्त सामजस्यपूर्ण ढग से होना आवश्यक है। मन और हृदय की उचित शिक्षा न मिलने से छात्र अकारण ही क्रोध कर सकता है और अनुचित रूप से स्नेह अथवा घृणा से विह्वल हो सकता है। इसी प्रकार केवल मस्तिष्क की शिक्षा पाकर मनुष्य पडित बन सकता है किन्तु पूर्णता नही प्राप्त कर सकता। शिक्षा की दृष्टि से ज्ञान का अतिरेक शुष्क पाण्डित्य के रूप मे न हो जाय और भावुकता म पथभ्रष्ट मनुष्य अविश्वासी वाह्यचारी अथवा अनाचारी न बन यह उसके शरीर मस्तिष्क एव मन म सामजस्यपूर्ण विकास के लिए नितान्त आवश्यक है। ऐसा न होने से हम सबको झूठ स और उचित को अनुचित से पृथक नही कर पाते और अपनी अपनी अर्जित धारणाओं के फल स्वरूप एक ही विषय म विभिन्न सम्मतियाँ रखने लगते हैं और अपने विश्वास मे अडिग एव असहिष्णु बन जाते हैं। शिक्षा का उद्देश्य ऐसी मानसिक गुत्थियो का निवारण तथा अवरोध है। इसी प्रकार व्यक्ति और समष्टि का विरोध भी शिक्षा के उद्देश्यो मे विशृङ्खलता उत्पन्न करने म सहायक होता है। व्यक्ति में स्वतन्त्र विचार तथा अपनी आस्था के प्रति साहस का होना आवश्यक है और इसके परिणामस्वरूप समाज से विरोध की नही वरन् मेल की स्थिति आनी चाहिए। वास्तव मे दोनो मे अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। शान्ति एव व्यवस्था के निमित्त नियन्त्रण आवश्यक है और सयम तथा नियमन सभ्यता के लक्षण हैं। परन्तु मनुष्य म अपना निर्णय स्वय लेने की शक्ति होनी चाहिए उसे यन्त्रवत

समाज के आधीन नही हो जाना चाहिए। अत- इस सामजस्य के लिए अपने स्वाभाव मे परिवर्तन आना आवश्यक है जो शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य है।

मनुष्य मे शिक्षा द्वारा आत्मविश्वास के अतिरिक्त अपनी शक्तियो तथा अपनी दुर्बलताओ एव अपने कर्तव्यो को समझने की भी क्षमता होनी चाहिए। इसी से सस्कृत का वचन है विद्याददाति विनयम्। यह बात चरित्र से सम्बन्ध रखती है जिसके अभाव म सारा ज्ञान थोथा पड जाता है। किन्तु सदाचार तथा धार्मिकता से बहुधा कट्टरपन आबद्ध हो जाता है जो उचित नही और इस दृष्टि मे अनेक धर्मों एव वादो के मूल एव समान सिद्धान्तो को ही ग्रहण करना आज-कल के अखिल विश्व एक कुटुम्बवाली विचारधारा क अनुकूल पडता है। अत शिक्षा की प्रक्रिया का ध्येय ऐसे सद्‌भाव के निर्माणार्थ उचित आचरण की सच्ची आवृत्ति होनी चाहिए जिससे आदतें बनती हैं और मनुष्य ऐसी अवस्था को प्राप्त होता है जब उसे अपने तथा ससार के स्वार्थों मे कोई भेद न दिखाई पडे। ऐसी स्थिति को शिक्षाविदो ने आत्म-साक्षात्कार की सज्ञा दी है, जब मनुष्य द्वन्द्व मुक्त होकर कर्तव्यपरायण बन सके। इसी दृष्टि से आजकल प्राय शिक्षा का लक्ष्य उत्तम नागरिको की सृष्टि माना जाता है। इसका अभि-प्राय यही है कि शिक्षा द्वारा व्यक्ति अपने अधिकारो एव कर्तव्यो के विषय मे उचित धारणा बना सके। वास्तव म सुशिक्षित व्यक्ति मे अपने प्राप्य एव उत्तरदायित्व का सन्तुलित ज्ञान होता ही है। यह तभी हो सकता है जब उसमे सहिष्णुता हो, अर्थात वह दूसरो की सम्मतियो और विचारो का आदर कर सके और दूसरो को अपने से विपरीत होने का अधिकार दे सके और स्वय उसकी स्थिति मे ले जाकर विचार कर सके। इस प्रकार 'सत्य शिव' की प्राप्ति के पश्चात् "सुन्दरम्" की भावना का विकास भी आवश्यक है जब व्यक्ति वस्तुओ तथा क्रियाओ में उचित अनुपात का दर्शन कर सके और अपने अवकाश काल के हेतु कुछ मनोरजक, लाभप्रद कार्य चुन ले जो उसके जीवनपर्यन्त सहचर रहें। साराश मे शिक्षा का उद्देश्य सामजस्यपूर्ण विकास द्वारा पूर्ण मनुष्य का सृजन है जिससे सशम एव राग-द्वेष का लेशमात्र दोप न रहे, जिसके सम्मुख उलझन अथवा धर्मसकट उपस्थित न हो, जो अपने ज्ञान की आभा द्वारा ससार की बाह्य अनेकरूपता म भी सरसता का अनुभव करे और अहकार तथा द्वन्द्वो से मुक्त दृढतापूर्वक कर्त्तव्यरत हो सके।•

डा० आर्थर ई० मार्गन

गाँवों के लिए शिक्षा

[जनवरी १९७२ के अंक में हमने आचार्य राममूर्तिजी का एक लेख छापा है—'ग्रामदान के बाद गाँवों के लिए शिक्षण-योजना'। इस लेख मे उन्होने एक ऐसी शिक्षा-योजना का चित्र प्रस्तुत किया है जो आज के हमारे गाँवों के हित मे होगी। आज जो शिक्षा चल रही है उससे इस लोकतंत्रीय समाजवादी देश के गाँवों की आकाक्षाएँ आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो रही हैं। पूरी होगी भी नहीं। इसीलिए गाधीजी ने बुनियादी शिक्षा की योजना दी थी। हम इस अंक मे डाक्टर आर्थर ई० मार्गन द्वारा प्रस्तुत गाँवों के लिए शिक्षण-योजना का एक दूसरा चित्र दे रहे हैं। डाक्टर राधाकृष्णन विश्वविद्यालय कमीशन के सदस्य होकर आये थे। बुनियादी शिक्षा मे उनकी गहरी दिलचस्पी हुई और भारत की आकाक्षाओ आवश्यकताओ के सदर्भ मे उसका अध्ययन करके उन्होंने एक लेख लिखा—'ग्रामीण भारत के सदर्भ मे उच्चशिक्षा' (हायर एजुकेशन इन रिलेशन टु रूरल इंडिया) जिसे पुस्तक के रूप मे हिन्दुस्तानी तालीम संघ ने छापा। शिक्षा-योजना का चित्र उसी पुस्तक से प्रस्तुत किया गया है और जब हम ग्रामदान के बाद गाव मे शिक्षण की समग्र योजना की बात सोच रहे हैं, तब हमे इस चित्र को अधिक निकट से देखना और परखना चाहिए —स०]

डा० श्रार्थर मार्गन एक आदर्श गाँव का चित्र प्रस्तुत करते हुए लिखते है—"मेरी कल्पना के गाँव म बिजली होगी। गाँव के उद्योग धन्धे यथासम्भव शक्ति-सचालित होंगे। यातायात के सभी साधन होंगे पक्की सडके होगी जो एक गाँव को दूसरे गाव स और गाँवो को नगरो से मिला देंगी जिससे गाँव ससार भर से अलग न रह। गाव म डाक-तार रेडियो की सुविधाएँ होगी। गाँव को साफ पानी देन और गन्दे पानी के निकास का प्रबन्ध होगा जिससे मलेरिया, हैजा और मियादी बुखार आदि पेट को अनेक बीमारियाँ खतम हो जायँगी। गाँव म स्कूल, अस्पताल, पुस्तकालय और मनोरजन के अन्य साधन उपलब्ध होंगे, और इन भौतिक सुख-सुविधाओ के साथ अवकाश के उचित प्रयोग का प्रबन्ध होगा जिसस गाँवो का सास्कृतिक विकास हो और उनम मानवीय मूल्यो के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हो। औद्योगीकरण का एक प्रभाव यह भी होता है कि मनुष्य भाईचारा, त्याग, ईमानदारी और सहकारिता आदि उन गुणो को भूलने लगता है जिनका विकास घर और कुटुम्ब के स्वावलम्बी वातावरण मे हुआ था। आर्थिक सम्पन्नता के साथ इन मानवीय गुणो की रक्षा हो तभी इस आदर्श गाँव का चित्र पूरा होता है।"

गाँव के इस चित्र का निर्माण बेसिक शिक्षा का मुख्य प्रयोजन होना चाहिए। भारत के साढे पाँच लाख गाँवो म नवजीवन का सचार कर उन्हे मनुष्यो के रहने योग्य अधिक अच्छा स्थान बना देना ही गाधीजी का स्वप्न था। ग्रामोद्योगमूलक बेसिक शिक्षा इस स्वप्न को तभी पूरा कर सकती है जब उद्योगो की उन्नत आधुनिक विधियाँ शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर उसका माध्यम बनें जिसस गाँवो का उत्पादन बढे। देश की औद्योगिक नीति और उसकी समस्याओ और आवश्यकताओ को ध्यान म रखते हुए डाक्टर मार्गन ने 'हायर एजुकेशन इन रिलेशन टु रूरल इडिया' नामक अपनी पुस्तक म उत्तर और उच्च बुनियादी शिक्षा (विश्वविद्यालयीय-स्तर की शिक्षा) का एक भरा-पूरा चित्र उपस्थित किया है जिसका कार्यान्वयन काफी हद तक इस स्तर की शिक्षा की समस्याओ को सुलझा सकेगा। वे लिखते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो उत्तर बुनियादी विद्यालय आवासिक (रेजिडेंशल) सस्थाएँ हो। इनके विद्यार्थी विद्यालय से सलग्न छात्रावासो मे रह। इनका रूप स्कूल गाँव का हो। स्कूल का कार्यक्रम ऐसा हो जिससे स्कूल समुदाय का पालन-पोषण और रक्षण हो जाय। उत्तर बुनियादी के बाद विद्यार्थी म यह योग्यता आ जाय कि वह या तो समाज का उपयोगी प्राणी बनकर किसी धन्धे म लग सके अथवा उच्च

शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सके—उस विश्वविद्यालय में जिसकी रूपरेखा आगे दी है, आज के विश्वविद्यालय में नहीं। वे लिखते हैं "१५० विद्यार्थियों के एक विद्यालय के पास चालीस से साठ एकड़ भूमि हो। इसमें १०.१५ एकड़ विद्यालय के भवन और छात्रावास की इमारतों, स्कूल की उद्योग-कक्षाओं और खेल-कूद के मैदान के लिए रख लिया जाय। शेष में खेत और चरागाह बनें और बाग-बगीचे लगाये जायें। एक सुनियोजित ग्राम की भाँति स्कूल की सड़कों, भवनों और खेती आदि का नियोजन हो जिससे विद्यार्थियों के लिए अपने गाँवों के पुनर्निर्माण के लिए ये स्कूल आदर्श का काम दें। १५०-१६० विद्यार्थियों की इकाई के विद्यालय बड़े-बड़े विद्यालयों से अच्छे रहेंगे। यथासम्भव इन विद्यालयों के भवनों को विद्यार्थी ही बनावें। स्कूल की जिन्दगी एक अच्छे गाँववाले की जिन्दगी की तरह हो। विद्यार्थी आधा समय पढ़ने में बितायें और आधे समय में खेती, मकान बनाना, बढ़ईगीरी, कताई-बुनाई, सफाई और दूसरे अन्य आवश्यक घरेलू कार्य करें। प्रत्येक विद्यालय में छोटे पैमाने के एक या एक से अधिक आधुनिक उद्योग हो जो बिक्री का सामान बनायें। विद्यालय के कुछ सामान्य कामों को अध्यापक और विद्यार्थी सब साथ करें जैसे सफाई, बागबानी, भोजन बनाना, बच्चों की देख-रेख, घरेलू औजारों की देखभाल आदि। अन्तिम वर्षों में छात्र-छात्राएँ अपनी रुचि के अनुसार उन धन्धों में विशेष दक्षता प्राप्त करें जिन्हें वे अपने भावी जीवन के लिए चुनना चाहते हैं। चूँकि अधिकांश विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा के बाद जीविकोपार्जन में लग जायेंगे अतः उन्हें किसी शिल्प अथवा व्यवसाय में विशेष दक्षता अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस माध्यमिक शिक्षा के लिए निश्चित अवधि न हो। सम्भव है कुछ विद्यार्थी दो-तीन वर्ष में ही किसी उद्योग को करने योग्य बन जायें पर कुछ अधिक समय ले सकते है।"

"अध्ययन के विषयों का सम्बन्ध यथासम्भव प्रायोगिक कार्यों से ही हो और अध्ययन के इन ढंगों से विद्यार्थियों को सन्तुलित शिक्षा दी जाय। छात्रों को अपने प्राकृतिक वातावरण का और प्रकृति के नियमों का पूरा ज्ञान हो। इस प्राकृतिक वातावरण से सम्बन्धित भूगोल, खगोल, भूतत्व विद्या और जीवविज्ञान तथा वनस्पतिशास्त्र, का उन्हें पूर्ण ज्ञान दिया जाय। प्रकृति के नियमों को समझने के लिए उन्हें प्रारम्भिक भौतिकशास्त्र और रसायनशास्त्र का ज्ञान भी दिया जाय। गणित इन समस्त विज्ञानों की जननी है अतः

व्यावहारिक गणित के अतिरिक्त उन्हें गणित का इतना ज्ञान हो कि वे विज्ञान के मूलभूत नियमो को समझ सके। उन्हे अपने चारो ओर के समाज को समझने के लिए इतिहास और नागरिक शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान भी आवश्यक है। शारीरिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य हो और इसके लिए प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त हों।"

"इस स्तर की शिक्षा भी यथासम्भव प्रायोगिक कार्य और अनुभव से सम्बन्धित होगी, पर इस स्तर पर समवाय के आग्रह को छोड़कर विषयो की औपचारिक शिक्षा देनी चाहिए जिससे विद्यार्थियो की तर्कना और विचार-शक्ति भी इतनी विकसित हो जाय कि वे सूक्ष्म शास्त्रीय नियमो को आत्मसात् कर सकें।'

"इस स्तर की शिक्षा का नियोजन अत्यन्त सावधानी से करना चाहिए जिससे ज्ञान-वृद्धि के साथ विद्यार्थी उन गुणो और आदतो को भी सीखें जिनसे व्यक्ति का चरित्र निर्माण होता है और राष्ट्र की शक्ति बढ़ती है। अपने और दूसरो के प्रति ईमानदारी, सहानुभूति, सहकारिता, त्याग आदि गुणो और आदतो का यही विकास किया जाय। यही जीवन के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण बने जिससे विद्यार्थियो म स्वतत्र चिन्तन और विवेकपूर्ण आलोचना करने की आदत पडे ताकि वे परम्परागत रूढियो और अधविश्वासो से बच के एक नये भारत का निर्माण कर सके।'

उत्तर बुनियादी विद्यालय जहाँ तक हो सके स्वावलम्बी हो। ससार अच्छी खेती के रहस्यो को बडी जल्दी सीखता जा रहा है। उत्तर बुनियादी स्कूल को इन सारे रहस्यो का ज्ञान हो और वे उनका सक्रिय प्रयोग करें। खेती मे उन्नत विधियो का ही प्रयोग हो। जब तक उन्नत कृषि इस शिक्षा का माध्यम नही बनती, गाँवो की तरक्की सम्भव न होगी। परन्तु केवल कृषि से स्वावलम्बन सम्भव न होगा। इनके लिए आवश्यक होगा कि प्रत्येक उत्तर बुनियादी स्कूल के साथ छोटे पैमाने के सुनियोजित और सुव्यवस्थित आधुनिक उद्योग चलें और इस स्तर की शिक्षा का माध्यम बनें। इन उद्योगो मे दो-तीन घटे का प्रशिक्षण ऐसे कुशल कार्यकर्ता तैयार कर सकेगा जो आधुनिक उद्योग की जटिल क्रियाओ को कर सकग और गाँवो म चलनेवाले लघु उद्योगो का काम सम्भाल सकेंगे। इन विद्यार्थियो को एक स्वस्थ परम्परा का निर्माण भी करना है। अब तक उद्योग मुनाफे के लिए चलाये जाते रहे है। उत्तर बुनियादी माध्यमिक सस्थाओ के प्रशिक्षित नवयुवक व्यक्तिगत लाभ के लिए

काम नही करेंगे बल्कि उद्योगो से जो लाभ होगा उसे उद्योगो के अधिक प्रसार मे, और नये स्कूलों के लिए नये उद्योगों के प्रारम्भ करने में, नयी-नयी औद्योगिक विधियों के अन्वेषण मे, चीजों की कीमत कम करने मे तथा श्रमिकों के जीवन स्तर बढ़ाने में, उपयोग करेंगे। सहकारिता और त्याग का यह जीवन उत्तर बुनियादी विद्यालयों की देन होगी जिससे संकुचित मनोवृत्ति मिटेगी।"*

औद्योगीकरण को बेसिक शिक्षा की यह बहुत बड़ी देन होगी। अहिंसा और अशोषण के जीवन-दर्शन पर आधारित बेसिक शिक्षा का जब औद्योगीकरण से समन्वय होगा तभी आज के यंत्र-युग की समस्याओं का समाधान होगा। समाधान का यह कार्य उत्तर बुनियादी स्तर से प्रारम्भ हो जाय और उत्तर बुनियादी का पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया जाय कि औद्योगीकरण और सन्तुलित सर्वांगीण शिक्षा एक दूसरे की सहायता करे और एक ऐसा सामाजिक-आर्थिक ढाँचा प्रस्तुत करने मे सहायक हो सके जिसमें आधुनिक औद्योगिक जगत के सर्वश्रेष्ठ के साथ भारतीय संस्कृति के सर्वश्रेष्ठ का समन्वय हो। इस दृष्टि से उत्तर बुनियादी स्तर पर जो उद्योग चल रहे हैं उनमे अधिकाधिक उन्नत आधुनिक प्रणालियों का प्रवेश हो—विशेषत. कृषि मे।

उत्तर बुनियादी विद्यालयों के संचालन से यह अनुभव हुआ है कि लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन विद्यालयो मे आधा समय उद्योगों की व्यावहारिक शिक्षा के लिए और आधा समय सामान्य शिक्षा के लिए दिया जाय। डाक्टर मार्गन का विचार है कि अधिक व्यावहारिक यह होगा कि एक हफ्ता काम किया जाय और एक हफ्ता पढ़ाई की जाय। परन्तु अधिक अच्छा यही होगा कि समय की किसी निश्चित अवधि से न बँधकर उद्योग की अपनी अपनी आवश्यकताओं से ही संचालित हुआ जाय।

क—गाँव-कालेज—(विश्वविद्यालय स्तर)

"उत्तर बुनियादी संस्थाओं की प्रगति के लिए और गाँवों अथवा छोटे-छोटे उपनगरों मे लघु पैमाने के आधुनिक उद्योग-धन्धो के संचालन के लिए, उत्तर बुनियादी स्तर की क्षमताओं से अधिक क्षमताओं की आवश्यकता होगी। सबसे पहले तो बुनियादी और उत्तर बुनियादी संस्थाओं के प्रबन्ध के लिए योग्य अध्यापकों और प्रबन्धकों की आवश्यकता पड़ेगी। इनके लिए जिस ज्ञान और कौशल की आवश्यकता होगी उसके लिए बेसिक शिक्षा को उत्तर बुनियादी

*हायर एजुकेशन इन रिलेशन टु रूरल इंडिया, पृष्ठ २० से २३।

स्तर से आगे ले जाने की जरूरत है। आधुनिक उद्योग धन्धों के संचालन और प्रबन्ध के लिए जिस टेकनिकल ज्ञान और कौशल की आवश्यकता पड़ेगी उसे भी उत्तर बुनियादी स्तर तक नहीं दिया जा सकता। नये भारत के गाँवों के पुनर्गठन और नियोजन के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत जिन कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होगी उनके लिए भी उत्तर बुनियादी स्तर से अधिक ज्ञान और क्षमता की आवश्यकता होगी। अत बेसिक शिक्षा पद्धति को उत्तर बुनियादी स्तर से आगे ले जाना आवश्यक है। इस स्तर के कालेजों को हम गाँव कालेज कहेंगे—जिनका स्तर स्नातक के समकक्ष होगा।"

अतः डाक्टर मागन ने उत्तर बुनियादी स्तर के बाद गाँव-कालेजों के नियोजन का सुझाव दिया है, जिनमें उत्तर बुनियादी विद्यालयों में शिक्षा पानेवाले वे विद्यार्थी भरती हों जिन्हें उन व्यवसायों के संचालन और प्रबन्ध के लिए, जिनको उन्होंने अपने जीविकोपार्जन के लिए चुना है, उत्तर बुनियादी से अधिक ज्ञान और कौशल की आवश्यकता है। इनके पाठ्यक्रम और शिक्षाक्रम के विषयों के सम्बन्ध में उनका सुझाव है कि इन संस्थाओं के अध्ययन का क्षेत्र उतना ही व्यापक हो जितनी व्यापक ग्राम जीवन की और औद्योगिक भारत की आवश्यकताएँ हों। गाँव-कालेजों में आधुनिक उद्योग अवश्य हों जो उत्तर बुनियादी स्तर के उद्योगों से अधिक टेकनिकल हों। पंचवर्षीय योजनाओं के सम्पन्न होने पर गाँवों में उन्नत कृषि विधियों और आधुनिक ग्रामोद्योगों के संचालन के लिए, सिंचाई-योजनाओं के प्रबन्ध के लिए, नलकूपों को चलाने के लिए गाँवों की बिजली की मरम्मत के लिए और यातायात, क्रय विक्रय तथा ग्राम शासन आदि विविध ग्राम सेवा कार्यों के लिए, अनेक व्यवसाय चलेंगे। ये गाँव-कालेज उन व्यवसायों की प्रायोगिक शिक्षा के केन्द्र बनें। इन सारे व्यवसायों के वैज्ञानिक और व्यावहारिक शिक्षण का उत्तम प्रबन्ध हो। इन गाँव कालेजों में आधुनिक उद्योग अवश्य हों जो उत्तर बुनियादी स्तर से अधिक टेकनिकल हों।

उत्तर बुनियादी संस्थाओं की भाँति इन संस्थाओं में प्रायोगिक कार्य और सामान्य शिक्षा का समन्वय हो जिससे इन संस्थाओं से निकले हुए विद्यार्थी कुशल श्रमिक और कार्यकर्ता बनने के साथ-साथ सुसंस्कृत शिक्षित व्यक्ति भी बनें और ग्राम-जीवन को सम्पन्न और उन्नत बनावें। *

---

*हायर एजुकेशन इन रिलेशन टु रूरल इंडिया पृष्ठ—२६-२७

ये गांव-कालेज गांव की पूरी जिन्दगी के केन्द्र होंगे। इन्हीं कालेजों से संलग्न अस्पताल, पुस्तकालय, वाचनालय, प्रौढ़ कक्षाएँ, बीज-गोदाम, रासायनिक खाद और आधुनिक यन्त्रों के गृह हों। ये ही बहुउद्देशीय सहकारी समितियाँ हों जो गाँववालों की जिन्दगी की रोज की जरूरतें पूरी करें। ये गांव-कालेज अपनी जीवन-पद्धति से गाँवों के सामने नयी जिन्दगी का व्यावहारिक आदर्श उपस्थित करें।

(ख) ग्राम-विश्वविद्यालय (रूरल इन्स्टीट्यूट)

गाँव-कालेजों में शिक्षा पानेवाले अधिकांश विद्यार्थी जीविकोपार्जन में लग जायँगे पर कुछ ऐसे भी होंगे जिनकी रुचि अन्वेषण की होगी अथवा जो आगे पढ़ना चाहेंगे। ग्रामोद्योगों की उन्नति, लघु उद्योगों का प्रचलन, गाँवों की प्रगति और बुनियादी शिक्षा के विकास का हर कदम अधिक सक्षम नेतृत्व और कुशल कार्यकर्ताओं की माँग करेगा। इस माँग की पूर्ति के लिए बुनियादी शिक्षा को विश्वविद्यालय स्तर तक ले जाना आवश्यक है क्योंकि आज के शहरी विश्वविद्यालयों से इस नये राष्ट्र की नयी आवश्यकताओं की, विशेषतः ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं, की पूर्ति नहीं हो सकती। 'वर्तमान शहरी विश्वविद्यालयों में सुधार करने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए तो जड़मूल से क्रान्ति की आवश्यकता है—एक नये आरम्भ की।'

डा० आर्थर ई० मार्गन लिखते हैं—"भारत के वर्तमान विश्वविद्यालयों की शिक्षा राष्ट्रीय जीवन की मुख्यधारा से बिलकुल पृथक् है। इन विश्वविद्यालयों का ढाँचा और संस्कृति विदेशी है। देश की धरती में उनकी जड़ें नहीं हैं। यह तो बहुत बुरा नहीं है क्योंकि मानव कुटुम्ब मूलतः एक है और विभिन्न संस्कृतियों का आदान-प्रदान और समन्वय मानव की सामाजिक प्रगति का एक प्रमुख साधन है, परन्तु विश्वविद्यालयों की शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों को भारत की तीन-चौथाई से भी अधिक जनता से, जो गाँवों में रहती है, विमुख कर देना राष्ट्र के हित में नहीं है। विश्वविद्यालयों में शिक्षा पानेवाले बीस व्यक्तियों में से एक भी गाँवों में वापस नहीं जाते क्योंकि यह शिक्षा उन्हें ग्राम-जीवन व्यतीत करने के लिए सर्वथा अयोग्य बना देती है। अतः भारत को ऐसी शिक्षा-नीति अपनानी है, जिसकी जड़ें यहाँ की धरती में हों और जो देश की ८५ प्रतिशत जनसंख्या के जीवन के अनुकूल हो जिससे उसकी भलाई हो।"*

---

* हायर एजुकेशन इन रिलेशन टु रूरल इंडिया, पृष्ठ १०।

बेसिक शिक्षा का ढाँचा विश्वविद्यालय स्तर पर कैसा होगा अथवा औद्योगिक समाजवादी समुदाय के अनुरूप होने के लिए उसे कैसा होना चाहिए, इस विषय पर प्रकाश डालते हुए डाक्टर मार्गन लिखते है—"उद्योग के क्षेत्र मे, इन ग्राम-विश्वविद्यालयो के विद्यार्थी औजारो की डिजाइनो और पद्धतियों मे सुधार करने के लिए अध्ययन करेंगे। वे इस विषय का अध्ययन करेंगे कि कैसे बहुत-से छोटे-छोटे लघु उद्योग मिलकर क्रय विक्रय, धन-संग्रह और अन्वेषण आदि का प्रबन्ध करें। शिक्षा के क्षेत्र मे ये विश्वविद्यालय उत्तर बुनियादी स्तर और गाँव-कालेजो के लिए शिक्षक और व्यवस्थापक तैयार करेंगे। कृषि के क्षेत्र में, ये उत्पादन, क्रय-विक्रय, कृषि, सहकारिता आदि विषयो मे दक्षता और कृषि प्रधान गाँवो के कार्य में तथा चकबन्दी आदि ग्रामीण जीवन की दूसरी महत्त्वपूर्ण योजनाओं के संचालन में कुशलता प्राप्त करेंगे।" (पृष्ठ २८)

"गाँवो में स्थित इन विश्वविद्यालयो का जीवन गाँववालो की तरह ही सरल होगा। विश्वविद्यालय के सभी विद्यार्थी और शिक्षक, किन्ही उत्पादक उद्योगों में काम करके कुछ उपार्जन करेंगे। संस्था के सभी काम—स्कूल, छात्रावास और दफ्तर वे—शिक्षक और विद्यार्थी ही करेंगे। सरलता और स्वावलम्बन की जिन्दगी ग्राम-विश्वविद्यालय के पूरे जीवन को निर्देशित करेगी" (पृष्ठ ७९)।

दूसरे शब्दों में स्वावलम्बन, अशोषण, उत्पादकता आदि बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त ग्राम-विश्वविद्यालय की सारी शिक्षा-नीति को निर्देशित करेंगे। ग्राम-समस्याओं के निराकरण के लिए ही सारे विश्वविद्यालय की शिक्षा होगी और सैद्धान्तिक ज्ञान प्रयोग से सम्बन्धित रहेगा। "यह सही है कि भाषा, गणित, भौतिकशास्त्र, रसायनशास्त्र, भू-विद्या, जीवशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शरीरशास्त्र आदि कुछ ऐसे बुनियादी विषय हैं, जिन्हे शिक्षा के किसी भी उच्च कार्यक्रम में रखना होगा, परन्तु इन विषयों की शिक्षा को भी इस प्रकार रूपान्तरित कर लेना होगा जिससे उनका व्यावहारिक रूप निखर आये और हम उन्हे वैसा ही बना ले जैसा उनका प्रयोग करना है" (पृष्ठ ३७)। इस प्रकार का रूपान्तर किये बिना ये विषय औद्योगिक शिक्षा के उपयुक्त नही हो सकेंगे। इस दृष्टि से हमे अपने ग्राम-संस्थानो के पाठ्यक्रम मे काफी सुधार करना होगा और नया साहित्य तैयार करना होगा।

भारत के गाँवो की प्रगति और और आधुनिकीकरण के फलस्वरूप ग्रामो

मे जिन नये व्यवसायो की जरूरत पडगी और जिनका सचालन इन ग्राम विश्व-विद्यालयो का काम होगा, उनकी एक लम्बी सूची डाक्टर मार्गन ने दी है। इनम कुछ व्यवसाय नये हैं और अनेक एस हैं जिनका उचित प्रशिक्षण वतमान विश्वविद्यालयो म नहीं हो रहा है। उन्होने इन सस्थाओ के लिए 'अन्वेषण विषयो की एक सूची भी दी है। ये ही वे व्यवसाय और विषय हैं जिन्हें उच्च स्तर की बुनियादी शिक्षा का पाठ्य विषय होना चाहिए और इन्हे ही आधार बनाकर पाठ्यक्रम का नियोजन करना चाहिए। तभी बेसिक शिक्षा देश के औद्योगिक विकास म सहायक होगी।●

मिलापचन्द्र दुवे

यंत्र-युग और बुनियादी शिक्षा

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है, किन्तु वैज्ञानिक युग की प्रगति के साथ यह भी यन्त्रीकरण की ओर बढ़ता जा रहा है। हमारी पचवर्षीय योजनाएँ हमारे उद्योग धन्धों के स्वरूपों को निरन्तर बदल रही हैं। हमारे कुटीर उद्योग और ग्रामोद्योग भी इस परिवर्तन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते हैं। इन सबका प्रभाव हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था पर भी पड़ना स्वाभाविक ही है।

शिक्षा को, इस प्रगतिशील ढाँचे का ध्यान रखते हुए, नागरिकों को तैयार करने का कार्य करना है। शिक्षा इस सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन से उदासीन नहीं रह सकती है। वास्तव में शिक्षालयों में ही यह सामाजिक परिवर्तन प्रतिबिम्बित होना चाहिए और उसको नव-समाज-रचना के लिए युवकों तथा बालकों का मार्गदर्शन करना चाहिए। अर्थनीति में परिवर्तन के साथ शिक्षा क्रम, शिक्षण-पद्धति तथा व्यवस्था में भी अनुकूल परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है।

यही कारण है कि उत्पादक उद्योग को बुनियादी शिक्षा-योजना में शिक्षा का मूलाधार बना कर प्रमुख स्थान दिया गया है। प्रारम्भ में

इसके विषय में बड़ा ही मतभेद था, किन्तु क्रिया-केन्द्रित शिक्षा तथा वास्तविकता के माध्यम से शिक्षा, आदि मान्य शिक्षा-सिद्धान्तों के आधार पर इसको शिक्षण कला के रूप में मान्यता प्राप्त होने लगी है। जहाँ तक उद्योग का प्रश्न है लोग अब भी शंका करते हैं कि देश यन्त्रीकरण की ओर बढ़ रहा है, फिर इन गृह-उद्योग और ग्रामोद्योगों का इस पुराने ढंग में क्या स्थान रहेगा। यह एक भ्रम है कि बुनियादी शिक्षा यन्त्रों के उपयोग का विरोध करती है। कुटीर उद्योग तथा ग्रामोद्योग में काम में आनेवाले सामान्य-से-सामान्य साधन भी किसी-न-किसी प्रकार की यन्त्र की ही श्रेणी में आते हैं। इस तरह तकली भी यन्त्र है और चरखा तो उससे भी बड़ा यन्त्र है। बड़े-से-बड़े यन्त्रों के उपयोग में भी इस शिक्षा-नीति को आपत्ति नहीं है, किन्तु ऐसे कितने यन्त्र हैं जो इस प्रारम्भिक स्थिति में अमल्प बालकों को उनकी शिक्षा के साधन के रूप में दिये जा सकते हैं।

दूसरा प्रश्न यह भी है कि क्या यन्त्र सामान्य जनसमूह के लिए हितकर होंगे या अहितकर? क्या इस प्रकार के यन्त्रों के उपयोग से बेकार लोगों की संख्या तो नहीं बढ़ती जायगी? भारत की आर्थिक समस्या अन्य देशों से भिन्न है। यहाँ श्रम की कमी नहीं है, कमी है काम की। योजना तो ऐसी चाहिए जिसमें अधिक-से-अधिक हाथों को काम मिल सके। खेती अवश्य इस देश के बहुसंख्यक लोगों का राष्ट्रीय उद्योग है, किन्तु यह ऋतुकालीन व्यवसाय है। अस्तु शेष अवकाश के लिए कुटीर उद्योग का देश की अर्थ-नीति में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गांधीजी ने स्वयं कहा है—मैं उस मशीन का स्वागत करता हूँ जो झोपड़ियों में रहनेवाले करोड़ों मनुष्यों का बोझ हलका कर दे। यदि हमारे गाँवों में बिजली आ जाय और ग्रामवासी अपने औजारों को बिजली की सहायता से चलायें तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। मुझे इसमें भी कोई आपत्ति नहीं होगी कि मेरे देश की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ तीन करोड़ के स्थान पर तीस हजार श्रमिकों द्वारा ही तैयार कर दी जायँ परन्तु यह तीन करोड़ व्यक्ति आलसी तथा कार्यविहीन नहीं होने चाहिए। ऐसी मशीनों का स्थान अनिवार्य है, जो सार्वजनिक उपयोग के लिए तथा ऐसे काम के लिए हो जो मानवीय श्रम से न किया जा सके, परन्तु इन सब पर राज्य का स्वत्व होगा और पूर्णतया मानव कल्याण के लिए ही उनका उपयोग किया जायगा।

इसी दृष्टिकोण से उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है—(१) गृह उद्योग, (२) ग्रामोद्योग तथा (३) राष्ट्रोद्योग। बुनियादी शिक्षा

योजना मे प्रथम श्रेणी के उद्योगो को प्राथमिक कक्षाओ मे उनके प्रारम्भिक स्तर पर स्थान दिया गया। दूसरे प्रकार के उद्योगो ने बडी श्रेणी म स्थान पाया है। तीसरे प्रकार के राष्ट्रोद्योगो के सम्बन्ध म समाजवादी समाज की यह कल्पना है कि उद्योग केन्द्रित उद्योग तो अवश्य होगे किन्तु व्यक्तिगत लाभ के साधन नही बनाये जा सकेंगे। यह बुनियादी शिक्षा योजना मे उच्च शिक्षा के विश्वविद्यालय होगे जहाँ स्वामी और मजदूरो के स्थान पर शिक्षक और छात्र होगे। अस्तु इन बड राष्ट्रोद्योगो की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया का प्रारम्भ कहाँ होगा ? उत्तर साधारण है कि गृह-उद्योगो की शिक्षा इस दिशा की ओर अग्रसर होने का प्रथम सोपान होगा और गृह-उद्योग ग्रामोद्योग और राष्ट्रोद्योग उसके क्रमिक विकास की शृखला मे ठीक ठीक बैठ सकेंगे। इसलिए बुनियादी शिक्षा को उद्योग-केंद्रित शिक्षा का रूप देकर देश की परिवर्तनशील अर्थ रचना तथा समाज रचना दोनो के लिए ही दूरदर्शिता से काम लिया गया है।

अब दूसरा प्रश्न यह आता है कि इस शिक्षा योजना से निकले हुए शिक्षार्थी यत्रो को काम मे लाने के लिए कहाँ तक उपयुक्त होगे ? साधारण-सा उत्तर तो यह भी हो सकता है कि यदि केवल पुस्तको के आधार पर शिक्षा पाये हुए शिक्षार्थी जिन्होने कभी भी अपने हाथो को काम मे नही लिया, उपयुक्त माने जायें तो दोनो हाथो को काम म लानेवाले श्रमिक, जीवन के लिए अभ्यासी इस कार्य के लिए कितने अधिक उपयुक्त होगे। उत्पादक उद्योग को बुनियादी शिक्षा में स्थान दिया जाने का तात्पर्य यह नही है कि शिक्षार्थी को किसी उद्योग विशेष में ही निष्णात किया जाना है बल्कि योजना के निर्माताओ के सामने यह स्पष्ट चित्र था कि इसके माध्यम से विद्यार्थी को उसके सामाजिक तथा प्राकृतिक वातावरण का प्रत्यक्ष परिचय कराकर उसके ज्ञान को अधिक सजीव बनाया जा सकेगा। जब विद्यार्थी उद्योग में लगे रहते हैं तब उनकी उद्योगिक योग्यता में वृद्धि होती ही है उसके साथ उनमें सहकारिता, आत्म-निर्भरता, कर्त्तव्यपरायणता, उत्तरदायित्व वहन की शक्ति, सूक्ष्म निरीक्षण, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, एकाग्रता आदि गुणो का विकास होता है, जो सामाजिक योग्यता की दृष्टि ‖ उत्तम गुण हैं ही साथ ही यत्र-युग की आवश्यकता के भी अनुकूल हैं।

इसके अतिरिक्त भी यत्र-युग के लिए बुनियादी शिक्षा का और भी दार्शनिक महत्त्व है। जब बालक अपने उद्योगो में व्यस्त रहते हैं उनको

सृजन का गौरव और आनन्द प्राप्त होता है, कारखाने में इस प्रकार के आनन्द का अभाव रहता है जो भावात्मक सन्तोष कारीगर को उसके स्वयं के निर्माण द्वारा प्राप्त होता है। बुनियादी शिक्षा इसीलिए कार्य के द्वारा सन्तुलित व्यक्तित्व के निर्माण की योजना प्रस्तुत करती है जिसमें शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों का समन्वित विकास होगा।

यह धारणा भी भ्रमात्मक है कि बुनियादी शिक्षा केवल ग्रामीण क्षेत्रों के ही लिए है। यह राष्ट्रीय शिक्षा की योजना है जो समान रूप से देहाती और शहराती क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। योजना के निर्माताओं ने प्रारम्भ से ही स्पष्ट कर दिया गया है कि जो उद्योग चुना जाय वह बालकों के वातावरण के अनुकूल हो प्राय दोनों क्षेत्रों की मूल आवश्यकताएँ समान ही हैं। इससे यह सिद्ध है कि सामान्य से हेर फेर के साथ यह दोनों को समान रूप से उपयुक्त है। यह अवश्य है कि शहरों में चलनेवाले किसी भी उद्योग को मूलउद्योग के रूप में नहीं लिया जा सकता है क्योंकि उद्योग की प्रक्रियाओं में उसे शिक्षा का माध्यम बनाने की पर्याप्त सम्भावनाएँ होनी चाहिए। यन्त्रीकरण के साथ-साथ धीरे धीरे देहाती क्षेत्रों में बिजली व यन्त्रों आदि की सुविधाओं और आवागमन की सुविधाओं में वृद्धि के कारण ज्यों ज्यों शहर व ग्राम अधिक समीप आते जायेंगे और उनके आदान प्रदान में वृद्धि होगी तथा दोनों की परिस्थितियों की भिन्नता में भी कमी आती जायगी, इसलिए इसको समान-रूप से दोनों क्षेत्रों में लागू किये जाने की आवश्यकता है। ग्रामीण बालक तो स्वभावत अपनी परिस्थितियों के कारण, किसी-न किसी प्रकार कामधन्धा में अपने परिवार को सहायता पहुँचाने में अपने पारिवारिक उद्योगों से परिचित रहते ही हैं, परन्तु शहराती क्षेत्रवाले जो नितान्त पुस्तकीय शिक्षा पर ही अवलम्बित ▌इस दिशा के ज्ञान से वंचित रहते हैं। इसलिए शहरों में इसको लागू किये जाने की और भी आवश्यकता है। ऐसा होने से भ्रम का भी निवारण होगा कि यह हीन प्रकार की शिक्षा केवल ग्रामों के लिए ही है। अत बुनियादी शिक्षा में कदम उठाये जाने की तात्कालिक आवश्यकता है, अन्यथा शहराती स्कूलों के बालक केवल मानसिक बोझ को लिये हुए शारीरिक श्रम के अनुपयुक्त और हाथ-पैर को काम न लाने के लिए पंगु रहेंगे—जो इस यन्त्र-युग की आवश्यकता की पूर्ति में कहाँ तक सक्षम होंगे?

एक भ्रान्ति यह है कि चूंकि बुनियादी शिक्षा का माध्यम शिल्प या दस्तकारी है अत उद्योग की आदिम पद्धतियों में प्रशिक्षण पाये हुए विद्यार्थी,

आधुनिक उद्योगो मे, जहाँ यान्त्रिक ज्ञान और व्यावसायिक कौशल की आवश्यकता है, नहीं खप सकेंगे। डाक्टर श्रीमाली ने अपने एक लेख मे इस आक्षेप का बडा सुन्दर उत्तर दिया है और यहाँ उसकी आवृत्ति ही पर्याप्त होगी। वे लिखते हैं—' जिन छात्रो ने (बुनियादी स्तर पर) कताई, कृषि, गत्ते और चमडे के काम आदि शिल्पो म अनुभव प्राप्त किया है क्या वे उनके आधार पर ऐसे आधुनिक उद्योगो के लिए योग्य बन सकते हैं जिनमे बडी संख्या म अर्द्ध-कुशल आपरेटर, कुशल मैकेनिक, फोरमैन, टेकनिकल कार्यकर्ता इजीनियर और उच्च प्रबन्धक आदि की आवश्यकता होती है। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि बुनियादी शिक्षा के द्वारा (बुनियादी स्तर पर) सामान्य शिक्षा दी जाती है व्यावसायिक शिक्षा उस अर्थ म नही दी जाती जिस अर्थ म व्यावसायिक सस्थाओ म दी जाती है। बुनियादी शिक्षा म शिल्पो की ट्रेनिंग इसलिए नही दी जाती कि विद्यार्थियों म किसी विशेष व्यावसायिक क्षमता का विकास हो बल्कि इसलिए कि वे अपनी भौतिक और सामाजिक परिस्थितियो को समझ सकें और उत्पादक काम के सामाजिक महत्त्व को जान सकें जो नागरिकता की ट्रेनिंग का एक आवश्यक अग है। विभिन्न शिल्पो से छात्रो म औजारो, मशीनो और सामयिक जीवन पद्धतियो को समझने की योग्यता विकसित हो जाती है और इस प्रकार वे अपनी समस्याओ का अधिक बुद्धिमानी से सामना कर सकते हैं। बुनियादी शिक्षा का काम चाहे यह न हो कि बच्चो को सीधे व्यवसाय के लिए तैयार किया जाय परन्तु इसम कोई शक नही कि व्यावसायिक ज्ञान के लिए परम्परागत किताबी शिक्षा की अपेक्षा बुनियादी शिक्षा से अधिक अच्छी ट्रेनिंग दी जा सकती है। जब बच्चे उपयोगी कामो म लगे होते हैं तो वे काम से सम्बन्ध रखनेवाली कई उपयोगी बातें—सहयोग, आत्मनिर्भरता, सूझ बूझ से काम लेना, जिम्मेदारियाँ लेना और उनको पूरा करना—सीख लेते हैं। व्यावहारिक योजनाओ म काम करते समय उनको काम शुरू करने के पहले उसकी पूरी पूरी आयोजना तैयार करने की आदत पड जाती है। उनम एकाग्र मन से काम करने, ठीक-ठीक और जल्दी काम करने, एव अपने काम के परिणामो के मूल्याकन करने की आदतें पड जाती हैं। व्यावहारिक योजनाओ द्वारा बेसिक शिक्षा बच्चा मे जो इस प्रकार की आदत डालन और कौशल उत्पन्न करने का प्रयास करती है वे आधुनिक औद्योगिक समाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे। यदि एक बार काम की अच्छी आदतें पड जायें तो बच्चे देहाती और शहरी दोनो प्रकार के व्यवसायों की ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिए अधिक उपयुक्त हो जायेंगे' (बुनियादी शिक्षा मार्गदर्शिका, पृष्ठ ४)।•

श्रीमती मंजु श्रीवास्तव

शिक्षण की नवीनतम आधुनिक विधियाँ

(क) प्रोग्राम्ड शिक्षण

आज के शिक्षा जगत् की सबसे बडी समस्या है—बहुत कम समय में थोड़े-से योग्य अध्यापकों द्वारा बहुत लोगों को ढेर सा ज्ञान देना। यह युग लोकतंत्र और समाजवाद का है जिसमें सर्वसाधारण को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। विषय अनेक हो गये हैं। पढ़ानेवाले योग्य शिक्षक कम हैं। मनोविज्ञान बताता है कि सामूहिक शिक्षण मनोवैज्ञानिक नहीं है क्योंकि वह व्यक्तिगत विभिन्नताओं की उपेक्षा करता है। बालकों की रुचियों और क्षमताओं में विभिन्नता होती है। परन्तु सामूहिक शिक्षण में शिक्षक बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान दे नहीं पाते और सबके लिए एक ही शिक्षण-पद्धति का उपयोग करते हैं। यह मनोवैज्ञानिक नहीं है।

प्रोग्राम्ड शिक्षण सबसे नवीन अमेरिकन शिक्षण पद्धति है जिसके द्वारा इस समस्या को हल करने का प्रयास किया गया है।

प्रोग्राम्ड शिक्षण शिक्षण-यन्त्र (टीचिङ्ग मशीन) द्वारा शिक्षण है, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि 'शिक्षण यन्त्र' द्वारा शिक्षण है। इस पद्धति में शिक्षण का काम एक यन्त्र द्वारा होता है। इस यन्त्र को 'शिक्षण मशीन'

कहते हैं। परन्तु यह उन श्रव्य दृश्य उपकरणों से भिन्न होता है जिसमें उपकरणों का प्रयोग शिक्षक करता है और वे शिक्षण के काम में सहायक सामग्री की तरह व्यवहार में लाये जाते हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से प्रोग्राम्ड शिक्षण-यन्त्र किंडरगार्टन अथवा माण्टेसरी के उन उपहारों और शिक्षोपकरणों की तरह है जिनके द्वारा बालकों का आत्म-शिक्षण होता है।

ये 'शिक्षण-यन्त्र' साधारण क्विज की तरह बाक्स से लेकर उन्नत किस्म के एलेक्ट्रानिक्स यन्त्र होते हैं जो विद्यार्थियों को कुछ 'टास्क' (काम) देते हैं। ये टास्क गणित, विज्ञान का कोई प्रश्न हो सकता है या किसी शब्द का 'शुद्ध उच्चारण' हो सकता है। इन शिक्षण-यन्त्रों की सहायता से विद्यार्थी इन 'टास्कों' को पूरा करते हैं। यदि विद्यार्थी का उत्तर ठीक नहीं हुआ तो उसे स्वयं यन्त्र की सहायता से अपनी गलती का कारण मालूम करना पड़ता है, परन्तु अगर उत्तर सही हुआ तो फौरन दूसरा 'टास्क' प्रारम्भ हो जाता है।

ये यन्त्र पाठ्य-सामग्री प्रस्तुत करने की नयी यान्त्रिक युक्तियों से अधिक कुछ नहीं हैं परन्तु पाठ्य-सामग्री परम्परागत पाठ्य पुस्तकों से भिन्न प्रकार से संगठित की जाती है। यह संगठन इस प्रकार किया जाता है कि बालक अपनी गति से अपना शिक्षण कर सके। इन यन्त्रों में जो पाठ्य-सामग्री भरी जाती है उसको 'प्रोग्राम' कहते हैं इसलिए इस पद्धति को प्रोग्राम्ड शिक्षण-पद्धति कहते हैं।

आधुनिक प्रगतिशील शिक्षण विधियों में प्रोग्राम्ड शिक्षण-विधि सबसे नयी है। परन्तु जब इस देश के ९० प्रतिशत से भी अधिक स्कूलों में माण्टेसरी, किंडरगार्टन, डाल्टन, प्रोजेक्ट आदि प्रगतिशील पद्धतियों का ही उपयोग नहीं हो पाता तो इस अत्यन्त जटिल यान्त्रिक और महँगी विधि का विशेष व्यावहारिक प्रयोग नहीं है। परन्तु हमारे अध्यापकों और छात्राध्यापकों को इसके मोटे-मोटे सिद्धान्तों से परिचित होना चाहिए।

ये सिद्धान्त हैं —

(१) प्रोग्राम्ड-शिक्षण सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का यन्त्रीकरण है जो इस यन्त्र-युग के अनुरूप ही है, जब यन्त्र मानव (रोबट) का निर्माण मनुष्य के अनेक काम अपने हाथ में लेता जा रहा है।

(२) शिक्षण-यन्त्र (टीचिङ्ग मशीन) के द्वारा विद्यार्थी अपनी गति के अनुसार अपना स्वशिक्षण करता है। विद्यार्थी द्वारा स्वशिक्षण के जिस सिद्धान्त को रूसो ने प्रतिपादित किया, पस्टालॉजी, फ्रोबेल, माण्टेसरी, पार्क

हर्स्ट (डाल्टन प्लान) और डिवी एवं गांधी ने अपनी विधियों में जिसे व्यावहारिक रूप देने की चेष्टा की उसी सिद्धान्त का यह यंत्रीकरण है।

(३) प्रोग्राम्ड शिक्षण के लिए शिक्षक आवश्यक नहीं है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय (अमेरिका) के डाक्टर बी० एफ० स्किनर कहते हैं—अध्यापक आज समय के अनुकूल नहीं है (आउट ऑव डेट)। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डाक्टर डॉ० फिन्न कहते हैं—'शिक्षण-यन्त्रों के कारण स्वचालित कक्षा की कल्पना अब सम्भव हो गयी है। इसीलिए कुछ लोग समझते हैं कि जैसे 'यन्त्र-मानव' मानव का स्थान ले रहा है वैसे ही ये शिक्षण-यंत्र शिक्षक को अपदस्थ कर देंगे। परन्तु यह हो या न हो, अच्छे शिक्षक के और विशेषतः कुछ विशेष प्रकार के शिक्षण के लिए तो ये शिक्षण-यन्त्र पूरक सिद्ध होंगे ही। अतः अपनी सीमाओं के भीतर प्रोग्राम्ड शिक्षण को समझने और अब भी सम्भव हो अपनाने की चेष्टा करनी चाहिए जिससे शिक्षण के इन स्वयं प्रवर्तक यन्त्रों (आटोमेशन्स) से शिक्षण की प्रक्रिया में सहायता ली जा सके।

(४) प्रोग्राम्ड शिक्षण का ढाँचा निम्न प्रकार है :—

(क) पाठ्य-वस्तु को छोटे-छोटे चरणों (स्टेप्स) में बाँट लेते हैं। इन्हें 'फ्रेम' (साँचा) कहा जाता है। इनको इस प्रकार व्यवस्थित किया जाता है कि पहले चरण से प्रारम्भ कर क्रम-क्रम करके सीखनेवाला शिक्षण के अन्तिम चरण तक पहुँच जाय। प्रत्येक फ्रेम में क्रम से व्यवस्थित एक या एक से अधिक सूचनाएँ या समस्याएँ रहती हैं।

(ख) सारे प्रश्न, समस्याएँ और उनका हल शिक्षण-यन्त्र में भर (फीड कर) दिये जाते हैं। इस पूरे पाठ्य-वस्तु को प्रोग्राम कहते हैं। (इसीलिए इस विधि को प्रोग्राम्ड शिक्षण-विधि कहते है।) बालक इन मशीनों से वैसे ही प्रश्न पूछता और हल करता है जैसा 'क्विज' यन्त्र में होता है—बालक प्रश्न पूछता है मशीन उसका उत्तर देती है।

(ग) सही उत्तर मिलने पर मशीनों में 'शाबासी' या पुरस्कार का प्रबन्ध रहता है और तुरन्त दूसरी समस्या सामने आ जाती है। इसे दृढ़ीकरण (री इनफोर्समेंट) कहते हैं। अगर उत्तर गलत हुए तो मशीन की सहायता से विद्यार्थी को सही उत्तर मालूम करना पड़ता है।

संक्षेप में यही शिक्षण-यंत्रों के सिद्धान्त, उनका ढाँचा और उनका व्यवहार का रूप है। परन्तु जब आप प्रत्यक्ष रूप से इन 'शिक्षण-यन्त्रों' का प्रयोग नहीं देख लें, पूरी बात साफ-साफ समझ में नहीं आ सकती।

समीक्षा—

(१) सबसे पहली बात तो यह है कि ये शिक्षण-यन्त्र इतने महँगे हैं कि अभी इस निर्धन देश में इनके उपयोग की बात भी सोची नहीं जा सकती। एक अच्छी मशीन के बनाने में २-३ लाख रुपये खर्च हो जाते हैं।

(२) 'स्वचालित कक्षा' की कल्पना भी इस तकनीकी दृष्टि से पिछड़े देश में अभी तो सम्भव नहीं दिखाई देती। ऐसी कक्षाओं में टेलीविजन सेट, स्वचालित प्रोजेक्टर और वायु प्रकाश के नियन्त्रण की आवश्यकता होती है। ऐसी कक्षाएँ केवल महँगी ही नहीं पड़ेंगी, दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, ऐसे नगरों के अलावा और किसी जगह उनको आरम्भ करने की बात भी सोची नहीं जा सकती।

(३) कोई यन्त्र मनुष्य का स्थान नहीं ले सकता और शिक्षण-यन्त्र तो शिक्षक का स्थान कदापि नहीं ले सकता। इन शिक्षण-यन्त्रों से भाषा, गणित, विज्ञान आदि विषयों का शिक्षण तो हो सकता है, परन्तु समीक्षात्मक, कलात्मक और सांस्कृतिक विषयों का सम्यक् शिक्षण नहीं हो सकता।

(४) इन शिक्षण-यन्त्रों का विकास खरगोशों और चूहों आदि जानवरों पर किये हुए प्रयोग का परिणाम है। उदाहरणार्थ—प्रयोगकर्ता द्वारा तैयार मशीन में भोजन रख दिया जाता है। उसमें भूखे खरगोशों, चूहों आदि को छोड़ दिया जाता है। भोजन तक पहुँचने के दो मार्ग हैं—गलत मार्ग में बिजली का झटका लगता है अतः झटका खाकर वे पशु दूसरे (सही) रास्ते से जाते हैं और भोजन तक पहुँचते हैं। वे कई बार भूल करते हैं, परन्तु धीरे-धीरे सही मार्ग से जाना सीख जाते हैं। इस सारी शिक्षण-प्रक्रिया में 'भोजन' उनके सीखने की प्रेरणा के मूल में है। परन्तु मानव-शिशु पशु नहीं है और केवल 'पुरस्कार' उसके लिए न तो पर्याप्त प्रेरणा का कारण बन सकता है और न कोई मशीन एक ही प्रश्न से सम्बन्धित विभिन्न विद्यार्थियों के विभिन्न प्रतिक्रियाओं को सोच ही सकती है। इसलिए प्रोग्राम्ड शिक्षण-पद्धति को सर्वथा निर्दोष पद्धति नहीं कह सकते।

(ख) माइक्रो शिक्षण

प्रोग्राम्ड शिक्षण की भाँति अध्यापन-कला के क्षेत्र में दूसरी नवीनतम विधि माइक्रो टीचिंग है—जिसको हिन्दी में 'सूक्ष्म शिक्षण' कह सकते हैं। इस पद्धति में एक अध्यापक एक विद्यार्थी से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करता है और उसके बौद्धिक विकास और पारिवारिक-सामाजिक वातावरण का सूक्ष्म

अध्ययन करता है और जब वह विद्यार्थियों के इन सारे दोषों के निर्बल और सबल पक्षों से परिरन्जित हो जाता है तो 'सीखने-सिखाने' की ऐसी योजना बनाता है जिससे विद्यार्थी के सबल पक्षों का अधिक-से-अधिक उपयोग हो सके और उसकी कमजोरियों से अधिक-से-अधिक बचा जा सके।

दो कारणों से अमेरिका में यह योजना प्रारम्भ हुई है :—

(१) सामूहिक शिक्षण, जिसमें बालक की विभिन्नताओं की अवहेलना की जाती है, के विरुद्ध प्रतिक्रिया के कारण।

अमेरिका में यह अनुभव किया जाने लगा कि आधुनिक सामूहिक कक्षा-शिक्षण में बालकों की व्यक्तिगत रुचियों और क्षमताओं तथा उनकी विभिन्नताओं का ध्यान नहीं रखा जाता जिससे उनमें अन्तर्निहित क्षमताओं का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। अतः शिक्षण की सामूहिक पद्धति के स्थान पर व्यक्तिगत पद्धति पर अधिक जोर देना चाहिए।

(२) बच्चे को वास्तविक सहायता देने और बच्चों की पाठ्य-सामग्री को अधिक सम्पन्न बनाने के प्रयास के कारण।

सामूहिक शिक्षण में बालक को उसकी व्यक्तिगत क्षमताओं के अनुरूप कारगर सहायता मिल नहीं पाती। अध्यापक उस ओर प्रयास ही नहीं करता। फलतः जो बालक अपनी मन्द बुद्धि के कारण धीमी गति से ही चल सकते हैं वे पिछड़ जाते हैं और जो लड़के तेज होते हैं उनका भी लाभ नहीं होता, क्योंकि यदि उन्हें व्यक्तिगत सहायता मिलती तो उनकी प्रगति और भी अच्छी होती। वे साधारण लड़कों के साथ घिसटते रहते हैं। अतः दोनों को ही व्यक्तिगत सहायता की जरूरत है।

इस पद्धति में छात्राध्यापक अथवा अध्यापक को व्यक्तिगत विद्यार्थी की कठिनाइयों का निदान करना पड़ता है और इस निदान के बाद उपचार-शिक्षण (रेमिडिअल टीचिंग) के लिए पाठ्य-सामग्री तैयार करनी पड़ती है। इस प्रशिक्षण के दो परिणाम होते हैं—(१) एक तो अध्यापक में बालकों की व्यक्तिगत कठिनाइयों को अधिक सहानुभूतिपूर्ण ढंग से समझ कर उनकी क्षमताओं का अधिक अच्छे ढंग से उपयोग करने की दृष्टि प्राप्त होती है और (२) दूसरा वे कक्षा-शिक्षण को भी पहले से अधिक यथार्थ, सोद्देश्य और सहानुभूतिपूर्ण बना पाते हैं, क्योंकि उन्होंने लड़कों की कमजोरियों को निकट से अध्ययन किया है।

इन कारणो से इन अध्यापको का कक्षा शिक्षण भी अधिक प्रभावपूर्ण होता है और इस विधि से पढनेवाले लडको की प्रगति अधिक सतोषजनक होती है।

समीक्षा :—

प्रोग्राम्ड शिक्षण और माइक्रो शिक्षण दोनो शिक्षण पद्धतियों का उद्देश्य व्यक्तिगत विभिन्नताओ को ध्यान म रखकर व्यक्तिगत विद्यार्थी क शिक्षण के लिए कारगर शिक्षण पद्धति की खोज करना है। दोनो पद्धतियो की समान आलोचना यह है कि दोनो बहुत महँगी हैं—और अमरिका-ऐसे तकनीकी की दृष्टि से उन्नत पूँजीवादी देश मे ही इन दोनो की बात सोची जा सकती थी। अपने महँगेपन के कारण ही ये उन देशो के उपयुक्त नही है जो तकनीकी दृष्टि से उन्नत नही हैं अथवा जो गरीब है, परन्तु जिनका उद्देश्य देश के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का समान अवसर प्रदान करना है।

एक दूसरी आलोचना यह है कि इन पद्धतियो म 'व्यक्ति पर बहुत अधिक बल दे दिया गया है अत इनको अगर अपनाया गया और इनका विस्तृत प्रचार हुआ तो सामाजिक सश्लेषण की किया म जो समाजवाद का उद्देश्य है, बाधा पडगी। आज के लोकतन्त्रीय समाजवाद के युग म शिक्षा का लक्ष्य समाज के विभिन्न वर्गों का और मानवमात्र का एकीकरण है—अत किसी भी पद्धति मे अगर व्यक्ति के वैयक्तिकता पर अधिक जोर दिया गया तो इस सामाजिक सश्लेषण की क्रिया मे बाधा पहुँचेगी। अत इसम सदेह है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक होने पर भी समाजवादी देश इनको अपनायेंगे, अपनायेंगे तो सुधार के साथ ही अपनायगे। ये देश इन विधियो को भी सुधार के साथ ही अपनायेंगे। परन्तु ये विधियाँ अभी नयी है और अभी इन पर प्रयोग चल ही रहे है अत अभी इस सम्बन्ध म अधिकारपूर्वक कुछ कहा नही जा सकता।•

आचार्यकुल : शैक्षिक नीति और कार्यक्रम

खण्ड—१

आचार्यकुल का अभिमत है कि भारत मे शैक्षिक प्रयासो को नयी दिशा देने के लिए शिक्षा के दृष्टिकोण और लक्ष्यो का स्पष्ट और असदिग्ध निरूपण होना चाहिए। इस प्रकार का निरूपण शिक्षा के निदेशक सिद्धान्तो की घोषणा मात्र ही नही होगा अपितु उन साधनो और मार्गों का भी निर्देश करेगा, जिनके द्वारा ये सिद्धान्त दैनंदिन शिक्षा के कार्यक्रमो म परिवर्तित किये जा सकगे इसी दृष्टि से आचार्यकुल शिक्षा के सिद्धान्तो, नीतियो और कार्यक्रमो के विषय म अपने निम्नलिखित ऐसे विचार प्रस्तुत कर रहा है जो शिक्षा के सम्बध मे सारे देश मे हमारा पथ प्रदर्शन करेंगे

यद्यपि भारत १९४७ मे स्वतत्र हो गया था—फिर भी अपने शैक्षिक लक्ष्यो की व्याख्या करने का अथवा नये स्वतत्र भारत के अनुरूप शैक्षिक कार्यक्रम नियोजित करने का, उसने किसी प्रकार का महत्वपूर्ण प्रयास नही किया है। स्वतत्रता के पहले हमारे पास एक ऐसी शिक्षा प्रणाली थी जिसे अग्रेजी सरकार ने इस देश मे साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को स्थिरता प्रदान करने के लिए प्रचलित की थी अंग्रेजो की चलायी हुई यह शिक्षा प्रणाली उनके लक्ष्यो के अनुरूप थी। स्वतत्रता के इन चौबीस वर्षो मे यद्यपि शिक्षण के ढाँचे में सुधार करने के अनेक प्रयास हुए हैं परन्तु शिक्षा के लक्ष्यो के सम्बन्ध मे कोई मौलिक चिन्तन नही हुआ है। यह कहना आवश्यक नही है कि जो शिक्षा प्रणाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अनुकूल थी वह स्वतत्र भारत के

प्रयोजनों और उद्देश्यों की पूर्ति नही कर सकती। हमारे देश ने अपने सामने एक ऐसे स्वतन्त्र और समाजवादी समाज के निर्माण का लक्ष्य रखा है जिसमें एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे का शोषण पूर्णतः समाप्त हो जायगा। भारत के स्वतन्त्र होने के साथ ही हमने एक नये समाजवादी समाज के निर्माण की कल्पना की है, जिसमे सामाजिक असमानता के लिए कोई स्थान नही होगा और जिसमे राष्ट्र का सामाजिक ध्येय सर्व का हित होगा। अतः आचार्यकुल यह महसूस करता है कि उसे वर्तमान शिक्षा के ढाँचे के भीतर ही रहकर नही सोचना है वरन् शिक्षा के मूल्यो मे आमूल परिवर्तन अर्थात् शैक्षिक क्रान्ति की भाषा मे सोचना है जिससे शिक्षा एक ऐसे समाज का निर्माण कर सके जो समाजवादी लक्ष्यो की पूर्ति कर सके।

वह मौलिक प्रश्न, जिसके विषय मे हमारे देश को गम्भीरतापूर्वक विचार करना है, यह है कि भारत मे शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर, प्रारम्भिक से विश्वविद्यालय-स्तर तक, शिक्षा के लक्ष्य क्या हो। इन लक्ष्यो का निर्धारण करते समय हम उन मूल्यो को स्मरण रखें जिन्होंने युगो-युगो तक भारतीय समाज का पोषण किया है। चूँकि भारत के पास अत्यन्त महिमाशाली आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत है अत अपने शैक्षिक ढाँचे का पुनर्निर्माण करते समय हमें इससे प्रेरणा लेनी चाहिए। जिन स्रोतो ने युगो युगो तक भारतीय संस्कृति और समाज को जीवन दिया है, यह स्थान विस्तारपूर्वक उनके विवेचन का नही है परन्तु मोटे तौर पर बिना तनिक भी झिझक के यह कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति के स्रोतो म हमारे शैक्षिक एव सामाजिक कार्यक्रम के पथ-प्रदर्शन के अत्यधिक उपादान वर्तमान हैं। अत हमारा सुझाव है कि अपनी शिक्षा के लक्ष्य निश्चित करते समय हमे उनका ध्यान रखना चाहिए। ये लक्ष्य निम्न प्रकार होने चाहिए

१ शिक्षा का सर्वोपरि लक्ष्य व्यक्ति के मुक्त और सन्तुलित विकास को प्रोत्साहित करना होना चाहिए।

यह कहना आवश्यक नही है कि व्यक्ति के इस प्रकार का विकास समाज के सन्दर्भ में ही हो सकता है, उससे निरपेक्ष नहीं। अत वैयक्तिकता और व्यक्तिवाद के अन्तर को स्पष्ट समझ लेना चाहिए। हम वैयक्तिकता का पूर्ण समर्थन करते हैं परन्तु व्यक्तिवाद का अथवा उससे सम्बन्धित किसी बात का विरोध करते हैं। दूसरे शब्दो म शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए जिससे वह जिस समाज मे रहता है उसके प्रति उत्तरदायित्व का अनुभव करे। प्रत्येक स्तर पर शिक्षा, अधिकाधिक ढग से, विद्यार्थियो

और शिक्षकों दोनों में सामाजिक दायित्व की भावना विकसित करे। परन्तु सामाजिक दायित्व का अर्थ राजनीति और राज्य के कार्यक्रमों में लिप्त होने का पर्याय न माना जाय। समाज राज्य से बहुत बड़ा है अतः विद्यार्थी और शिक्षक समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अधिक से अधिक अनुभव करें। इस प्रकार की सामाजिक दायित्व की भावना आने से ही राज्य को शिक्षा की प्रगतिशील नीतियों और कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि व्यक्ति के मुक्त विकास का अर्थ एक बौद्धिक दम्भ से युक्त वर्ग का विकास नहीं होता जिसमें अपनी सामाजिक श्रेष्ठता का अहंकार हो और न इसका लक्ष्य सामाजिक असमानता को प्रोत्साहन देना है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि जहाँ असमानता को समाप्त करना शिक्षा का ध्येय होना चाहिए वहाँ शिक्षा से एक जड़ यांत्रिक समता भी नहीं उत्पन्न होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व का स्वतन्त्र और मुक्त विकास एक ऐसे समाज के स्वस्थ विकास का साधन होना चाहिए जो व्यक्ति के लिए सम्मान की भावना पर आधारित हो और इसलिए जिससे व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण का राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक सभी प्रकार के शोषण का अन्त हो सके।

२ शिक्षा का लक्ष्य छात्रों और अध्यापकों में जीवन के आधारभूत मूल्यों की खोज कर सकने की क्षमता का विकास करना होना चाहिए।

यह ठीक है कि मूल्य जड़ नहीं रहते। लेकिन अगर शिक्षा ने जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास किया है तो किसी विशेष परिस्थिति में व्यक्ति उचित और अनुचित के गलत और सही के सत्य और असत्य के, सुन्दर और असुन्दर के अन्तर को पहचान सकेगा दूसरे शब्दों में सत्यं शिवं सुन्दरम् के शाश्वत मूल्य सारे शैक्षिक प्रयासों के प्रेरक स्रोत बन सकेंगे। हम अनुभव करते हैं कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त मूल्यों की अस्तव्यस्तता ही बहुत अंशों तक शैक्षिक संस्थाओं में अनुशासनहीनता के लिए उत्तरदायी है। हमारी राय है कि स्वतन्त्रता और अनुशासन एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति सही अर्थ में स्वतन्त्र है वही अनुशासित ढंग से काम कर सकता है। लेकिन इस प्रकार की स्वतन्त्रता उन शाश्वत मूल्यों की खोज की माँग करती है जो इस देश की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक साहित्य में स्पष्ट शब्दों में वर्णित हैं। अतः शिक्षा के सभी स्तरों पर इस प्रकार का गम्भीर प्रयास करना

चाहिए जिससे छात्र मे शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से ही उचित ग्रनुचित में भेद करने की ग्रोर मनुष्य को मनुष्य से क्या जोडता है ग्रौर क्या ग्रलग करता है इस बात को जानने की क्षमता उत्पन्न हो जाय। इस सम्बन्ध म यह कह देना ग्रावश्यक जान पडता है कि मात्र मजहबी शिक्षा से कभी जीवन के मूल्यो की खोज ग्रौर उपलब्धि सम्भव नही है। इस सम्बन्ध मे यह कहना ग्रावश्यक मालूम होता है कि सारे देश की शिक्षा के सामन ग्राज समस्या यह है कि शैक्षिक प्रक्रिया म ग्रध्यात्म ग्रौर विज्ञान का समन्वय किस प्रकार किया जाय। इस प्रकार का समन्वय तभी सम्भव होगा जब छात्रो में सच्चे जीवन मूल्यो के प्रति चेतना जाग्रत हो जायगी। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए शिक्षा-सस्थाग्रो के वातावरण का बडा मूल्य है क्योंकि मूल्यो का ग्रहण ग्रधिक प्रभावपूर्ण रूप से ग्रप्रत्यक्ष ग्रौर सूक्ष्म ढग से होता है न कि नैतिक ग्रथवा तथाकथित ग्राध्या त्मिक चर्चाग्रो ग्रौर उपदेशो के द्वारा। एक व्यक्ति, जिसने जीवन के सही मूल्यो को ग्रहण कर लिया है वह उस ससार क प्रति सवेदनशील होता है, जिसमें वह रहता है ग्रौर समाज के रहनेवाल दूसरे व्यक्तियो की ग्रावश्यकताग्रो के प्रति जागरूक रहता है। ग्रत हर हालत म ग्राधारभूत जीवन-मूल्यों की खोज ग्रौर उपलब्धि शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए।

२ शिक्षा का लक्ष्य छात्र ग्रौर ग्रध्यापक मे ऐसी क्षमता उत्पन्न करना है जिससे वे जीवन ग्रौर उसकी समस्याग्रों के प्रति समन्वित दृष्टिकोण से देख सकें।

ग्राज के युग मे जबकि दक्षतापूवक काय करने की क्षमता के लिए ग्रत्यन्त प्रारम्भिक स्तर से ही विशिष्टीकरण प्रारम्भ हो जाता है इस समन्वित दृष्टिकोण की ग्रत्यन्त ग्रावश्यकता है। ग्राधुनिक शिक्षा के जिस पहलू की ग्रोर से हम उदासीन नही रह सकते, वह ग्रत्यधिक विशिष्टीकरण ही नही वरन् शीघ्र विशिष्टीकरण भी है। हमारी राय है कि हाई स्कूल ग्रर्थात उसके सम कक्ष स्तर तक विद्यार्थी को सामान्य शिक्षा दी जाय ग्रौर किसी भी प्रकार का विशिष्टीकरण उसके बाद ही प्रारम्भ हो। जिस युग मे हम रह रहे हैं हम उसम विशिष्टीकरण की ग्रावश्यकता स्वीकार करते हैं लेकिन हम साथ ही यह भी ग्रनुभव करते हैं कि जो शिक्षा के जिम्मेदार हैं उन्ह विशिष्टीकरण के दोषो स भी पूरी तरह परिचित रहना चाहिए।

समन्वित दृष्टिकोण का यह विषय इस प्रश्न की ग्रोर भी ध्यान ग्राकर्षित करता है कि विज्ञान ग्रौर मानवीय विषयों का समन्वय कैसे किया जाय। ग्राज

हमारे शिक्षा के कार्यक्रमों में विज्ञान और अध्यात्म के बीच जो दीवार खड़ी हो गयी है उसे समन्वित दृष्टिकोण से ही तोड़ा जा सकता है। हम महसूस करते हैं कि विज्ञान का अध्यापन करते समय विद्यार्थियों को मानवीय विषयों के मूल्यों और महत्त्वों के विषयों में समझाया जाना चाहिए। इसी प्रकार मानवीय विषयों को पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के मूल्यों और महत्त्वों को जानना आवश्यक है। इसके अलावा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विषयों के परस्पर सम्बन्ध को भी स्पष्ट करने की आवश्यकता है, नहीं तो उचित समन्वय सम्भव नहीं होगा।

४. शिक्षा का लक्ष्य छात्रों और अध्यापकों में मानवमात्र का बन्धुत्व और विश्व-नागरिकता की चेतना उत्पन्न करना है।

हम आज एक ऐसे संसार में रह रहे हैं जहाँ संकीर्ण राष्ट्रवाद अपना महत्त्व खो चुका है। विज्ञान और टेक्नालॉजी ने उन बन्धनों को तोड़ डाला है जो एक देश को दूसरे से अलग करते हैं। यह भी सच है कि हम आज एक देश की बिलकुल पृथक् संस्कृति अथवा धर्म की भाषा में सोच नहीं सकते। आज मानवमात्र का भ्रातृत्व एक वस्तुस्थिति हो गया है, और वह शिक्षा निरर्थक हो जायगी जो आधुनिक विश्व के इस तथ्य की चेतना अध्यापकों और विद्यार्थियों में जागृत नहीं करती। मानव के बन्धुत्व की इस भावना में स्पष्टतः विश्व-नागरिकता की भावना अन्तर्निहित है। हमारी शिक्षा-संस्थाएँ इस सार्वभौमिक दृष्टिकोण से प्रेरित हों जिससे प्रत्येक छात्र और अध्यापक यह समझने लगे कि वह वास्तव में विश्व का एक नागरिक है। इसका यह मतलब नहीं है कि राष्ट्रीय परम्पराओं और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की उपेक्षा की जाय। जैसे आज सभ्यता के विकास-क्रम में हम ऐसे बिन्दु पर पहुँच गये हैं, जहाँ व्यक्ति और समाज साथ रह सकते हैं, वैसे ही आज के नये वातावरण में राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता भी साथ रह सकती हैं। लेकिन यह तभी सम्भव होगा जब आक्रामक राष्ट्रवाद का परित्याग किया जाय और इसका स्थान सहअस्तित्ववादी राष्ट्रवाद ग्रहण करे। हमारा समस्त शैक्षिक नियोजन इस व्यापक विश्व-नागरिकता के दृष्टिकोण से प्रेरित होना चाहिए।

५. (क) शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी में सामाजिक उत्तरदायित्व और समाज-सेवा के भाव का विकास करना होना चाहिए।

हमें स्वीकार करना चाहिए कि हमारी शिक्षा उस सामाजिक वातावरण से पृथक् है जिसमें बालक रहता है। हमको शैक्षिक प्रक्रिया और समाज की

आवश्यकताओ मे, चाहे वह समाज ग्रामीण हो अथवा नगरीय, सम्बन्ध स्थापित करना होगा। आज के विद्यार्थियो मे या तो समाज के प्रति विद्रोह की भावना जाग्रत होती है अथवा समाज की मांगो के प्रति दुर्बल समर्पण की। हमे उस शैक्षिक प्रक्रिया का प्रारम्भ करना है जिसमे विद्यार्थी अपने समाज के प्रति एक रचनात्मक रोल अदा कर सके। हर हालत मे हमारा शैक्षिक प्रयास अधिकाधिक इस दिशा मे होना चाहिए जिससे उस वातावरण के हर पहलू से विद्यार्थी का जीवन्त सम्पर्क बना रहे, जिसमे वह रह रहा है।

(ख) शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान और कार्य का समन्वय होना चाहिए।

अगर शिक्षा समाज के विकास और प्रगति मे सहायता नही करती तो उसका कोई अर्थ और महत्त्व नहीं है। शैक्षिक प्रक्रिया से गुजरनेवाला विद्यार्थी समाज मे अपना स्थान ग्रहण कर सके, यह अत्यन्त महत्त्व का है। समाजोपयोगी उत्पादक काम शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर हमारे शैक्षिक कार्यक्रम का अभिन्न अग हो। विद्यार्थी मे इस भाव का विकास हो कि वह समाज का अग है। अत. उसके प्रति उसका उत्तरदायित्व है। इसका फलितार्थ यह है कि हमारी शिक्षा मात्र सैद्धान्तिक न रहे और उसमे ऐसी नीतियाँ और कार्यक्रम हो जिनसे छात्र मे काम करने की आदत पडे। विद्यार्थी यह अनुभव करे कि अपने हाथ से काम करना अप्रतिष्ठा नहीं है। इसके विपरीत हाथ से काम करने मे उसे सृजन और रचना का सच्चा आनन्द मिलना चाहिए। विद्यार्थी जब अपने हाथ से समाजोपयोगी उत्पादक काम करना शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से ही सीखता है, तभी वह अपनी शिक्षा समाप्त कर विद्यालय से निकलने के बाद वह उस समाज का उत्पादक सदस्य बन सकता है जिसमे वह रहता है।

आज अशिक्षित और शिक्षित के बीच की दूरी को कम करना आवश्यक है, और बौद्धिक वर्ग और साधारण जनता के बीच की खाई पाटना जरूरी है। विद्यार्थियों के लिए समाज-सेवा के कार्य को अनिवार्य बनाकर यह खाई पाटी जा सकती है। इस प्रकार की समाज-सेवा शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का अभिन्न अग होना चाहिए। इस प्रकार की समाज-सेवा चारित्र्य निर्माण और अनुशासन, श्रम-प्रतिष्ठा और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने का साधन हो सकती है।

खण्ड – २

पाठ्यक्रम और शिक्षण-प्रणाली

शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर इन पांचों लक्षणों को प्रभावी ढंग से कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम को पुनर्गठित किया जाय। पूरे शैक्षिक कार्यक्रम को चार भागों में बांटा जाय— पूर्व प्रारम्भिक, प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च विश्वविद्यालयी शिक्षा। यह अत्यन्त आवश्यक है कि विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने की वर्तमान भीड़ को विद्यार्थियों में हताशा की भावना उत्पन्न किये बिना रोका जाय।

इसलिए हमारा सुझाव है कि प्रारम्भिक स्तर के बाद ही उन विद्यार्थियों के लिए जो आर्थिक अथवा सामाजिक कारणों से आगे पढ़ना जारी नहीं रख सकते—किसी व्यावसायिक अथवा किसी धन्धे के प्रशिक्षण द्वारा जीवन में प्रवेश का प्रबन्ध होना चाहिए। इसी प्रकार दूसरा अवसर माध्यमिक स्तर के बाद मिलना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा इतनी पर्याप्त और पूर्ण हो कि विद्यार्थियों की अधिकतम संख्या एक दो वर्ष के प्रशिक्षण के बाद किसी व्यवसाय अथवा उद्योग-धन्धों में लग सके। अगर यह हुआ तो आज की तरह विश्वविद्यालयों में भीड़ नहीं होगी और विश्वविद्यालयों में वही जायेंगे जिनमें उच्च शिक्षा प्राप्त करने की वास्तविक योग्यता होगी।

छात्रों का सम्पूर्ण शैक्षिक जीवन १५ वर्षों की अवधि-काल का हो, जो ३ वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो और १८ वर्ष की आयु में समाप्त हो। प्रारम्भिक शिक्षा कक्षा १ से कक्षा ८ तक चले। माध्यमिक शिक्षा कक्षा ९ से कक्षा १२ तक और उसके बाद विश्वविद्यालय की शिक्षा है।

हमारा यह भी सुझाव है कि शिक्षा को संस्थाओं की चहारदीवारी के भीतर ही सीमित न किया जाय। पूरा समाज उसका क्षेत्र हो और आज जो जन विकास का सारा काम हो रहा है, वह समुदाय की शिक्षा की प्रक्रिया बना दिया जाय।

जब हमारे शिक्षा-भवन का यह सामान्य चित्र होगा, हम पाठ्यक्रम के लिए निम्नांकित निदेशक सिद्धान्तों का सुझाव दे रहे हैं —

(१) एक तो यह कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा हो और (२) दूसरा यह कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक संस्था में शुल्क का ढांचा समान हो। इन दो निदेशक सिद्धान्तों के कार्यान्वयन का परिणाम

यह होगा कि इस समय देश म शिक्षा की जो दो समानान्तर प्रणालियाँ चल रही है उनका एक म विलयन हो जायगा। इस विलयन का ही यह परिणाम होगा कि थोड से सम्पन्न व्यक्तियो के बच्चो को अच्छी शिक्षा देने के स्थान पर सवसाधारण के बच्चो के लिए अच्छी शिक्षा सुलभ की जा सकेगी।

ये दो समानान्तर प्रणालियाँ हैं—पब्लिक स्कूल यानी कान्वेण्टस और दूसरे साधारण स्कूल जिसमे सवसाधारण नागरिको के बच्चे पढत है और जिनका प्रबन्ध गैर सरकारी, सरकारी अथवा स्थानीय जिला परिषद और नगर पालिकाओ के हाथ मे है। विलयन से हमारा तात्पय दो प्रकार की सभी शिक्षा-सस्थाओ के लिए एक ऐसे पाठयक्रम के प्रचलन से है जिनम निम्नांकित विषयों के शिक्षण का प्रबन्ध हो

विषय

१ भाषा—मातृभाषा अथवा क्षत्रीय भाषा
२ गणित
३ विज्ञान
४ सामाजिक अध्ययन
५ शिल्प अथवा काय अनुभव (बालिकाओं के लिए गृह विज्ञान)
६ कला
७ सामुदायिक काय और समाज-सेवा
८ शारीरिक शिक्षा
९ देश की सस्कृति से सम्बन्धित शिक्षा

जहाँ तक पाठ्यक्रम का सम्बन्ध है हम जोर देकर कहना चाहेंगे कि कायमूलक शिक्षा (शिल्प उद्योग अथवा कार्यानुभव) शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर निश्चित लक्ष्यों के साथ शिक्षा का अभिन्न अग होना चाहिए। इसका यह अर्थ है कि सभी स्तरो पर छात्र कुछ ऐसे समाजोपयोगी उत्पादक काम अवश्य करें जिनका सम्बन्ध उस वातावरण से हो जिनमे विद्यार्थी रहते हैं। दूसरे शब्दो म हमारा पाठ्यक्रम हमारे देश के कृषि-ग्रामोद्योग मूलक समाज को प्रतिबिम्बित करे।

२ यह सर्वाधिक महत्त्व का है कि शिक्षण का माध्यम मातृभाषा हो, क्योंकि तभी दूसरे विषयो को सीखने मे कम-से-कम आयास होगा। शिक्षा की पूरी योजना के लिए भाषा का ढाँचा इस प्रकार हो —

कक्षा ५ तक केवल मातृभाषा शिक्षा का माध्यम हो। विद्यार्थी जब

कक्षा ६ मे जाय तब वह एक और वैकल्पिक भाषा ले सकता है। जब विद्यार्थी ११वीं कक्षा मे पहुँचे तब वह एक और वैकल्पिक भाषा ले सकता है। इस प्रकार त्रि-सूत्रीय भाषा फार्मूला, जो सामान्यत सबको स्वीकृत है, पूरे शैक्षिक ताने-बाने मे बुना जाय। हम यह चाहते हैं कि हिन्दी भाषा भाषी प्रदेशो मे दक्षिण की कोई एक भाषा और दक्षिण मे हिन्दी सीखी जाय।

३ हमने सुझाव दिया है कि दोनो समानान्तर चलनेवाली प्रणालियो का विलयन कर दिया जाय। अतः इस सम्बन्ध मे हमारा यह सुझाव है कि शिक्षा सस्थाओ मे शुल्क का समान ढाँचा हो। इसका अर्थ यह है कि एक विद्यार्थी एक ही स्तर के किसी भी स्कूल मे प्रवेश पाने के लिए अधिक फीस नही देगा। प्राथमिक स्तर, या माध्यमिक स्तर अथवा उच्च स्तर की शिक्षा के लिए शुल्क सर्वत्र समान होगा। फिर चाहे विद्यार्थी नर्सरी स्कूल या पब्लिक स्कूल मे पढे या किसी दूसरे हाई स्कूल या प्रारम्भिक स्कूल मे। इस प्रकार के शुल्क का ढाँचा सभी वर्गभेद के मूल पर ही आघात करेगा, जो आज हमारे समाज का अस्वस्थ अग हो रहा है।

जिस पाठ्यक्रम की चर्चा ऊपर की गयी है वह कक्षा १० या उसके समकक्ष कक्षा के लिए है। इस स्तर तक सबको सामान्य शिक्षा देने की योजना होनी चाहिए। इसके बाद पाठ्यक्रम मे विशिष्टीकरण और वर्गीकरण की गुजाइश रखी जायगी। परन्तु दोनो स्तरो पर पाठ्यक्रम बनाने का एक निदेशक सिद्धान्त यह होगा कि प्रारम्भिक और माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रम अपने आप मे पूर्ण इकाई हो और उनके अन्त मे व्यावसायिक प्रशिक्षण का प्राविधान हो। इस प्रकार उन विद्यार्थियो की व्यवस्था भी हो जायगी जो सामान्य शिक्षा की मुख्य धारा से आर्थिक अथवा सामाजिक कारणों से अलग हो जाते हैं। लेकिन जो इस तरह अलग हो जाते है उनके लिए यदि व्यावसायिक प्रशिक्षण का प्राविधान होगा तो वे सामाजिक दृष्टि से उपयोगी जीवन व्यतीत कर सकेंगे। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर, जिसमे कक्षा ११ और १२ शामिल है, यह आशा की जाती है कि अधिकतम विद्यार्थी विश्वविद्यालय न जाकर किसी धन्धे मे लगेंगे। इस कारण यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि पाठ्यक्रम मे व्यावसायिक क्षमता पर अधिकाधिक बल दिया जाय जिससे अधिक-से-अधिक व्यक्ति उद्योग धन्धो म लगें और विश्वविद्यालयो मे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए बहुत कम प्रतिभावान विद्यार्थी ही रह जायें। व्यावसायीकरण का काम प्रभावपूर्ण ढग से हो सके इसलिए आवश्यक है कि जहाँ तक

सम्भव हो इस काम मे समुदाय का सहकार प्राप्त किया जाय और विद्यार्थी समुदाय के खेतों और कारखानो म काम करे।

खण्ड — ३

परीक्षा

यह अभाग्य ही कहा जायगा कि हमारी सारी शिक्षा प्रणाली परीक्षापरक हो गयी है। इसका परिणाम यह हुआ कि अध्ययन की अवहेलना की जाती है और सारा ध्यान परीक्षा उत्तीर्ण करने पर दिया जाने लगा है। हमारा मत है कि परीक्षा के बारे मे हमे नये सिरे से सोचना चाहिए। हमारा सुझाव है कि प्रचलित परीक्षा पद्धति को बदलने मे निम्नाङ्कित सिद्धान्तों के अनुसार काम किया जाय

(क) छात्रो के काम का अध्यापको द्वारा सतत मूल्याकन हो।

(ख) प्रत्येक स्तर की शिक्षा समाप्त करने के बाद जो प्रमाण-पत्र दिये जायें वे वर्णनात्मक हो और उनमे उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण अथवा कोई श्रेणी न लिखी जाय। दूसरे शब्दो मे प्रमाण-पत्र मे केवल इतना लिखा हो कि अमुक विद्यार्थी सस्था की अमुक कक्षा म अमुक समय के लिए उपस्थित रहा है। प्रमाण-पत्र मे अक या कैटेगरी लिख दी जाय।

(ग) पब्लिक या बाह्य परीक्षा जहाँ भी आवश्यक हो विद्यार्थी की स्मरण शक्ति मात्र की परीक्षा न होकर उसकी बुद्धिमत्ता की जाँच हो। इसका अर्थ है बिलकुल नये प्रकार के प्रश्न-पत्र बनाना होगा जिनका उत्तर देने मे पाठयपुस्तक अथवा सन्दर्भ ग्रथ को देखने या न देखने से कोई अन्तर नही पड़ता।

(घ) नौकरी और प्रमाण-पत्र का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया जाय। जो सरकारी या गैर-सरकारी सस्था नौकरी दे वह नौकरी चाहनेवाले की जाँच कर ले लेकिन इस जाँच के लिए किसी भी प्रमाण-पत्र का होना आवश्यक न माना जाय। इस प्रकार के सम्बन्ध विच्छेद से बहुत से वे भ्रष्टाचार दूर हो जायेंगे जो केवल इस कारण हैं कि नौकरी के लिए प्रमाण-पत्र प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण हो गया है और फलत अध्ययन गौण।

खण्ड—४

शैक्षिक प्रशासन

जहाँ तक शैक्षिक प्रशासन का सम्बन्ध है हम अनुभव करते हैं कि शिक्षा

प्रत्येक स्तर पर सरकारी अथवा अर्द्ध सरकारी नियन्त्रण से सर्वथा मुक्त कर दी जाय। हम किसी भी प्रकार के राष्ट्रीयकरण (सरकारीकरण) अथवा राज्य के नियन्त्रण का विरोध करते है। इस सम्बन्ध म हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि पाठ्य-पुस्तको का राज्यों द्वारा नियन्त्रण भी लोकतन्त्र के हित मे नही होगा। पाठ्य-पुस्तको का यह राष्ट्रीयकरण इन्डाक्ट्रिनेशन को जन्म देगा। अत शैक्षिक प्रशासन के विषय मे सर्वोत्तम सिद्धान्त होगा विकेन्द्रीकरण और प्रशासन मे उन लोगो का सक्रिय सहकार जिनका सम्बन्ध शिक्षा स है अर्थात्—विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक का। इसका यह अर्थ है कि किसी भी शैक्षिक संस्था का दिन-प्रति दिन का प्रशासन विद्यार्थियो शिक्षको और अभिभावको की सम्मिलित समितियो को दे दिया जाय। शैक्षिक प्रशासन मे उस नीति पर अमल करना उत्तम होगा जिसे विनोबाजी ने बार बार सुझाया है कि न्याय विभाग की भाँति शिक्षा विभाग भी स्वायत्त रहे, यद्यपि खर्च सरकार से मिले। शिक्षा के कार्य-क्रमो के समन्वय के लिए स्थानीय जिला स्तरीय और राज्य-स्तरीय और राष्ट्रीय-स्तरीय समितियाँ हो। इन सभी समितियो मे शिक्षा के तीनो घटको—विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक—का प्रतिनिधित्व रहे।

पारस्परिक सम्बन्ध

आज की आधुनिक शिक्षा का एक अत्यन्त कष्टकर पहलू है अध्यापक और छात्र के सम्बन्धो की कटुता। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आधुनिक लोकतन्त्र म छात्र और अध्यापक के बीच नये सम्बन्धो की बुनियाद भी पड़े। शिक्षा दोनों के आदान प्रदान पर आधारित होनी चाहिए और इसका आधार छात्र और अध्यापक का सक्रिय सहकार हो। छात्र आज के लोकतन्त्र के युग मे, मूक साझेदार नही रह सकता। उसे एक सक्रिय साझेदार बनना है—शिक्षा के शैक्षिक और प्रशासनिक दोनों ही क्षेत्रो मे। इस दृष्टिकोण से समस्या के हल करने का प्रयास किया जायगा तभी हम छात्र-असन्तोष की समस्या का भी निराकरण कर सकेगे जो आज एक जागतिक समस्या बन रही है। हम यहाँ एक और बात कह देना चाहते हैं कि शैक्षिक प्रशासन म किसी प्रकार के निहित स्वार्थ का सृजन न होने पाये। हमे यह भूलना नही चाहिए कि अन्ततोगत्वा अध्यापक का चारित्र्य, व्यवहार और व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा ही शिक्षा के विभिन्न घटको के पारस्परिक सम्बन्ध के स्वरूप को निश्चित करेगी।

स—यही एक प्रश्न और उठता है कि क्या शिक्षा का विद्यार्थियो, अध्यापकों से ही सम्बन्ध है अथवा अभिभावकों को अपना सहयोग देना चाहिए। अब यह

आवश्यक हो गया है कि शिक्षा को विद्यार्थी, शिक्षक और अभिभावक का सम्मिलित उत्तरदायित्व माना जाय। इस काम के लिए भारतवर्ष म व्यापक प्रौढ शिक्षा की योजना प्रारम्भ करनी चाहिए। प्रौढ शिक्षा की इस योजना का सम्बन्ध केवल साक्षरता से ही न हो अपितु शिक्षा के व्यापक पहलुओं से हो। जहाँ तक अभिभावको के सहकार का सम्बन्ध है हमको यह स्वीकार करना चाहिए कि पिता से अधिक माता का शिक्षा के कामो मे भाग लेना अधिक फलदायी होगा।

ग—शिक्षा के विषय मे एक और प्रश्न है जो कुछ असाधारण-सा लगता है परन्तु जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह यह है कि क्या छात्र असन्तोष समाज के विकास के लिए स्वस्थ तत्त्व नही है? अगर है, तो शिक्षण की प्रक्रिया तरुणों की शक्ति का छोट-मोटे आन्दोलनो मे अपव्यय हुए बिना इस असन्तोष को जीवित कैसे रख सकती है। यह सच है कि अगर तरुण विद्रोह की चेतना खो देते हैं तो जिस समाज मे वे रहते हैं वह जड हो जायगा। आज विद्यार्थी विद्रोह का कोई स्पष्ट लक्ष्य और उद्देश्य नही दिखाई दे रहा है परन्तु इन व्यर्थ के आन्दोलनो के पीछे भी हम असन्तोष की एक ज्वाला देख सकते हैं। प्रश्न यह है कि इस विद्रोह की भावना को जीवित रखते हुए भी हम उसे एक व्यापक आधार कैसे दे सकते हैं। विनोबाजी ने अपने 'शिक्षण विचार' मे इस ओर सकेत किया है और यहाँ तक सुझाव दिया है कि तरुण विद्रोह शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर शिक्षाक्रम का अग हो, और उसका रचनात्मक शिक्षण हो।

घ—शिक्षा के कामो मे आपसी सम्बन्ध मधुर हो इसलिए समान काम के लिए समान योग्यतावालो के लिए समान वेतन के सिद्धान्त को स्वीकार करना चाहिए और शिक्षक के वेतनक्रम मे चाहे वे सरकारी सस्थाओ म काम कर रहे हैं अथवा गैर-सरकारी सस्थाओ मे विश्वविद्यालयो मे काम कर रहे हो अथवा उनसे सलग्न डिग्री कालेजो म कोई अन्तर नही होना चाहिए। निम्न स्तर पर काम करनेवाले और उच्चतम स्तर पर काम करनेवालो के वेतनक्रम मे १/३ से अधिक का अन्तर न हो। निम्नतम स्तर पर काम करनेवाले को उच्चतम पर काम करनेवाले से एक तिहाई से कम वेतन न मिले।

खण्ड—५

व्यावहारिक कदम

ऊपर जिन प्रस्तावो का सुझाव दिया गया है उनके कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक है कि प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा समितियाँ बनायी जायँ।

हम अनुभव करते हैं कि शिक्षा म किसी मौलिक परिवर्तन के लिए जन-साधारण का सहकार आवश्यक है, क्योंकि केवल किसी राजाज्ञा अथवा आदेश से उन परिस्थितियों का निर्माण नहीं होता जिनमें परिवर्तनों को कार्यरूप दिया जा सकता है। अत हमारा सुझाव है कि राज्य-स्तर पर एक ऐसी शिक्षा समिति का निर्माण किया जाय जिसमें वे शिक्षाविद शामिल किये जायँ जिन्होंने शिक्षा की समस्याओं पर चिन्तन किया है और शिक्षा के क्षेत्र में काम किया है। इस समिति के प्रभावशाली कार्यान्वियन के लिए यह समिति गैर-सरकारी, असाम्प्रदायिक और पक्षमुक्त होनी चाहिए जिसका तात्पर्य यह है कि समिति के सदस्य किसी भी दलगत राजनीति के सक्रिय कार्यक्रम में लिप्त न हों। इस समिति के सदस्य राज्य के शिक्षा विभाग के प्रशासन-वर्ग में से भी लिये जा सकते हैं, लेकिन समिति का सगठन ऐसा हो कि उसमें सरकारी सदस्यों का बाहुल्य न हो।

इस समिति का कार्यक्रम निम्न प्रकार होगा

(१) शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषयों पर सरकार को सलाह देना—(२) जनता और सरकारी प्रशासन के मध्य सम्पर्क का काम करना, (३) शिक्षा के ढाँचे और विषय में परिवर्तन के सम्बन्ध में सरकार को सुझाव देना। (४) जिन नीतियों के सम्बन्ध में सरकार और समिति में मतैक्य हो जाय उनके कार्यान्वियन म सरकार को सहायता देना। यह अच्छा होगा कि धीरे धीरे इस प्रकार की एक परम्परा बन जाय कि राज्य-सरकार शिक्षा-सम्बन्धी कोई नया कानून न बनाये या कोई नीति-परिवर्तन इस समिति की राय के बिना न करे।

आचार्यकुल इस शिक्षा-नीति को शिक्षा के कार्य के लिए अपना मत मानता है और यह यथाशक्ति यह चेष्टा करेगा कि जो नीति और कार्यक्रम यहाँ दिये गये हैं उनका अधिक-से अधिक प्रचार हो और वे समान रूप से जनता और सरकार दोनों को स्वीकृत हों। हमारा सुझाव है कि देश में जो भी प्रगतिशील शक्तियाँ शिक्षा में आमूल परिवर्तन करना चाहती हैं, यह शिक्षा नीति और कार्यक्रम उन सबको एक रंगमच पर लाने का साधन बने, जिससे यह सम्भव हो सके कि हम देश की शिक्षा में शीघ्रातिशीघ्र आमूल परिवर्तन ला सकें, जिसके बिना समाज में किसी प्रकार का आमूल परिवर्तन सम्भव नहीं होगा।

—केन्द्रीय आचार्यकुल समिति

नर्वदा प्रसाद

शिक्षकों की शिक्षा का स्तर

'वाटरलू का युद्ध इटेन के मैदान में जीता गया था'। यह कथन अब तक पुराना नहीं हुआ है। बहुत सारे शिक्षा के विशेषज्ञ आज भी यह मानते हैं कि किसी राष्ट्र का भविष्य उसके क्लासरूम में पलता है। यही बात भारत के लिए भी सही है। यह बात आसानी के साथ कही जा सकती है कि शिक्षक के शिक्षण का शिक्षा-पद्धति में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। अगर अच्छे, योग्य और विद्वान शिक्षक न हों तो कोई भी शिक्षा-पद्धति सफल नहीं हो सकती। इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षक लड़कों के सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक और मानसिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वह सभी शिक्षा-सम्बन्धी 'कार्निवल' का मुख्य अभिनेता होता है और उसकी योग्यता और क्षमता पर भविष्य के राष्ट्र-निर्माण करनेवालों के गुणों का विकास निर्भर करता है।

विकसित देशों की आधुनिक शिक्षा-पद्धति के अध्ययन से यह पता लगता है कि वहाँ शिक्षक के शिक्षण को बड़ा महत्त्व दिया जाता है। इस दिशा में उन देशों में बहुत प्रयास हुआ है, और इसका परिणाम भी अच्छा आया है।

शिक्षक की शिक्षा में उस समय तक कोई अच्छाई नहीं आ सकती जब तक कि संख्या पर काबू न पाया जाय। आज बहुत अधिक संख्या में शिक्षक हर साल पैदा किये जा रहे हैं, परन्तु उनके गुणों पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आप पूछ सकते हैं कि ऐसा क्यों? परन्तु क्या यह सत्य नहीं है

कि 'ट्रेनिंग कालेज' केवल प्रशिक्षण का प्रमाण-पत्र और डिप्लोमा बाँटते रहे हैं। इंगलैंड की मैक्नायर कमेटी रिपोर्ट देखकर यह पता लगता है कि जिन लोगों को शिक्षा देने की ट्रेनिंग दी जाती है, उन्हें जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिए। भारत में हमलोग ट्रेनिंग देने के कार्यक्रम में बहुत शीघ्रता करते हैं। इस परिस्थिति में हमें अच्छे किस्म के शिक्षक नहीं मिल सकेंगे। इसलिए संख्या पर पहले काबू पाना चाहिए। इस बात पर ध्यान दिया जाय कि ट्रेनिंग कालेजों की संख्या बहुत न बढ़े। राजनैतिक या और कोई सिफारिश से प्रभावित न हुआ जाय। केवल उन्हीं ट्रेनिंग कालेजों को मान्यता दी जाय जो योग्य हों और बताये हुए नियमों को पूरा करते हों।

गुणविकास

शिक्षकों की शिक्षा का अच्छा होना जरूरी है। इसीसे इसका लाभ और चमक-दमक है। गुण से हमलोगों का अर्थ है वह विशेषता जिसके द्वारा एक वस्तु अपने निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त करता है। प्राप्ति जितनी अच्छी होगी गुण उतने ही अच्छे होंगे। शिक्षकों की शिक्षा में हमें निम्नलिखित तीन बातों पर ध्यान देना चाहिए

१–ट्रेनिंग से पहले का कर्तव्य, २–ट्रेनिंग के बीच का कार्यक्रम, ३–ट्रेनिंग के बाद का कार्यक्रम।

१–ट्रेनिंग से पहले का कर्तव्य

यह बात आम तौर से कही जाती है कि जब एक आदमी को कुछ नहीं करना होता है तो वह ट्रेनिंग कालेज में ट्रेनिंग लेने जाता है। इस बात से हमलोगों को भयभीत नहीं होना चाहिए। एक समय में विज्ञान की शिक्षा के बारे में भी यही बात कही जाती थी। परन्तु आज परिस्थिति इसके विपरीत है। आज विज्ञान की शिक्षा आधुनिक अध्ययन और शोध का सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इसी प्रकार से हमलोगों को शिक्षकों की शिक्षा का स्तर ऊँचा करना है। ट्रेनिंग कालेजों में प्रवेश के लिए शुद्ध स्तर बनाया जाना चाहिए। अच्छी शिक्षा होने के अतिरिक्त प्रशिक्षण के अभ्यर्थी में इस विषय की दिलचस्पी भी होनी चाहिए। प्रवेश करनेवालों में सामाजिक, नैतिक गुण भी होना चाहिए। 'कैरिकुलम' पर विशेष ध्यान देना चाहिए और उसका शैक्षिक कार्यों से गहरा सम्बन्ध होना चाहिए।

प्रवेश करनेवालों का बी० ए० में दो विषय ऐसा जरूर रहा हो जिसकी शिक्षा उन्हें स्कूल में देनी है। आजकल बहुत सारे ट्रेनिंग लेनेवालों का एक

भी विषय ऐसा नहीं होता जिसकी शिक्षा उन्हें स्कूल में देनी है। परिणाम यह होता है कि ट्रेनिंग के बाद भी वे बेकार रहते हैं। इसलिए निम्नलिखित बातें अनिवार्य हैं। अगर ये न हों तो उन्हें प्रवेश न लेने दिया जाय।

१—उनकी शिक्षा अच्छी हुई हो और बी० ए० में उनके दो विषय ऐसे हों जो स्कूल में रहे हों।

२—दूसरे शैक्षिक कार्यों में उनकी योग्यता हो।

३—उस पेशे के लिए रुचि हो।

इस बात की परीक्षा लिखित जांच के द्वारा ली जा सकती है। रुचि की जांच भी जरूरी है।

२—ट्रेनिंग के बीच का कार्यक्रम

ट्रेनिंग के बीच में कार्यक्रम का यह उत्तरदायित्व है कि अच्छे और योग्य शिक्षक पैदा करें। आज के शिक्षक का काम ज्ञान देना नहीं है बल्कि वह सभी सामाजिक और राष्ट्रीय परिवर्तनों का निर्माण करनेवाला है और राष्ट्रीय और भावनात्मक एकीकरण की मुख्य शक्ति है। उसके लिए आवश्यक है कि वह शारीरिक तौर पर स्वस्थ हो। वह मानसिक स्तर पर चेतन हो। वह अपने अभिभावक, बड़ों, विद्यार्थियों और साथियों के साथ ठीक से रहना जानता हो। अगर उसे ये सारी बातें आती होंगी तो वह एक सफल शिक्षक बन सकता है। उसे अपने सभी उत्तरदायित्वों को निबाहना है। यही कारण है कि शिक्षा के शब्द को हमलोगों ने प्रशिक्षण से बदल दिया है। मेरी राय है कि शिक्षकों की ट्रेनिंग का कार्यक्रम बिल्कुल ही बदल दिया जाय और उसमें समय की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन लाया जाय।

बी० एड० का कैरिकुलम

नयी दिल्ली में नेशनल कौंसिल आव एजुकेशनल रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग में शिक्षकों की शिक्षा के विभाग की ओर से बी० एड० के कैरिकुलम पर उल्लेख किया था। सौभाग्य से मुझे उसे देखने का अवसर मिला और मैंने इस पर अपनी आलोचनाएँ भेजीं।

मैं यह समझता हूँ कि सामाजिक, नैतिक, विकास के कार्यक्रमों में और भी कार्य जोड़ जायें, केवल सैद्धान्तिकरण काफी नहीं है। माध्यम कार्यानुभव होना चाहिए। प्रशिक्षण लेनेवालों का वातावरण ऐसा हो कि वह भी सभी कार्यक्रमों में भाग ले सकें, परन्तु इस व्यावहारिक कार्यक्रम के लिए अधिक

समय और सुविधाओं की आवश्यकता होगी। इसलिए इस शिक्षा का चरित्र भावात्मीय हो।

इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण लेनेवालों के विकास के लिए सभी तरह के कार्यक्रम होने चाहिए। इस बात की भी कोशिश होनी चाहिए कि नये प्रवेश लेनेवालों में एक शिक्षक के समान वृत्ति बने। क्योंकि ऐसी वृत्ति रखनेवाले लोग प्रशिक्षण पूरा करने के बाद जब बाहर आयेंगे तो सभी समस्याओं को सफलतापूर्वक हल कर सकेंगे।

३—प्रशिक्षण के बाद का कार्यक्रम

इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि चाहे कितनी ही अच्छी शिक्षा दी जाय, प्रशिक्षण लेनेवालों के लिए यह जरूरी है कि जो कुछ उन्होंने सीखा है समय-समय पर उसको फिर से दोहरायें।

अन्त में मैं यह कहना चाहूँगा कि शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए योग्य लोगों, उचित इमारतों, साधनों, अच्छे वेतन, और इस तरह के वातावरण की आवश्यकता होगी जिसमें मन लगाकर काम किया जा सके। अगर ये सारी सुविधाएँ प्राप्त हो सकीं तो अवश्य शिक्षकों की शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा, और तब हमलोग यह साबित (सिद्ध) कर सकेंगे, जैसा कि कोठारी-रिपोर्ट में है कि शिक्षकों की शिक्षा पर जो पैसे खर्च किये जाते हैं, वह खर्च नहीं है। विनियोग है, जो भविष्य में निश्चित रूप से अच्छा फल देगा।

कहा जाता है कि देर आये दुरुस्त आये, अब भी समय है, हमें परिस्थिति की गम्भीरता को समझना चाहिए और हमें बहुत देर होने से पूर्व ही सुधार लाना चाहिए।

के० पी० ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद

सम्पादक मण्डल -
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री यशोधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष : २०
अंक : ७
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

फरवरी, '७२

•

निवेदन

• 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
• 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
• पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
• रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित, एवं इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी-२ में मुद्रित।

पहिले डाक-व्यय दिये बिना भजने का स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस न० ४६ रजि० स० एल० १७२३

वर्ष : २०
अंक : ८

- ग्रामस्वराज्य में शिक्षा
- शिक्षा में क्रान्ति का प्रयास शुरू हो
- समाजवाद और समाजवादी शिक्षा के आधार

मार्च, १९७२

ग्रामस्वराज्य और शिक्षा

नयी तालीम के इस अंक में ग्रामस्वराज्य में शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले दो लेख छपे हैं। एक है श्री धीरेन्द्र मजूमदार का और दूसरा है श्री गंगाधर पाटनकर का। श्री धीरेन्द्र मजूमदार लिखते हैं 'आज बिहार के कुछ प्रखण्डों में (पूर्णिया, सहरसा और मुसहरी) पुष्टि का प्रथम चरण पूरा हो गया है। अर्थात् इन प्रखण्डों की जनता में विचार का इतना प्रसार हो गया है कि अब वह ग्रामस्वराज्य की सृष्टि की बात सोच सके। दूसरे शब्दों में जिन ग्रामदानी गाँवों में पुष्टि का काम हो चुका है वहाँ ग्रामस्वराज्य की सृष्टि का काम प्रारम्भ करना चाहिए।

वर्ष : २०
अंक : ८

यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि सृष्टि के नाम पर ('नव निर्माण' के नाम पर) प्रारम्भ से ही ग्रामसभा के मानस में आर्थिक विकास की बात प्राथमिकता लिये है। गांधीजी का विचार था कि किसी राष्ट्र का भौतिक विकास उसके शैक्षिक विकास के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए वे नयी तालीम के माध्यम से राष्ट्र की शिक्षा को राष्ट्र के भौतिक विकास का साधन बनाना चाहते थे। वे कहते थे कि राष्ट्र या गाँव का विकास कोई अलग प्रवृत्ति नहीं है वरन् उसे शिक्षा का परिणाम होना चाहिए। इसलिए उन्होंने समाज की उत्पादन प्रवृत्तियों एवं सामाजिक तथा प्राकृतिक परिवेश के माध्यम से शिक्षा-पद्धति की बात कही। किन्तु यह देश का दुर्भाग्य था कि उनकी बात नहीं सुनी गयी। पुरानी शिक्षा पद्धति ज्यों-की त्यों चलती रही और उसका नये विकास

कार्य से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि विकास-कार्य से सर्वसाधारण का उतना हित नहीं सम्पन्न हुआ जितनी आशा की गयी थी।

अतः ग्रामस्वराज्य की भूमिका मे सबसे पहली बात जो करनी है वह यह कि ग्रामदानी गाँवो के लिए जो शिक्षा-पद्धति विकसित की जाय उसका अन्तरग सम्बन्ध उस सारे क्रियाकलाप से हो जो जनता के विकास के लिए किया जा रहा है। दूसरे शब्दो मे ग्रामस्वराज्य की ओर अग्रसर गाँवो मे शिक्षा का जो भी रूप हो उसमे ग्राम-विकास का समस्त कार्यक्रम शिक्षा का माध्यम बने। जाहिर है कि ऐसी शिक्षा-पद्धति केवल स्कूल की चहारदीवारी के भीतर बन्द नहीं रहेगी और उसे अपने दायरे मे गाँव के बच्चे बूढे सभी को लेना होगा। क्या काम होगा इस सम्बन्ध मे धीरेन्द्र भाई के निम्न सुझाव है

१—एक तो प्रचलित विद्यालयो मे से कुछ को, जहाँ उसके लिए शिक्षकों की अनुकूलता हो, इस नयी योजना मे परिणत करना होगा।

२—दूसरे कुछ ग्रामसभा क्षेत्रो मे सरकार को सहायता तथा मान्यता के बिना इस नयी योजना के अनुसार कुछ नये प्रयोग-केन्द्र कायम किये जायँ जहाँ छात्रो का प्रमाण-पत्र ग्रामस्वराज्य-सभा या प्रखण्डस्वराज्य-सभा को ओर से दिये जायँ और उनमे से जो छात्र पुरानी पद्धति से परीक्षा देना चाहे उन्हे इस मॉडल विद्यालय के शिक्षक सहायता करें।

३—इन प्रयोग-केन्द्रो मे यह बात मुख्य हो कि विद्यालय और शिक्षक सारे गाँव-समाज को ही शिष्य के रूप मे मान्य करें। इस केन्द्र के माध्यम से ग्राम-विकास भी सधे और शिक्षण-कार्य भी हो। गाँव के कामकाजी किसान, मजदूर तथा अन्य लोग इसके छात्र होगें जो शिक्षको और अन्य छात्रो के साथ मिलकर अपना और गाँव का काम करेंगे। केन्द्र के व्यय के लिए समूची जिम्मेदारी ग्रामसभा की हो। भाई पाटनकरजी ने इसकी व्यावहारिक योजना बनायी है।

पाटनकरजी ने मध्य प्रदेश मे (बैतूल मे) जो प्रयोग किये हैं, उस सम्बन्ध मे भी नयी तालीम के इसी अक मे जो लेख छपा है, उसमे उन्होने ग्राम-विकास के सारे कार्यक्रम मे शिक्षक-छात्र और गाँव के

नागरिक के समान सहकार की बात कही है। उन्होने कहा है कि स्कूल की जमीन मे भले ही बालक प्रायोगिक खेती का काम करें सामान्यत: वे सभी किसानो के खेतो मे वैज्ञानिक खेती करेंगे। अतः शिक्षक को खेती के काम मे निष्णात होना चाहिए। इसी प्रकार बालक गोपालन, कताई-बुनाई, तेल-साबुन बनाना, आदि दूसरे कुटीर उद्योग मे भी काम करेंगे।

इन दोनो लेखो मे प्रमुखत नीचे लिखी बातें कही गयी हैं

(१) शिक्षा अगर केवल पढने-लिखने यानी सैद्धान्तिक ज्ञान देने तक ही सीमित रही तो उससे इस विकासशील राष्ट्र की समस्याओ का हल नही होगा। उसे राष्ट्र के लिए किये जानेवाले समस्त कामे को माध्यम बनाकर चलना होगा। अगर ऐसा नही हुआ तो वह उत्पादक और हितकर नही होगी। अत राष्ट्र के विकास के लिए जो धन्धे चल रहे हैं उन्हें शिक्षा का माध्यम बनाया जाय अर्थात् क्षमता के अनुकूल उन धन्धो और कामो के वैज्ञानिक शिक्षण का प्रबन्ध बच्चों के लिए ही नहीं, प्रत्येक नागरिक के लिए किया जाय।

शिक्षा को अगर इस विकास का माध्यम नही बनाया गया तो एक बार फिर शिक्षा और विकास अलग-अलग हो जायेंगे और उस दशा मे धीरेन्द्रभाई के शब्दो मे ही शिक्षा के माध्यम से विज्ञान और समाजशास्त्र का शिक्षण सर्वसाधारण के लिए सुलभ नही बनाया गया तो नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) से मुक्ति मिल भी जाय तो उसके स्थान पर लोकतंत्र (डेमोक्रेसी) की स्थापना के बदले तकनीकी-तंत्र (टेक्नोक्रेसी) आ जायगा। नौकरशाही मे तो मजबूत कॉमन-सेन्सवाले किसी सामान्यजन का प्रवेश हो भी सका है लेकिन टेक्नो-क्रेसी में तो सामान्यजन के लिए दरवाजा बन्द ही रहेगा। अत यदि शिक्षा को सार्वजनिक बनाना है तो सर्वजन के स्वाभाविक कार्यक्रम को शिक्षा का माध्यम बनाना होगा इसलिए गाधीजी ने नयी तालीम मे सर्वसाधारण के उत्पादक काम और उसके प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण को शिक्षा का माध्यम बनाने की बात की थी।

२—दूसरी बात इन लेखो मे यह कही गयी है कि इस प्रयास मे शिक्षा को संस्था की चहारदीवारी से बाहर निकालना आवश्यक होगा। स्कूल-कालेज के सीमित दायरे से निकलकर शिक्षा को पूरे

समाज के समग्र शिक्षण की बात सोचनी होगी। सस्थागत शिक्षण का समाजगत शिक्षण से अनिवार्य सम्बन्ध स्थापित करना होगा, और इसके लिए पाटनकरजी का सुझाव मानना होगा कि जो लडके स्कूलो मे आज केवल सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करने का काम करते हैं उन्हे समाज के उत्पादक वर्ग के साथ उत्पादन का काम सीखना और करना होगा। उसी तरह समाज का जो वर्ग केवल उत्पादन मे लगा है (किसान और मजदूर वर्ग) उसे भी पढाने लिखाने का काम करना होगा। इसी दृष्टि से भी नयी तालीम को 'आधा समय काम करने और आधा समय पढने की' बात माननी होगी। चीन ने तो 'हाफ-हाफ स्कूल' चलाकर इस बात को माना है, पता नही समाजवाद के प्रति प्रतिश्रुत यह देश इस बात को कब मानेगा। पाटनकरजी ने इस सम्बन्ध मे सुझाव दिया है कि रोज लगभग ३ घण्टा प्रातः ७ से १० बजे तक काम और २ से ५ बजे तक पढने लिखने का काम करना चाहिए। इस पर भी विचार करना होगा। आज केवल सस्थागत शिक्षण की दृष्टि मे रखते हुए जो टाइमटेबुल बनाया गया है उसमे परिवर्तन करना होगा।

३—शिक्षण की इस नयी व्यवस्था मे समुदाय का पूर्ण हार्दिक सहकार अनिवार्य है। सरकार इस प्रकार की शिक्षा के लिए कभी भी स्कूलो को पर्याप्त साधन नहीं दे सकेगी। वह तो ६ से १४ वर्ष के बच्चो को कोरी किताबी शिक्षा देने के लक्ष्य को १९८० तक, जिसके लिए पहले १९६५ तक का समय निश्चित किया गया था, पूरी करले तो उसे ही खुदा का शुक्र मानना चाहिए। अत बालको को समुदाय के खेत एव उद्योग धन्धो और कल-कारखानो मे शिक्षा देने का प्रबन्ध करना होगा। साम्यवादी देशो मे यह राजाज्ञा से सहज सम्भव हुआ है परन्तु लोकतत्र मे इसके लिए लोक मे चेतना जगानी होगी और जनता का सहयोग प्राप्त करना होगा। हमारा विश्वास है कि उन ग्रामदानी गाँवों मे जिनमे पुष्टि का काम हो गया है इस प्रकार की चेतना उत्पन्न हुई है और उनसे सहयोग प्राप्त होगा। इस सहयोग का व्यावहारिक रूप यही होगा कि गाँव की समस्त शिक्षा का उत्तर-दायित्व गाँववालो को सौंपा जाय। गाँववालो की शिक्षा की स्वायत्त समितियाँ अथवा ग्रामसभा की शिक्षा उप-समितियाँ बनायी

जायें। इन समितियों के हाथ मे सारा शैक्षिक प्रशासन रहे और सरकार उनको सीधा अनुदान दे। यदि यह अनुदान पूरा नही पडता है तो आवश्यक धन चाहे ग्रामकोष से प्राप्त किया जाय, चाहे चन्दे से।

हम यहीं एक बार जोर देकर कहना चाहते हैं कि शिक्षा का प्रशासन इन समितियो के हाथ मे ही रहे क्योंकि शिक्षा का किसी भी प्रकार का सरकारीकरण लोकतंत्र के हित मे नहीं होगा। लोकतन्त्र को सबसे बड़ा खतरा शिक्षा के सरकारीकरण से होगा इसे भूलना नही चाहिए।

४—चौथी बात इन लेखो मे यह कही गयी है कि गाँव मे जो स्कूल चल रहे हैं उनमे भी तत्काल वांछित सुधार करने होंगे। अगर ऐसा नही किया गया और प्रचलित स्कूलो को अपने ढंग पर ही चलते रहने दिया गया तो एक ही गाँव मे शिक्षा की दो समानान्तर प्रणालियाँ चलेंगी जो न शिक्षा के हित मे होगी और न समाज के। अत प्रचलित स्कूलो मे नयी योजना के अनुरूप सुधार करने होगें। हमे यह देखना होगा कि जिन ग्रामदानी गाँवो मे नयी योजना चले उनमे शिक्षा की दो समानान्तर प्रणालियाँ न चलें।

सक्षेप मे जिन ग्रामदानी गाँवो मे निर्माण का काम प्रारम्भ होने जा रहा है उनको शिक्षा के काम को प्राथमिकता देनी होगी। ग्राम-स्वराज्य का सारा काम शिक्षण की प्रक्रिया बनकर चलेगा तभी निर्माण और शिक्षा मे तालमेल बना रहेगा, नही तो ग्रामस्वराज्य मे जो भी निर्माण का काम होगा उससे सर्वसाधारण का हित सम्पन्न नहीं होगा।

—वंशीधर श्रीवास्तव

•धीरेन्द्र मजूमदार

शिक्षा में क्रान्ति का प्रयास शुरू हो

[ग्रामदान के माध्यम से ग्रामस्वराज्य का आन्दोलन पूरे देश मे विनोबाजी के नेतृत्व मे चल रहा है। बिहार मे इस आन्दोलन को विशेष रूप से संगठित करने का प्रयास किया गया है। सहरसा जिले मे जिले के स्तर पर सघन प्रयत्न हो रहा है। श्री धीरेन्द्र मजूमदार सहरसा मे लम्बे अर्से से अपना समय दे रहे हैं। श्री जयप्रकाशजी मुसहरी प्रखण्ड (मुजफ्फरपुर) मे अपना समय दे रहे हैं। श्री जयप्रकाशजी मुसहरी मे शिक्षा मे परिवर्तन की कोशिश मे हैं। पूर्णिया जिले के रुपौली प्रखण्ड मे भी उसी ढग का प्रयास हो रहा है। श्री धीरेन्द्र मजूमदार चाहते हैं जिन क्षेत्रों मे ग्रामस्वराज्य-सभाएँ बनी हैं वहां उनके द्वारा शिक्षा में क्रान्ति का प्रयत्न शुरू किया जाना चाहिए। यहा हम उनके एक पत्र का एक अंश पाठकों की सेवा मे प्रस्तुत कर रहे हैं जिसे उन्होंने श्री कृष्णराज मेहता के नाम लिखा है। साथ ही उनका अन्य लेख भी दे रहे हैं जिसमे उन्होंने ग्रामाश्रमकुल के लिए शिक्षा का कार्यक्रम बताया है। स०]

मैं मानता हूं कि ग्रामस्वराज्य की पहली जिम्मेदारी शिक्षा मे क्रान्ति करने की है। १९३७ मे जब कांग्रेस की मिनिस्ट्री हुई थी तो गांधीजी ने देश के नेताओं को सलाह दी थी कि उनको सबसे पहला काम शिक्षा मे क्रान्ति करना

है, क्योंकि जब तक मनुष्य का निर्माण नही होता है तब तक राष्ट्र निर्माण सम्भव नही है।

अभी मुसहरी प्रखण्ड म काफी सख्या म ग्रामसभा के बनते ही जयप्रकाश बाबू ने नयी शिक्षा की दिशा मे प्रयोग करने को कहा क्योकि वे भी मानते हैं कि किसी प्रकार के स्वराज्य को अगर सगठित करना है तो सबसे पहले सही शिक्षा की व्यवस्था करनी है। मुसहरी म ये प्रयोग सणोसरा के ज्योतिभाई कर रहे हैं। वे सरकारी स्कूलों में सुधार की दिशा मे सोच रहे हैं। तुम लोगो को भी मरौना प्रखण्ड म शिक्षा का प्रकार क्या होगा, उस पर ध्यान देना चाहिए। मुसहरी के प्रयोग के अनुभव से यहाँ का भी काम चलाना होगा ताकि तत्काल कुछ बदल हो सके। लेकिन साथ-साथ आगे बढकर और गहराई का प्रयोग भी हाथ म लेना चाहिए।

१९३७ म बापू ने स्कूली शिक्षा में सुधार की बात की थी और उसी दिशा मे मुसहरी एव मरौना का प्रयोग होना चाहिए। मैं मानता हूँ कि ज्योतिभाई के मार्गदर्शन म वह काम हो सकेगा। लेकिन १९४५ म गाधीजी ने जो समग्र नयी तालीम की बात कही थी, वह बहुत महत्व की है। उन्होने कहा था कि शिक्षा की अवधि गर्भ से मृत्यु तक है। शिक्षाशाला पूरा समाज है। उस समय हिन्दुस्तानी तालीमी सघ, रिपोर्ट छापने के सिवाय और कुछ न कर सका। बापू के 'कैबिनेट मिशन' म फँस जाने के कारण तथा साम्प्रदायिक दगे के मुकाबले के कारण तालीमी सघ को उनका मार्गदर्शन नही मिल सका।

१९५६ म आर्यनायकम विनोबाजी के साथ तमिलनाडु म पदयात्रा में रहे। उनसे प्रेरणा लेकर १९५७ म हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की दिल्ली की बैठक म उन्होंने समग्र नयी तालीम का प्रस्ताव स्वीकार कराया। उस प्रस्ताव को पेश करते समय नायकमजी ने जो वक्तव्य दिया था वह बहुत ही महत्त्व का था।

प्रस्ताव और नायकम्‌जी के वक्तव्य को पढकर मुझको बहुत ही उत्साह हुआ था और मैंने उनसे तुरन्त सम्पर्क कर सुझाव रखा था कि वे और आशा दीदी किसी ग्रामदानी गाँव म बैठकर इसका प्रयोग करें। मैंने भी इसमें पूरा सहयोग करने का वादा किया था। उसी उत्साह म मैंने समग्र नयी तालीम' पुस्तक भी लिख डाली थी।

वे इसकी तैयारी कर रहे थे, इसी बीच तालीमी सघ के विलीनीकरण के प्रश्न को लेकर उन लोगो के दिल कुछ टूट गये और इस प्रकार के नये काम के

लिए उत्साह नहीं रह गया। फिर सेवाग्राम को लेकर उनके मन में निराशा रही और समग्र नयी तालीम का प्रश्न हमेशा के लिए पीछे पड गया।

फिर पिछले साल सहरसा के काम के सिलसिले में मैंने समग्र नयी तालीम के प्रयोग के लिए ग्राम गुरुकुल की योजना रखी थी। मैं मानता हूँ कि अब उस दिशा में कुछ काम करने का प्रयास करना चाहिए। मेरी यात्रा की अवधि में अगर कुछ निकल आवे तो उत्तम होगा। इसके सिवाय ग्रामस्वराज्य टिकेगा नहीं। मैं मानता हूँ कि अहिंसक समाज-रचना के लिए गाधीजी ने जितनी परिकल्पनाएँ की हैं उनमें समग्र नयी तालीम का विचार श्रेष्ठ है। उन्होंने भी एक बार कहा था कि नयी तालीम उनकी सर्वश्रेष्ठ देन है।

× × ×

ग्राम-गुरुकुल आचार्यकुल का भावी कार्यक्रम

ग्रामस्वराज्य ने राष्ट्रीय मोर्चे के दो प्रखण्डों, रुपौली (पूर्णिया) और मरौना (सहरसा), में पुष्टि का प्रथम चरण पूरा हो गया। अर्थात् इन प्रखण्डों की जनता में विचार का इतना उद्बोधन हो गया है कि वह अब ग्रामस्वराज्य की सृष्टि की बात सोच सके। अतः यह आवश्यक है कि अब ग्रामस्वराज्य की सृष्टि की योजना बनाकर उसके लिए आवश्यक पूर्व तैयारी करना आरम्भ कर दें। यह बात हमें स्पष्ट रूप से समझ लेनी होगी कि आरम्भ से ही ग्रामसभा के मानस में आर्थिक विकास की बात प्राथमिकता लिये हुए है। अतः यह आवश्यक है कि इस सवाल पर सर्वोदय कार्यकर्ताओं, ग्रामसभा के लोगों और आचार्यकुल के सदस्यों का दिमाग तथा दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिए। हम आशा करते हैं कि ये सब लोग विकास के सवाल पर प्रचलित राष्ट्रीय नेतृत्व की गलतियाँ नहीं दुहरायेंगे।

सन् १९३७ में अंग्रेजी राज के अन्तर्गत ही पहली कांग्रेसी सरकारें बनी तभी से गांधीजी ने इस बात पर जोर देना आरम्भ कर दिया था कि आजाद भारत में गुलाम भारत की शिक्षा पद्धति के बदले स्वराजी भारत की पोषक शिक्षा की स्थापना करनी चाहिए। उसके लिए उन्होंने शिक्षा में क्रान्ति का, नयी तालीम का विचार दिया। उनके विचार में किसी राष्ट्र का भौतिक विकास उसके नागरिक विकास के बिना सम्भव नहीं है। इसलिए वे राष्ट्र की शिक्षा को राष्ट्र के भौतिक विकास का कारण बनाना चाहते थे। वे कहते थे कि राष्ट्र या गाँव का विकास कोई अलग प्रवृत्ति नहीं है वरन् यह

शिक्षा का परिणाम है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होने आवश्यक सामग्री के उत्पादन, सामाजिक तथा प्राकृतिक परिवेश के माध्यम से शिक्षा-पद्धति को विकसित करने की बात कही। किन्तु यह हमारे देश का दुर्भाग्य था कि आजादी के तत्काल बाद ही गांधीजी की मृत्यु हो गयी और उनके बाद राष्ट्र के नेताओ ने उनकी बात को एकदम छोड़कर अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को ज्यो-का-त्यो देश मे रहने दिया। इस पद्धति मे राष्ट्र का विकास और शिक्षा अलग-अलग पड गये हैं और अब विकास तथा शिक्षा की पुरानी अंग्रेजी पद्धति पर चलते चलते असफल होने पर हमारे शासक कभी-कभी कहते सुने जाते हैं कि हमने गांधीजी की बात न मानकर गलती की है। स्वय श्री जवाहरलालजी ने यह बात अनेक बार कही थी। इस हालत मे आज जब गाँव-गाँव मे ग्रामस्वराज्य यानी ग्राम-गणतत्रो की स्थापना का सपना साकार होने के लक्षण दिखाई देने लगे हैं तब ग्रामस्वराज्य के नेतृत्व को सोचना होगा कि वह राष्ट्र व नेतृत्व के इस दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव से लाभ उठायगा या फिर से वही गलती करेगा जिसके कारण आज हमारा राष्ट्र पछ्ता रहा है।

इसमे कोई सन्देह नही है कि ग्रामस्वराज्य के नेताओ को देश के पुराने अनुभव से लाभ उठाकर गाधीजी के सुझाये मार्ग से ग्राम विकास का मार्ग खोजना होगा। तभी वास्तविक ग्रामस्वराज्य और विकास हो सकेगा। १९३७ मे गाधीजी ने पाठशालाओ मे उद्योग दाखिल कर शिक्षा मे सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश दाखिल करने की योजना पेश की थी। इस प्रकार से उन्होने शिक्षा को स्कूल की चहारदीवारी से बाहर निकलने की ओर सकेत किया था। किन्तु जब १९४५ मे जैसे ही पूर्ण स्वराज्य की सम्भावना प्रकट होने लगी तभी उन्होंने बुनियादी शिक्षा के सेवको से कहा था, 'मैं अब आप को छोटे समुन्दर से महासागर में ले जाना चाहता हूँ। अब तालीम की अवधि गर्भ से लेकर मृत्यु पर्यंत होगी और सारा समाज ही उसकी शाला बनेगा।'

अत अब ग्रामसभा को और आचार्यकुल के लोगो को मिलकर सोचना होगा कि उन्हे अपनी समस्त शिक्षणशाला और पद्धति को नया रूप देकर गाँव के समस्त कार्यक्रम को शिक्षा का माध्यम बनाना होगा। इन सबका एक निश्चित कार्यक्रम विकसित करना होगा। इससे स्पष्ट है कि तब नयी शिक्षा को नीचे दर्जे से आरम्भ करना होगा अर्थात् गाँव की नयी तालीम के लिए पहले मिडिल स्कूलो का सयोजन करना व्यावहारिक होगा। चूँकि यह शिक्षा का कोई पूर्व निर्दिष्ट और निश्चित रूप अभी नहीं है अत इसे एक दिशा-

निर्देश के रूप मे मानकर चलना होगा। अभी हमे यह मानकर चलना होगा कि अभी गाँव के सारे कार्यक्रम को हम शिक्षा के समवाय के रूप मे अभ्यास मे नही ला सकते हैं। इसलिए आरम्भ म बच्चो को गाँव के सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम के अभ्यास के साथ-साथ कुछ किताबी शिक्षाए भी देना होगा और क्रमश समवाय-पद्धति की प्रणाली विकसित करनी होगी। आज इस काम का एक अच्छा प्रयोग मध्य प्रदेश मे हमारे मित्र श्री गागाधरजी पाटनकर कई सालो से कर रहे हैं। यह उनकी एकान्त साधना का फल है और मैं मानता हूँ कि हम जिस शिक्षा का जन्म होते देखना चाहते हैं श्री पाटनकरजी ने यहाँ उसका काफी सफल रूप विकसित हुआ है। मेरी राय मे सहरसा मोर्चे की शिक्षण-योजना तथा उसके माध्यम से विकास योजना का कार्यक्रम भाई श्री पाटनकरजी की सलाह से चले तो अच्छा होगा।

गाधीजी की समग्र नयी तालीम की योजना को साकार रूप देने के लिए हम दो तरह के प्रयोग करने चाहिए

१—एक तो प्रचलित विद्यालयो मे से कुछ को, जहाँ उसके लिए शिक्षको की अनुकूलता हो इस नयी योजना मे परिणत करना होगा।

२—दूसरे कुछ ग्रामसभा क्षेत्रो मे सरकार की सहायता तथा मान्यता के बिना इस नयी योजना के अनुसार कुछ नये प्रयोग-केन्द्र कायम किये जायँ जहाँ पर छात्रो को प्रमाण-पत्र ग्रामस्वराज्य-सभा या प्रखण्डस्वराज्य-सभा की ओर से दिये जायँ और उनम से जो छात्र पुरानी पद्धति से परीक्षा देना चाहेँ उन्हे इस माडल विद्यालय के शिक्षक सहायता करें।

इन प्रयोग केन्द्रो म यह बात मुख्य हो कि विद्यालय और शिक्षक सारे गाँव समाज को ही शिष्य के रूप म मान्य करें। इस केन्द्र के माध्यम से ग्राम विकास भी सधे और शिक्षण-काय भी हो। गाँव के कामकाजी किसान मजदूर तथा अन्य लोग इसके छात्र होंगे जो शिक्षको और अन्य छात्रो के साथ मिलकर अपना और गाव का काम करेंगे। केन्द्र के व्यय के लिए समूची जिम्मेदारी ग्रामसभा की हो। भाई पाटनकरजी ने इसकी व्यावहारिक योजना बनायी है।

अत यह आवश्यक है कि इस तरह के दोनो प्रयोगो के लिए कुछ कार्यकर्ताओ और वतमान म शिक्षा का काम कर रहे शिक्षको की एक टोली कुछ दिनो तक श्री पाटनकरजी के साथ रहकर अनुभव करे। कार्यकर्ताओ को

चूंकि अपना सारा जीवन इस काम मे लगाना होगा अतः उनका प्रशिक्षण अधिक समय का होगा और जो शिक्षक अपने विद्यालय मे आकर कुछ इस तरह का सुधार चाहेगे उनका शिक्षण कुछ कम समय का हो सकता है। हम सोचते हैं कि कार्यकर्ताओ मे से कुछ तो अपने केन्द्रो पर बैठकर अपने प्रयोग म लगे रहेगे और कुछ चुने हुए उन विद्यालयो मे जिनके शिक्षक अपने विद्यालयो मे इस नयी शिक्षा के अनुरूप सुधार करने के विचार से पाटनकरजी के यहाँ से शिक्षण लेकर आये हैं, जाकर उन विद्यालयो का मार्गदर्शन करेंगे। इन दोनो प्रकार के कार्यकर्ता समयानुसार आपस मे काम बदल भी सकते हैं। केन्द्र-सचालको को कृषि का सज्ञ स्नातक होना आवश्यक होगा अन्यथा वे गाँव के कुछ काम नही आ सकेंगे।

हम सरकारी-स्तर पर इस नये प्रयोग मे भरपूर सहयोग की अपेक्षा करते हैं। शिक्षा विभाग अपने कुछ शिक्षको को इसके लिए तैयार करे जो कम-से-कम एक माह का इस तरह का प्रशिक्षण लेने को तैयार हो और जो फिर अपने विद्यालय को इस आधार पर कुछ सुधारना चाहते हो। आचार्यकुल के सदस्यो को इसके लिए आगे आना चाहिए। इस प्रकार के प्रशिक्षण के लिए पैंपूल जाने के लिए शिक्षको को विभागीय सुविधा हो। यानी उन्हे वहाँ विभागीय स्तर पर (ऑन डेपुटेशन) भेजा जाये और उन्हे प्रशिक्षण काल के लिए सवेतन अवकाश मिले तथा आने-जाने का मार्ग-व्यय भी सरकार की ओर से दिया जाय। बाद को वापस आने पर इन विद्यालयो को एक मॉडल विद्यालय बनाने मे हर सम्भव सरकारी सुविधा और सहायता उन्हे दी जाय। आचार्यकुल और शिक्षा विभाग मिलकर समय-समय पर इन प्रयोगो की समीक्षा करते रहें और समयानुकूल परिवर्तन करते रहे। किन्तु यह ध्यान रखा जाय कि इससे शिक्षको तथा विद्यालयो के काम मे अनावश्यक सकुचन पैदा न हो।●

गंगाधर पानटकर

ग्रामस्वराज्य में शिक्षा

१—वर्तमान शिक्षा पद्धति बहुत ही अल्प अपर्याप्त और समस्यामूलक है। भारत में शिक्षा नौकरी के लिए दी जा रही है जिसके परिणामस्वरूप देश में बेकारी की भयंकर समस्या दानव बन कर राष्ट्र के सामने खड़ी है।

२—शिक्षा से राष्ट्रीय समस्याएँ हल होनी चाहिए और मानव जीवन सुखी, समृद्ध और तेजस्वी बनना चाहिए। शोषण मुक्त शासन मुक्त अहिंसक समाज के लिए प्रत्येक गांव में गर्भ से लेकर मृत्यु तक की शिक्षण-योजना आवश्यक है। ऐसी शिक्षा की कल्पना गांधीजी ने देश के लिए की थी। इसमें समूचा गाँव ही विद्यालय बनता है। शिक्षा स्वावलम्बी और शासन-मुक्त हो, अध्यात्म और विज्ञान से भरी हो। विनोबा इसे ग्राम विश्वविद्यालय कहते हैं। श्री धीरेन्द्रभाई इसे ग्राम गुरुकुल कहते हैं।

३—प्रारम्भ जिन गाँवों में पुष्टि हो चुकी हो तथा यह अनुभव करती हो कि नये जीवन और नये समाज के लिए नयी शिक्षा आवश्यक है वहाँ ग्रामसभा का ऐसा प्रस्ताव होना चाहिए और एक शिक्षा-समिति का गठन होना चाहिए जिसमें प्रमुख व प्रभावी सदस्यों के साथ अध्यापक और शान्तिसैनिक प्रतिनिधि रहें। यही लोग शिक्षा-नीति बनायें और उसके आधार पर पाठ्यक्रम की रूपरेखा तय करें।

४—वातावरण की तैयारी अत शुद्धि, वाह्यशुद्धि, प्रभातफेरी, प्रार्थना और स्वाध्याय, ग्राम-सफाई और कम्पोस्ट तथा घर घर म शौचालय बनाने से काम आरम्भ हो। इन सारे कार्यक्रमो म शिक्षक, छात्र और गाँव के नागरिक, सभी भाग लेंगे। क्षेत्र के आचार्यकुल और ग्राम-गुरुकुल के सदस्य तो इसम अवश्य ही भाग लें।

४—पूर्वतैयारी प्रेम आनन्द उत्साह, सौन्दर्य का वातावरण बने और शरीरश्रम के प्रति अगाध श्रद्धा पैदा हो इसके लिए गाँव के विचारवान और प्रतिष्ठित लोगो को कुछ शरीरश्रम का काम करना होगा। अत वे सभी इस प्रकार के कामो म भाग लेंगे।

रोज लगभग ३ घण्टा काम और ३ घण्टा पढाई का समय मानें तो प्रात स्नान से ग्यारह और दोपहर बाद दो से पाँच का समय क्रम रखना ठीक होगा। प्रधान शिक्षक कृषि विज्ञान का स्नातक हो तो उत्तम होगा। विद्यालय की थोडी जमीन हो जहाँ प्रायोगिक खेती होगी बाकी सामान्यत सभी किसानो के खेतो म वैज्ञानिक खेती बालक-बालिकाएँ करेंगी। शिक्षक इन कामो म अगुआ होगा और अपने काम के द्वारा अधिक सिखायेंगे। वे ग्रामीण लोगो का भी अधिक सहयोग प्राप्त करेंगे। साधन औजार आदि ग्रामकोष और अन्य स्रोतो से प्राप्त करने होंग।

बच्चे जो विषय लेंगे और जो जो काम करेंगे वे तुरत घर-गाँव म रोजाना के व्यवहार म लायेंगे। इस प्रकार से एक नये समाज की नीव डाली जायगी। इससे आशा की जाती है कि पुराने समाज मे भी नये मूल्य दाखिल होंग।

खेती गोपालन कताई-बुनाई तेल घानी, साबुन उद्योग मार्ग निर्माण आदि के साथ-साथ और उसके माध्यम से भाषा, गणित, विज्ञान आदि का गहरा और व्यापक दोनो प्रकार का ज्ञान बालक को दिया जा सकेगा। यह अत्यन्त सरल और व्यावहारिक है। मानव-जीवन के विकास और उन्नति की सभी प्रवृत्तियाँ शिक्षा क्रम म आनी चाहिए। गाधीजी ने कहा था कि सच्ची शिक्षा राष्ट्र की सभी समस्याओ का समाधान और सकटो का मुकाबला करना सिखाती है।

जागृत ग्रामसभाओ के साथ आचार्यकुल और शान्तिसेना मिलकर गाँव गाँव मे ऐसे ग्राम विश्वविद्यालय अथवा ग्राम-गुरुकुलो की बुनियादें डालें इसका यही उपयुक्त अवसर है। ●

नेक सलाह

[काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे डाक्टर जाकिर हुसैन ने अपने दीक्षान्त भाषण मे विद्यार्थियों को यह नेक सलाह दी थी। उस समय जितना इस सलाह का मूल्य था उतना ही आज भी है। स०]

प्यारे विद्यार्थियो,

मुझे मालूम नही कि दुनिया मे तुम क्या करना चाहते हो। हो सकता है तुम्हारा हौसला हो तिजारत और कारोबार या नौकरी करके बहुत-सा धन-दौलत कमायें और चैन से अपनी और अपने खानदान की जिन्दगी बितायें। अगर ऐसा है तो भगवान तुम्हारे मनोरथ को सफल करे, लेकिन चाहे तुम धन-दौलत की फिक्र मे लग जाओ इतना ध्यान रखना कि सफलता के लिए यह जरूरी नही है कि अपने कर्तव्यो को त्याग कर अपनी सारी इच्छाओ को पैरो तले रौंद कर ही उस तक पहुँचा जाय। जो अपने स्वार्थ के लिए इतना अन्धा हो जाय कि अपने देश और राष्ट्र को हानि पहुँचाने से भी न चूके, वह आदमी नही जानवर है।

अगर तुम अपना जीवन देश की सेवा मे लगाना चाहते हो तो मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है। तुम यहाँ से निकलकर जिस देश मे जा रहे हो वह बड़ा अभागा देश है, भाई-भाई मे नफरत का देश है, कठोरताओ का देश है, अनपढो

का देश है, अन्याय का देश है, बीमारियो का देश है, गरीबी और अन्धेरे का देश है, सस्ती मौत का देश है, भूख और मुसीबत का देश है यानी बडा कम्बख्त देश है। लेकिन क्या करोगे ? तुम्हारा और हमारा देश है। हमें इसी मे मरना और इसी मे जीना है। इसलिए यह देश तुम्हारी हिम्मत के इम्तहान, तुम्हारी शक्तियो के प्रयोग, तुम्हारे प्रेम की परख की जगह है।

हमारे देश को हमारी गर्दनो से उबलते खून की जरूरत नही है बल्कि हमारे माथे के पसीने को बारहमासी बहनेवाले दरिये की दरकार है। जरूरत है काम की, और सच्चे काम की। हमारा भविष्य किसान की टूटी झोपडी, कारीगर के धुँएँ से काली छत और देहाती मदरसे के फूस के छप्पर तले बन और बिगड सकता है। इन जगहो म सदियो तक के लिए हमारी किस्मत का फैसला होगा। इन जगहो का काम धीरज चाहता है और सयम, इसमें थकान भी ज्यादा है और कदर भी कम होती है, जल्दी नतीजा भी नही निकलता। हां कोई धीरज रख सके तो जरूर फल मीठा मिलता है।

प्यारे विद्यार्थियो, इस नये हिन्दुस्तान को बसाने के काम मे तुमसे जहाँ तक बन पड़े हाथ बँटाना। मगर याद रहे कि अगर स्वभाव मे आतुरता है तो तुम इस काम को अच्छी तरह नही कर सकोगे। इस काम मे बडी देर लगती है। मगर तबीयत म जल्दीबाजी है तो तुम काम बिगाड दोगे क्योकि यह बडा पित्तमार काम है। अगर जोश मे बहुत-सा काम करने की आदत है और उसके बाद ढीले पड जाते हो तो भी यह कठिन काम शायद तुमसे नही बन सकेगा। क्योकि इसमें बहुत समय तक बराबर एक-सी मेहनत चाहिए। अगर असफलताओ से निराश हो जाते हो तो इस काम को न छूना क्योंकि इसमें असफलताएँ तो जरूरी हैं—बडी असफलताएँ और पग-पग पर असफलताएं। इस देश की सेवा मे कदम-कदम पर खुद देश के लोग ही तुम्हारा विरोध करेंगे, जिन्हें हर परिवर्तन से हानि होती है। वे जो इस वक्त चैन से हैं और डरते हैं कि शायद परिस्थितियाँ बदलें तो वे दूसरे की मेहनत के फलो से अपनी झोलियाँ नही भर पायेंगे। लेकिन याद रखो कि ये सब थक जानेवाले हैं। इन सबका दम फूल जायेगा। तुम ताजा दम हो, जवान हो। तुम्हारे काम मे यदि सशय होगा और आत्मविश्वास का अभाव होगा तो इस काम मे बडी कठिनाइयाँ सामने आयेंगी क्योकि सशय से वह शक्ति पैदा नही होती जो इस कठिन काम के लिए अपेक्षित है। गन्दे हाथ और मैले मन से भी तुम इस काम को नही कर सकोगे क्योंकि यह बडा कठिन काम है।

सारांश यह है कि तुम्हारे सामने अपना जौहर दिखलाने का अद्भुत अवसर है मगर इस अवसर का उपयोग करने के लिए बहुत बड़े नैतिक बल की आवश्यकता है। जैसे कारीगर होंगे वैसी इमारत होगी है काम चूँकि बड़ा है, एक की या थोड़े-से आदमियों की थोड़े दिनों की मेहनत से पूरा न होगा, दूसरों से मदद लेनी होगी और दूसरों की मदद करनी होगी। तुम्हारी पीढ़ी के सारे हिंदुस्तानी जवान अगर सारा जीवन इसी एक धुन में बिता दें तब कहीं यह नाव पार लगे।

जब जात पांत, भाषा धर्म सम्प्रदाय, प्रान्त आदि के झगड़ों में चलते देश टूटता नजर आ रहा, जिस देश में अनेक जातियां बसती हैं, जहां विभिन्न संस्कृतियाँ प्रचलित हैं जहां एक का सच दूसरे का झूठ है, उस देश में नवजवानों से इस तरह मिलकर काम करने की आशा कम ही है। जहां वोट बिकते हैं, राजनीतिज्ञ बिकते हैं वहाँ ये देश को भी बेच सकते हैं।

सेवा की राह में, जिसकी चर्चा मैं कर रहा हूँ सचमुच बड़ी कठिनाइयाँ हैं, इसलिए ऐसे क्षण भी आयेंगे कि तुम थककर शिथिल हो जाओगे, बेदम-से हो जाओगे और तुम्हारे मन में सन्देह भी पैदा होने लगेगा कि यह जो कुछ किया, सब बेकार तो नहीं था। उस समय तुम भारतमाता के उस चित्र का ध्यान करना जो तुम्हारे हृदय पटल पर अंकित हो यानी उस देश के चित्र का ध्यान, जिसमें सत्य का शासन होगा जिसमें सबके साथ न्याय होगा जहाँ अमीर-गरीब का भदभाव नहीं होगा बल्कि सबको अपनी अपनी क्षमताओं को पूर्ण तया विकसित करने का अवसर मिलेगा जिसमें लोग एक दूसरे पर भरोसा करेंगे और एक दूसरे की मदद भी। जिसम धम इस काम में न लाया जायेगा कि झूठी बातें मनवायें और स्वार्थी की आड़ बनें बल्कि वह जीवन को सुधारने व सार्थक बनाने का साधन होगा। इस चित्र पर दृष्टि डालोगे तो तुम्हारी थकान दूर हो जायेगी और तुम नये सिरे से अपने काम में लग जाओगे। फिर भी अगर चारों तरफ कमीनापन खुदगर्जी मक्कारी धोखेबाजी और गुलामी से सन्तोष देखो तो समझना कि अभी काम समाप्त नहीं हुआ है, मोर्चा जीता नहीं गया है। इसलिए संघर्ष जारी रखना चाहिए जब तक वह वक्त आये जो सबको आना है और इस मैदान को छोड़ना पड़े तो वह सन्तोष तुम्हें मिलेगा कि तुमने यथाशक्ति उस समाज को स्वतंत्र करने और अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जिसने तुम्हें आदमी बनाया था। ●

कु० नीलम जैन,

शिक्षा कैसी है, कैसी होनी चाहिए ?

आज का छात्र विचित्र प्राणी है, न उसे शिक्षक समझ पा रहे हैं और न पालक ही। चूंकि वह विद्यार्थी है इसलिए न उसके ऊपर शासन का नियंत्रण है और न ही जन-साधारण का। शिक्षक ही बालक को विश्वबन्धुत्व व मानवता का पाठ पढ़ाता है। किन्तु वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षक व छात्र का वह घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रहा, जो प्राचीनकाल में था। आखिर वह कौन-से कारण हैं जिनसे छात्र अनुशासनहीन हुआ और अब कौन-से रास्ते अपनाने होंगे जिससे वह अनुशासित हो जाय।

भूत पर एक दृष्टि डाल लेना उचित ही है। जिसका गलत प्रयोग विद्यार्थी ने किया है :

(१) कोई भी शिक्षक शिक्षार्थी को शारीरिक दण्ड नहीं देगा।
(२) शिक्षक एवं छात्र का सम्बन्ध एक मित्र की भाँति होगा।
(३) शिक्षार्थियों के लिए पत्रोपाधि प्राप्त करने हेतु एक निर्धारित पाठ्य-क्रम होगा तथा पाठ्य क्रम के अतिरिक्त कोई प्रश्न नहीं पूछे जा सकेंगे
(४) मौखिक परीक्षा के स्थान पर लिखित को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया।
(५) सैद्धान्तिक शिक्षा को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया।

ये सब सुविधाएँ छात्रों के हित के लिए प्रदान की गयी थी, किन्तु इनका सही दिशा में उपयोग नहीं हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि छात्र उच्छृंखल होने लगे। विविध (उचित एवं अनुचित) प्रकारों से पत्रोपाधि प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षार्थी शिक्षा से भटककर पत्रोपाधि के पथ पर लग गये।

वर्तमान समय में प्रचलित तथ्यों से यह अधिक स्पष्ट हो जायगा

(१) छात्रों में अनुशासनहीनता की निरन्तर वृद्धि हो रही है।

(२) छात्रों में प्रश्न पत्र आउट करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक मात्रा में पायी जाती है। कतिपय स्थानों पर तो परीक्षकों को डरा धमकाकर भी नकल आदि की जाती है।

(३) परीक्षकों से सम्पर्क स्थापित कर अब आदि में वृद्धि करवाने की एक सहज प्रवृत्ति बन गयी है।

इसके अतिरिक्त व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो यह बात निश्चित हो जाती है कि वर्तमान शिक्षक एवं शिक्षार्थी वास्तविक शिक्षा के लक्ष्य से कोसों दूर भटक गये हैं।

अतः वर्तमान छात्र को वास्तविक शिक्षार्थी बनाने हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत किये जा सकते हैं

(१) छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाय।

(२) परीक्षा पद्धति में सेमेस्टर प्रणाली आरम्भ की जाय। (मेरठ विश्व-विद्यालय में यही पद्धति है।)

(३) गेस पेपर्स एवं गाइडस के विक्रय एवं प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगाया जाय।

(४) महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के शुल्कों में यथोचित कमी की जाय।

(५) शिक्षकों को परीक्षा की दृष्टि से नहीं अपितु ज्ञानार्जन की दृष्टि से शिक्षा देने का निर्देश दिया जाय।

(६) विद्यार्थियों को आरम्भ से ही नैतिक शिक्षा प्रदान की जाय।

(७) महाविद्यालयों में मौखिक परीक्षा के पश्चात ही प्रवेश दिया जाय।

(८) व्यर्थ के आन्दोलनों में भाग लेनेवाले छात्रों को महाविद्यालय में प्रवेश से वंचित रखा जाय।

(९) किसी भी पद पर नियुक्ति हेतु पत्रोपाधि के स्थान पर मौलिक परीक्षा को वरीयता प्रदान की जाय एवं पत्रोपाधि का धारक न होने पर भी उचित ज्ञान एवं अनुभवशील व्यक्ति को नियुक्त किया जाय।

सच्चे अर्थों में शिक्षार्थी वही है जो कि राष्ट्र एवं समाज में अपने ज्ञान की गरिमा द्वारा विशिष्ट स्थान बना सके।

दिनेश सिंह

समाजवाद एवं समाजवादी शिक्षा के आधार

विश्व में समाजवादी जनसंख्या की वृद्धि एवं क्षेत्र प्रसार प्रतिवर्ष तीव्र गति से हो रहा है। समाजवाद पिछले तीन-चार दशकों से विश्व की राजनीति एवं शिक्षा-पद्धति में महत्त्वपूर्ण भूमिका भी प्रस्तुत करता आ रहा है। हमारा भारत देश भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् समाजवाद के सिद्धान्तों पर अपनी पंच-वर्षीय योजनाओं के द्वारा विकास एवं प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है। श्री जवाहरलाल नेहरू ने समाजवाद के विचारों एवं व्यवहार के प्रति उस समय भी गहरी रुचि का परिचय दिया था जब सोवियत संघ ही विश्व में एक मात्र समाजवादी देश था। उन्होंने अपनी पुस्तक हिन्दुस्तान की कहानी में लिखा है "लेनिन सबसे बड़ी बात यह है कि हमारे सामने सोवियत संघ का उदाहरण है जिसने दो संक्षिप्त दशकों में ही युद्ध और गृह-कलह से परिपूर्ण कठिनाइयों के बावजूद विराट प्रगति की है। कुछ लोग कम्यूनिज्म की ओर आकर्षित हैं और कुछ नहीं हैं लेकिन सभी लोग सोवियत संघ की प्रगति से मन्त्र मुग्ध हैं।" चौथे दशक में ही नियोजित अर्थतंत्र की आवश्यकता, उद्योग की अग्रणी शाखाओं में प्रमुख भूमिका राजकीय क्षेत्र को सौंपने और भारत जैसे देश के लिए विकास के समाजवादी पथ का चयन करने

के सम्बन्ध में नेहरूजी का विश्वास पक्का हो चुका था। वह अपने इस विश्वास के प्रति जीवन भर निष्ठावान बने रहे।[१] उन्होंने लिखा है "हमने समाजवाद को अपने लक्ष्य के रूप मे केवल इसलिए स्वीकार नही किया है कि यह हमें उचित और लाभदायक प्रतीत होता है बल्कि इसलिए भी कि हमारी आर्थिक समस्याओं के समाधान का इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है।"[२] प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने मास्को के भव्य क्रेमलिन प्रासाद में २८ सितम्बर, १९७१ को भाषण देते हुए कहा "भारतीय भाषाओं और साहित्य का जितने व्यापक पैमाने पर सोवियत संघ म अध्ययन किया जाता है तथा भारतीय संगीत, नृत्य और नाटक की जितनी सराहना की जाती है, वैसा किसी दूसरे देश मे देखने को नही मिलता। आपके साहित्य, संगीत और विज्ञान, जिन्होंने मनुष्य की विरासत को बहुत ज्यादा समृद्ध बनाया है, अब हमारी जनता के लिए उपलब्ध हो गये है, जैसा कि पहले कभी नहो हुआ था।" सोवियत संघ ही एक मात्र विकसित औद्योगिक देश था जिसने भारत की समस्याओं के प्रति पूर्ण सद्भावना दिखायी और औपनिवेशिक अतीत के अवशेषो को मिटाने के प्रयास में बिना शर्त और बहुमुखी समर्थन प्रदान करने की तत्परता दिखायी। १९७१ के लिए "सोवियत-भूमि" नेहरू पुरस्कार वितरण समारोह में त्रिभुवननाथ ने कहा : "सचमुच चौथे दशक मे नेहरूजी की रचनाएं और भाषण समाजवादी विचारों के, अक्तूबर क्रान्ति के विचारो के, शक्तिशाली संवाहक बन गये थे, जिस क्रान्ति ने उनके ही शब्दो में—मानव समाज को एक बडी छलांग के साथ आगे बढाया और एक ऐसी मशाल जलाई जो बुझायी नही जा सकती और उसने एक नयी सभ्यता की नींव डाली जिसकी ओर दुनिया बढेगी।" आज विश्व के समाजवादी देशो में सोवियत संघ के अतिरिक्त चेकोस्लोवाकिया, जर्मन जनवादी जनतंत्र, हंगरी, पोलैण्ड, बुल्गारिया तथा मंगोलिया आदि अग्रगण्य है।

कार्ल मार्क्स के पूर्व के समाजवादी विचारक इंग्लैण्ड में सर थौमस मोर, सर फ्रांसिस बेकन, जेम्स हैरिंग्टन तथा रावर्ट ओवेन हुये, फ्रांस मे मायल वावफ, सौसिलो, चार्ल्स प्यूरियर तथा लूई ब्ला हुये। परन्तु ये सब 'युटोपिया' के लिखनेवाले, कल्पना जगत मे विचरनेवाले स्वप्न-द्रष्टा थे। अपने समय की बुराइयो को देखकर इनके हृदय में तड़पन हुई, उसे दूर कर किस प्रकार की समाज की रचना होनी चाहिए इसका उन्होंने काल्पनिक चित्र खींच लिया। कार्ल मार्क्स ने अपनी विचारधारा का आधार 'वैज्ञानिक-समाजवाद' को बनाया। मार्क्स का समाजवाद स्वप्न द्रष्टा का समाजवाद नही था, यथार्थ द्रष्टा का

समाजवाद था। जहाँ स्वप्नद्रष्टा समाजवादियों ने धनिक वर्ग से सुधार की अपील की थी; वहाँ मार्क्स ने निर्धन वर्ग से अपील की थी। धनिक वर्ग शोषक वर्ग था, वह अपने को क्यों बदलता? निर्धन वर्ग शोषित वर्ग था, समाज को बदलना उसके हित में था। इसलिए जहाँ शोषक वर्ग को की गयी अपील बहरे कानों में पड़ी वहाँ शोषित वर्ग को की गयी अपील कारगर हुई और एक प्रत्यक्ष समाजवादी समाज का जन्म हुआ।[२] मार्क्स ने लिखा है: "व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। इसलिए उसके जीवन की हर अभिव्यक्ति चाहे वह अन्य लोगों को सम्बद्ध करनेवाली जीवन की सामूहिक अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष रूप न ग्रहण करे—सार्वजनिक जीवन की ही अभिव्यक्ति और परिपुष्टि है।' मार्क्सवादी साहित्य ने विश्वसनीय प्रमाण पेश करते हुए यह सिद्ध किया कि विभिन्न देशों के आर्थिक विकास के स्तरों में अन्तर होने का कारण यह है कि उपनिवेशों का दीर्घकाल तक शोषण किया गया, वहाँ से न केवल अतिरिक्त उत्पादन वरन् आवश्यक उत्पादन भी बाहर ले जाया गया। जबकि पश्चिमी विचारकों एवं समाचार पत्रों ने भूतपूर्व उपनिवेशों के पिछड़ेपन का कारण बताते हुए विभिन्न तर्क प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि इसके कारण ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं मनोवैज्ञानिक आदि हैं।

लेनिन ने लिखा है "केवल रूस ने सर्वहारा को और रूस की समस्त विशाल मेहनतकश बहुमत जनता को एक ऐसी स्वतंत्रता और जनवाद दिया है जो अभूतपूर्व तथा किसी भी पूंजीवादी प्रजातान्त्रिक गणराज्य के लिए असम्भव और अकल्पनीय है।" लेनिन ने लक्षित किया कि समाजवाद में संक्रमण के लिए आवश्यक लेखा और नियंत्रण अवाम द्वारा ही लागू किया जा सकता है। उन्होंने मजदूरों किसानों, समस्त मेहनतकशों से कहा "स्वयं आपको ही वस्तुओं के उत्पादन और वितरण का लेखा लेने और उनपर नियन्त्रण करने का काम शुरू करना चाहिए—यह और मात्र यही समाजवाद की विजय का मार्ग है। अपने भाषणों एवं लेखों में लेनिन ने समाजवादी निर्माण के बुनियादी आर्थिक नियम को सूत्रित किया जिसका आधारभूत निर्णायक लक्ष्य इस प्रकार है: "समाजवाद ही वैज्ञानिक लाइनों पर सामाजिक उत्पादन और वितरण का व्यापक विस्तार कर सकता है और उन्हें मेहनतकश जनता के जीवन को सुकर बनाने और उनकी खुशहाली को यथासम्भव अधिक-से अधिक बढ़ाने के लक्ष्य के वस्तुतः अधीनस्थ बना सकता है।" सोवियत संविधान ने समाजवाद के सिद्धान्तों और मूलभूत तथ्यों को वैधानिक शक्ति प्रदान की।

सिद्धान्त और मूलतत्व ये हैं---भूमि, कारखानो तथा उत्पादन के अन्य साधनो पर समाजवादी स्वामित्व, मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की समाप्ति, शोषक वर्गों का अन्त, जनता के बहुमत को गरीबी से मुक्ति, बेरोजगारी का खात्मा। सविधान ने काम पाने, विश्राम और अवकाश पाने के अधिकार का, शिक्षा पाने और वृद्धावस्था बीमारी एव अपग होने की स्थिति मे परिवरिश पाने के अधिकार का और साथ ही कई अन्य अधिकारो और स्वतत्रताओ का, उदाहरण के लिए धार्मिक स्वतत्रता का ऐलान किया। इसके अतिरिक्त यह ध्यान भी लक्षित करने योग्य है कि सोवियत सविधान इन अधिकारो और स्वतत्रताओ का ऐलान करके हाथ-पर हाथ रखकर बैठ नही गया, वरन् उन्हे जीवन मे चरितार्थ करने के लिए उसने भौतिक गारण्टियो का सृजन किया। यह एक महत्वपूर्ण बात है जो पहले के सविधानो से उसे भिन्न बना देती है। लेनिन ने १९१९ मे भाषण करते हुए १९१८ म स्वीकृत प्रथम सोवियत सविधान के जनवादी स्वरूप पर सशक्त ढग से जोर दिया। उन्होने कहा "हम हर जाति के स्वतत्र मुक्त विकास को, उनमे से हर एक की मातृभाषा म साहित्य के विकास तथा प्रसार को मदद देने के लिए यथासम्भव सब कुछ कर रहे हैं, हम अपने सोवियत सविधान को मूर्तरूप दे रहे हैं तथा उसका प्रचार कर रहे हैं। पृथ्वी के एक अरब से अधिक निवासियो के बीच जो औपनिवेशिक, पराधीन, उत्पीडित, अधिकारहीन जातियो के हैं, उन पश्चिमी यूरोपीय तथा अमरिकी पूँजीवादी प्रजातत्रीय राज्यो के सविधानो की तुलना म अधिक हर्षदायी है जो जमीन तथा पूँजी पर निजी स्वामित्व को बरकरार रखत है, अर्थात अपने ही देशो मे मेहनतकश लोगो तथा एशिया-अफ्रीका आदि म उपनिवेशो के करोडो लोगो पर मुट्ठी भर सभ्य पूजीपतियो के अत्याचार को मजबूत बनाते है।" सोवियत नागरिको की जातीयता तथा नस्ल का ख्याल किये बिना उनके लिए समानता की गारण्टी की गयी है। नागरिको के लिए अन्त करण की स्वतंत्रता सुनिश्चित करन के लिए सोवियत सघ म धम को राज्य से तथा शिक्षा को धर्म से अलग कर दिया गया है। वर्तमान सविधान के अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक को, जो १८ वर्ष का हो चुका है, सोवियतो के सदस्यो के चुनाव मे वोट डालने का अधिकार है। सोवियत नागरिको को व्यापक अधिकार प्रदान करते हुये सविधान उनके लिए कर्तव्य भी अनिवार्य बनाता है। सोवियत सघ के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह सविधान का पालन करे, कानूनो को माने, श्रम अनुशासन को बनाये रखे, सार्वजनिक कर्त्तव्यो को ईमानदारी से पूरा करे, समाजवादी

समाज के नियमों का आदर करे, सार्वजनिक समाजवादी सम्पत्ति की सुरक्षा करे तथा उसे सुदृढ बनाये। सोवियत संघ में शारीरिक दृष्टि से समर्थ प्रत्येक नागरिक के लिए कार्य इस सिद्धान्त के अनुसार "जो काम नहीं करेगा, वह खायेगा भी नहीं," एक कर्त्तव्य तथा सम्मान का विषय है।[5] मजदूर वर्ग सोवियत समाज की अग्रणी शक्ति है। इस वर्ग की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है। १९२८ में सोवियत संघ में लाभप्रद ढंग से रोजगार में लगी आबादी में १२ प्रतिशत मजदूर थे। १९३९ में यह संख्या ३२.५ प्रतिशत हो गयी और इस समय यह ५५ प्रतिशत से भी अधिक है। मजदूर वर्ग सोवियत देश का भौतिक और तकनीकी आधार, सामाजिक सम्पदा का सबसे बड़ा भाग अर्जित करता है और वही देश की मुख्य उत्पादक शक्ति है। मजदूरों के श्रम की बदौलत ही सोवियत संघ इतनी अधिक औद्योगिक और प्रतिरक्षा-शक्ति हासिल कर सका है। मजदूर अपने सृजनात्मक कार्य से तकनीकी प्रगति को सुनिश्चित बनाते हैं। भारी उद्योग को तेजी से विकसित करते हैं और कृषि को आधुनिक मशीनें तथा उर्वरक प्रदान कर सामूहिक फार्म के किसानों की सहायता करते हैं। "इजवेस्तिया" का सम्पादक लिखता है : हमारे राज्य की सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था इस प्रकार निर्मित है कि इसमें बेरोजगारी की कोई गुन्जाइश नहीं है और शक्तियों का विकास सुनिश्चित है। इसके अलावा श्रम का स्वरूप ही बदल गया है। इसे पहले कभी अभिशाप माना जाता था लेकिन आज यह *सम्मान का विषय है। इसीलिए हमारा देश अधिकाधिक मजबूत और समृद्ध* बनता जा रहा है। इसीलिए हमारी योजनाएँ पूरी होती हैं। इसीलिए लोगों के रहन-सहन का स्तर निरन्तर ऊँचा होता जा रहा है। १९७० तक सोवियत संघ १० वर्षों के मध्य अपनी राष्ट्रीय आय को दुगुना करने में सफल हुआ, जब-कि अमेरिका को ऐसा करने में बीस वर्ष लगे। सोवियत देश ने बहुत पहिले ही बेरोजगारी समाप्त कर दी है और दो दिनों के अवकाश के साथ पाँच दिनों का कार्य सप्ताह लागू किया है। सोवियत का कार्य-दिवस विश्व में एक सबसे छोटा कार्य-दिवस है।

समाजवादी शिक्षा केन्द्रित होने की बात इसलिए करती है क्योंकि वह शिक्षा को समाज-व्यवस्था में एक शक्तिशाली साधन मानती है तथा प्रत्येक बालक एवं व्यक्ति को उच्चतर समाज के निर्माण के लिए तैयार होने को एक-सा अवसर देना चाहती है। मार्क्स का मत है कि मानव की आत्मसत्ता चेतना पर आश्रित नहीं वरन् उसकी सामाजिक सत्ता उसकी चेतना को निर्धारित

करती है। मार्क्स ने इसीलिए शिक्षा को राष्ट्र-नीति का प्रमुख अंग माना है और इस तथ्य को ऐतिहासिक आधार पर कहा है कि प्रत्येक सरकार इसी नीति पर सदैव चलती रही है। समाजवादी शिक्षा-व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्ति पर कोई वस्तु लादना नही, वरन् उसकी क्षमता को उचित ढंग से व्यवस्थित करना है। ऐसा कार्य लेना है जिसे व्यक्ति सबसे अच्छी तरह कर सके और जो भी सामाजिक उत्पादन करे उसे वह अपना ही उत्पादन समझे। इससे उसम, एक-दूसरे के प्रति सम्मान और प्यार जगेगा और मानवता के ऊर्ध्वगामी पथ पर बिना भेद भाव के, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर वह चल सकेगा। म० इ० कालिनिन के अनुसार 'समाजवाद के निर्माण के लिए शिक्षित लोगो की आवश्यकता है। लेकिन वे, जो सिर्फ पढते रहते है, शिक्षित नही समझे जा सकते। शिक्षित वे हैं जो भौतिकवादी दर्शन का पूर्ण अध्ययन करते है, विज्ञान पर अधिकार प्राप्त करते हैं, जो पढा है उस पर मनन करते हैं और यह समझते हैं कि क्रान्तिकारी विचारधारा को क्रान्तिकारी अमल मे कैसे लाया जाय।' समाजवादी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य हैं— श्रम से प्यार, वैज्ञानिक दृष्टिकोण समाजजन्य-नैतिकता एव क्रान्तिकारी दृष्टिकोण। विद्यार्थियो के लिए श्रमीय शिक्षा पूरे अध्ययन शिक्षा-कार्य म होती है जिसके द्वारा विद्यार्थियो म श्रम के प्रति समाजवादी दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। विज्ञान के आधारो का अध्ययन और जीवन म ज्ञान का उपयोग करने की कुशलता का निर्माण ये विद्यार्थियो के श्रमीय शिक्षण के महत्त्वपूर्ण आधार हैं। सभी विषयो के अध्ययन मे इस बात पर बल होता है कि श्रम की आदत, दक्षता, स्वावलम्बन, स्वच्छता समय निष्ठता तथा समाजोपयोगी श्रम के लिए तैयारी आदि विशेषताएँ विद्यार्थियो मे उत्पन्न हो। एक सुसस्कृत, समाज वादी विचारोवाला कार्यकर्ता का अर्थ यह लगाया जाता है कि व्यक्ति राज नीतिक दृष्टि से जागरूक तथा सुशिक्षित हो। वह मानसिक और शारीरिक, दोनों प्रकार के कार्य भली भाति समझ सकता हो तथा जो पेशे और राजनीति मे निपुण हो वही सच्चा विकसित व्यक्ति है। ऐसा व्यक्ति कामगार बुद्धिजीवी तथा बुद्धिजीवी कामगार होता है। समाजवादी विचारधारावाला कार्यकर्ता कभी किसी भी प्रकार के शोषण करने का विचार नहीं रखता।[६] समाजवादी शिक्षा के सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रमान्तरगत श्रमानुभव की सकल्पना का विकास सर्वतोमुखी है। पहली से चौथी तक की कक्षाओ म बालक समाजोपयोगी श्रम के लिए मानसिक रूप से तैयार किये जाते हैं। यहाँ उन्हे

शाला को स्वच्छ रखना, फल, भाजी और फूल उगाना ; कताई , मिट्टी के ढाँचे बनाना , कागज, प्लास्टिक तथा पुट्ठे के शिल्प आदि सिखाये जाते हैं। कक्षा ५ से ८ तक इस क्षेत्र के लिए शाला के पूरे समय का १५ प्रतिशत समय दिया जाता है। इसका उद्देश्य बालकों को आधुनिक उत्पादन के वैज्ञानिक आधार की जानकारी देना होता है। काम के लिए पारिश्रमिक की भी व्यवस्था होती है। बहुद्देशीय शिक्षण की माध्यमिक शालाएँ उस क्षेत्र के औद्योगिक प्रतिष्ठान या कृषि-प्रतिष्ठान को सौंप दी जाती है।

माध्यमिक स्कूल के अध्यापक को सप्ताह में २२ से २४ पाठ देने होते हैं, और उसे प्रति सप्ताह दो दिन का अवकाश मिलता है। सुश्री वालेरिया बोकोवा, मास्को लिखती हैं "मैं अपना सप्ताह का कार्यक्रम आमतौर से इस प्रकार बनाती हूँ—सप्ताह में २२ घण्टे में सातवीं और नवीं कक्षा को पढ़ाती हूँ, एक घण्टा मैं अपनी कक्षा में काम करती हूँ और एक घण्टा टैगोर क्लब में। लेकिन मेरा काम सिर्फ इतना ही नहीं है क्योंकि अध्यापक के काम की तुलना बर्फ की उस शिला से की जा सकती है जिसका सिर्फ एक तिहाई भाग सतह से ऊपर होता है और दो तिहाई भाग पानी के नीचे छिपा रहता है। मेरे विचार से प्रत्येक अध्यापक मेरी बात समझ सकता है। आमतौर से प्रतिदिन दो या तीन घण्टे और कभी-कभी उससे ज्यादा भी समय पाठ तैयार करने में लगाती हूँ" ।[७] ल्येबस्पिरदिनोव के शब्दों में—"मैं अध्यापिका हूँ तथा मुझे इस पर गर्व है क्योंकि हमारे देश में अध्यापकों की भूमिका बहुत बड़ी है, हमारे देश में नागरिक, जो समाजवाद के अन्दर बड़ा हुआ, की जड़ को किसी-न किसी अध्यापक के मृदु-हृदय ने सींचा है। . मुझे अपने व्यवसाय से उसी तरह का प्यार है जिस तरह मेरे लाखों-लाख सहयोगी उसे प्यार करते हैं।"[८] सोवियत देश में सभी *स्कूलों की देख भाल राज्य की ओर से की जाती है।* माध्यमिक विद्यालय के एक छात्र पर सार्वजनिक कोष से प्रतिवर्ष १२० रूबल से अधिक खर्च किया जाता है, जब कि दिवसीय विद्यालय में पढ़नेवाले छात्र पर १७० रूबल तथा शिशुशाला अथवा नर्सरी में एक बच्चे पर ३००–४०० रुबल खर्च किया जाता है। मेहनतकश लोग और उनके बच्चे राज्य के खर्च पर स्कूलों में विशेषीकृत माध्यमिक और उच्चतर शिक्षण-संस्थानों में निःशुल्क पढ़ते हैं। चिकित्सा-सहायता एवं अनुदान तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। क्रान्ति के पूर्व रूस में आबादी का लगभग तीन-चौथाई भाग निरक्षर था। १९३९ की जनगणना के अनुसार सोवियत संघ में मेहनतकश आबादी का २८.२ प्रति

शत भाग माध्यमिक (पूर्ण तथा अपूर्ण) एव कालेजी शिक्षा प्राप्त था (देहात मे केवल ६ ३ प्रतिशत) १९७० की जनगणना बताती है कि शहरो की मेहनतकश आबादी के ७५ प्रतिशत तथा देहातो की मेहनतकश आबादी का ५० प्रतिशत से ज्यादा भाग माध्यमिक तथा कालेजी शिक्षा प्राप्त है। उक्त आँकड़े समाजवादी शिक्षा व्यवस्था की सर्वतोमुखी सफलता के द्योतक एव परिचायक है।

प्रसग

१ त्रिभुवनाथ नेहरू पुरस्कार वितरण समारोह १९७० की रिपोर्ट से।
२ सोवियत दर्पण ११ दिसम्बर १९७१।
३ कमल सत्यव्रत सिद्धान्तालकार सामाजिक विचारो का इतिहास पृ० २५३ २७५।
४ आई० वी० वोरिसन समाजवाद म सक्रमण का लेनिन का कार्यक्रम।
५ सोवियत दर्पण १४ दिसम्बर १९७१।
६ एन० सी० ई० आर० टी० द्वारा प्रकाशित—Work Experience से।
७. भारतीय शिक्षा (मासिक) जनवरी १९६८
८ सोवियत दर्पण १२ फरवरी १९७२

अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ तथा पत्रिकाएँ
१ Edmund J King Other Schools and ours
२ नरेन्द्र सिंह तथा राजेन्द्रपाल सिंह सोवियत जन शिक्षा का स्वरूप।
३ भारतीय शिक्षा (मासिक) जून १९६९
४ इण्डियन कौंसिल आव बेसिक एजूकेशन बुलेटिन अक्तूबर १९७१
५ सोवियत दर्पण सन् १९७१ के समस्त अक।
६ न० क० क्रुप्सकाया शिक्षा।
७ Y N Medinsky Public Education in the U S S R.
८ म० इ० कालिनिन कम्यूनिस्ट शिक्षा के बारे मे।

शम्सुद्दीन

शिशु : उसकी अभिवृद्धि एवं विकास

[प्रत्येक युग मे विद्वानों ने यही कहा है आज के बच्चे ही भविष्य की धरोहर सम्हालनेवाले हैं। इसी आधार पर कल्पना की जा सकती है कि बच्चों का उचित एवं स्वस्थ विकास एक प्रगतिशील समाज के लिए कितना आवश्यक है।—सम्पादक]

शिक्षा की दृष्टि से बाल्यावस्था जीवन मे सबसे महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। यह बनाव (*निर्माण*) का काल होता है तथा सीखने और आदतों के *निर्माण* की दृष्टि से इसका बडा महत्व होता है। यही वह समय है जब बच्चे बोलना सीखते हैं तथा उनके चरित्र का निर्माण होता है जो बालक के भावी जीवन पर गहरा प्रभाव डालता है। कहावत है– पौध को जैसा मोडा जायगा वैसा ही वृक्ष बनेगा'। बाल्यकाल का अच्छा या बुरा प्रभाव व्यक्ति को भविष्य मे अच्छा या बुरा बनाता है। बच्चों की शारीरिक अभिवृद्धि एवं विकास का उनके भावी व्यक्तित्व निर्माण मे बडा योगदान होता है।

'मनुष्य की मानसिक विशेषताएँ उसके शारीरिक स्वरूप से जानी जा सकती हैं' यह एक पुराना विश्वास है। आज की बीसवी शताब्दी मे भले ही

यह पूर्णतः सत्य न हो किन्तु अच्छा स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ मन को जन्म देता है तथा स्वस्थ मन ही स्वास्थ्य के नियमों का पालन कर स्वस्थ शरीर का र्मा ए करता है। इसे अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। अत बाल्यकाल मे बच्चे की शारीरिक अभिवृद्धि एव विकास का ज्ञान प्रत्येक माता-पिता तथा शिक्षक के लिए नितान्त आवश्यक है ताकि वे बच्चे के विशिष्ट व्यक्तित्व के निर्माण मे सहायता पहुँचा सके।

अभिवृद्धि की गति

शैशवावस्था म बच्चे के शरीर और मस्तिष्क का अत्यन्त तीव्रता से विकास होता है। प्रथम पाँच महीनों मे ही बच्चे का वजन जन्म के समय के वजन से दुगुना बढ जाता है तथा एक वर्ष के अन्त तक यह तीन गुना हो जाता है। मस्तिष्क अपने आकार मे दुगुने से अधिक बढ जाता है। प्रथम वर्ष मे यह अभिवृद्धि १३० प्रतिशत होती है जबकि द्वितीय वर्ष मे यह २५ एव १० प्रतिशत ही रहती है। जन्म के बाद शरीर के विभिन्न तन्तुओ के विकास मे अभिवृद्धि की गति एक-सी नही रहती। नाडी मण्डल की अभिवृद्धि पहले तीव्रता से होती है तथा बाद मे यह धीमी हो जाती है। इस प्रकार छः वर्षों के भीतर यह प्रौढ आकार का ९० प्रतिशत प्राप्त कर लेता है। शिशु सतत क्रियाशील रहता है, यहाँ तक कि निद्रावस्था में भी वे हलचल करते दिखाई देते हैं। जागृत अवस्था म तो उनके हाथ-पैर क्रियाशील रहते ही हैं और अधिक लम्बे समय तक हलचल करने के बावजूद भी वे थकान का अनुभव नही करते। यह स्वय प्रेरित क्रिया अनायास हलचल मात्र नहीं होती, वरन् यह एक आधार प्रस्तुत करती है जिसके बल पर आगे चलकर बालक अपने विभिन्न अगो के द्वारा सम्पूर्ण शरीर की आवश्यकताओ तथा इच्छाओ की पूर्ति करने मे समर्थ होता है।

परिपक्वता का महत्व

जैसे-जैसे बालक उम्र मे बढता है, वह बिना किसी अभ्यास के, कुछ विशिष्ट कार्य ज्यादा कुशलता एव योग्यतापूर्वक करने लगता है। यह इस बात का सूचक है कि बालक ने प्रस्तुत योग्यता मे परिपक्वता प्राप्त कर ली है तभी उस विशिष्ट कार्यों मे उसके कौशल की अचानक वृद्धि हुई। यद्यपि अभ्यास के अभाव म 'चलने' या 'चढने' आदि कार्यों की कुशलता में कुछ अवनति दिखाई दे, किन्तु परिपक्वता के अभाव मे कितना भी अधिक अभ्यास क्यो न कराया

जाय, कार्य में कुशलता प्राप्त नहीं की जा सकती। परिपक्वता प्राप्त कर लेने पर बालक कई कार्यों में थोड़े समय में अधिक निपुणता प्राप्त कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए 'चलने' की क्रिया को लें। यह मुख्यरूप से नाड़ी-मण्डल की परिपक्वता पर निर्भर होती है। सामान्य शिशु एक वर्ष की अवस्था में चलता है। यदि शिशु को दस माह की अवस्था में चलने का अभ्यास कराया जाय तो वह उसमें समय से पहले कुशलता प्राप्त नहीं कर सकता। 'बोलने' पर वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। एक शिशु को यदि प्रारम्भ से भेड़ियों के बीच रख दिया जाय तो वह वैसा ही विकसित होगा। किसी विशिष्ट भाषा का बोलना वातावरण तथा अभ्यास का प्रभाव है, किन्तु बोलने की योग्यता परिपक्वता पर निर्भर होती है। एक बालक अच्छे-से-अच्छा वातावरण पाकर भी बोलना नहीं सीख सकता जब तक कि वह उसके लिए परिपक्वता न प्राप्त कर ले। इस प्रकार गति का विकास जैसे बाँह, हाथ व उँगलियों का प्रयोग, पकड़ एवं हस्त कार्य प्रधान रूप से परिपक्वता तथा अभ्यास दोनों पर निर्भर रहता है। परिपक्व हो जाने पर विभिन्न कार्यों को सीखने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

जैसे-जैसे बालक उम्र में अधिक होता जाता है उसके शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक व्यवहार में भी विकास होता जाता है। बदलते हुए वातावरण के प्रति बालक की प्रतिक्रिया एवं समायोजन ही उसका सामाजिक विकास कहलाता है। यह उस वातावरण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहता है जिसमें बालक अपने को पाता है। उसका शारीरिक विकास सामाजिक वातावरण पर इतना अधिक निर्भर नहीं रहता, किन्तु उसका सामाजिक व्यवहार मित्रों के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, उनके अनुकूल अपने में परिवर्तन की योग्यता, उनके प्रति अपनी नकारात्मक प्रवृत्ति, समुदाय में अपनी स्थिति आदि बहुत कुछ वातावरण पर निर्भर होता है।

सामाजिक प्रतिक्रिया

बच्चा जन्म के समय असामाजिक माना जाता है किन्तु वह इस प्रकार अधिक समय नहीं रह सकता। वह परिवार में रहता है और उसे अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए लगातार अधिक समय तक परिवार के अन्य सदस्यों के ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। सबसे प्रथम सामाजिक प्रतिक्रिया बालक के चेहरे की उस मुस्कुराहट के रूप में देखने में आती है जो वह अपनी माता को देखकर लाता है। दो से पाँच वर्ष के बीच बच्चे के

सामाजिक व्यवहार मे विभिन्नता बढने लगती है। मुस्कुराहट से प्रारम्भ होकर यह दूसरों से चीजें स्वीकार करने तथा विभिन्न हाव-भाव प्रकट करने के रूप मे बढती है। न केवल विभिन्नता किन्तु सामाजिक व्यवहार का घेरा भी बढने लगता है। उदाहरण के लिए प्रारम्भ मे उसकी प्रतिक्रिया माता तक ही सीमित रहती है, किन्तु बाद मे वह भाई, बहन तथा अन्त में अपरिचितो तक बढ जाती है। इस प्रकार बच्चे की सामाजिकता की सीमा बढती है।

सामाजिक प्रतिक्रिया म अन्तर बहुत पहले ही, जब बच्चा प्रथम या द्वितीय वर्ष मे रहता है, देखने मे आता है। यह तीन तरह से दिखाई देता है। प्रथम है सामाजिक एका-तता। इस प्रकार के बच्चे अन्य बच्चों की क्रियाओ से अप्रभावित रहते हैं। वे अकेले ही खेलते हैं तथा दूसरे बच्चो के साथ नही मिलते। दूसरे शब्दो म उनमे सामाजिक भावना का अभाव रहता है। दूसरे प्रकार म वे बच्चे है जो सामाजिक दृष्टि से दूसरो पर निर्भर रहते है। वे दूसरों के द्वारा प्रभावित होते हैं तथा उन्ही की क्रियाओ के आधार पर प्रतिक्रिया करते हैं। उनमे स्वतन्त्र रूप से काम प्रारम्भ करने की शक्ति का अभाव होता है तथा व सदा दूसरो का अनुकरण करते व उनके पीछे चलते है। तीसरा प्रकार वह है जिसम बच्चे सामाजिक दृष्टि से आत्म निर्भर या स्वतन्त्र रहते हैं। ऐसे बच्चे स्वय काय प्रारम्भ करत तथा आत्म प्रदर्शन करते हैं। उनमें भावी नेतृत्व के चिह्न होते हैं। यद्यपि उपर्युक्त विभिन्नताएँ एक दूसरे से बिलकुल अलग तथा स्पष्ट नही रहती किन्तु ये उन महत्त्वपूर्ण गुणो का सकेत अवश्य कर देती हैं जिनकी बालक के भावी सामाजिक विकास मे बडी आवश्यकता होती है।

बच्चे का सामाजिक विकास विभिन्न स्तरो से गुजरता है। प्रथम स्तर मे बच्चा स्वार्थी तथा अपन आप मे केन्द्रित रहता है। उसकी सामाजिक प्रतिक्रिया उसके शारीरिक सुख और सन्तोष मे घनिष्ट रूप से जुडी रहती है। दो और तीन वर्ष की उम्रवाले बच्चो म नकारात्मक व्यवहार, हठ या जिद की भावना देखने में आता है। इसका मुख्य कारण वह अन्तर्द्वन्द्व होता है, जो बालक की अपनी आवश्यकताओ तथा बढते हुए सामाजिक नियन्त्रण के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। शरीर की अस्वस्थता, आवश्यकताओ की पूर्ति न होना तथा निराशा की भावना भी बालक के हठी व्यवहार के लिए जिम्मेदार होते है। तीन वर्ष की उम्र के बाद विकास का दूसरा स्तर आता है जब बच्चा सामाजिक हो जाता है। उसका पुराना व्यवहार अधिक एकीकृत हो जाता

है। बच्चा खेल मे रुचि लेने लगता है जो उसके सामाजिक गुणो को प्रदर्शित करता है। खेल मे एकान्तता से सामूहिकता की ओर परिवर्तन देखने मे आता है। आपस म लेनदेन का सम्बन्ध बढता है जिससे बालको के समुदाय म सामाजिक सम्पर्क की वृद्धि होती है।

मित्रता की आवश्यकता

पाँच वर्ष की अवस्था मे बच्चो मे मित्रता की आवश्यकता अधिक तीव्र हो जाती है। वे नाटकीय तथा व्यक्तित्व अभिनय के खेल खेलने लगते हैं। वे अपने ही घर के सदस्यो का पार्ट अदा कर खेलते तथा उनका अनुसरण करते हैं। इस प्रकार खेल बालक मे सामाजिक सम्बन्धो की वृद्धि करते है। कुछ मनोवैज्ञानिक इसे भावी-जीवन का पूर्व तैयारी मानते हैं। छ से दस वर्ष के बीच बच्चो म नेतृत्व के चिह्न सामुदायिक भावना धैर्य तथा सहयोग की विशेषताएँ देखने मे आती हैं। उनमे विशिष्टता व्यवस्था तथा सहकारिता दिखाई देती है जो खेलो मे उनके सामूहिक जीवन की सफलता मे सहायक होती है।

बच्चो के सामाजिक विकास पर प्रभाव डालनेवाले अनेक तत्व हैं। घर म अपनी बराबरी के बच्चे खेल के सामानो की उपलब्धि तथा बच्चों की सख्या पर बालक का सामाजिक विकास निर्भर होता है। ऐसा देखने मे आता है कि बच्चे अपनी ही उम्र के अन्य बच्चो के साथ मित्रता करते हैं, अत उम्र की समानता मित्रता के निर्माण तथा सामाजिक विकास मे सहायक तत्व होता है। दूसरा तत्व है समीपता या पडोस का रहना। छोटे बच्चो म अपने ही पडोस म रहनेवाले बच्चो मे मित्रता बढ़ाने की प्रवृत्ति होती है। तीसरा तत्व है भाषा की समानता। एक सी भाषा बोलने से बच्चो मे मित्रता तेजी से बढ़ती है। ये सभी तत्व छोटी अवस्था के बालकों के लिए लागू होते हैं। इसके अधिक उम्र के बच्चो मे रुचि की समानता का अधिक प्रभाव पडता है। उदाहरण के लिए एक किशोर बालक की अपने पडोस म रहनेवाले बालक से मित्रता न हो क्योकि दोनों की रुचियो मे भिन्नता है। इसी प्रकार पाच वर्ष स कम उम्रवाले बच्चो म लिंग का कोई महत्त्व नहीं पड़ता किन्तु इसके बाद किशोरावस्था मे यह उनकी मित्रता पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है।

माता पिता से बच्चों के सम्बन्ध

बच्चो को सामाजिक बनाने म माता पिता और बच्चो के आपसी

सम्बन्धों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। कभी कभी बच्चा की अनावश्यक रूप से अत्यधिक सुरक्षा की जाती है। इसके कई कारण है। उदाहरणार्थ बच्चे का अपने माता पिता की एकमात्र सन्तान होना, निरन्तर माता पिता को लम्बे अर्से के बाद सन्तान होना, बच्चे का कमजोर और नाजुक होना, माता पिता के आपसी सम्बन्ध अच्छे न होने के कारण बच्चे को उनका स्नेह प्राप्त न होना और उसका अकेलापन महसूस करना इत्यादि।

बच्चे की अत्यधिक सुरक्षा में अन्य कारणो का भी हाथ रहता है जैसे यदि माता का प्रारम्भिक बाल्यकाल कष्टमय रहता है और उसे स्नेह और सुरक्षा की प्राप्ति नही हो पाती है तो वह इस अभाव की पूर्ति आगे चलकर अपने बच्चे को अत्यधिक स्नेह और सुरक्षा देकर करती है। ऐसे बच्चो का शाला के वातावरण के साथ समायोजन कर पाना कठिन हो जाता है। कारण, वे शाला मे भी शिक्षको से अत्यधिक स्नेह तथा पक्षपातपूर्ण समर्थन की अपेक्षा रखते हैं। इसके प्राप्त न होने पर उसमे शाला के प्रति नकारात्मक प्रवृत्ति जड पकड लेती है। जो उसके सामाजिक विकास मे बाधक सिद्ध होती है।

जिस प्रकार माता पिता द्वारा अत्यधिक सुरक्षा बालक के हित मे हानिकारक होती है उसी प्रकार उनके स्नेह का अभाव व अवहेलना भी बालक के लिए घातक सिद्ध होती है। बच्चा अपने माता पिता से प्रेम तथा सुरक्षा चाहता है। यदि यह उसे न मिले तो उसके सामाजिकता और व्यक्तित्व निर्माण पर बुरा प्रभाव पडता है। माता पिता की बच्चे के प्रति अस्वीकृति प्राय उनके द्वारा दिये गये कड़े दण्ड, बच्चे की आलोचना, उसकी इच्छाओ की पूर्ति न करना, कठोरता से पालन-पोषण करना, बच्चो के बीच पक्षपातपूर्ण रवैया रखना, कडाई से अनुशासन का पालन करवाना तथा उन्हे आर्थिक सहायता न देने आदि के रूप मे दिखाई देती है।

शाला घर की सहायक है

घर मे बच्चे के व्यक्तित्व की नीव पडने के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व शाला है जो उस नीव पर निर्माण का काय करता है। जहाँ तक नागरिकता की शिक्षा चरित्र के निर्माण तथा सामाजिकता की अभिवृद्धि का प्रश्न है शाला घर की सहायता करती है। यह शालाओ मे पाठ्य विषयो के अध्यापन, खेल कूद के आयोजन सास्कृतिक कायक्रम परिभ्रमण, शिविर तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यक्रमो के द्वारा की जाती है। ये सब बच्चो की सामाजिक विकास

के लिए विस्तृत क्षेत्र तथा अवसर प्रदान करते है। इस प्रकार घर, शाला और समाज, तीन महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं जिनके समन्वित सहयोग पर बच्चो का सामाजिक विकास निर्भर करता है।

शिक्षा की विचारधारा

शिक्षा अथवा विकास की प्रक्रिया का यथोचित ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पहले बच्चे के स्वभाव या उसकी प्रकृति का विश्लेषण किया जाय। वैज्ञानिक विधि के आविर्भाव के पूर्व शिक्षा की विचारधारा बच्चे के स्वभाव के सम्बन्ध मे लोगो की सामान्य धारणा पर आधारित थी। इसी तरह का एक विश्वास यह भी था कि बच्चा प्रौढ का ही छोटा रूप है अत शाला मे बच्चो की शिक्षा के लिए प्रौढ स्तर रखे जायें। इसके अन्तर्गत बालको मे प्रौढ आदतो के निर्माण पर जोर डलवाया था। किन्तु, इस आधार पर कि, बच्चो और प्रौढो मे न केवल आकार या स्वरूप का अन्तर है वरन् उनमे स्वभाव या गुणों की भी भिन्नता पायी जाती है उपर्युक्त विचारधारा का खण्डन कर दिया गया।

दूसरी विचारधारा यह थी कि बच्चा स्वभाव से अपराधी या शैतान होता है। उसके लिए दण्ड का विधान आवश्यक है। दण्ड न दो तो बच्चा बिगड जाता है अत इस विचारधारा के अनुसार बच्चो के लिए कठोर अनुशासन तथा दण्ड की व्यवस्था पर जोर दिया गया। इसके विरुद्ध एक दूसरा अवैज्ञानिक विश्वास यह था कि बच्चा स्वभाव से अच्छा और पवित्र होता है किन्तु भौतिक वातावरण में रहकर वह अनैतिक बन जाता है।

इन सभी विचारधाराओं के प्रतिकूल आधुनिक मनोविज्ञान इस बात पर जोर देता है कि शिक्षा बच्चे के स्वभाव के वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित हो न कि उसके सम्बन्ध मे लोगो की सामान्य धारणा पर। शिक्षा के सम्बन्ध मे कुछ अन्य विचारधाराऐं हैं जो बच्चे के वशानुक्रम अथवा उसके वातावरण के प्रभाव से सम्बन्ध रखती है। कुछ लोगो का मत है कि बच्चे के विकास मे वशानुक्रम प्रधान होता है। उसकी योग्यताएँ, प्रवृत्तियाँ, बुद्धि आदि उसके वशात्मक प्रभाव पर निर्भर होते हैं। यहाँ शाला अथवा शिक्षक उसके विकास-क्रम मे कोई महत्त्व नही रखते। दूसरा मत है कि बच्चे का विकास उसके सामाजिक, आर्थिक व अन्य वातावरण-सम्बन्धी तत्वो पर निर्भर होता है।

बच्चो का विकास कुछ सिद्धान्तों अथवा नियमो पर आधारित होता है। प्रत्येक माता-पिता अथवा शिक्षक के लिए इनका ज्ञान आवश्यक है ताकि वे बच्चो का समुचित विकास करने मे सफल हो सके। सबसे पहली बात यह है कि बच्चे का विकास लगातार होता रहता है। उसमे बीच-बीच मे अचानक रुकावट नही आती तथा विकास के क्रम मे तारतम्यता बनी रहती है।

दूसरी बात यह है कि विकास की प्रक्रिया मे एक क्रम होता है। यह सभी बच्चो मे समान होता है। उदाहरण के लिए सभी बच्चे सबसे पहले गर्दन उठाना सीखते हैं। इसी प्रकार सभी मे पहले आँख की हलचल तथा बाद में क्रमश सिर, कमर तथा पैर की क्रिया आरम्भ होती है। विकास का यह क्रम चलने, खडे होने आदि क्रियाओं मे विशेष रूप से देखने मे आता है। यह एक विशेष दिशा म विकास का नियम कहलाता है। यहाँ तक कि जन्म के पूर्व गर्भावस्था म भी यह क्रम देखने मे आता है जबकि हाथो का बनना प्रारम्भ होता है तथा बाद मे पैरो का।

बच्चो मे विकास का क्रम सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है। यह सामान्य अस्त-व्यस्त हलचल से आरम्भ होकर ज्यादा विशिष्ट और व्यवस्थित क्रिया की ओर अग्रसर होता है। शिशु-अवस्था मे यदि बच्चे के पैर मे चिमटी ली जाय तो वह पूरे शरीर को हिलाकर प्रतिक्रिया करता है न कि केवल पैर हटाकर। किन्तु बाद मे वह अपने पैर की स्नायु का नियन्त्रण सीख लेता है और तब वह पैर मे चिमटी ली जाने पर केवल पैर को हिलाता है न कि पूरे शरीर को। जैसे-जैसे बच्चे का विकास होता जाता है उसकी छिन्न भिन्न सामान्य हलचल कम होती जाती है और क्रिया अधिक विशिष्ट हो जाती है। इस समय उसकी विभिन्न प्रतिक्रियाओ मे अन्तर करना ज्यादा आसान हो जाता है।

एक अन्य उदाहरण से उपर्युक्त कथन की सत्यता सिद्ध हो जाती है। बहुत प्रारम्भिक अवस्था मे यदि कोई वस्तु बच्चे को दिखायी जाय तो उसे पकडने के लिए वह अपना पूरा हाथ आगे बढाता है किन्तु बाद मे वह उसे अपनी अगुलियों और अगूठे से पकडना सीख लेता है और तब उसे पूरा हाथ आगे बढाने की आवश्यकता नहीं होती। यही प्रक्रिया बच्चो मे भाषा की योग्यता के विकास के समय भी देखने मे आती है। आरम्भ मे वह अस्पष्ट तथा चटपटे स्वर मुँह से निकालता है तथा बाद मे स्पष्ट शब्द बोलना सीखता है।

इसी प्रकार प्रत्ययों के निर्माण के समय आरम्भ में धुंधले व अस्पष्ट रहते हैं किन्तु बाद में अनुभव की वृद्धि के साथ-साथ वे अधिक स्पष्ट होते जाते हैं तथा उनमें अन्तर करना आसान हो जाता है।

विकास में समन्वय

विकास की प्रक्रिया में समन्वय अथवा सहसम्बन्ध होता है। बालक के व्यवहार की विभिन्न क्रियाओं में कुछ सम्बन्ध या समन्वय होता है। एक बच्चा, जो शारीरिक विकास की दृष्टि से पिछड़ा है, वह मानसिक, सामाजिक अथवा संवेगात्मक विकास में भी पिछड़ा हो सकता है। यहाँ तक कि अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था में जब बच्चा २ से ६ वर्ष के बीच में रहता है, उसकी योग्यताओं में समन्वय देखा जाता है। यहाँ एडलर का सिद्धान्त 'जो बच्चा शारीरिक दृष्टि से कमजोर होता है, उसकी मानसिक योग्यता बढ़ी हुई होती है अर्थात् बौद्धिक दृष्टि से प्रतिभावान बच्चा संवेगात्मक दृष्टि से असन्तुलित रहता है'—यहाँ सत्य सिद्ध नहीं होता है।

बच्चे का विकास वंशानुगत प्रभाव तथा वातावरण दोनों पर निर्भर होता है। वंशानुगत प्रभाव से तात्पर्य है बच्चे की ग्रन्थियों, नाड़ी मण्डल, तथा विभिन्न संस्थानों से युक्त शरीर की रचना। वातावरण के अन्तर्गत बच्चे का भोजन, पौष्टिक तत्व, प्रकाश, सामाजिक प्रेरणा इत्यादि आते हैं। यह विवादग्रस्त प्रश्न है कि बच्चे के विकास में वंशानुक्रम अधिक प्रभावशाली होता है अथवा वातावरण। किन्तु देखने में आया है कि दोनों का ही इसमें महत्व है। वास्तव में बच्चे का विकास वंशानुगत योग्यता तथा अनुकूल वातावरण, दोनों ही के परिणामस्वरूप होता है।

कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा

आचार्यकुल : सहरसा के अनुभव

श्री विनोबाजी ने भारत में ग्रामस्वराज्य या लोकस्वराज्य की स्थापना करने के अपने ग्रामदान आन्दोलन के सन्दर्भ में से आचार्यकुल का विचार देश को दिया है। विनोबाजी ने, यह कहा जा सकता है, शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी से भी अधिक व्यापक और सघन प्रयोग किये हैं। शिक्षा सम्बन्धी उनके विचार उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'शिक्षण विचार' में संग्रहीत हैं। यों आचार्यकुल की सारी विचार भूमि उनकी इस पुस्तक में उपलब्ध है किन्तु फिर भी इसकी कल्पना और योजना एकदम नयी ही कही जायगी। इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण तथ्य यही है जिसपर ध्यान देने की बड़ी आवश्यकता है कि इस कल्पना और योजना का जन्म सामाजिक परिवर्तन के एक ऐसे आन्दोलन के गर्भ में से हुआ है जिसकी तुलना में इतना व्यापक और इतना सघन कभी कोई आन्दोलन कहीं नहीं चला। इस दृष्टि से कह सकते हैं कि आचार्यकुल विनोबाजी के शिक्षा दर्शन का निचोड़ है। इसलिए जब सहरसा में विनोबाजी की प्रेरणा से ग्रामस्वराज्य का राष्ट्रीय प्रयोग आरम्भ हुआ तब यह स्वाभाविक ही था कि आचार्यकुल भी वहीं परीक्षा में बैठे। विनोबाजी ने आचार्यकुल से मुख्य तीन अपेक्षाएँ रखी हैं

१. यह समाज मे ज्ञान और कर्म के वर्तमान अन्तर को समाप्त करके उनका समन्वय करने के लिए आवश्यक बौद्धिक और नैतिक वातावरण देश में पैदा करेगा।

२ ऐसे वातावरण के लिए व्यक्ति का स्वय पर विश्वास होना पहली आवश्यकता है। अत समाज मे से सत्ता (राज्य) की प्रतिष्ठा समाप्त करनी होगी। क्योकि जब तक व्यक्ति सत्ता को अपना सरक्षक मानता रहेगा तब तक उसमे आत्म विश्वास नही पनप सकता। आचार्यकुल ही यह काम कर सकता है ऐसा विनोबाजी का मानना है।

३ इस तरह के ज्ञान कर्म, समन्वय और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व के विकास के लिए ऐसे चरित्रवान, प्रज्ञावान, आचारवान, निर्भीक और स्वतंत्र व्यक्तियो की आवश्यकता है जो इस उद्देश्य के लिए समर्पित एक बिरादरी मे सगठित हो और जिनमे समाज अपने आदर्श ग्रहण कर सके। आचार्यकुल ऐसे लोगो की बिरादरी बन सकेगा यह भी विनोबाजी की अपेक्षा है।

सहरसा, रुपौली, मुसहरी, (सभी बिहार), बीकानेर (राजस्थान) और तजौर (तमिलनाडु) के क्षेत्रो मे ग्रामस्वराज्य का सघन काय हो रहा है। इस कार्य का उद्देश्य भी यही है कि

१ गाँव मे एक ऐसा सगठित और आत्म-चेतन स्वायत्त समाज की स्थापना हो जो अन्तत गाँव से सत्ता (राज्य) का अन्त कर दे।

२ इसकी प्रक्रिया तत्काल आरम्भ हो और इसे किसी सक्रमण-काल के लिए न छोडा जाय। (इसके लिए गाँव मे ही गाँव के मुख्य मामलो की भूमि, शिक्षा, सुरक्षा और शान्ति की व्यवस्था करने के लिए क्रमश ग्राम-सभा, ग्रामकोष और शान्तिसेना की स्थापना का काम हो रहा है। इसे हम नकद क्रान्ति कहते है।)

३ अन्तत सारे देश और विश्व को ऐसे लघु स्वायत्त समुदायो के एक महासघ के रूप मे विकसित करने का यह प्रयास है।

इस प्रकार से ग्रामस्वराज्य और आचार्यकुल के उद्देश्य समान हैं क्योकि दोनो ही एक तरफ गाँव और दूसरी तरफ विश्व व्यवस्था मे विश्वास करते हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि आचार्यकुल और ग्रामस्वराज्य अपने उद्देश्यो की प्राप्ति के बिना एक दूसरे की सहायता नही कर सकते। यही कारण रहा

कि सहरसा में ग्रामस्वराज्य आन्दोलन के साथ ही आचार्यकुल का काम भी आरम्भ कर दिया गया। अब तक जो अनुभव आये हैं वे उत्साहप्रद हैं।

हम अभी तक उपलब्धियों को इस प्रकार गिना सकते हैं:

१ समस्त क्षेत्र मे आचार्यकुल के विचार और कार्यक्रम का खूब प्रसार हुआ है और अब शायद ही कोई विद्यालय और शिक्षक ऐसा हो जो इस शब्द से अपरिचित हो। श्रद्धेय धीरेन्द्र भाई इसे मन्त्र-सचार कहा करते है। हमने आरम्भ से ही ऐसा माना था और अब लगता है कि ठीक ही माना है, कि आचार्यकुल सगठन के बजाय एक आन्दोलन अधिक है। अत इसका सगठन-पक्ष इसके मत्र पक्ष के मुकाबले काफी कम बना है। फिर भी इस समस्त क्षेत्र मे लगभग १२०० सदस्य बने हैं जो लगभग ८०० विद्यालय इकाइयों मे फैले हैं। गुराहरी रहित २७ प्रखण्डो मे से १७ निर्वाचित प्रखण्ड समितियाँ हैं और दो को छोड़कर बाकी मे तदर्थ समितियाँ काम कर रही है। सहरसा मे एक जिला समिति भी है। ये समितियाँ आपस मे बैठती है, आपसी और सामाजिक मामलों पर विचार-विमर्श करती हैं और समय-समय पर गोष्ठियाँ तथा शिविर आदि करती हैं।

२ किन्तु सगठन पक्ष से ही अधिक महत्त्वपूर्ण यहाँ आचार्यकुल का आन्दोलन-पक्ष है। खासकर सहरसा मे आचार्यकुल का ग्रामस्वराज्य आन्दोलन के साथ घनिष्ट अनुबन्ध है। उसके सदस्य व्यक्तिगत और सगठन-स्तर पर भी ग्रामस्वराज्य के काम मे भाग लेते हैं और उन्होने अनेक बड़े-बड़े अभियानों में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। पिछले साल ११ सितम्बर से २ अक्तूबर तक के अभियान मे और ९ अगस्त को शिक्षा मे क्रान्ति-अभियान मे आचार्यकुल की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। इसके अलावा सहरसा मे सात प्रखण्ड आचार्यकुल समितियो ने अपने-अपने क्षेत्रों मे एक एक पायलेट प्रोजेक्ट लेकर काम करने का निश्चय किया है और इसी प्रकार जिला-समिति ने एक पूरे प्रखण्ड को अपना सघन-क्षेत्र मान्य किया है। यद्यपि अभी इस दिशा मे कोई उल्लेखनीय काम नहीं हो पाया है किन्तु आचार्यकुल इस दिशा मे चिन्तन कर रहा है यही महत्त्वपूर्ण है। अब सारे जिले को आचार्यकुल, शान्तिसेना और ग्रामस्वराज के त्रिविध समन्वित कार्य के लिए २५० आचार्यकुल अभियान-केन्द्रों मे सगठित किया गया है जो अपने आसपास के विद्यालयों से सम्बद्ध होकर उनके माध्यम से सम्बन्धित गाँवों मे काम करेंगे। यदि ये केन्द्र सक्रिय हो गये तो बहुत बड़ा काम होगा।

२. यहाँ पर आचार्यकुल के एक त्रिविध कार्यक्रम का सहज विकास हुआ है। —ये हैं आचार्यत्व-दीक्षा, शिक्षा में क्रान्ति और ग्रामस्वराज्य। आचार्यत्व-दीक्षा-कार्यक्रम के अन्तर्गत शिक्षकों के व्यक्तिगत नैतिक और चारित्रिक स्तर को ऊपर उठाने का काम किया जाता है। इसके अन्तर्गत दो बातें की जा रही हैं। एक तो शिक्षकों के लिए एक आचार-संहिता का विकास वे स्वयं कर रहे हैं और रुपौली क्षेत्र से इसका आरम्भ किया गया है। दूसरी बात यह हुई है कि शिक्षकों और विद्यालयों के लिए एक सप्त सूत्री दैनिक कार्यक्रम विकसित किया गया जिसके माध्यम से शिक्षक, शिक्षा और विद्यालय के स्तर तथा प्रतिष्ठा म वृद्धि होगी। आचार्यकुल शिक्षा में जिस प्रकार की स्वायत्तता की बात करता है उसके सन्दर्भ में शिक्षा-सुधार को ध्यान में रखकर कुछ विद्यालयों का चयन किया गया है जहाँ के शिक्षकों ने अपने विद्यालयों म सुधार के लिए इच्छा जाहिर की है। विभाग की ओर से उन्हें पूर्ण स्वायत्त और सहयोग देने का आश्वासन दिया गया है। यह काम भी रुपौली क्षेत्र से आरम्भ किया गया है।

आचार्यकुल का दूसरा कार्यक्रम शिक्षा म क्रान्ति का माना गया है। रुपौली, मुसहरी और सहरसा में इस सवाल पर विचार हो रहा है। इसका आरम्भ भी मुसहरी से श्री जयप्रकाश नारायणजी ने किया है। वहाँ पुष्टि का प्रथम चरण लगभग पूरा हो रहा है, सारे प्रखण्ड में ग्रामदान की शर्तों के अनुसार ग्रामसभाएँ बन गयी हैं और वे ग्राम विकास के लिए सक्रिय बन रही हैं। अब वहाँ यह स्थिति बन गयी है कि शिक्षा के सवाल को भी ग्रामसभा हाथ में ले। इसलिए ग्रामसभा और शिक्षा-जगत को इस बारे में सलाह और मार्गदर्शन करने का काम आचार्यकुल का है यह मानकर वहाँ पर शिक्षा में सुधार का एक कार्यक्रम गुजरात के श्री ज्योतिभाई देसाई के मार्गदर्शन में चल रहा है। प्रखण्ड के शिक्षकों की एक टोली उनके यहाँ वेडछी में एक माह के प्रशिक्षण के लिए गयी थी जो अब वापस आ गयी है। अब ये शिक्षक अपने-अपने विद्यालयों को नयी शिक्षा के ढाँचे म ढालने का प्रयास करेंगे। अभी यह काम प्रचलित पाठ्यक्रम को ध्यान में रखकर होगा और बाद में जहाँ आवश्यकता होगी नया रूप भी दिया जा सकता है।

इसी प्रकार से रुपौली में, जहाँ श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी के नेतृत्व म पिछले डेढ साल से ग्रामस्वराज्य का सघन प्रयोग चल रहा है और जहाँ भी इसका प्रथम चरण पूरा हो गया, अब शिक्षा को हाथ में लिया गया है। वहाँ भी रुपौली और भवानीपुर प्रखण्डों म, जहाँ पर आचार्यकुल का कुछ काम

हुआ है, कुछ इच्छुक शिक्षकों तथा विद्यालयों का चयन किया गया है कि वे अपने अपने विद्यालयों को नयी शिक्षा का मॉडल बनायें। वहाँ भी विकास की एक 'पंचवर्षीय योजना' तैयार हुई है जिसमें शिक्षा को नया मोड देने का प्रश्न भी शामिल है। इसमें भी शिक्षा-विभाग का पूरा सहयोग प्राप्त है। भागलपुर प्रमण्डल के उप-शिक्षा-निदेशक श्री उमा प्रसाद सिंह पुराने क्रान्तिकारी रहे हैं और गांधीजी की नयी तालीम के आचार्य हैं। वे इन सारे कामों में खूब रुचि ले रहे हैं।

सहरसा का काम आरम्भ से ही श्री धीरेन्द्रभाई के मार्ग दर्शन में चल रहा है। वे तो स्वयं ही साकार शिक्षक हैं। उन्होंने आचार्यकुल के लिए आज के सन्दर्भ में नयी तालीम की दृष्टि से ग्राम गुरुकुल की एक योजना दी है जिसे साकार रूप देने का काम चल रहा है। इस काम में सलाह देने और मदद करने के लिए म० प्र० से सर्वोदय के जाने माने शिक्षाविद श्री गंगाधर पाटनकर ने एक कार्य-योजना बनायी है। अब प्रयास यह है कि यहाँ से कुछ शिक्षकों को और कुछ अन्य रचनात्मक कार्यकर्ताओं को, जो शिक्षा में रुचि लेते हों और इसे अपना जीवन-कार्य मानकर काम कर सकते हो, कुछ समय के लिए श्रीपाटनकरजी के साथ अनुभव लेने के लिए भेजा जाय। शिक्षकों को कम-से-कम एक माह और कार्यकर्ताओं को कम-से-कम चार माह तक वहाँ रहना होगा। फिर शिक्षकों से अपेक्षा है कि वे अपने-अपने विद्यालयों को नयी शिक्षा के अनुरूप मोड दें। उन्हें इस कार्य में कार्यकर्ता भी मदद करेंगे।

इस प्रकार से आचार्यकुल के इस क्षेत्र प्रयोग के काम की दो-तीन विशेषताएँ ध्यान में आयी हैं

१– आचार्यकुल के विचार ने शिक्षकों और समस्त शिक्षा जगत को स्पर्श किया है और "आज हम क्या कर सकते हैं" की लाचारी से यह शिक्षकों को निकाल सकता है। यह अनुभव आया है कि इस प्रकार की लाचारी ज्यों-ज्यों ऊपर जायँ, कालेज और विश्वविद्यालय-स्तर पर, त्यों-त्यों अधिक महसूस किया जाता है किन्तु इसमें भी एक आश्चर्यजनक और दिलचस्प बात यह है कि ऊपर के क्षेत्र में इस लाचारी से निकलने की सबसे कम इच्छा है। इस क्षेत्र के शिक्षक असल में समाज और शिक्षा के प्रचलित ढाँचे में ही अपना सुरक्षित स्थान बनाने के लिए जीवन लगा देना चाहते हैं और इनमें परिवर्तन की चाह समाप्त-सी हो गयी है। एक कारण यह भी है कि आचार्यकुल का विचार इस क्षेत्र को अधिक नहीं छू पाया है। जहाँ ऐसा हुआ भी है वहाँ पर अभी आचार्य-

कुल उनके बुद्धि-विलास का मच मात्र बना हुआ हैं, किन्तु उसे एक जबर्दस्त शिक्षा का सामाजिक आन्दोलन बनाना होगा तभी उसकी सार्थकता है। यदि समाज के इस दिशा मे कोई अन्य आन्दोलन चल रहा हो तो स्वभावत ही आचार्यकुल को इससे बल मिलेगा और यही कारण है कि ग्रामस्वराज्य के इस समस्त प्रयोग-क्षेत्र मे वह नीचे से विकसित हो रहा है। यहां अभी यह प्राथमिक विद्यालयो से लेकर हाई स्कूलो तक ही पहुँच पाया है। किन्तु जितना भी पहुँचा है उतना वह मुखर है और एक दिशा की ओर बढ रहा है। यदि ग्रामस्वराज्य के जैसे किसी आन्दोलन से यह जुडा नही होता तो यह केवल चन्द बुद्धिवादियो की बहसो की फुरसत का मच-मात्र रह जाता। आचार्यकुल के विकास की दृष्टि से यह अनुभव महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है।

२—एक दूसरी बात जो ध्यान मे आयी है वह यह कि आचार्यकुल के जो उद्देश्य हैं वे हमारे सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करते हैं, केवल शिक्षा को ही नहीं। कालेजो और विश्वविद्यालयो के शिक्षकों का जीवन धरती (सक्रिय सामुदायिक जीवन) से लगभग अलग सा पड गया है और इसके विपरीत प्राथमिक और माध्यमिक शालाओ के शिक्षक, शिक्षक से पहले ग्रामीण किसान भी होते हैं, इसलिए भी यह कोई सयोग नही है कि वे ही आचार्यकुल के प्रति अधिक आकर्षित हो, क्योंकि आचार्यकुल के उद्देश्यों की पूर्ति वे एक अन्य व्यापक सामाजिक प्रयास ग्रामस्वराज्य मे देखते हैं। आज वे इस दिशा मे बहुत अधिक सक्रिय नही भी हो किन्तु उन्हे यदि अवसर और अनुकूलता हो तो वे अधिक-से-अधिक इन कामो मे भाग लेना पसन्द करेंगे। शिक्षको मे इस प्रकार की रुचि का बनना, मेरे विचार मे, आचार्यकुल के लिए शुभ लक्षण हैं।

३—एक तीसरी बात भी ध्यान मे आती है। यद्यपि यह अभी केवल एक संकेत मात्र है किन्तु यदि इस सकेत को हमने प्रतिभापूर्वक समझा तो इससे भी क्रान्तिकारी नतीजे निकलेंगे। हम जानते हैं कि समाज-परिवर्तन का कोई भी प्रयास बिना उसकी युवा-पीढ़ी के सक्रिय सहयोग के सफल नही हो सकता। गाधीजी शायद पहले व्यक्ति थे जिन्होने युवको का कोई अलग सगठन बनें बिना राष्ट्रीय आन्दोलन मे उनसे भरपूर मदद ली थी। आज परिवर्तन का इच्छुक हर युवक अपना अलग सगठन बनाने की चिन्ता करता है, क्योकि अभि-भावकों की ओर से उसे यह डर हो गया है कि ये लोग परिवर्तन के विरोधी ही नही दुश्मन भी हैं। इससे वह (युवक) अपना अलग सगठन बनाना आवश्यक मानता है। किन्तु चूंकि उसका अन्य किसी व्यापक और बुनियादी सामाजिक आन्दोलन

से कोई सम्बन्ध नहीं है इससे युवा-सगठन गलत दिशा में भी चले जा रहे हैं। इसका ही नतीजा है कि आज युवक और अभिभावक आमने सामने खड़े हैं। जहाँ तक शिक्षा-जगत का सवाल है वहाँ यह आमना-सामना छात्र और शिक्षक के बीच हो रहा है। किन्तु यदि किसी परिवार में पिता-पुत्र इस तरह आमने-सामने हो जायें तो उस परिवार की जो दशा होगी आज वही दशा समाज तथा विद्यालयों की हो रही है। अत आज यदि समाज को विघटन से बचाना हो तो युवक और अभिभावक, शिक्षक और छात्र का संयुक्त मोर्चा बनाना ही होगा और इसका आरम्भ विद्यालयों से करना होगा, क्योंकि वहीं ये दो पीढ़ियाँ सबसे अधिक निकट हैं। जहाँ निकटता अधिक होती है वहीं टकराव भी अधिक होता है। ग्रामस्वराज्य के आन्दोलन में गाँव की दृष्टि से ग्रामसभा, शिक्षक की दृष्टि से आचार्यकुल और छात्रों की दृष्टि से शान्तिसेना की कल्पना की गयी है। इन तीनों पायों से मिलकर ही समाज-रूपी तिपाई खड़ी हो सकती है। यहाँ के इन सारे प्रयोग-क्षेत्रों में यह सहजता सदा रही है। यह एक महत्वपूर्ण बात है। हर जगह जहाँ तरुण-शान्तिसेना का सगठन है उसके मार्गदर्शक या प्रभारी के रूप में आचार्यकुल का एक सदस्य शिक्षक है। उसी प्रकार से सहरसा जिले भर में आचार्यकुल, शान्तिसेना और ग्रामस्वराज्य के विविध कार्यक्रम को सम्पन्न करने की दृष्टि से आचार्यकुल के २५० अभियान-केन्द्र बनाने का निर्णय लिया गया है। इन केन्द्रों का सगठन भी इन तीनों अगों को लेकर हो रहा है। यह सब इसलिए सहज बन पा रहा है क्योंकि हम सब एक व्यापक तथा समग्र काम—ग्रामस्वराज्य—में लगे हैं। जहाँ भी हम सब इस प्रकार के किसी समग्र और व्यापक कार्यक्रम को लेकर नहीं चलेंगे और अपने अपने अलग अलग कार्यक्रम सम्पन्न करना चाहेंगे वहा पर हम कोई सफलता मिलने की सम्भावना जरा भी नहीं है।

हम शिक्षा, समाज या व्यक्ति के जीवन में जो भी कुछ करना चाहें वह पृथकता में हो ही नहीं सकता है। ग्रामस्वराज्य के इस प्रयोग-क्षेत्र ने यह बात सिद्ध कर दी है। हमें सदा समग्रता की दृष्टि से ही सोचना और करना होगा। पृथकता से तो परमात्मा तक घबरा गया था तभी तो उसे सृष्टि रचने का काम हाथ में लेना पड़ा।

श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, केन्द्रीय आचार्यकुल समिति, राजघाट, वाराणसी

दिल्ली प्रदेश आचार्यकुल का प्रथम सम्मेलन

ता० २९ ११ ७१ को साय तीन बजे दिल्ली विश्वविद्यालय के गाधी भवन म दिल्ली प्रदेश के आचायकुल के प्रथम सम्मेलन का प्रारम्भ हुआ।

गाधी भवन के निदेशक श्री एम०एन० रानाडे ने सभी का स्वागत किया और कहा कि आज हम आचार्यकुल के विचारो की चचा तथा उसके काय को आगे बढाने के सम्बन्ध मे एकत्रित हुए हैं। अन्य शिक्षको की भाँति एक शिक्षक के नाते मैं यह जानता हू कि शिक्षा-क्षेत्र मे ऐसी कई बातें हैं जिनको सुधारना आवश्यक है। शिक्षक अपनी नैतिक जिम्मेदारी पर अवश्य ध्यान दें और उसके लिए उनका एक सगठन होना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि मुझे उम्मीद है कि आचायकुल के रूप म हम दिल्ली म ऐसा सगठन स्थापित कर सकेंगे।

इसके पश्चात दिल्ली के विभिन्न कालजों के शिक्षको तथा छात्रो म आचाय कुल तथा तरुण-शान्तिसेना का जो काय किया गया उसका विवरण दिल्ली प्रदेश के सयोजक श्री वसत व्यास ने दिया और उन्होंने कहा कि विभिन्न कालजो का अनुभव यह रहा कि उन विचार को समयकर शिक्षक तथा छात्र-समुदाय प्रेरित होता है।

उद्‌घाटन प्रवचन करते हुए आचार्य काका साहब कालेलकर ने कहा कि आचार्य वे हैं जो जीवन और समाज के पोषक विचारों पर आचरण करें और उन विचारों का समाज में प्रचार करके उनको स्थापित करें। ऐसे आचार्य तैयार हों और उनका एक कुल यानी परिवार बने। उसके लिए हमें तीन काम करने होंगे

(१) विभिन्न शास्त्रों से अनुभव ग्रहण करना। (२) जो ज्ञान मिले उस पर स्वयं आचरण करना, प्रयोग करना। (३) जो प्रयोगों से अनुभव आये उनको समाज में स्थापित करना। आगे उन्होंने कहा कि गांधीजी ने राज्य को खत्म करने की बात कही थी। आचार्यकुल को राज्य-सत्ता समाप्त कर के आध्यात्मिक सत्ता मूलक लोक-सत्ता स्थापित करने का कार्यक्रम करना चाहिए। यानी आचार्यकुल की सेवा द्वारा जीवन-परिवर्तन का कार्य करना है। यह आदर्श सामने रखकर आगे बढ़ें और ऐसा करने में शिक्षक कभी डरे नहीं तभी आचार्यकुल का कार्य तेजस्वी बनेगा। आज के समाज में अहिंसक क्रान्ति के लिए पथ-प्रदर्शन करना आचार्यकुल का कार्य है।

केन्द्रीय आचार्यकुल के संयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव ने शिक्षा जगत की प्रमुख समस्याओं, शिक्षा के क्षेत्र में दलगत राजनीति का हस्तक्षेप, छात्र-विक्षोभ और समस्याओं के निराकरण के लिए हिंसा का अवलम्बन और शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग-का विश्लेषण किया और उसके आधार पर उन्होंने बताया कि इन समस्याओं का निराकरण ही आचार्यकुल का लक्ष्य है। उन्होंने कहा कि आचार्यकुल-आन्दोलन युग-सापेक्ष है। इसलिए इसमें सम्बुद्ध शिक्षकों की शक्ति लगानी चाहिए। सम्मेलन में हिस्सा लेनेवाले कुछ शिक्षक मित्रों की शंकाओं का समाधान भी उन्होंने किया और उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय तथा दिल्ली प्रशासन की शिक्षक-संस्थाओं में आचार्यकुल के कार्य के लिए व्यवस्थित संगठन करने पर जोर दिया।

प्रा० श्री चिन्तामणि देशमुख ने कहा कि आचार्यकुल के आदर्शों को हमें व्यावहारिक रूप देने के लिए चिन्तन और परिश्रम करना होगा। शिक्षा-जगत की वर्तमान समस्याओं के कारणों को समझकर उनको विभिन्न शिक्षा-स्तर पर खोजने का कार्य आचार्यकुल को करना चाहिए।

दिल्ली विश्वविद्यालय के डीन ऑव-कालेजेज के श्री शान्तिनारायणजी ने अपने शिक्षा काल में विद्यार्थियों के साथ निकट का सम्पर्क बनाने के लिए जो प्रयत्न किये उनकी थोड़ी-सी जानकारी दी और कहा कि आचार्यकुल वर्तमान

शिक्षा-प्रणाली मे परिवर्तन लाने के लिए एक अच्छा साधन बन सकता है। इसके लिए हमे सख्या के बजाय गुण पर ध्यान देना होगा और छात्रो से अधिक सम्पर्क रखना होगा। इस कार्य को हम सबको मिलकर उठाना होगा।

सम्मानित शिक्षक-मण्डल के मत्री श्री प्रेमराज शर्मा ने कहा कि देश की राजधानी दिल्ली में यदि आचार्यकुल का कार्य अच्छी तरह से आगे बढता है तो उसका असर देश पर होगा। आज आचार्य-समाज मे कई कमियाँ है, उनको दूर करना होगा। इसके लिए अनेक जगह गोष्ठियाँ करनी होगी और उसके लिए अगले सम्मेलन तक हमे कार्य मे जुट जाना होगा।

दिल्ली प्रशासन के उपशिक्षा निदेशक श्री बालकृष्ण अग्रवाल ने कहा कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए जिस तरह से शिक्षको ने आन्दोलन चलाये थे उसी प्रकार शिक्षा-जगत तथा समाज मे परिवर्तन लाने के लिए हमे आन्दोलन करने होगे। उसके लिए हमे आचार्यकुल का प्रचार करना चाहिए।

अध्यक्ष पद से श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने आज के सम्मेलन के लिए सभी का अभिनन्दन किया और आचार्यकुल के सगठन के लिए सुझावो का आह्वान किया।

विभिन्न सुझावो के बाद ऐसा सोचा गया कि कालेज-स्तर तथा माध्यमिक-स्तर के कुछ प्रतिनिधि लिये जायँ।

श्री काका साहब कालेलकर तथा श्री जैनेन्द्र कुमारजी मार्गदर्शक के रूप मे रहे और उनका मार्गदर्शन मिलता रहे ऐसी प्रार्थना के साथ सम्मेलन मे आये हुए सभी व्यक्तियो को धन्यवाद दिया गया और सम्मेलन की कार्यवाही समाप्त हुई।

दूसरे दिन ता० २९-११-७१ के आचार्यकुल सम्मेलन के निश्चय के अनुसार ३० तारीख को १२ बजे आचार्यकुल की कार्यवाहक समिति की बैठक जो दिल्ली युनिवर्सिटी के डीन-ऑव-कालेजेज श्री शान्तिनारायणजी के कार्यालय मे हुई। बैठक की अध्यक्षता श्री वशीधर श्रीवास्तव ने की श्री वशीधर श्रीवास्तव (सयोजक केन्द्रीय आचार्यकुल) की उपस्थिति मे सगठन के स्वरूप और आगे के कार्यक्रमो की विचारणा करने के लिए बैठक हुई, और दिल्ली राज्य मे आचार्यकुल के काम को बढाने के लिए निम्नाकित व्यक्तियो की कार्यवाहक समिति बनायी गयी।

१.	श्री काका साहब कालेलकर	मार्गदर्शक
२	श्री जैनेन्द्रकुमार	" "
३.	श्री शान्ति नारायण	डीन ऑफ कालेजेज, दिल्ली युनिवर्सिटी, दिल्ली-७
४.	श्री एस० एन० रानाडे	निदेशक, गांधी भवन, दिल्ली युनिवर्सिटी, दिल्ली-७
५.	श्रीमती सुशीला अम्बिके	इन्द्रप्रस्थ कालेज, अलीपुर रोड, दिल्ली-६
६	श्री बालकृष्ण अग्रवाल	उपशिक्षा निदेशक, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली-६
७.	श्रीमती गीता कृष्ण अम्बिवार (संगठन संयोजिका)	प्रिंसिपल, दौलत राम कालेज, दिल्ली-७
८.	श्री वसन्त व्यास (कार्यकारी संयोजक)	संयोजक, दिल्ली प्रदेश सर्वोदय मण्डल राजघाट, नयी दिल्ली-१
९.	श्री प्रेमराज शर्मा (संयुक्त संयोजक)	अध्यापक, महावीर जैन हा० से० स्कूल, नयी सड़क, दिल्ली-६

—वसन्त व्यास

'नयी तालीम'

मासिक का प्रकाशन-वक्तव्य

समाचारपत्र पंजीकरण अधिकरण (फार्म नं० ४, नियम ८) के अनुसार हरएक पत्रिका के प्रकाशक को निम्न जानकारी प्रस्तुत करने के साथ-साथ अपनी पत्रिका में भी वह प्रकाशित करना पड़ता है। तदनुसार यह प्रतिलिपि यहाँ दी जा रही है। —सं०

१	प्रकाशन का स्थान	वाराणसी
२	प्रकाशन का समय	माह में एक बार
३	मुद्रक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	नयी तालीम मासिक राजघाट, वाराणसी-१
४	प्रकाशक का नाम	श्रीकृष्णदत्त भट्ट
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	नयी तालीम, मासिक राजघाट वाराणसी १
५	सम्पादक का नाम।	(i) श्री धीरेन्द्र मजूमदार (ii) श्री वंशीधर श्रीवास्तव (iii) आचार्य राममूर्ति
	राष्ट्रीयता	भारतीय
	पता	नयी तालीम, मासिक, राजघाट वाराणसी-१
६	समाचार-पत्र के संचालकों का नाम व पता	सर्व सेवा संघ, गोपुरी वर्धा (महाराष्ट्र) (सन् १८६० के सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट २१ के अनुसार रजिस्टर्ड सार्वजनिक संस्था) रजिस्टर्ड नं० ५२

मैं श्रीकृष्णदत्त भट्ट यह स्वीकार करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार उपर्युक्त विवरण सही है।

वाराणसी
२९-२-७२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट
प्रकाशक

वर्ष : २०
अंक : ८
मूल्य: ५० पैसे

अनुक्रम

मार्च, '७२

•

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है ।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये है और एक अक के ५० पैसे।
- पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओ मे व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है ।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, द्वारा सर्व सेवा सघ के लिए प्रकाशित,
एव इण्डियन प्रेस प्रा० लि०, वाराणसी–२ मे मुद्रित

नयी तालीम : मार्च, '७२
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

आवरण मुद्रक : मण्डलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी-१

वर्ष : २०
अंक : ६

- उत्तर प्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा
- उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा
- उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा की प्रगति

अप्रैल, १९७२

इस अंक के विषय में

[लगता है कि १९७२-७३ का यह वर्ष उत्तर प्रदेश की शिक्षा के लिए अत्यन्त महत्त्व का वर्ष सिद्ध होगा। इस वर्ष उत्तर प्रदेश की सरकार ने तीन ऐसे निर्णय लिये हैं जिनका प्रदेश की शिक्षा पर व्यापक प्रभाव पड़ेगा। ये निर्णय निम्न प्रकार हैं : स०]

वर्ष : २०
अंक : ९

१—उत्तर प्रदेश के एक मात्र स्नातकोत्तर बेसिक ट्रेनिंग कालेज (वाराणसी) की कार्यविधि की जाँच के लिए और प्रदेश की बेसिक शिक्षा की सामान्य नीति के मूल्यांकन के लिए प्रदेश के राज्य शिक्षामंत्री की अध्यक्षता में एक मूल्यांकन समिति नियुक्त की गयी है। उनकी पहली बैठक भी ८ अप्रैल १९७० को बेसिक ट्रेनिंग कालेज में हो चुकी है। चूँकि उत्तर प्रदेश के सभी प्रारम्भिक स्कूल (कक्षा १ से कक्षा ८ तक) बेसिक स्कूल हैं। अत: मानना चाहिए कि यह समिति उत्तर प्रदेश की बेसिक शिक्षा का मूल्यांकन करेगी, उसमें सुधार के लिए सुझाव देगी और साथ ही साथ इस शिक्षा के अनुरूप शिक्षक प्रशिक्षण नीति क्या होगी इस सम्बन्ध में भी अपनी निश्चित राय प्रकट करेगी।

२—१९५४ ई० के बाद पहली बार प्रदेश के प्रारम्भिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन किया जा रहा है और राज्य शिक्षा-संस्थान, इलाहाबाद यह पाठ्यक्रम तैयार भी कर चुका है। शायद उस पर शिक्षामंत्री का हस्ताक्षर भर होना बाकी है। अर्थात् शासन की स्वीकृति की मुहर लगनी शेष है। लगता है, १६ वर्षों के बाद, जो आज के युग के परिवर्तन की तीव्र गति को देखते हुए बहुत लम्बा समय है, उत्तर प्रदेश अपनी प्रारम्भिक शिक्षा नीति में परिवर्तन करने जा रहा है। सच पूछिये तो नरेन्द्रदेव समिति की सिफारिशों के बाद जब १९३८-३९ में प्रदेश में बेसिक

शिक्षा प्रारम्भ हुई तो जूनियर बेसिक स्तर का जो पाठ्यक्रम बनाया और १९५४ ई० में शिक्षा की पुनर्व्यवस्था योजना के अन्तगत पूर्व माध्यमिक स्तर (सीनियर बसिक स्तर कक्षा ६ से ८) तक का जो नया पाठ्यक्रम बना और तदनुसार नीचे क स्तर के (कक्षा १ से ५ तक) क पाठयक्रम म जो परिवर्तन हुआ उसके बाद प्रारम्भिक विद्यालयों के पाठयक्रम म कोई परिवतन हुआ ही नहीं।

यह परिवतन वाछनीय ह इसकी बराबर चर्चा होती रही। इस पाठ्यक्रम का सबसे बडा दोष यह था कि सन् १९५४ स उ० प्र० में जो पाठ्यक्रम लागू हुआ था उसमें कक्षा १ से कक्षा ८ तक पाठयक्रम एव इकाई नहीं रह गया था। अर्थात जो विषय कक्षा १ स प्रारम्भ होत थ या उसके परिवधित विकसित रूप कक्षा ८ तक नही चलत थ। उदाहरणाथ कक्षा १ से ५ तक जूनियर बसिक स्तर पर दो शिल्प चलत थे तो सीनियर स्तर पर एक ही शिल्प पढान का प्राविधान था। जूनियर स्तर पर सामान्य विज्ञान अनिवाय विषय था तो सीनियर स्तर पर जहाँ विज्ञान पढान की सामग्री उपलब्ध न हो, वहाँ उसके स्थान पर एक स्थानीय शिल्प ज्ञान का प्राविधान था। एक बहुत बडी कमी यह थी कि शिल्प काम का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं था। इन्हीं कमियो को दूर करन के लिए और पाठयक्रम का समय के अनुकूल बनाने के लिए उत्तर प्रदेश के राज्य शिक्षा बोर्ड न (जो इस समय काम नहीं कर रहा है, उसे समाप्त नहीं किया ह) १९६२ ई० म प्रारम्भिक स्तर के पाठयक्रम को और प्रदेश की प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्धित प्रशिक्षण पाठयक्रम को सशोधित और परिवर्तित करन का प्रस्ताव रखा था और दो वष तक परिश्रम करके प्रदेश भर के शिक्षा शास्त्रियों और क्षत्र म काम करनेवाले शिक्षकों की सहायता से बसिक स्कूल (कक्षा १ स ८ तक) के पाठयक्रम का एक प्रारूप भी तैयार किया था। इस प्रारूप न जो पाठयक्रम बनाया था उसे इसी अक म दिया गया है। परन्तु किन्हीं कारणों से इस पाठयक्रम को लागू नहीं किया गया। इसी प्रकार प्रशिक्षण-संस्थाओ के पाठयक्रम म भी सशोधन हुआ था, परन्तु बी टी० सी० (जे० टी० सी० और एच० टी० सी० को मिलाकर एक ही पाठयक्रम) को छोडकर अन्य प्रशिक्षण सस्थाओ के पाठयक्रम भी लागू नहीं किय गये। उत्तर प्रदेश के स्वीकृत बसिक विद्यालयो की जाँच के लिए एक मूल्यांकन समिति भी नियुक्त हुई थी, जिसके सक्रेटरी उपशिक्षा निदेशक (प्रारम्भिक) श्री बी० एस० स्याल थ। उस समिति की सस्तुतियों का भी कार्यान्वयन नहीं हुआ।

३—अभी हाल ही में घोषित किया गया है कि राज्य सरकार प्रारम्भिक शिक्षा को स्थानीय बोर्डों से निकालकर अपने हाथ में ले रही है। सरकार ऐसा करे इसकी ३०–४० वर्षों से बराबर माँग होती रही। जिला परिषदों और नगरपालिकाओं का शैक्षिक प्रशासन सतोषजनक नहीं रहा है और उनसे प्रारम्भिक शिक्षा ले लेने से एक नये युग का आरम्भ होगा तथा आशा करनी चाहिए कि यह युग शिक्षा में आमूल परिवर्तन का युग होगा—एक ऐसा युग जिसमें शिक्षा से युग की समस्याएँ हल होंगी। अब सरकार की इस घोषणा के परिप्रेक्ष्य में भी आवश्यक हो गया है कि प्रशासन में परिवर्तन के साथ-साथ अधिक निर्दोष और पूर्ण पाठ्यक्रम लागू हो जिसमे प्रदेश की शिक्षा से प्रदेश की जनता की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की पूर्ति हो।

हम यह आशा करते हैं कि प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा में यह परिवर्तन माध्यमिक शिक्षा और विश्वविद्यालयी शिक्षा में भी परिवर्तन का कारण बनेगा और इसके पाठ्यक्रमों में भी परिवर्तन किया जायगा। इसी दृष्टि से हमने इस अंक में प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा पर भी विचार किया है।

वस्तुस्थिति यह है कि अगर मात्रात्मक विस्तार की शान छोड़ दें तो उत्तर प्रदेश शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़ा है। उसके बेसिक स्कूल नाम मात्र के बेसिक स्कूल हैं और पाठ्यक्रम में प्राविधान होने पर भी साधन और प्रशिक्षित दक्ष अध्यापकों के अभाव में शिल्प का शिक्षण नहीं के बराबर होता है। सामान्य विज्ञान के शिक्षण की दशा भी, कम-से-कम प्रारम्भिक स्तर पर इससे अच्छी नहीं है। माध्यमिक स्तर की शिक्षा भी किताबी शिक्षा ही है क्योंकि जिन दो साहित्यिक और वैज्ञानिक वर्गों में ८० प्रतिशत से भी अधिक विद्यार्थी भरती होते हैं उनमें किसी भी हाथ के काम की शिक्षा नहीं दी जाती।

कोठारी कमीशन ने जहाँ अनेक ऐसी बातें कही हैं जिनमें अन्तर्विरोध है वहाँ यह स्वीकार करना चाहिए कि उसके कुछ सुझाव अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और राष्ट्र के हित में हैं और उनका कार्यान्वियन होना चाहिए। अनेक शिक्षा-शास्त्रियों से साक्षात्कार के बाद और देश के लगभग सभी प्रकार के विद्यालयों और प्रशिक्षण विद्यालयों को देखने के बाद शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का पूरा ध्यान रखकर वह आयोग जिस नतीजे पर पहुँचा है उन पर पहुँचने के लिए हम फिर उसी क्रम को दोहरायें, वही साक्षात्कार और वही प्रश्नावलि-पद्धति के रास्ते से फिर गुजरें तो इससे समय की बरबादी होगी। अत हमारा सुझाव है कि कोठारी

कमीशन के निम्नांकित महत्त्वपूर्ण निर्णयो को मूल्यांकन समिति मान ले और उनके कार्यान्वयन का मार्ग सुझाये।

१—शिक्षा की सबसे बडी समस्या है शिक्षा को उत्पादक बनाना। आज की शिक्षा विद्यार्थियो को किसी समाजोपयोगी उत्पादन उद्योग की, किसी हुनर की शिक्षा नही देती। इसीलिए कोठारी कमीशन ने कार्यानुभव को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शिक्षा का अभिन्न अग बनाने की सस्तुति की है। यह कार्यानुभव बेसिक शिक्षा के शिल्प के समान ही है यह कमीशन ने स्वीकार किया, विशेषत प्रारम्भिक कक्षाओं म। परन्तु कार्यानुभव और बेसिक शिक्षा के शिल्प की एकरूपता या विभिन्नता के पचडे म पडे बिना हमें मूल सुझाव को स्वीकार करना चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर कार्यानुभव की ट्रेनिंग मिलनी चाहिए। इस कार्यानुभव की सकल्पना क्या है और इसका व्यावहारिक रूप क्या होगा ? इस विषय पर कई गोष्ठियो के बाद राष्ट्रीय शिक्षा प्रशिक्षण और शोध-सस्थान ने शिक्षा शास्त्रियों और अधिकारियों की मदद से पुस्तक तैयार की है। समिति उन्हें मँगाकर देखे और प्रदेश की स्थानीय सकल्पना और बसिक शिक्षा के शिल्प और कार्यानुभव की समानता या विषमता के वाद विवाद म फँसना समय और शक्ति को नष्ट करना होगा और इस दृष्टि से विचार करने के बाद समिति उस पाठ्यक्रम को भी देख जो राज्य शिक्षा-सस्थान में तैयार किया गया है जिसम दो शिल्पो (एक मुख्य और एक गौण) और कला के लिए कुल ६ घण्टे (कालाश) दिये गये हैं। इतने समय म छात्रो को किसी काम की वैज्ञानिक शिक्षा दी जा सकेगी क्या ? अगर इस प्रदेश का शिक्षा-शास्त्री यह नही समझता कि इस देश के लडको को अपने हाथ से समाजोपयोगी काम करने की शिक्षा को वरीयता देनी है तो वह देश को धोखा दे रहा है क्योंकि उस हालत में देश का लोकतत्र और समाजवाद का सपना ही रह जायगा। बसिक शिक्षा के साथ देश की नौकरशाही के निहित स्वार्थ न्याय नहीं होने दिया है। आज जब हम गरीबी हटाओ और विषमता मिटाओ का नारा बुलन्द किय हुए है तो क्षेत्र में हाथ से काम की अवहेलना घातक होगी। मूल्याकन समिति इस दृष्टि से राज्य सस्थान के पाठयक्रम पर विचार करे और इसी दृष्टि से प्रशिक्षण सस्थाओ के कार्यक्रम पर भी विचार करे।

२—आज प्रदेश की प्रशिक्षण सस्थाओ का पाठ्यक्रम, चाहे वह बेसिक नामल स्कूल का पाठयक्रम हो, चाहे जूनियर बसिक का पाठ्यक्रम हो चाहे बसिक टनिंग कालेज का पाठयक्रम हो कार्यपरक (वर्क ओरियेण्टड) और दीक्षा

र्थियों को अपने हाथ से दो घण्टा काम करना पड़ता है। इसमें अगर कोई परिवर्तन करना है तो यह करना है कि काम में उनकी दक्षता का स्टैण्डर्ड और बढ़े और आवश्यक हो तो स्पष्टत आधा समय काम करने और आधा समय पढ़ने की नीति चलायी जाय। प्रशिक्षण-संस्थाओं से निकलने के बाद दीक्षार्थियों का श्रम के प्रति आदर हो और किसी समाजोपयोगी काम में दक्षता के कारण आत्म-निर्भरता का विश्वास हो, इस सम्बन्ध में समिति को निश्चित सुझाव देना चाहिए। बेसिक नार्मल स्कूलों में प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की कर दी जाय जो आज एक वर्ष की हो है।

३—एक दूसरा तथ्य है जो बेसिक शिक्षा का मूलभूत सिद्धान्त है और जिसे कोठारी कमीशन ने भी स्वीकार किया है। वह है—शिक्षा का समुदाय के जीवन से निकट का सम्बन्ध। इसीलिए बेसिक शिक्षा में और प्रशिक्षण-संस्थाओं में सामुदायिक कार्य (कम्युनिटी वर्क) को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। समाजवाद का तकाजा है कि शिक्षा और समुदाय का सम्बन्ध घनिष्ट हो। मूल्यांकन समिति अपनी सिफारिशें करते हुए इस तथ्य को न भूले क्योंकि जो विद्यालय समाज के जीवन की मुख्य धारा से विलग हो जायगे उनका लोकतन्त्रीय समाजवाद में (जो हमारा लक्ष्य है) कोई स्थान नहीं रह जायगा। देश की नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) समाजवाद नहीं चाहती। वह हाथ के काम को अथवा सामुदायिक कार्य को व्यर्थ समझती है। हम नौकरशाही के हाथों में कब तक खेलेंगे ? क्या समिति उनके मायाजाल, जो कभी मनोविज्ञान का नकाब लगाकर आता है और कभी बालकों की 'शारीरिक' क्षमता का जामा पहनकर, को तोड़ नहीं सकेगी ?

हम नहीं जानते कि यह समिति के कार्यक्षेत्र (टर्म्स ऑव रेफरेन्स) में है या नहीं परन्तु नहीं है, तो भी समिति को यह संस्तुति करनी चाहिए कि प्रदेश में शिक्षा की दो समानान्तर पद्धतियाँ न चलें। कोठारी कमीशन ने यह स्पष्ट संस्तुति की है कि देश में लोक-शिक्षण की समान प्रणाली (कॉमन सिस्टम ऑव पब्लिक एजूकेशन) चले। इस समय प्रदेश में शिक्षा की दो समानान्तर प्रणालियाँ चल रही हैं। अमीरों के लड़के तथाकथित पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हैं जहाँ लम्बी लम्बी फीसें ली जाती हैं और शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। गरीबों के बच्चे निःशुल्क सरकारी अथवा स्थानीय बोर्डों के बेसिक स्कूलों में पढ़ते हैं जहाँ पढ़ाई मातृभाषा के माध्यम से होती है। अतः जब तक यह भेद बना रहेगा तब तक बेसिक शिक्षा की नीति में आप चाहे लाख परिवर्तन करें बेसिक

स्कूलों में लोग अपने लड़कों को नहीं भेजेंगे। अतः मूल्यांकन समिति चाहे इन स्कूलों को बन्द करने की सिफारिश न करे, परन्तु यह सिफारिश अवश्य करे कि प्रदेश में दो समानान्तर प्रणालियाँ न चलें और दोनों का विलयन नीचे लिखे सिद्धान्तों के आधार पर कर दिया जाय :

१—शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा हो।

२—शुल्क का ढाँचा समान हो अर्थात् एक स्तर की शिक्षा के लिए दोनों प्रकार के स्कूलों में एक ही फीस ली जाय। उदाहरणार्थ अगर प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा बेसिक स्कूलों में निःशुल्क है तो पब्लिक स्कूलों में भी निःशुल्क रहे, आदि।

३—समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग की शिक्षा अथवा कार्यानुभव का शिक्षण अनिवार्य हो।

●

देवेन्द्रदत्त तिवारी

उत्तर प्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा

बेसिक शिक्षा के प्रचलन के पहले उत्तर प्रदेश की प्रारम्भिक कक्षाओं में जो पाठ्यक्रम चलता था वह मुख्यत. सैद्धान्तिक था। १९१० ई० के रूरल एजूकेशन कमीशन और १९१३ ई० के पिग्गाट कमीशन की संस्तुतियों के अनुसार इस पाठ्यक्रम में वस्तुपाठ पढ़ाने की योजना सम्मिलित कर दी गयी थी जिससे विद्यार्थियों में अपने परिसर के विषय में व्यावहारिक दिलचस्पी पैदा हो सके। प्रारम्भिक स्कूलों की पाठ्यपुस्तकों में प्रकृति अध्ययन (नेचर स्टडी) के कुछ पाठ भी शामिल कर दिये थे। गणित में भी मुसेशन के पाठ पढ़ाये जाने लगे थे। और रोजनामचा और खाता रखने के विषय में भी कुछ ज्ञान दिया जाने लगा था। बाद को हंटर रिपोर्ट ने भी पिग्गाट समिति के पाठ्यक्रम को सामान्यत मान्यता दी और यही पाठ्यक्रम प्रारम्भिक कक्षाओं में १९३७ ३८ तक चलता रहा।

बसिक शिक्षा के प्रचलित होने के बाद नरेन्द्रदेव समिति रिपोर्ट (१९३८-३९) के सुझाव के अनुसार प्रारम्भिक कक्षाओं के लिए ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण हुआ, जो जाकिर हुसैन समिति के सुझावों के अनुरूप था। जाकिर हुसैन समिति ने ७ वर्ष की जिस बसिक शिक्षा की सिफारिश की थी उस पाठ्यक्रम में निम्नांकित विषय थे[१]

१—बुनियादी शिल्प (कताई बुनाई, बढ़ईगिरी, खेती, बागवानी, चमड़े का काम)। २—मातृभाषा, ३—गणित, ४—सामाजिक अध्ययन, ५—सामान्य विज्ञान, ६—ड्राइंग ७—संगीत ८—हिन्दुस्तानी (दोनों लिपियों में)।

पहले ५ वर्षों में केवल कताई सिखाने की सिफारिश थी और शिल्प के लिए ३ घंटा २० मिनट दिया गया था। कक्षा ६ से प्रारम्भ हो ऐसा सुझाव था। पाठ्यक्रम में काम के लक्ष्यांक निर्धारित थे। बाद को हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने अनुभव के आधार पर पाठ्यक्रम में सुधार किया और शिल्प के लिए ३ घण्टा २० मिनट के स्थान पर २ घण्टा प्रति दिन निर्धारित किया।

१९४४ में भारत सरकार की केन्द्रीय सलाहकार समिति ने शिल्प के माध्यम से शिक्षा की बात स्वीकार की तथापि उसने स्वावलम्बन के सिद्धान्त को नहीं माना। इतना माना कि अधिक से अधिक स्कूल के उत्पादन से कच्चे माल का खर्च निकल आय।

१९४७ में केन्द्रीय सलाहकार समिति ने बसिक शिक्षा का पाठ्यक्रम बनाने का निश्चय किया और १९५० में यह पाठ्यक्रम तैयार हुआ तथा भारत सरकार ने इस पाठ्यक्रम की स्वीकृति दी। इस पाठ्यक्रम के विषय हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के पाठ्यक्रम की ही भांति हैं परन्तु इसमें शिल्प के अन्तर्गत पुस्तक कला, मिट्टी का काम, मछली पकड़ना, गृहशिल्प जोड़ दिया गया था। और हिन्दुस्तानी की जगह हिन्दी रख दी गयी थी। पाठ्यक्रम निम्नांकित है

१—शिल्प-एक मुख्य शिल्प और एक गौण शिल्प—
- क—कताई बुनाई
- ख—बागबानी खेती
- ग—पुस्तक कला बढ़ईगिरी और धातु का काम
- घ—मिट्टी का काम और बरतन बनाना
- ङ—मछली पकड़ना

[१]—जाकिर हुसन समिति रिपोर्ट—१९३८— पृष्ठ १९ से ३० तक (अंग्रेजी संस्करण)

घ—गृह शिल्प

२—मातृभाषा

३—सामाजिक अध्ययन

४—गणित

५—सामान्य विज्ञान

६—कला (ड्राइंग, सगीत और सजावट की कला)

७—हिन्दी

८—खेलकूद और शारीरिक शिक्षा

इसमें काम के लक्ष्य निर्धारित हैं और कताई का स्तर हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के पाठ्यक्रम की भाँति ही है। शिल्प के लिए कक्षा १, २, और ३ म २ घण्टे और कक्षा ४ और ५ में २½ घण्टे रख गये हैं। मातृभाषा के लिए प्रतिदिन ४० मिनट, सामाजिक अध्ययन के लिए ६० मिनट और गणित के लिए ४० मिनट है। हिन्दी के लिए कोई समय नही दिया गया है। गणित के लिए भी अपेक्षाकृत कम समय दिया गया है। लगता है यह मान लिया गया है कि शिल्प के शिक्षण के साथ हिन्दी और गणित का कुछ शिक्षण अपने आप हो जायगा।

उ० प्र० में नरेन्द्रदेव समिति की सस्तुतियो के अनुसार १९३९–४० में प्रारम्भिक शिक्षा का जो पाठ्यक्रम बनाया गया उसमें निम्नांकित विषय थे

१—बुनियादी शिल्प (बागवानी, कताई बुनाई और हाथ का काम) २—हिन्दुस्तानी, ३—गणित ४—सामाजिक अध्ययन, ५—शारीरिक शिक्षा, ६—कला, ७—सामान्य विज्ञान ८—गृहशिल्प (लड़कियो के लिए)।

विषयो के लिए समय का विभाजन निम्न प्रकार है

कक्षा १ और २

बेसिक शिल्प —	१० कालांश (८००		मिनट	प्रति	सप्ताह)	
हिन्दुस्तानी —	१२	"	४८०	"	"	"
गणित —	६	"	२४०	"	"	"
सामाजिक अध्ययन	५	"	२००	"	"	"
सामान्य विज्ञान	३	"	१२०	"	"	"
कला	३	"	१२०	"	"	"
शारीरिक शिक्षा	३	"	१२०	"	"	"
कुल	४२					

कक्षा ३ और ५

बेसिक शिल्प	१२	कालांश
हिन्दुस्तानी	११	,,
गणित	६	,,
सामाजिक अध्ययन	५	,,
सामान्य विज्ञान	४	,,
कला	२	,,
शारीरिक शिक्षा	२	,,
कुल	४२	

गृहविज्ञान को कक्षा ५ से प्रारम्भ करने की बात हुई थी जो उस समय सीनियर बेसिक स्तर में शामिल था। इस पाठ्यक्रम और भारत सरकार के पाठ्यक्रम को देखने से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि नरेन्द्रदेव समिति ने शिल्प के लिए प्रति सप्ताह ६ घण्टा ४० मिनट पर रखा है जब कि भारत सरकार ने १२ घण्टे रखा है। इसका अर्थ है नरेन्द्रदेव समिति ने बुनियादी शिल्प को कम महत्त्व दिया है। उ० प्र० में शिल्प के शैक्षिक पहलू पर ही अधिक महत्त्व दिया गया और स्वावलम्बन के पहलू की अवहेलना की गयी। डा० सम्पूर्णानन्दजी ने, जो उस समय शिक्षा मंत्री थे, कहा कि सैद्धान्तिक पक्ष पर अधिक बल देना गलत है, परन्तु गन्दे हाथ के दर्शन पर भी अधिक बल देना उतना ही गलत है। इस प्रदेश में बेसिक शिक्षा की पद्धति में इस दृष्टिकोण की प्रधानता रही है और रामचन्द्रन् समिति ने इस व्याख्या की आलोचना की थी।

१९५४ ई० में उत्तर प्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन हुआ। १९५४ में शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना प्रारम्भ हुई और पहली बार बेसिक शिक्षा को जूनियर हाई स्कूल स्तर पर प्रारम्भ किया गया। पाठ्यक्रम में कृषि को मुख्य शिल्प रखा गया। १९५३ में द्वितीय नरेन्द्रदेव समिति रिपोर्ट ने कृषि के महत्त्व पर बल दिया जो पुनर्व्यवस्था योजना में प्रतिबिम्बित हुआ। प्रारम्भिक और जूनियर हाई स्कूल के लिए भूमि प्राप्त करने का आन्दोलन चलाया गया और स्कूलों के लिए २१००० एकड़ भूमि प्राप्त हुई और जूनियर तथा सीनियर दोनों स्तरों के पाठ्यक्रमों में परिवर्तन किया गया।

जूनियर बेसिक स्तर (कक्षा—१ से कक्षा ५ तक)

उत्तर प्रदेश के बालकों और बालिकाओं के बेसिक स्कूलों की कक्षा १ से कक्षा ५ तक के इस परिवर्तित पाठ्यक्रम में निम्नांकित वक्तव्य दिया गया है, जिससे पाठ्यक्रम के परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश पड़ता है।

"उत्तर प्रदेश की लगभग ८० प्रतिशत जनता ग्रामों में रहती है और अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। शेष जनता प्रदेश के नगरों में रहती है। इनमें भी अधिकांश को जीविकोपार्जन के लिए उद्योग धन्धों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अतः देश में शिक्षा का जो भी कार्यक्रम चले, उसे कृषि या शिल्प-केन्द्रित होना चाहिए। तभी इस शिक्षा पद्धति से प्रदेश का अधिकाधिक जनसंख्या लाभ उठा सकती है। शिक्षा और समाज में तभी सामंजस्य भी होगा एवं तभी शिक्षा यथार्थ जीवन से सम्बन्धित होगी तथा शिक्षा प्राप्त करनेवालों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगी।

प्रारम्भिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम के दो अंग होंगे—क्रियात्मक तथा ज्ञानात्मक। मुख्य क्रियात्मक विषय कृषि अथवा शिल्प होगा जिसके लिए लगभग दो घण्टे प्रतिदिन निर्धारित होंगे। जहाँ कृषि होगी वहाँ कृषि के आवश्यकतानुसार यह समय घटाया बढ़ाया जा सकता है। यहाँ गौण क्रियात्मक विषय कोई स्थानीय शिल्प, होगा जिसके लिए प्रति सप्ताह २½ घण्टे निर्धारित होंगे। खेती का काम जब कम रहेगा, उस समय स्थानीय शिल्प को अधिक समय दिया जायगा। जिन विद्यालयों में शिल्प मुख्य विषय होंगे वहाँ भी प्रति सप्ताह इतना ही समय दिया जायगा, पर सभी विद्यालयों में क्रियात्मक कार्य और ज्ञानात्मक विषय को लगभग आधा-आधा समय दिया जायगा।

विषयों के लिए समय विभाजन निम्न प्रकार से किया गया है

अ—क्रियात्मक—१ मुख्य शिल्प—

प्रारम्भिक कृषि बागवानी और सम्बन्धित कला व प्रायोगिक—२ घण्टा प्रतिदिन

२—गौण शिल्प

कताई और सम्बन्धित कला—गृह शिल्प (लड़कियों के लिए)।

प्रायोगिक—२ घण्टा ३० मिनट प्रति सप्ताह

ब—ज्ञानात्मक—

१—गणित—४ घण्टे प्रति सप्ताह।

२—भाषा—४० मिनट (२ घण्टे १५ मिनट के ४ कालांश) प्रति सप्ताह।

३—सामाजिक अध्ययन—४० मिनट के ४ कालांश (२ घण्टे १५ मिनट) प्रति सप्ताह।

४—कृषि का सिद्धान्त और सामान्य विज्ञान या शिल्प—४० मिनट के ४ कालांश—२ घण्टे १५ मिनट प्रति सप्ताह।

५—शारीरिक व्यायाम (समय निर्धारित नहीं)।

सीनियर बेसिक स्तर

इसी प्रकार छठी, सातवीं और आठवीं कक्षाओं के लिए पुनः संगठित पाठ्यक्रम के प्रारम्भ में भी निम्नांकित प्राक्कथन दिया गया है।

हमारे देश और राज्य के अधिकांश बालकों का वातावरण ग्रामीण और सामाजिक जीवन कृषि-प्रधान है। अतएव यह स्पष्ट निष्कर्ष ही नहीं, परन्तु सत्य भी है कि हमारे देश के अधिकांश बालकों की शिक्षा का आधार कृषि और ग्रामीण वातावरण बने। इससे हमारी पाठशालाओं की शिक्षा उचित और प्रभावोत्पादक हो सकेगी। आश्चर्य है कि हमारे देश की शिक्षा-व्यवस्था अभी तक इसमें सफल नहीं हो सकी है। इस दोष को दूर करने के लिए तथा शिक्षा को कृषि और ग्रामीण वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए गाँवों के जूनियर हाईस्कूलों में दस एकड़ भूमि का प्रबन्ध किया गया है। इन स्कूलों में कृषि के बुनियादी शिल्प होने के कारण दैनिक कार्यों को इस प्रकार संगठित करना चाहिए कि बालक केवल ग्राम्यजीवन के लिए योग्य न हों अपितु ग्राम-पुनर्निर्माण में स्वेच्छापूर्वक सहयोगी बनकर स्वयं ग्राम-जीवन को विकसित करने के लिए प्रेरणा भी प्राप्त कर सकें। अतः क्रियात्मक कृषि इन स्कूलों के पाठ्यक्रम का आवश्यक अंग है। क्रियात्मक कृषि का उद्देश्य छात्रों को केवल शारीरिक परिश्रम की ओर सुचारु रूप से प्रवृत्त करना ही नहीं, बल्कि उनमें उस कौशल का भी विकास करना और उन्हें वह अवसर भी प्रदान करना जिससे वे समाज में कार्य कर सकें।

कृषि के क्रियात्मक पाठ्यक्रम का उद्देश्य उन्हें कुशल कृषक बनाना नहीं है परन्तु उनमें वह आधारभूत योग्यता ला देना है, जिस पर वैज्ञानिक कृषि निर्भर होती है।

पाठ्यक्रम के शास्त्रीय विषयों तथा दूसरे विषयों के अध्यापन को यथासम्भव क्रियात्मक कृषि, ग्राम-जीवन तथा शिल्प कार्यों से सम्बन्धित करना होगा। समय विभाजन में भी साधारणतः दो घण्टे प्रति दिन अथवा १२ घण्टे प्रति सप्ताह

कृषि के क्रियात्मक कार्य के लिए दिये जायेंगे। कृषि की ऋतु सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुसार यह समय घटता और बढ़ता रहेगा। दूसरे विषयों के लिए दिया गया समय इसी के अनुसार घटा बढ़ा लिया जायगा।

जिन पाठशालाओं को भूमि प्राप्त नहीं है अथवा जिन्हें प्राप्त नहीं हुई है (यथा नगरों की पाठशालाओं में) उनमें कृषि के स्थान पर दूसरे उचित शिल्प का प्रबन्ध किया जायगा। यह पाठशाला के पाठ्यक्रम का आधार बनेगा। जिस प्रकार कृषि-पाठशालाओं में क्रियात्मक कृषि शिक्षा का आधार है उसी प्रकार विशिष्ट शिल्प सम्बन्धी क्रियात्मक कार्य दूसरे प्रकार के स्कूलों में स्कूल कार्य-क्रम का मुख्य आधार होगा। पाठशाला के समय विभाग में शिल्प सम्बन्धी क्रियात्मक कार्य पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

पाठ्य-विषय

१—बुनियादी शिल्प तथा सम्बन्धित कला।

निम्नांकित में से कोई एक शिल्प

(१) कृषि और सम्बन्धित कला (उन पाठशालाओं के लिए जहाँ दस एकड़ भूमि प्राप्त है)।

(२) कताई बुनाई और सम्बन्धित कला।

(३) काष्ठ-कला और सम्बन्धित कला।

(४) पुस्तक शिल्प और सम्बन्धित कला।

(५) धातु कला और सम्बन्धित कला।

(६) चर्म-कला और सम्बन्धित कला।

(७) सिलाई और सम्बन्धित कला।

(८) गृह शिल्प और सम्बन्धित कला (केवल बालिकाओं के लिए)।

२—हिन्दी तथा अनिवार्य संस्कृत।

३—अँग्रेजी।

४—तृतीय भाषा (संस्कृत, उर्दू, पंजाबी, बंगाली, गुजराती, मराठी, आसामी, कन्नड, उड़िया, कश्मीरी, तेलगू, तामिल, मलयालम)।

५—गणित (अंकगणित, बीजगणित तथा ज्यामिति)।

६—सामाजिक विषय (इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र)।

७—साधारण विज्ञान।

८—व्यायाम शिक्षा।

९—निम्नांकित वैकल्पिक विषयों में से एक विषय—

(१) एक प्राचीन भाषा (संस्कृत, अरबी या फारसी, संस्कृत केवल वे ही विद्यार्थी ले सकते हैं जिन्होंने क्रमांक ४ के अन्तर्गत संस्कृत नहीं ली है)।

(२) संगीत।

(३) वाणिज्य।

(४) कला।

टिप्पणी—(१) जिन पाठशालाओं में साधारण विज्ञान के शिक्षण की सुविधाएँ नहीं हैं उनमें उसके स्थान पर किसी अतिरिक्त स्थानीय शिल्प पढ़ाने की अनुज्ञा जिला विद्यालय निरीक्षक से प्राप्त की जा सकती है। परन्तु साधारण विज्ञान के पाठन की व्यवस्था के लिए यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्न करना चाहिए। (जिला विद्यालय निरीक्षक इस स्थानीय शिल्प को स्थानीय अधिकारियों की सलाह से निश्चित करेंगे)। साधारण विज्ञान न खोलने की अनुज्ञा सत्र प्रारम्भ होने से पूर्व प्रतिवर्ष लेनी पड़ेगी।

इन पाठ्यक्रमों को देखने से निम्नांकित बिन्दु सामने आते हैं

१—इन पाठ्यक्रमों में बनिक शिल्प के लिए जो समय दिया गया है वह नरेन्द्रदेव समिति के सुझाये पाठ्यक्रम (१९३९) की अपेक्षा भारत सरकार के पाठ्यक्रम के अधिक निकट है। एक प्रकार से उत्तर प्रदेश के १९५४ के पाठ्यक्रम में हिन्दुस्तानी तालीमी भी संघ के पाठ्यक्रम (१२ घण्टा प्रति सप्ताह) से भी अधिक समय दिया गया है।

२—भाषा को केवल ४ कालांश दिया गया है यद्यपि यह कहा गया है कि कक्षा १ और २ में भाषा के लिए ८ कालांश रहेंगे।

३—कला की स्वतन्त्र सत्ता अस्वीकार कर दी गयी है। कला स्वतन्त्र भाव-प्रकाशन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माध्यम है और उसकी अवहेलना खटकती है। 'शिल्प सम्बन्धी कला' का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है।

४—इतिहास या भूगोल के लिए प्रति सप्ताह १ कालांश दिया गया है जो अपर्याप्त है।

नीचे ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों के लिए टाइम टेबुल दिये गये हैं—उनसे स्पष्ट होता है कि शिल्प पर अत्यधिक बल दिया गया है। लेकिन व्यवहार में पर्याप्त स्थान, साधन और प्रशिक्षित शिक्षक के अभाव का कोई लाभ नहीं होता।

इन्हीं दोषों को दूर करने के लिए राज्य बेसिक शिक्षा बोर्ड (जो इस समय काम नहीं कर रहा है) ने सन् १९६२ ई० की अपनी पहली बैठक में ही उत्तर

प्रदेश के बेसिक स्कूलों और बेसिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में प्रचलित पाठ्यक्रमों में सुधार करने का प्रस्ताव रखा और इस कार्य के लिए एक टेक्निकल आसपेक्ट कमिटी बना दी। टेकनिकल कमिटी ने प्रचलित पाठ्यक्रमों का अध्ययन किया और उसमें सुधार करने के लिए अपनी संस्तुतियाँ दे दीं। इन संस्तुतियों के अनुरूप पाठ्यक्रम बनाने के लिए बोर्ड ने एक स्टडी ग्रुप बनाया।

२—स्टडी ग्रुप के सदस्यों ने पाठ्यक्रमों का अध्ययन किया और सुझाव दिया कि पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के विस्तारपूर्वक अध्ययन और संस्तुतियों के अनुरूप पाठ्यक्रमों के पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा-विशेषज्ञों की एक परिगोष्ठी और वर्कशॉप आयोजित की जाय जिससे इस महत्त्वपूर्ण कार्य के साथ न्याय हो सके। तदनुसार अगस्त सन् १९६३ में विषय-विशेषज्ञों की एक वर्कशॉप राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी में आयोजित की गयी। वर्कशॉप ने बेसिक स्कूल और बेसिक प्रशिक्षण-संस्थाओं के लिए संशोधित पाठ्यक्रम तैयार किये। अगस्त सन् १९६४ ई० में राजकीय सेण्ट्रल पेडगॉजिकल संस्थान, इलाहाबाद में संशोधित पाठ्यक्रमों पर पुनः विचार करने के लिए विशेषज्ञों की परिगोष्ठी आयोजित की गयी और उसमें पुनः सुधार किये गये। बेसिक प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों के पुनः परीक्षण के लिए राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी में समिति की पुनः दो बैठकें हुईं। इन बैठकों के सुझावों और संशोधनों के फलस्वरूप बेसिक स्कूलों और बेसिक प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में सुधार किया गया।

बेसिक स्कूलों का पाठ्यक्रम

बेसिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए टेकनिकल आसपेक्ट कमिटी और स्टडी ग्रुप ने जो सुझाव दिये थे उनमें निम्नांकित प्रमुख थे और पाठ्यक्रम बनाते समय उनका समावेश कर लिया गया था।

१—कक्षा १ से कक्षा ८ तक की प्रारम्भिक बेसिक शिक्षा एक इकाई है। इस इकाई को खण्डित न किया जाय। अर्थात् जो विषय कक्षा १ से प्रारम्भ होते हैं वे अथवा उनके विकसित रूप कक्षा ८ तक चलें। प्रशासन की सुविधा के लिए भले ही जूनियर बेसिक स्तर (कक्षा १ से ५ तक) और सीनियर बेसिक स्तर (कक्षा ६ से कक्षा ८ तक) की दो इकाइयाँ रहें, परन्तु पाठ्यक्रम की दृष्टि से एक ही इकाई रहे, क्योंकि इस स्तर पर बालक के अनुभवों को खण्डित करना मनोवैज्ञानिक नहीं है। प्रारम्भिक स्तर पर अर्थात् कक्षा १ से

कक्षा ८ तक की शिक्षा को एक इकाई रखना बेसिक शिक्षा की सकल्पना मे भी अन्तर्निहित है। प्रस्तावित पाठ्यक्रम में एक इकाई की इस सकल्पना की रक्षा की गयी थी और जूनियर स्तर के पाठ्यक्रम का इस प्रकार आयोजन किया गया था जिससे सीनियर स्तर पर उसका स्वाभाविक विकास हो।

२—उस समय बेसिक स्कूलो मे कक्षा १ से कक्षा ५ तक दो शिल्पो की शिक्षा दी जाती थी परन्तु कक्षा ६, ७ और ८ में एक ही शिल्प सिखाया जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि उस शिल्प की, जो सीनियर स्तर तक नही चलते, क्रियाएँ अपने समग्र रूप में बालक के सामने नही आती और शिल्प की क्रिया के खण्डित हो जाने से शिक्षात्मक और उत्पादक दोनो पहलुओ की पूर्ण अवहेलना हो जाती थी। इस प्रकार जूनियर बेसिक स्तर पर सीखा हुआ शिल्प सम्बन्धी ज्ञान और उसको सीखने-सिखाने में व्यय हुआ समय तथा धन सब व्यर्थ हो जाता था। अत इस प्रस्तावित पाठ्यक्रम में व्यवस्था की गयी थी कि जो दो शिल्प जूनियर स्तर पर आरम्भ होते थे, अथवा उनके विकसित रूप सीनियर स्तर तक चलें।

३—बेसिक शिक्षा म शिल्प शिक्षा के केन्द्र है। अत अत्यन्त आवश्यक है, कि शिल्प की समस्त क्रियाएँ वैज्ञानिक ढग से सम्पन्न की जायें और उनका उचित मूल्याकन हो। इसीलिए प्रस्तावित पाठ्यक्रम मे कक्षा १ से कक्षा ८ तक शिल्पो की उत्पादकता के लक्ष्य निर्धारित कर दिये गये थे, जिससे जहाँ बालको की कार्यकुशलता को आँकने म आसानी होगी और शिल्पो का वैज्ञानिक शिक्षण होगा वहाँ शिल्पो क लिए दिये गय साधन और सरजाम का हिसाब-किताब रखना भी जरूरी हो जायगा।

४—बालक सम्वेदनशील प्राणी है। उसकी सम्वेदनाओ और भावनाओ का समुचित विकास शिक्षा की बहुत बडी जिम्मेदारी है। भावनात्मक असन्तुलन असामाजिक प्रवृत्तियो को जन्म देता है। इस दृष्टि से कला और सगीत के विषयो का बडा महत्व है। इसीलिए प्रस्तावित पाठ्यक्रम में कला को कक्षा १ से कक्षा ८ तक एक अनिवार्य विषय रखा गया था और कक्षा १ से कक्षा ८ तक के लिए सगीत का भी एक पाठ्यक्रम बना दिया गया था जिससे जहाँ भी सुविधा हो, सगीत का शिक्षा दी जा सके।

५—आज विज्ञान का युग है। सरकार ने विज्ञान की शिक्षा को सब प्रकार से प्रोत्साहित करने का निश्चय किया है। विज्ञान का प्रचलित पाठ्यक्रम अपूर्ण और दूषित था। इसीलिए प्रस्तावित पाठ्यक्रम अधिक विस्तृत, जीवन से

सम्बद्ध और आधुनिक बनाया गया एवं उसके बनाने में भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत विज्ञान के पाठ्यक्रम के प्रारूप से, जो अत्यन्त आधुनिक है, पर्याप्त सहायता ली गयी।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए विचार-गोष्ठी ने सुझाव दिया था कि विज्ञान अध्यापक जीव विज्ञान, भौतिक-विज्ञान तथा रसायन विज्ञान के साथ इण्टरमीडिएट उत्तीर्ण हों। नार्मल स्कूलों, जे० टी० सी० तथा सी० टी० कालेजों के विज्ञान-अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण दिया जाय। फिर वे जूनियर तथा सीनियर बेसिक स्कूलों के अध्यापकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण दें। बिना इस तैयारी के नवीन पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक कार्यान्वित नहीं किया जा सकता।

६—सामुदायिक कार्य का अलग से पाठ्यक्रम नहीं दिया गया था। परन्तु सामान्य विज्ञान और सामाजिक विषय के पाठ्यक्रमों में विद्यार्थियों की क्षमतानुकूल सामुदायिक कार्यों का समावेश कर दिया गया था। कृषि के पाठ्यक्रम में कृषि प्रसार कार्य का भी समावेश था जो सामुदायिक कार्य ही है।

संस्तुति की इन बातों को ध्यान में रखते हुए निम्नांकित पाठ्यक्रम बनाया गया था

समय-विभाजन—चक्र प्रति सप्ताह (जुलाई से मार्च) कार्यावधि—१०से४-१५बजेतक
नोट अवकाश का समय ३० मिनट होगा। प्रधानाध्यापक सुविधानुसार एक या दो अवकाश देंगे।

क्र०सं० विषय	कक्षा १ से २ घ० मि०	कक्षा ३ से ५ घ० मि०	कक्षा ६ से ८ घ० मि०
१—प्रार्थना तथा सफाई	१–३०	१–३०	१–३०
२—शिल्प (मुख्य तथा गौण) तथा कला	८–००	८–००	८–००
३—भाषा	४–००	४–००	४–००
४—गणित	४–००	४–००	४–००
५—सामाजिक विषय	२–४०	३–२०	३–२०
६—सामान्य विज्ञान	२–४०	३–२०	४–००
७—शरीर विज्ञान	२–४०	२–४०	२–००
८—अंग्रेजी	—	२–४०	२–५०
९—तृतीय भाषा	—	—	२–००
१०–वैकल्पिक विषय (केवल एक)	—	—	२–००
	२५–३०	२९–३०	३३–३०

समय विभाजन चक्र प्रति सप्ताह (अप्रैल से मई) कार्यविधि ६-३० बजे ११-३० बजे
नोट — अवकाश का समय २० मिनट का होगा।

क्र० स०	विषय	कक्षा १ से २	कक्षा ३ से ५	कक्षा ६ से ८
		घं० मि०	घं० मि०	घं० मि०
१—	प्रार्थना तथा सफाई	१-३०	१-३०	१-३०
२—	शिल्प (मुख्य तथा गौण) तथा कला	६-००	६-००	६-००
३—	भाषा	३-००	३-००	३-००
४—	गणित	३-००	३-००	३-००
५—	सामाजिक विषय	२-३०	२-३०	२-३०
६—	सामान्य विज्ञान	२-००	२-३०	३-००
७—	शरीर विज्ञान	२-००	२-००	१-३०
८—	अंग्रेजी	—	२-००	२-००
९—	तृतीय भाषा	—	—	१-३०
१०—	वैकल्पिक विषय केवल एक	—	—	१-३५
		१९-३०	२२-३०	२५-३०

जुलाई से मार्च तक प्रत्येक घण्टे (पीरियड) की अवधि ४० मिनट होगी और अप्रैल-मई में घण्टो की अवधि ३० मिनट होगी।

विषयों के लिए घण्टों (पीरियड) का विभाजन

क्र०स०	विषय	कक्षा १ से २ घण्टो की संख्या प्रति सप्ताह	कक्षा ३ से ५ घण्टो की संख्या प्रति सप्ताह	कक्षा ६ से ८ घण्टों की संख्या प्रति सप्ताह
१—	*प्रार्थना तथा सफाई*	*१५ मिनट नित्य (१० बजे से १०-१५तक) होगी* (गर्मी में ६-३० बजे से ६-४५ तक)		
२—	शिल्प (मुख्य तथा गौण) तथा कला	१२	१२	१२
३—	भाषा	६	६	६
४—	गणित	६	६	६
५—	सामाजिक विषय	४	५	५
६—	सामान्य विज्ञान	४	५	६
७—	शरीर विज्ञान	४	४	३

८—अंग्रेजी	—	४	४
९—तृतीय भाषा	—	—	३
१०—वैकल्पिक विषय-केवल एक	—	—	३
	३६	४२	४८

नोट : (१) कक्षा १ और २ के लिए ६ घण्टे, कक्षा ३ से ५ तक ७ घण्टे और कक्षा ६ से ८ तक ८ घण्टे नित्य होंगे।

(२) शिल्प और विज्ञान में दो-दो घण्टे एक साथ देने चाहिए।

इस टाइमटेबुल को देखने से नीचे लिखी बातें सामने आती हैं।

पुराने टाइम टेबुल में शिल्प के लिए निर्धारित १२ घण्टा प्रति सप्ताह को कम करके ८ घण्टा कर दिया गया और वह केवल शिल्प के लिए नहीं, उसमें कला भी शामिल है।

२—शिल्प को स्वतंत्र विषय रखा गया है। उसे शिल्प सम्बन्धित कला तक ही सीमित नही किया गया है।

३—शिल्प और कला के लिए जुलाई से मार्च तक प्रति सप्ताह ८ घण्टे और अप्रैल तथा मई के गर्मी के दिनो में ६ घण्टे दिये गये। जुलाई से मार्च तक कालांश ४० मिनट के और अप्रैल से मई तक कालांश ३० मिनट के हैं अर्थात् इन दोनों विषयों के लिए नित्य लगातार २ कालांश काम करने के लिए दिया जायगा। हर सप्ताह ४ दिन शिल्प के लिए और २ दिन कला के लिए।

४—भाषा और गणित के लिए क्रमश ४ कालांश के स्थान पर क्रमश ४ और ३ घण्टे प्रति सप्ताह दिये गये हैं जो नित्य १ कालांश आता है।

बेसिक स्कूलों के पाठ्यक्रम का यह प्रारूप किन्ही कारणों से प्रदेश में लागू नहीं हुआ। इसमें सम्भवत एक कारण यह भी रहा हो कि आचार्य जुगल किशोर के शिक्षामंत्रित्व काल के बाद कानूनन अभी सत्र नहीं किया गया है। सन् १९६६-६७ की बात है जो कि लगभग पाँच वर्ष के बाद राज्य शिक्षा संस्थान ने बेसिक स्कूलो का नया पाठ्यक्रम तैयार किया है और उसे शासन की स्वीकृति के लिए प्रेषित किया गया है।

राज्य शिक्षा-संस्थान ने जो पाठ्यक्रम तैयार किया है उसमें कुछ उन बुनियादी बातों को नही माना है जिनकी चर्चा ऊपर हो चुकी है, विशेषत: शिल्प के सम्बन्ध में। शिल्प के लिए जो पाठ्यक्रम तैयार किया गया है उसे नीचे दिया जा रहा है।

१-५ तक रचनात्मक क्रियाओं का पाठ्यक्रम

यह पाठ्यक्रम दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग कक्षा के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित है जो सभी के लिए अनिवार्य है और जिसके लिए प्रति सप्ताह दो कालांश निर्धारित है। द्वितीय भाग में कोई दो शिल्प लेने हैं जिनमें से प्रत्येक के लिए दो कालांश निर्धारित हैं।

बुनाई के पाठ्यक्रम के निम्नांकित उद्देश्य बताये गये हैं :

१ बुनाई के माध्यम से दैनिक जीवन की आवश्यकतावाली वस्तुओं का निर्माण कराना तथा उनका सदुपयोग करना।

उत्पादन की क्रियाओं द्वारा आत्म-निर्भरता।

२. बुनाई के लिए मिल का सूत दिया जाय परन्तु जब सूत अधिक मात्रा में काता जाय तो बच्चे अपने-अपने कते सूत से बुनें।

माडी लगाना—बेलन तथा चरखे पर माडी देने का महत्त्व, बुनाई की दो विधियों का ज्ञान।

बुनाई की दो विशेषताओं का ज्ञान जैसे भ्य और दम बनाना—बारह लड़कों की एक कक्षा के लिए कम से-कम ३ करघे होना चाहिए। करघे की चौड़ाई ३६ इंच से अधिक न हो।

लक्ष्य

कक्षा ६   १ वर्ष में — ३ गुण्डी सूत

५ मीटर नेवाड़— २ बच्चों के बीच एक आसन।

प्रति घण्टा न्यूनतम गति—१५० मीटर १० अंक सूत

कक्षा ७—प्रति घण्टा न्यूनतम गति—२०० मीटर १२ अंक

वर्ष के अन्त ५ गुण्डी सूत

१ मीटर कपड़ा बनाना

५ मीटर नेवाड़—१ आसन २ बालकों के बीच में

कक्षा ८ प्रति घण्टा न्यून गति—२५० मीटर १६ अंक

५ गुण्डी सूत

डेढ़ मीटर कपड़ा बुनना

५ मीटर नेवाड़

दो बालकों के बीच एक आसन।

कक्षा—३

१—छोटी छोटी क्यारियाँ बनाना।

२—तरकारी और फूलों के बीज बोना।

३—खाद देना, सिंचाई, निराई-गुडाई करना।

कक्षा—४

१—छोटी क्यारियाँ बनाकर तरकारी तथा फूलों को उगाना।

२—स्थानीय फार्म तथा वाटिका का निरीक्षण।

कक्षा—५

१—छोटी-छोटी क्यारियों में तरकारी, अन्न की फसलों तथा फूलों को उगाना एव तत्सम्बन्धी अन्य क्रियात्मक कार्य करना—गेहूँ, मटर, मक्का [illegible] साधारण परिचय।

२—बीज, खाद—खरपतवार की पहचान करना।

कक्षा—६

१—विद्यालय फार्म पर नम्बर ६ पर अंकित फसलों का उगाना तथा तत्सम्बन्धी क्रियात्मक कार्य।

२—फसल—आलू, गेहूँ, मक्का, धान, मटर की खेती—इन फसलों का उगाना।

३—व्यक्तिगत क्यारियों में आलू, मटर अथवा अन्य स्थानीय तरकारियों का उगाना। जहाँ व्यक्तिगत क्यारियाँ न हो वहाँ ३ ४ बालक।

कक्षा—७

फसल—अरहर, ज्वार, फूलगोभी, मटर का साधारण ज्ञान।

बागवानी—आलू, गोभी, मूली की खेती।

फसल—नीबू, अमरूद, सेब तथा नाशपाती के पौध प्रजनन का अभ्यास।

कक्षा—८

फसल—गन्ना, आलू, गेहूँ, धान, फूलगोभी, बरसीम की खेती का विस्तृत और उन्नत ज्ञान।

बागवानी—केला, पपीता, अमरूद, सेब, नाशपाती तथा नीबू जाति (कागजी नीबू) सतरा का वानस्पतिक सम्वर्द्धन।

वानस्पतिक विधियों का अभ्यास।

व्यक्तिगत तथा दलगत क्यारियों में फसलों तथा अन्य तरकारियों को उगाना।

नोट : १—कक्षा ६, ७, ८ में सुविधानुसार विद्यार्थियों के क्रियात्मक कार्य हेतु व्यक्तिगत और विभक्त क्यारियों की व्यवस्था की जाय।

२—फार्म में पौध घर की स्थापना पर ध्यान दिया जाय।

३—वाटिका में प्रति कक्षा को एक सामूहिक क्षेत्र देकर उसकी सजावट हेतु फूलों को उगाने का उत्तरदायित्व बालकों को दिया जाय।

प्रस्तावित पाठ्यक्रम

प्रति सप्ताह कालांश संख्या

	१–२	३ से ५ तक	६–८ तक	पूर्णांक
१—भाषा	१२	९	—	१००
२—गणित	६	९	—	१००
३—सामाजिक अध्ययन	६ (२–३)	६	—	१००
४—रचनात्मक क्रिया	६	६	—	१००
(क) कला				
(ख) निम्न में से कोई २— कृषि, बागवानी, कताई-बुनाई, गृह विज्ञान (बालिकाओं के लिए) मिट्टी का काम, कागज का काम				
५—सामान्य विज्ञान और स्वास्थ्य शिक्षण–		६	—	१००
६—व्यायाम, खेल, गायन	६	६	—	१००
	३६	४२		६००

कक्षा ६, ७, ८

उत्तीर्ण ३३ अर्थात २००

१—हिन्दी	८	१००
२—गणित	८	१००
३—विज्ञान	६	१००

४—सामाजिक अध्ययन	५	१००
५—एक अन्य भाषा	५	१००
६—क्रियात्मक शिल्प तथा कला कोई एक कृषि/गृह विज्ञान	६	१००
७—निम्नलिखित म से कोई एक कला/वाणिज्य, संगीत अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, पाली आदि		५०

८—पी० टी० नैतिक शिक्षा ३ : २=५०   कुल ४८ घण्टे

प्रति सप्ताह कालांश संख्या

	१–२	३ से ५ तक	६–८ तक	पूर्णांक
१—भाषा	१२	९	—	१००
२—गणित	६	९	—	१००
३—सामाजिक अध्ययन	६ (२–३)	६	—	१००
४—रचनात्मक क्रिया	६	६	—	१००
(क) कला				
(ख) निम्न में से कोई २— कृषि, बागबानी, कताई बुनाई, गृह विज्ञान (बालिकाओं के लिए) मिट्टी का काम, कागज का काम				
५—सामान्य विज्ञान और स्वास्थ्य शिक्षण—		६	—	१००
६—व्यायाम, खेल, गायन–६		६	—	१००
	३६	४२	—	६००

कक्षा ६, ७, ८

स्नाक=३३ अर्थात् २००

१—हिन्दी	८	१००
२—गणित	८	१००
३—विज्ञान	६	१००
४—सामाजिक अध्ययन	५	१००
५—एक अन्य भाषा	५	१००
६—क्रियात्मक शिल्प तथा कला	६	१००
कोई एक कृषि/गृह विज्ञान		
७—निम्नलिखित में से कोई एक	५	५०
कला/वाणिज्य, संगीत, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, पाली आदि		
८—पी० टी० नैतिक शिक्षा ३ २ = ५०		कुल ४८ घण्टे

राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा प्रस्तुत इस पाठ्यक्रम का विश्लेषण करें तो दो बातें देखते हैं

१—कक्षा १ से कक्षा ५ तक कमाई का कोई लक्ष्य नहीं रखा गया है। यही पुराने पाठ्यक्रम में भी था। लक्ष्यहीन काम मनोविज्ञान और शिक्षा दोनों ही दृष्टियों से दोषपूर्ण है। इसीलिए प्रस्तावित प्रारूप में प्रारम्भ में ही कुछ न कुछ लक्ष्य रखा गया है और इसीलिए शिक्षा विभाग के पत्र संख्या बे० १३१११४०-८ (२) ६१-६२ दिनांक जुलाई १८,१९६१ ई० को बेसिक विद्यालयों में शिल्प निर्धारण के लिए परिपत्र भेजा था—(पूरा पत्र लेख के अन्त में परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।) अतः पाठ्यक्रम तैयार करने में राज्य शिक्षा संस्थान ने प्रारूप के तर्कों को नजरअंदाज कर दिया है और विभाग की आज्ञा का भी ध्यान नहीं रखा है। लक्ष्यहीन काम का परिणाम साधन की बरबादी भर होगी यह भूलना नहीं चाहिए।

२—इस पाठ्यक्रम में जूनियर और सीनियर दोनों ही स्तरों पर क्रियात्मक शिल्प और कला के लिए नित्य कुल ६ कालांश दिये हैं। जूनियर स्तर पर तो

यह समय दो शिल्पों और कला के लिए है। सीनियर स्तर पर एक शिल्प और कला के लिए है।

इसका अर्थ होता है कि अगर कला के लिए २ कालांश अलग कर दिये जायें तो शिल्प को ४ कालांश मिलेगा। इतने कम समय में किसी भी उत्पादक काम को वैज्ञानिक ढंग से किया जा सकता है क्या ? जिन्हें बेसिक शिक्षा का अनुभव है वे स्वीकार करेंगे कि क्रियात्मक कार्य के लिए लगातार २ घण्टे मिलने चाहिए। अगर ऐसा किया गया तो शिल्प का काम सप्ताह में केवल दो दिन ही होगा।

श्री देवेन्द्रदत्त तिवारी, निदेशक, पेडागाजिकल
संस्थान, इलाहाबाद

●

परिशिष्ट—१

प्रेषक,

अतिरिक्त शिक्षा निदेशक उत्तर प्रदेश,
[शिक्षा (बेसिक) विभाग,
इलाहाबाद ।]

सेवा में,

जिला विद्यालय निरीक्षक,
उत्तर प्रदेश ।

पत्र संख्या बे०।१११।१४०—८(२)। ६१-६२ दिनांक जुलाई २८,१९६१ ई०
विषय —बेसिक विद्यालयों में शिल्प कार्य के लक्ष्य का निर्धारण ।
महोदय,

(१) जैसा कि आपको विदित है कि प्रदेश में बेसिक शिक्षा के कार्यान्वयन के साथ साथ स्थानीय आवश्यकताओं, चुने गये शिल्पों की उत्पादन क्षमता और उनकी शैक्षिक उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए समस्त बेसिक विद्यालयों में शिल्प शिक्षण का समावेश कर दिया गया है ।

(२) बेसिक शिक्षा में हस्तशिल्पों का अपना विशेष महत्त्व है । शिल्पों के माध्यम से छात्र क्रियाओं के द्वारा ज्ञानार्जन करने का अवसर प्राप्त करते हैं, उनकी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का एक साथ विकास होता है और विद्यार्थी समाज की उत्पादक इकाई बनते हैं । क्रियाओं द्वारा दी जानेवाली शिक्षा का प्रभाव अधिक स्थायी होता है और क्रमशः शिक्षा जीवनोपयोगी बन जाती है ।

(३) अभी तक प्रत्येक कक्षा में प्रत्येक विद्यार्थी के द्वारा शिल्प सम्बन्धित उत्पादित सामग्रियों के प्रसंग में कोई निश्चित लक्ष्य नहीं निर्धारित किये जा सके थे । इससे अध्यापकों को शिक्षा या मापदण्ड स्थिर करने में तथा छात्रों की कार्य कुशलता के आकने में कठिनाई होती थी । अतः निश्चित किया गया है कि क्रमशः जूनियर तथा सीनियर बेसिक विद्यालयों में अपनाये गये शिल्पों के उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित कर दिये जायें ताकि उपरोक्त कठिनाई का निवारण किया जा सके ।

(४) उपरोक्त दोनों स्तर के विद्यालयों के लिए कताई बुनाई शिल्प विषयक लक्ष्यों का निर्धारण किया जाता है जिसकी तालिका सूचनार्थ एवं आवश्यक कार्यवाही हेतु सलग्न की जा रही है। अन्य शिल्पों के सम्बन्ध में क्रमश आदेश प्रसारित किये जायेंगे।

(५) तालिका मे जो लक्ष्य निर्धारित किये गये है उन्हें प्रत्येक विद्यार्थी के लिए न्यूनतम लक्ष्य मानना चाहिए। इस लक्ष्य की पूर्ति प्रत्येक विद्यार्थी को वर्ष के अन्त तक अनिवार्यत करनी है, किन्तु लक्ष्यों के निर्धारण का तात्पर्य यह नही है कि केवल इनकी पूर्ति कर लेना ही बेसिक शिक्षा का समग्र उद्देश्य मान लिया जाय। वस्तुत बेसिक विद्यालयों में शिल्प विषय का समावेश शिल्पों की शैक्षिक उपयोगिता को मुख्य रूप से ध्यान में रखकर किया गया है। उनके माध्यम से अंतिम लक्ष्य छात्रों के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है। अस्तु कृपया इस तथ्य को ध्यान मे रखा जाय कि शिल्प विषयों का शिक्षण एक स्वतन्त्र शिल्प के रूप में नही प्रत्युत शिक्षा के माध्यम के रूप में ही किया जाय।

(६) कृपया इस तथ्य को भी ध्यान में रखा जाय कि शिल्पों के प्रायोगिक अभ्यास के क्रम में आनेवाले विषयों से सम्बन्धित पक्ष का यथासम्भव अनुबन्धन भी करने के प्रयास किये जायँ।

(७) संलग्न तालिका के अवलोकन से ज्ञात होगा कि बालकों की आयु और उनकी क्षमता को ध्यान मे रखते हुये कक्षा १ तथा कक्षा २ के लिए उत्पादन का कोई विशिष्ट लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया है। फिर भी दो वर्षों में प्रत्येक विद्यार्थी से कम से कम ५ गुण्डी सूत प्राप्त करने की आशा की जाती है। कक्षा ४ तथा ५ में प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा काते गये सूत का योग ५५ गुण्डी होगा। इस प्रकार कुल ५ वर्षों में एक विद्यार्थी ६० गुण्डी सूत कात सकेगा।

(८) अनुमानत १०० विद्यार्थियोंवाले प्रत्येक विद्यालय के लिए प्रति ४० सेर रुई की आवश्यकता पड़ेगी। उत्पादन की बिक्री की यदि ५० प्रतिशत पूर्ति की आशा कर ली जाय जो कि सामान्यत बहुत कम है, तो लगभग २० सेर प्रति वर्ष प्रति विद्यालय को नयी रुई क्रय करने की धन की आवश्यकता पड़ेगी। इस व्यय की पूर्ति प्रासंगिक व्यय के लिए दिये जानेवाले अनुदान से सरलता से की जा सकेगी।

(९) एक सुझाव यह भी है कि जिन बेसिक विद्यालयों में कुछ भूमि उपलब्ध हो वहाँ खेत के एक निश्चित खण्ड में कपास की खेती का आरम्भ भी

किया जा सकता है। इस दिशा में पुनर्व्यवस्थित सीनियर बेसिक विद्यालयों से भी सहायता ली जा सकती है।

निवेदन है कि अपने अधीनस्थ विद्यालयों को आवश्यक आदेश प्रसारित करने की कृपा करें कि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के अनिवार्य प्रयत्न किये जायें और निरीक्षक वर्ग को निर्देश करने की कृपा करें कि वे अपने निरीक्षण में इस तथ्य का भी निश्चित रूप से अवलोकन करें कि लक्ष्यों की पूर्ति की गयी है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए इन लक्ष्यों को पूरा करना अनिवार्य होगा। यह आदेश तत्काल कार्यान्वित किये जायें। पाठ्यक्रम में इनका समावेश आगामी मुद्रण के समय किया जायगा।

संलग्नक :

सीनियर बेसिक विद्यालयों के लिए कताई बुनाई शिल्प के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारण :

(क) जूनियर बेसिक स्तर के लिए—

	कताई
कक्षा १	
१—एक घण्टे में तकली की न्यूनतम गति	१८ तार
२—औसत अंक	६ से ८
३—औसत मजबूती	५० प्रतिशत
४—छीजन	५ प्रतिशत
कक्षा २	
१—एक घण्टे में तकली की न्यूनतम गति	२४ तार
२—औसत अंक	८ से १०
३—औसत मजबूती	५० प्रतिशत
४—छीजन	५ प्रतिशत
कक्षा ३	
१—एक घण्टे में तकली की न्यूनतम गति	३० तार
२—एक घण्टे में चरखे की न्यूनतम गति	४० तार
३—औसत अंक	१० से १२
४—औसत मजबूती	५५ प्रतिशत

५—छीजन	४ प्रतिशत
६—न्यूनतम उत्पादन प्रतिवर्ष (४ तकली से ६ चरखा से)	१० गुण्डी

कक्षा ४

१—एक घण्टे म तकली की न्यूनतम गति	५५ तार
२—एक घण्टे में चरखे की न्यूनतम गति	९० तार
३—औसत अक	१४ से १८
४—औसत मजबूती	६० प्रतिशत
५—छीजन	२ प्रतिशत
६—न्यूनतम उत्पादन प्रतिवप (५ तकली से १० चरखा)	१५ गुण्डी

कक्षा ५

१—एक घण्टे में तकली की न्यूनतम गति	७५ तार
२—एक घण्टे में चरखे की न्यूनतम गति	१४५ तार
३—औसत अक	१६ से २०
४—औसत मजबूती	७० प्रतिशत
५—छीजन	२ प्रतिशत
६—न्यूनतम उत्पादन प्रतिवर्ष (५ तकली से २५ चरखा से)	३० गुण्डी

नोट —एक गुण्डी में ६४० तार होत है और एक तार में ४ फीट होता है।

बुनाई

उन सीनियर बेसिक विद्यालयों के लिए बुनाई के लक्ष्य जहाँ पर बुनाई शिक्षा की सुविधाएँ दी गयी है —

क्र० स०	वस्तु का नाम	नाप	तार के गुण अक	मजबूती	प्रयोगात्मक विधि	लगा हुआ समय
१	२	३	४	५	६	७
कक्षा ६						
१—	आसन	२४ २८	८–१०	५०–६०	दुहरा पर्त सादा	८–१२ घण्टा
२—	नेवाड	३० २३	८–१०	५०–६०	चार पर्त तह	३५–४० घण्टा
कक्षा ■ तथा ८ (प्रत्येक कक्षा मे)						
१—	तौलिया	२४ १८	१२–१६	६०–८०	दुहरा पर्त सादा	६–१० घण्टा
२-	कमीज का कपडा (१२ वर्ग गज)	३६ ३६	१४–१६	६०–८०	,, ,,	४०–५० घण्टा

नोट—इन लक्ष्यों को निर्धारित करने का तात्पर्य यह नहीं है कि केवल इनकी ही पूर्ति कर लेना बसिक शिक्षा का उद्देश्य समझ लिया जाय। यह न्यूनतम लक्ष्य है। इनको तो पूरा करना होगा ही। साथ ही साथ इस बात को भी ध्यान में रखा जाय कि विषय में शिल्प शिक्षा एक स्वतंत्र शिल्प के रूप में नहीं *प्रत्युत शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रयोग में लायी जाती है।*

ह० कृष्ण प्यारे लाल
सहायक शिक्षा निदेशक (बसिक)
कृते अतिरिक्त शिक्षा निदेशक
उत्तर प्रदेश

परिशिष्ट—२

प्रेषक,
अतिरिक्त शिक्षा निदेशक, उत्तर प्रदेश,
निरीक्षक (बेसिक) विभाग,
इलाहाबाद।

सेवा में,
जिला विद्यालय निरीक्षक,
उत्तर प्रदेश।

पत्र सं० बे०। ३६८४। चालीस–८(१७) ६१।६२ दिनांक जनवरी २४,१९६२
विषय —सीनियर बेसिक विद्यालयों में कृषि उत्पादन का लक्ष्य-निर्धारण।

महोदय,

(१) आपका ध्यान शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना सम्बन्धित सन्दर्भ संख्या। बे०।।१०७९।४०–२२ (१११) । ६०–६१ दिनांक जुलाई २८, १९६० की ओर आकृष्ट करते हुए निवेदन है कि योजना को चलते हुए लगभग सात वर्ष बीत चुके हैं। योजना आरम्भ करते समय एक उद्देश्य यह भी रखा गया था कि शिल्पों के उत्पादन से विद्यालयों को आर्थिक मामलों में स्वावलम्बी बनाया जाय, किन्तु विद्यालयों की प्रगति को देखते हुए पता चलता है कि अभी तक बहुत कम विद्यालय ऐसे हैं जिनमें कुछ आर्थिक लाभ हुआ है और जहाँ आर्थिक लाभ देखने को मिलता भी है वहाँ इस बात का अन्दाज लगाना कठिन हो जाता है कि वस्तुतः कितने रुपयों की नकद बिक्री हुई और कितना कृषि क्षेत्र पर व्यय कर दिया गया। बहुधा विद्यालयों में कृषि क्षेत्रों की उपज को बेचकर रुपयों को सीधे खर्च कर देने की भी प्रथा देखी गयी है जो कि नियमतः उचित नहीं है। कृषि-क्षेत्रों के आर्थिक रूप में लाभप्रद न होने की आलोचनाएँ भी बहुधा सुनने को मिलती हैं। जिन विद्यालयों में कृषि-योग्य भूमि प्राप्त हो चुकी है और एक निश्चित भूमि खण्ड में खेती हो रही है उन्हें अवश्य ही एक निश्चित मापदण्ड में आर्थिक लाभ-प्राप्त करना चाहिए। इस दृष्टि से निश्चय किया गया है कि सीनियर बेसिक योजनावाले विद्यालयों में कृषि क्षेत्रों के उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित कर दिया जाय।

(२) विद्यालयो में प्राय उत्तम और मध्यम श्रेणी की भूमि में खेती की जा रही है। जहाँ उत्तम श्रेणी की ५ एकड तक या इससे अधिक भूमि मिली है उन विद्यालयो म कही कही कृषि-क्षेत्र को आमदनी से लगभग २५ रुपया प्रतिमास के मजदूर या चौकीदार भी रख गये हैं। जिन विद्यालयो में इससे कम भूमि में खेती हो रही है उनकी सुरक्षा आदि की जिम्मेदारी विद्यालय की प्रबन्ध समिति एव अध्यापको और विद्यार्थियों पर है। किसी भी स्थिति में उत्तम एव मध्यम भूमि के क्षेत्रो में क्रमश २०० रु० तथा १५० रुपया प्रति एकड प्रतिवर्ष से कम नकद लाभ नही होना चाहिए और नकद बिक्री का कोई धन बिना पोस्ट ऑफिस सेविंग बैंक के लेख में सम्मिलित हुए नही खर्च होना चाहिए।

(३) पुनर्व्यवस्थित सीनियर बेसिक विद्यालयो की कृषि तथा शिल्प विषयक प्रगति की देख रख अभी तक प्रसार निदेशको के ऊपर रही हैं और ऐसा देखने को मिला है कि उनकी उपस्थिति म बहुधा प्रत्युप विद्यालय निरीक्षको ने इन विद्यालयो की प्रगति की ओर ध्यान नही दिया जो कि उचित न था। अब इन विद्यालयों की प्रगति की देख रख करने का पूरा दायित्व उप विद्यालय निरीक्षको, अतिरिक्त उप विद्यालय निरीक्षका एव प्रत्युप विद्यालय निरीक्षकों पर आ गया है। कृपया उन्हें निर्देश देन का कष्ट कर कि अपने दौर के समय इन विद्यालयों की प्रगति की ओर विशेष रूप से ध्यान दें तथा निश्चित रूप से देखें कि कृषि क्षेत्रो की उपज की नकद बिक्री निर्धारित धन से कम न हो। जहाँ लक्ष्य की पूर्ति नही हो रही है उनके कारणो को ढूँढकर उनकी कमियो को दूर करने का प्रयास करें तथा पुनर्व्यवस्थित सीनियर बेसिक विद्यालयो के प्रधानाध्यापको एव प्रसाराध्यापको का वार्षिक गोपनीय आख्याओं में भी इस विषय का समुचित उल्लेख किया जाय।

इस विषय में यह भी निवेदन करना है कि पुनर्व्यवस्थित उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो की कक्षा ८ तक की कृषि क्षेत्र की प्रगति की देख रेख भी उपरोक्त अधिकारी ही करेंगे, अस्तु इन्हें विद्यालयो की प्रगति पर भी दृष्टि रखने का निर्देश कर देने की कृपा करें तथा इन विद्यालय के प्रधानाचार्यो को भी इस निर्देश से अवगत कराने की कृपा करें।

(४) पुनर्व्यवस्था योजना के अन्तर्गत कृषि क्षेत्रो में अब तक प्रति वर्ष जो नकद लाभ या हानि हुई है उसका भी प्रतिविद्यालय एक विवरण तैयार कर सलग्न परिपत्र में भेजने की कृपा करें। निवेदन है कि परिपत्र में माँगी हुई सूचनाओं का सकलन प्रत्युप विद्यालय निरीक्षको द्वारा करा लेने की कृपा करें।

आपसे निवेदन है कि योजना की प्रगति की ओर व्यक्तिगत ध्यान देकर यह देखने का कष्ट करें कि इन निर्देशों का पालन पूरी तौर से किया जा रहा है या नहीं।

भवदीय

(कृष्ण प्यारे लाल)

कृते अतिरिक्त शिक्षा निदेशक

उत्तर प्रदेश

सीनियर बेसिक विद्यालयों के कृषि-क्षेत्रों के आय-व्यय का विवरण

जिले का नाम ....

१

क्र०सं०	विद्यालयों का नाम	कुल प्राप्त भूमि	कृषि अन्तर्गत भूमि	१९५४–५५		
				नकद आय	व्यय	लाभ
१	२	३	४	५	६	७

२

१९५५–५६			१९५६–५७			१९५७–५८			१९५८–५९		
नकद आय	व्यय	लाभ	नकद आय	व्यय	लाभ	नकद आय	व्यय	लाभ	नकद आय	व्यय	लाभ
८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९

३

१९५९–६०			१९६०–६१			विशेष
नकद आय	व्यय	लाभ	नकद आय	व्यय	लाभ	
२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६

४

योग —

ह० जिला विद्यालय निरीक्षक

-वंशीधर श्रीवास्तव

उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा की प्रगति

सन् १९३७ ई० में जब उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा का प्रारम्भ हुआ तो उत्तर प्रदेश की सरकार के समक्ष बुनियादी शिक्षा पर महात्मा गांधी के शिक्षा-विषयक लेख, डा० जाकिर हुसैन समिति की रिपोर्ट और आचार्य नरेन्द्रदेव समिति की शिक्षा की पुनर्गठन सम्बन्धी प्रथम रिपोर्ट थी। नरेन्द्रदेव समिति ने, जिसे उत्तर प्रदेश सरकार ने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा में सुधार सुझाने के लिए नियुक्त किया था, प्रारम्भिक स्तर पर बेसिक शिक्षा को लागू करने का सुझाव दिया था क्योंकि उससे बालकों का सर्वांगीण विकास होता है। अतः उत्तर प्रदेश में १९३८ ई० में बुनियादी शिक्षा प्रारम्भ की गयी।

नरेन्द्रदेव समिति ने शिक्षा में स्वावलम्बन के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया था और यह संस्तुति की थी कि प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में गैर बुनियादी और बुनियादी दो प्रकार की पाठशालाएँ न चलाकर एक ही प्रकार की पाठ-

शालाएँ चलायी जायँ। फलतः बेसिक शिक्षा के प्रसार के ढग में उत्तर प्रदेश ने जो मार्ग अपनाया वह भी अन्य प्रदेशों से भिन्न हो गया। अन्य प्रदेशों में बेसिक शिक्षा कक्षा १ से आरम्भ हुई और क्रमशः कक्षा ७ या ८ तक गयी, और इस तरह बेसिक स्कूलो की संख्या क्रमशः बढ़ायी गयी। इसे हम "सीमित क्षेत्रों में प्रगाढ़ प्रयोग और क्रमश विकास" की संज्ञा दे सकते हैं। बेसिक शिक्षा के विकास का यह स्वाभाविक मार्ग था। बेसिक शिक्षा को प्रारम्भ करने के लिए पारम्परिक स्कूलों से अधिक साधनो और विशेष प्रकार के प्रशिक्षित अध्यापको की आवश्यकता होती है। प्रयोग-क्षेत्र को क्रमशः विस्तृत करने से इस प्रकार के साधनो और अध्यापकों की सुव्यवस्था करना सम्भव हो सका। उत्तर प्रदेश में इसके विपरीत बेसिक शिक्षा को प्रारम्भिक शिक्षा के समस्त क्षेत्र में एक साथ लागू करने का निश्चय किया गया और प्रदेश के सभी प्रारम्भिक विद्यालयों को बुनियादी विद्यालयों में परिवर्तित करने की नीति अपनायी गयी जिससे प्रदेश में एक साथ दो समानान्तर शिक्षण-विधियो के चलने की उलझन से बचा जा सके।

योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए सबसे पहली जरूरत यह महसूस हुई कि प्रारम्भिक स्कूलों को बुनियादी स्कूलों में परिवर्तित करने के लिए उपयुक्त शिक्षकों का प्रबन्ध किया जाय और बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तो में दीक्षित निरीक्षकों का एक ऐसा वर्ग भी तैयार किया जाय जिससे बुनियादी स्कूलों के अध्यापक पथ-प्रदर्शन पा सकें। अतः उत्तर प्रदेश की सरकार ने अगस्त १९३८ ई० में इलाहाबाद में स्नातकों के लिए एक पोस्ट ग्रेजुएट बेसिक ट्रेनिंग कालेज खोला। इस बेसिक ट्रेनिंग कालेज को प्राचीन एल० टी० ट्रेनिंग के सम-कक्ष माना गया। इस ट्रेनिंग कालेज में प्रशिक्षण के विषय प्राचीन एल० टी० ट्रेनिंग कालेज के ही समान थे, केवल बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त और अनुबन्धित शैली के विषय बढ़ा दिये गये। पहले कुछ वर्षों तक शिल्प के नाम पर केवल कताई और पुस्तक-शिल्प सिखाये गये, बुनाई और काष्ठशिल्प नहीं। ऐसा इसलिए किया कि बेसिक शिक्षा को कक्षा ५ तक ही चलाने का निश्चय किया गया था। कला पर बहुत अधिक बल दिया गया और शिल्प की भाँति उसे विशिष्टीकरण का विषय माना गया। बागवानी-खेती नहीं सिखायी गयी और सच पूछिए तो १९५४ ई० के पहले यानी पुनर्व्यवस्था शिक्षा योजना लागू करने के पहले बागबानी और खेती बेसिक स्कूलों में पाठ्य विषय नहीं थे और

आज भी जूनियर बेसिक स्तर पर सम्यक् ढग से बागबानी सिखाने की व्यवस्था बहुत कम है।

बेसिक ट्रेनिंग कालेज से निकलने के बाद स्नातकों को प्रदेश के सात रेफ्रेशर कोर्स ट्रेनिंग केन्द्रों में भेज दिया गया (मेरठ, बरेली, आगरा, लखनऊ, फैजाबाद, इलाहाबाद और बनारस)। इन केन्द्रों पर तीन महीने के रेफ्रेशर कोर्स के लिए जिले के प्रारम्भिक स्कूलों के वे अध्यापक आये जो वी० टी० सी० अथवा एच० टी० सी० ट्रेन्ड थे। प्रत्येक केन्द्र पर २५० अध्यापक आते थे। इस तरह साल भर में लगभग ७,००० अध्यापकों को रेफ्रेशर कोर्स देने की व्यवस्था की गयी। चूंकि ये अध्यापक प्रशिक्षित थे, अत केन्द्रों पर उन्हें बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त बताये जाते थे और समवाय-पद्धति से परिचित करा दिया जाता था। इन्हें कताई, पुस्तक-शिल्प और कला भी सिखायी जाती थी। तीन महीने के इस प्रशिक्षण के बाद वे वापस जाकर अपने स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित कर लेते थे। जैसे-जैसे इन केन्द्रों से प्रशिक्षित होकर अध्यापक निकलते गये वैसे-वैसे प्रदेश के प्रारम्भिक विद्यालय बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित होते गये। ये केन्द्र १९४६ ई० तक चलते रहे, और इनमें लगभग ३५,००० शिक्षकों को बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोग की शिक्षा दी गयी। १९४६ ई० के बाद इन केन्द्रों को नार्मल स्कूलों में परिवर्तित कर दिया गया। प्रदेश के अन्य नार्मल स्कूल भी बेसिक नार्मल स्कूलों में परिवर्तित कर दिये गये। इनका नाम तो नहीं बदला गया, परन्तु उनके पाठ्यक्रम में बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों का समावेश कर दिया गया और उनमें मूल उद्योग और तत्सम्बन्धित कला के शिक्षण की व्यवस्था कर दी गयी। और प्रत्येक छात्राध्यापक के लिए ६० में कम से कम १० शिल्प सम्बन्धी पाठ पढ़ाना आवश्यक माना गया। भूल यह हुई कि समवायित पाठों को पढ़ाने तथा उनमें परीक्षा देने की व्यवस्था नहीं की गयी और इस प्रकार बेसिक शिक्षा के एक बुनियादी तत्त्व की अवहेलना हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि शिल्प की शिक्षा केवल एक विषय की भाँति हुई और उससे सम्बन्धित करके दूसरे विषयों को पढ़ाने का नियोजित प्रयास नहीं हुआ। इस प्रकार उद्योग का केन्द्रीय महत्त्व भुला दिया गया। १९४८ ई० में प्रदेश के सभी प्रारम्भिक विद्यालयों को बेसिक शिक्षा के ढग पर सचालित करने का आदेश दिया गया और उन्हें बेसिक स्कूल कह दिया गया।

अस्तु, उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा को जो सकल्पना अपनायी गयी उसमें और शिक्षा के प्रसार के ढग में भी, उत्तर प्रदेश ने अन्य प्रदेशों से भिन्न मार्ग अपनाया।

यद्यपि गांधीजी ने अपने पहले ही व्याख्यान में यह साफ कह दिया था कि बेसिक शिक्षा उच्च स्तर की भी शिक्षा है, केवल प्रारम्भिक स्तर की नहीं फिर भी वर्धा कान्फ्रेन्स में यही निश्चित हुआ था कि उसका प्रयोग पहले प्रारम्भिक स्तर पर ही किया जाय और उसी स्तर के लिए जाकिर हुसैन समिति ने पाठ्यक्रम भी बनाया। परन्तु उसी सम्मेलन में यह भी निश्चित कर दिया गया कि इस प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा (पीछे खेर समिति के सुझावों के अनुसार) सात वर्ष की एक इकाई होगी। इकाई हम उस पाठ्यक्रम को कहते हैं जिसमें स्तर विशेष की पहली कक्षा में जो विषय प्रारम्भ होते हैं वे उस स्तर की अन्तिम कक्षा तक चलते हैं। जाकिर हुसैन-समिति द्वारा पाठ्यक्रम में जो विषय कक्षा १ में प्रारम्भ हुए थे वे अथवा उनके विकसित रूप, अन्तिम कक्षा तक अनिवार्य रूप से चलते थे, और प्रारम्भिक शिक्षा-योजना के रूप में बेसिक शिक्षा जिन प्रदेशों में भी चली, अधिकांश में वह इसी रूप में अपनायी गयी। अर्थात् कक्षा १ से कक्षा ७ या ८ तक वह अखण्ड इकाई रही।

परन्तु उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा की यह इकाई खण्डित कर दी गयी। यहाँ १९३८ ई० से १९५४ ई० तक वह कक्षा १ से कक्षा ५ तक की इकाई के रूप में ही चली। अर्थात् कक्षा १ से कक्षा ५ तक बेसिक पाठ्यक्रम लागू हुआ परन्तु कक्षा ६ से ८ तक गैर बुनियादी पाठ्यक्रम चलता रहा। १९५४ ई० में भी जब भारत सरकार ने प्रदेशों को शिक्षितों की बेकारी दूर करने के लिए आर्थिक सहायता दी और बुनियादी शिक्षा की पुनः व्यवस्था की गयी तथा जूनियर हाई स्कूलों की कक्षा ६, ७ और ८ को बेसिक स्कूल का सीनियर स्तर घोषित कर दिया गया, तब भी पाठ्यक्रम की दृष्टि से कक्षा १ से कक्षा ८ तक के पाठ्यक्रम को एक इकाई बनाने की चेष्टा नहीं की गयी। और आज भी जूनियर स्तर पर जो विषय प्रारम्भ होते हैं वे सीनियर स्तर तक नहीं चलते। जूनियर स्तर पर दो शिल्प हैं, तो सीनियर स्तर पर एक ही शिल्प है, जूनियर स्तर पर कला और सामान्य विज्ञान अनिवार्य विषय हैं, तो सीनियर स्तर पर ये वैकल्पिक विषय हैं। (जहाँ सामान्य विज्ञान पढ़ाने की सुविधा न हो वहाँ कोई स्थानीय शिल्प लिया जा सकता है।

प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा की यह एकता बहुत महत्वपूर्ण वस्तु है। जिन शास्त्रियों ने प्रशासन की सहूलियत की दृष्टि से अथवा दूसरे कारणों से बेसिक शिक्षा को दो स्तरों में बाँटने की बात की थी, उन्होंने भी इस एकता को बनाये रखने की सिफारिश की थी। उदाहरणार्थ, अखिल भारतीय स्तर पर

सार्जेन्ट कमिटी ने खेर समिति के सुझावों को मानकर प्रारम्भिक बेसिक शिक्षा को दो इकाइयों में बाँटने की बात की थी। बेसिक शिक्षा के संगठन और पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए कमिटी लिखती है कि "बेसिक शिक्षा अपनी मौलिक एकता को कायम रखते हुए दो स्तरों में विभाजित होगी—जूनियर (प्राइमरी) स्तर जिसकी अवधि ५ वर्ष की होगी और सीनियर (या मिडिल) स्तर जिसकी अवधि ३ वर्ष की होगी। जिन्हें बेसिक शब्द रखना पसन्द नहीं वे प्राइमरी और मिडिल शब्द रख सकते हैं; परन्तु हर हालत में इन दोनों स्तरों की आवश्यक एकता को कायम रखना होगा और प्राइमरी स्तर के कोर्स का इस प्रकार आयोजन करना होगा कि उसका स्वाभाविक विकास मिडिल स्तर पर हो।" (पोस्टवार एजुकेशनल डेवलपमेण्ट इन इंडिया—केन्द्रीय सलाहकार समिति की रिपोर्ट अंग्रेजी में पृष्ठ ८, ९।)

१९५२ ई० में केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने अपने एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव द्वारा पुनः एकता के इसी तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है। प्रस्ताव में कहा गया है कि "शिक्षा की कोई पद्धति सच्चे अर्थ में तब तक बेसिक शिक्षा-पद्धति नहीं मानी जा सकती जब तक वह जूनियर और सीनियर दोनों ही स्तरों पर समन्वित पाठ्यक्रम नहीं लागू करती और शिल्प-कार्य के शिक्षात्मक और उत्पादक दोनों ही पहलुओं पर पर्याप्त बल नहीं देती।" शिल्पक्रिया के खण्डित हो जाने से शिक्षात्मक और उत्पादक दोनों ही पहलुओं की पूर्ण अवहेलना हो जाती है। इसीलिए पाठ्यक्रम कि एक इकाई रखने की संस्तुति की गयी है।

बेसिक शिक्षा का प्रसार

(क) जूनियर बेसिक स्तर

अस्तु, उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा तीन महीने के रेफ्रेशर कोर्स की अल्प पूँजी लेकर शुरू हुई। स्कूल में पहुँचने पर अध्यापकों को साधन भी अल्प ही मिले। पहले प्रत्येक बेसिक स्कूल को ३३ रु० प्रति वर्ष बेसिक काण्टिजेन्सी (आकस्मिक व्यय) के रूप में दिया जाता था। इसमें उनको कला और शिल्प दोनों के लिए कच्चा माल, रंग, ब्रुश आदि खरीदना पड़ता था। द्वितीय महायुद्ध के बाद यह अनुदान भी रोक दिया गया—लगभग १० वर्ष तक। फिर भी साधनहीन बेसिक स्कूल जैसे-तैसे चलते रहे। द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत बेसिक स्कूलों को साधन और सरंजाम के लिए १०० रु० प्रतिवर्ष अनुदान

दिया जाने लगा है। परन्तु इस अनुदान से २० रु० पुस्तकों के लिए निकाल दिया जाता है। पूरा का पूरा यह धन भी कच्चे माल के ऊपर व्यय नहीं किया जा रहा है। यह स्थिति अत्यन्त शोचनीय है और इस स्थिति में शीघ्र सुधार होने की आवश्यकता है। यह नहीं हुआ तो बेसिक स्कूलों की शिक्षा उत्पादक नहीं होगी। उत्पादकता बेसिक शिक्षा का आधारभूत सिद्धान्त है और इस सिद्धान्त को प्रारम्भिक स्तर से उच्च शिक्षा के स्तर तक, अपनाने के बिना हमारी शिक्षा अनुत्पादक बनी रहेगी और हमारे स्कूल बेकारों की फौज तैयार करने के कार्यालय बने रहेंगे। इस समय कोठारी शिक्षा-आयोग की बड़ी चर्चा है और केन्द्रीय और राज्य सरकारें इसकी सिफारिशों को लागू करने का प्रयास कर रही हैं। इस कमीशन ने भी सिफारिश की है कि भारतीय शिक्षा को उत्पादक बनाने के लिए आवश्यक है कि प्रारम्भिक स्तर से उच्च स्तर तक कार्यानुभव (हाथ का उत्पादक काम) शिक्षा का अभिन्न अंग बना दिया जाय। अतः उत्तर प्रदेश में बेसिक स्कूलों को पर्याप्त साधन देना ही चाहिए।

उत्तर प्रदेश में १९७०-७१ में प्रारम्भिक बेसिक स्कूलों की संख्या ६१,९५९ थी जिनमें १०७०१५ लाख बालक-बालिकाएँ पढ़ती थीं। इतने विद्यार्थियों को किसी भी उत्पादक काम के लिए जिन साधनों को देने की आवश्यकता है उसे सरकार पूरा नहीं कर सकती। अतः समुदाय से सहायता लेने की बात गम्भीरता-पूर्वक सोचनी चाहिए, क्यों नहीं छात्र गाँवों, मुहल्लों के खेतों, कारखानों में काम करें?

(ख) पुनर्व्यवस्था योजना

उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा १९५४ ई० तक कक्षा ५ तक सीमित रही। १९५३ ई० में भारत सरकार ने प्रदेशों को शिक्षितों की बेकारी दूर करने के लिए आर्थिक सहायता दी उत्तर प्रदेश ने इस धन का उपयोग कुछ शिक्षकों को नौकरी देने के स्थान पर बेसिक शिक्षा की पुनर्व्यवस्था कर इसे सीनियर स्तर तक बढ़ा देने का निश्चय किया। फलतः १९५४ ई० में पुनर्व्यवस्था योजना प्रारम्भ हुई और बेसिक शिक्षा को ६, ७, ८ में भी लागू कर दिया गया—ऐसा नहीं कि पहले ६ फिर ७ और फिर ८ में, बल्कि एक साथ। चूँकि कृषि इस प्रदेश का मुख्य उद्योग है और यहाँ की ८० प्रतिशत जनता इसी कार्य में लगी रहती है, अतः प्रत्येक सीनियर बेसिक स्कूल (कक्षा ६, ७, और ८) के साथ लगभग १० एकड़ भूमि संलग्न करने की योजना बनायी गयी जिससे इन

स्कूलों में कृषि और बागवानी को मुख्य उद्योग बनाया जा सके। यह भी निश्चय किया गया कि जिन स्कूलों में खेती के लिए भूमि उपलब्ध नहीं है वहाँ कताई-बुनाई, बढ़ईगीरी आदि कोई एक शिल्प पढ़ाया जाय।

इस समय तक बेसिक शिक्षा की यह सकल्पना स्पष्ट हो गयी थी कि बेसिक शिक्षा जीवन के माध्यम द्वारा जीवन की शिक्षा है और यह माना जाने लगा था कि वह कोरी शिक्षा पद्धति न होकर जीवन-यापन का एक ढग है। अत बेसिक शिक्षा के सामुदायिक पहलू पर अधिक जोर दिया जाने लगा था। इसीलिए पुनर्व्यवस्था योजना के अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि सामुदायिक सहयोग और प्रसारकार्य को सीनियर बेसिक विद्यालय के पाठ्यक्रम के मुख्य अग के रूप में स्वीकार किया जाय और इन विद्यालयों को सामुदायिक विकास केन्द्रों में विकसित किया जाय। अत सीनियर बेसिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में कृषि-कार्य और लिखाई-पढ़ाई के अलावा कृषि प्रसार, सामुदायिक स्वास्थ्य और सफाई, सामुदायिक निर्माण कार्य, रचनात्मक कार्यक्रम और स्थानीय कुटीर उद्योगों के विकास का काम भी सम्मिलित कर लिया गया। सोचा यह गया कि इस तरह इन स्कूलों के कार्यक्रम का बच्चों के जीवन से अधिक निकट का सम्बन्ध हो जायगा और वे सामुदायिक जीवन के अधिक नजदीक आ जायगा।

इस प्रकार जुलाई १९५४ ई० से उत्तर प्रदेश में बेसिक शिक्षा जूनियर हाई-स्कूल के स्तर तक बढ़ा दी गयी है। इन जूनियर हाई स्कूलों अथवा सीनियर बेसिक स्कूलों में कृषि मुख्य उद्योग है, परन्तु जहाँ कृषि की सुविधा नहीं है वहाँ कोई दूसरा उद्योग मुख्य शिल्प रखा गया है।

"उत्तर प्रदेश में १९६९-७० तक सीनियर बेसिक विद्यालयों की संख्या ८०-८९ थी और सीनियर बेसिक स्कूलों के लिए अब तक २१,००० एकड से अधिक भूमि प्राप्त हो चुकी थी, जो सन्तोष की बात है। १९६९-७० तक इसमें से पन्द्रह हजार एकड भूमि कृषि के अन्तगत आ चुकी थी। इस भूमि में ८००० एकड भूमि में सिंचाई के साधन भी दिये जा चुके हैं। १९६५-६६ में इन पुनर्व्यवस्थित सीनियर बेसिक विद्यालयों से १७,२३,११९ रु० की आय हुई थी जो १९६९-७० में बढकर ३१,००,००० रुपये हो गयी थी। इस समय तक प्रदेश के ८०८९ सीनियर बेसिक स्कूलों में लगभग २,१०० ऐसे सीनियर बेसिक स्कूल हैं जिनमें कृषि और लगभग ६६२ ऐसे स्कूल हैं जिनमें कताई बुनाई, काष्ठ-कला, धातुकला आदि दूसरे शिल्प मुख्य उद्योग के रूप में चलन हैं। इन सीनियर बेसिक स्कूलों में कार्य करनेवालों में काफी सख्या में कृषि के ग्रेजुएट और अण्डर-ग्रेजुएट हैं। इन्हें

बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोग तथा प्रसार-कार्य में रेकेशर और दिया गया है और इसके लिए लगातार सेवाकालीन प्रशिक्षण की योजना है जिसके लिए प्रदेश भर में कई केंद्र हैं। सबसे बड़ा केंद्र प्रतापगढ़ में है। इन अध्यापकों को प्रसार-अध्यापक कहा जाता है।

पुनर्व्यवस्थित विद्यालय अपने प्रसार-कार्य के द्वारा स्थानीय सामुदायिक विकास के कार्यों में सहयोग देते हैं। इस समय तक इन विद्यालयों द्वारा २,२०० युवक-मंगल दलों का और ५०० सामुदायिक केंद्रों का सचालन हो रहा है। अपने इस कार्यक्रम के कारण ये स्कूल अपने पास-पड़ोस के सामुदायिक जीवन के निकट सम्पर्क में आ सके हैं। (शिक्षा की प्रगति शिक्षा निदेशालय उत्तर प्रदेश।)

परन्तु पुनर्व्यवस्था योजना प्रारम्भ होने के बावजूद उत्तर प्रदेश के जूनियर बेसिक स्कूलों की हालत में बहुत सुधार नहीं हुआ। स्वय पुनर्व्यवस्थायोजना से भी वे फल प्राप्त नहीं हुए, जिनकी आशा की गयी थी। पुनर्व्यवस्थित सीनियर-बेसिक स्कूल सच्चे अर्थ में समुदाय के केन्द्र नहीं बन सके। अत योजना का मूल्यांकन करने के लिए श्री कैलाश प्रकाश, तत्कालीन उप शिक्षामन्त्री की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गयी जिसने योजना में सुधार के लिए कुछ उपाय सुझाये परन्तु इन पर अमल नहीं हुआ और प्रदेश के सीनियर बेसिक पूर्ववत चलते रहे। अभी हाल में इन पुनर्व्यवस्थित सीनियर बेसिक विद्यालयों के लिए एक मूल्यांकन समिति फिर नियुक्त हुई है जिसकी सिफारिशें अभी मालूम नहीं हैं।

सन् १९६२ में उत्तर प्रदेश में नयी सरकार बनी और श्री युगल किशोरजी शिक्षामन्त्री नियुक्त किये गये। उन्होंने बेसिक शिक्षा में दिलचस्पी ली और उत्तर प्रदेश की बेसिक शिक्षा में सुधार सुझाने के लिए प्रदेश में राज्यस्तरीय बेसिक शिक्षा परिषद (बेसिक एजुकेशन बोर्ड) की स्थापना की। स्वय शिक्षामन्त्री इस बोर्ड के अध्यक्ष थे और इसमें प्रदेश लगभग सभी गणमान्य शिक्षा-शास्त्री और बेसिक शिक्षा के विशेषज्ञ सम्मिलित थे। इस परिषद ने जो सबसे उपयोगी काम किया वह था एच० टी० सी० और जे० टी० सी० शिक्षक-प्रशिक्षण-कोर्स को मिलाकर एक बी० टी० सी० प्रशिक्षण कोर्स की स्थापना। इस समय तक प्रारम्भिक स्तर के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए दो कोर्स चल रहे थे—एक जूनियर ट्रेनिंग कोर्स और दूसरा हिन्दुस्तानी टीचर्स कोर्स। परिषद के सुझाव पर इन दोनों कोर्सों को एक कर दिया गया और बालिकाओं और अनुसूचित जातियों को छोड़ कर इस कोर्स में प्रवेश की न्यूनतम योग्यता हाई स्कूल रखी गयी। कोर्स दो साल

या रखा गया जो बाद में किन्हीं कारणों से एक साल का कर दिया गया है, यद्यपि यह शिक्षा के हित में होगा कि इसे पुन दो वर्ष का कर दिया जाय।

इस परिषद ने दूसरा काम किया था एकीकृत बेसिक स्कूलों की स्थापना का, जिसकी चर्चा आगे की गयी है। परिषद ने राज्य की बेसिक शिक्षा में सुधार के विचार से प्रारम्भिक शिक्षा के उप शिक्षा निदेशक (प्रारम्भिक शिक्षा) की अध्यक्षता में एक मूल्यांकन समिति भी नियुक्त की थी जिसने राज्य के नमूने के स्कूलों का दौरा करके एक उपयोगी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी परन्तु इसका कार्यान्वयन नहीं हुआ है। आचार्य युगल किशोरजी के मंत्रित्वकाल के बाद बेसिक शिक्षा परिषद की पुन बैठक नहीं हुई है यद्यपि इस परिषद को कानूनन खतम नहीं किया गया है।

(ग) पंचवर्षीय योजनाओं में बेसिक शिक्षा

उत्तर प्रदेश में पंचवर्षीय योजनाओं में बेसिक शिक्षा के प्रसार के लिए जो काम किये गये उनमें निम्नांकित प्रमुख हैं

(१) प्रदेश के प्रत्येक जिले म नार्मल स्कूल खोले गये। तृतीय योजना के अन्त तक प्रदेश में कुल मिलाकर १८२ नार्मल स्कूल थे। इनमें बालकों के १४४ और बालिकाओं के ३८ थ। इनके अलावा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों एवं प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ बी० टी० सी० की इकाइयाँ भी संलग्न थी जिनकी कुल संख्या ५१ थी। इनके अतिरिक्त प्रदेश में ८१ जूनियर ट्रेनिंग कालेज थे। पहले एच० टी० सी० और ज० टी० सी० के दो कोर्स चलते थे। अब इनको मिलाकर बी० टी० सी० कोर्स (बेसिक टनिंग सर्टिफिकेट) कर दिया गया है। १९६९-७० में उत्तर प्रदेश में कुल २६० बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय थे जिनमें पुरुषों के लिए १९१ और महिलाओं के लिए ६९ दीक्षा विद्यालय थ। इनमें उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के साथ संलग्न २१ इकाइयाँ भी सम्मिलित थी।
(शिक्षा की प्रगति शिक्षा निदेशालय पृष्ठ ४)

(२) प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तगत चुने हुए क्षेत्रों में गहनतम शिक्षा-विकास योजना के नम्बर १ के अनुसार प्रदेश को केन्द्र से आर्थिक सहायता मिली, जिसके फलस्वरूप शिक्षा पुनव्यवस्था योजना के स्कूल खोलने के अतिरिक्त इलाहाबाद (अब झांसी) मुजफ्फरनगर और लखनऊ में तीन जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेज तथा तीन जनता कालेज खोले गये। इन कालेजों के साथ डिमान्स्ट्रेशन बेसिक स्कूल भी स्थापित हुए थे। इन जिलों में सामुदायिक केन्द्र और पुस्तकालय सेवा केन्द्र भी स्थापित हुए थे। जनता कालेज तो बन्द हो गये हैं और

उन्हें बेसिक नार्मल स्कूलों में परिवर्तित कर दिया गया है परन्तु जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेज चल रहे हैं। अल्मोड़ा में एक और जूनियर बेसिक कालेज खुल गया है।

(३) पुनर्व्यवस्थित सीनियर बेसिक स्कूलों में जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए स्थानीय समितियाँ बनायी गयी जिनमें ग्रामसभा के प्रधान, उप प्रधान, गाँव के मुखिया, तीन मील तक की दूरी में स्थित ग्रामसभाओं के प्रधान, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का एक सदस्य, तथा ग्राम-सरपंच रखे गये।

(४) १९५५ ई० में नार्मल स्कूल को अपने निकट के पाँच बेसिक स्कूल सुधार के लिए दिये गये।

(५) राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज और राजकीय सेण्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट को बेसिक शिक्षा पर शोध करने की सुविधा दी गयी और इस कार्य के लिए इन संस्थाओं में रिसर्च प्रोफेसर नियुक्त किये गये।

(६) प्रत्येक बेसिक स्कूल को उद्योग की सामग्री क्रय करने के लिए १०० रु० का वार्षिक अनुदान दिया गया। इसमें से २० रु० पुस्तकालय के लिए सुरक्षित रहता है।

(७) सीनियर बेसिक स्कूलों के लगभग एक हजार स्कूलों में कृषि के अतिरिक्त अन्य शिल्पों को प्रारम्भ करने की योजना बनायी गयी। इस समय तक लगभग ६५० बेसिक स्कूलों में कृषि के अतिरिक्त दूसरे शिल्प-शिक्षण का प्रबन्ध हो चुका है।

(८) सीनियर और जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेजों में सेवारत प्रशिक्षण-कार्य आरम्भ किया गया जो सन् १९७०-७१ तक चला। सेवारत प्रशिक्षण के लिए नार्मल स्कूल में अध्यापक और निरीक्षक वर्ग के वे सहायक उप-निरीक्षक वर्ग भी जाते थे जो बेसिक शिक्षा में प्रशिक्षित नहीं थे। बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों से अवगत कराने के लिए नार्मल स्कूल के प्रधानाचार्य भी सेवारत प्रशिक्षण के लिए बुलाये जाते थे। प्रदेश में इस प्रकार के १२ सेवाकालीन प्रशिक्षण-केन्द्र थे— २ अध्यापिकाओं और १० अध्यापकों के लिए, जिन्हें अब बन्द कर दिया गया है।

(९) बेसिक शिक्षा में सुधार करने के विचार से प्रदेश के लगभग २५० स्कूलों में 'एकीकृत बेसिक स्कूल' योजना चलायी गयी है जिसके अनुसार एक ही प्रांगण में स्थित कक्षा १ से ८ तक के जूनियर और सीनियर बेसिक स्कूल एक ही प्रधानाध्यापक की देख-रेख में एक इकाई की तरह चलते हैं। १९६९-७० तक इन एकीकृत विद्यालयों की संख्या २८६ हो गयी थी।

(१०) १९६५ में वाराणसी में केवल एक शोधसलाहकार तो छोड़ दिया गया परन्तु उसके सहायक और दूसरे स्टाफ हटा लिये गये। इस समय प्रारम्भिक शिक्षा की समस्याओं, पर शोधकार्य इलाहाबाद-स्थित राज्य शिक्षा संस्थान करता है। यहीं निरीक्षकों और निरीक्षिकाओं का सेवाकालीन प्रशिक्षण भी होता है।

श्री वंशीधर श्रीवास्तव, भूतपूर्व प्राचार्य, राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी।

ब्रह्मदत्त दीक्षित

उत्तर प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

"वर्तमान शिक्षा-पद्धति का आरम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से मानना चाहिए। लार्ड मैकाले द्वारा प्रस्तुत शिक्षा-नीति सम्बन्धी विवरण-पत्र के परिणाम स्वरूप सरकार ने भारत की भावी शिक्षा-नीति की घोषणा करते हुए कहा—" ब्रिटिश सरकार का मुख्य ध्येय यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान की उन्नति होना चाहिए और शिक्षा के लिए निर्धारित सम्पूर्ण धनराशि का सर्वश्रेष्ठ सदुपयोग उसे केवल अंग्रेजी शिक्षा पर करना होगा।" देश में, इस विज्ञप्ति के अनुसार, यूरोपीय साहित्य एवं विज्ञान की शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यालयों की स्थापना होने लगी।"

"फलतः उक्त उद्देश्य से स्थापित विद्यालयों में प्रदान की जानेवाली शिक्षा राजकीय सेवा-प्रवेश के लिए 'पासपोर्ट' बन गयी। सरकारी नौकरियों में इस

प्रकार के स्कूलों में शिक्षित नवयुवकों को प्राथमिकता दी जाने लगी। इस शिक्षा का एकमात्र सीमित उद्देश्य लोगों को सरकारी नौकरियों के लिए तैयार करना था, न कि जीवन के लिए।"

१८५७ ई० में हिंदुस्तान में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। उसका माध्यमिक शिक्षा पर व्यापक प्रभाव पड़ा, क्योंकि माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम, नीति तथा विस्तार विश्वविद्यालयों द्वारा निर्धारित होने लगा। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालयों के लिए विद्यार्थी तैयार करना ही गया। यह शिक्षा स्वतंत्र रूप से कोई 'इकाई' नहीं रह गयी जो जीवन के क्षेत्र के लिए विद्यार्थी तैयार करती। वह तो केवल विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने की एक सीढ़ी थी।

"१८५४ ई० से १८८२ तक माध्यमिक शिक्षा में अनेक दोष आ गये। शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा की पूर्णतः उपेक्षा की गयी। पाठ्यक्रम में पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक ध्यान दिया गया। औद्योगिक शिक्षा का सर्वथा अभाव रहा। शिक्षा वास्तविक जीवन से असम्बद्ध हो गयी।"

"१८८२ ई० में ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शिक्षा की जाँच पड़ताल करने के लिए हण्टर कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन ने तत्कालीन माध्यमिक शिक्षा-संस्थाओं की स्थिति का सांगोपांग सर्वेक्षण किया। उसने शिक्षा-नीति के सम्बन्ध में कतिपय महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। उक्त कमीशन ने कहा कि माध्यमिक शिक्षा में दो प्रकार के पाठ्यक्रम रखे जायें। प्रथम साधारणतः साहित्यिक पाठ्यक्रम हो और इसका उद्देश्य विश्वविद्यालयों में प्रवेश हेतु छात्रों को तैयार करना हो, दूसरा व्यावहारिक तथा औद्योगिक पाठ्यक्रम हो जिसमें व्यावसायिक एवं साहित्येतर विषयों की शिक्षा दी जाय। दुर्भाग्यवश कमीशन की इन संस्तुतियों की उपेक्षा की गयी और शिक्षा की दोषपूर्ण पद्धति में किसी प्रकार का सुधार नहीं हुआ।"

"१८८२ से १९२२ ई० तक माध्यमिक शिक्षा में पर्याप्त मात्रात्मक प्रगति हुई किंतु यह अनुभव किया गया कि माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालयों के पूर्ण प्रभुत्व से दब रही है। अतएव उसे विश्वविद्यालयों के नियंत्रण से पूर्णतः मुक्त कर स्वतंत्र रूप से संचालित करना चाहिए। इस चेतना के फलस्वरूप ही १९२२ ई० में माध्यमिक शिक्षा परिषद, उ० प्र० की स्थापना हुई।"

"१९३४ ई० में प्रदेश में व्यापक बेकारी की समस्या की जाँच पड़ताल करने के लिए 'सप्रू समिति' की नियुक्ति की गयी। इस समिति ने बेकारी के

कारणों का विश्लेषण करते हुए निर्णय दिया कि हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। यह शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों को एक मात्र परीक्षाओं तथा उपाधियों के लिए तैयार करती है, जीवन में किसी व्यवसाय के लिए नहीं। समिति ने सुझाव दिया कि माध्यमिक स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों के शिक्षण की सुविधा प्रदान की जाय, इस स्तर को अधिक व्यावहारिक एवं स्वत:पूर्ण बनाया जाय, तथा व्यावसायिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, टेक्निकल, व्यापारिक तथा औद्योगिक पाठ्यक्रम का समावेश भी माध्यमिक स्तर पर किया जाय।

'सप्रू समिति' की मुख्य संस्तुतियाँ इस प्रकार थी :

१—माध्यमिक स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रम चालू किये जायें।

२—इण्टरमीडिएट कक्षाएँ समाप्त कर दी जायें। माध्यमिक शिक्षा की अवधि एक वर्ष और बढ़ा दी जाय।

३—निम्न माध्यमिक शिक्षा स्तर के पश्चात् किसी व्यावसायिक शिक्षण-तथा प्रशिक्षण का आरम्भ किया जाय।

४—विश्वविद्यालयों का डिग्री कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाय।

"१९३९ ई० में भारत सरकार ने शिक्षा-पुनर्गठन की कतिपय समस्याओं और प्रमुख रूप से व्यावसायिक शिक्षा की समस्याओं के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देने के लिए मिस्टर एबट तथा मिस्टर वुड—दो शिक्षाविशेषज्ञों को इंग्लैण्ड से आमन्त्रित किया। इन्होंने भारतीय शिक्षा का पूर्ण अध्ययन किया तथा मार्च १९३७ ई० में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जो 'वुड एबट रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रतिवेदन में सामान्य शिक्षा तथा व्यावसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा के संगठन के सुझाव दिये गये। इनकी संस्तुतियों के फलस्वरूप एक नये प्रकार का औद्योगिक विद्यालय, जिसे बहुद्योगीय स्कूल कहते हैं, अस्तित्व में आया। अनेक वाणिज्य औद्योगिक तथा कृषि स्कूल भी खोले गये।"

आचार्य नरेन्द्र देव समिति और माध्यमिक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप

आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में नियुक्त प्रथम समिति ने माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में, १९३९ ई० में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए कहा कि माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालय शिक्षा की सहायक मात्र समझी जाती है। यह जीवन के लिए आवश्यक विविध प्रकार का प्रशिक्षण प्रदान नहीं करती और न अनेकानेक छात्रों की विभिन्न रुचियों एवं योग्यताओं के अनुसार उनके लिए जीविका की व्यवस्था ही करती है। समिति ने संस्तुति की कि पाठ्यक्रम स्वयं पर्याप्त होने

चाहिए। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में ऐसी विविधता होनी चाहिए जिससे कि वे बालकों की विभिन्न रुचियों एवं योग्यता के अनुरूप हो।

नरेन्द्रदेव समिति की संस्तुतियों के फलस्वरूप, हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट के पाठ्यक्रम निम्नांकित चार वर्गों में विभाजित कर दिए गये -

१—साहित्यिक

२—वैज्ञानिक

३—रचनात्मक

४—कलात्मक

पाठ्य विषयों को उपर्युक्त चार वर्गों में विभाजित करने का प्रमुख उद्देश्य था—प्रत्येक छात्र को उसकी विभिन्न रुचियों एवं योग्यताओं के अनुकूल पाठ्यक्रम चयन की सुविधा प्रदान करना तथा जो उसके प्रतिकूल पड़े उसे छोड़ देने की सुविधा देना।

रचनात्मक एवं कलात्मक वर्गों में व्यावहारिक क्रियाओं तथा जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से समन्वय पर अधिक बल दिया गया।

१९३९ ई० में जिस समय प्रदेश में पहले कांग्रेस मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ, प्रथम आचार्य नरेन्द्रदेव समिति ने अपनी आख्या (फरवरी मास में) प्रस्तुत की। किन्तु कांग्रेस मंत्रिमंडल के शीघ्र ही टूट जाने से समिति की माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित संस्तुतियाँ तब तक कार्यान्वित न हो सकीं, जब तक कि १९४६ में पुनः कांग्रेस सरकार की स्थापना न हुई।

१९४८ ई० में इस प्रदेश में माध्यमिक शिक्षा का एक संशोधित योजना लागू की गयी, और शिक्षा पुनर्गठन योजना के अनुसार आचार्य नरेन्द्रदेव समिति द्वारा संस्तुत निम्नांकित चार वर्गों के अन्तर्गत उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में, १-साहित्यिक, २-वैज्ञानिक, ३-रचनात्मक तथा ४ कलात्मक वर्गों के शिक्षण का समावेश हुआ।

यह निश्चय किया गया कि ऐसे उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों को जहाँ विविध विषयों तथा वर्गों के शिक्षण के साधन उपलब्ध हों बहुवर्गीय विद्यालयों में परिणत कर दिया जाय। इन बहुवर्गीय संस्थाओं की विशेषता यह है कि इनमें विभिन्न योग्यता, रुचि तथा बुद्धि के विद्यार्थियों की आवश्यकतानुसार विविध विषयों तथा वर्गों की शिक्षा का समावेश होता है।

इस पुनर्गठन योजना के अन्तर्गत ९ से १२ तक की कक्षाएँ एक इकाई में सम्बद्ध हो गयी। किसी भी संस्था को उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की संज्ञा

किया और द्वितीय नरेन्द्रदेव समिति जिस बहुवर्गीय माध्यमिक शिक्षा की संस्तुति की थी वह शिक्षा मान्य की।

आज पूर्व उच्चतर माध्यमिक परीक्षा (हाई स्कूल परीक्षा) के प्रत्येक परीक्षार्थी को ६ विषयो में परीक्षा देनी पड़ती है जिनमें निम्नांकित तीन विषय सभी वर्गों के लिए अनिवार्य हैं :

(१) हिन्दी (२) हिन्दी के अतिरिक्त कोई एक भारतीय भाषा या कोई एक आधुनिक विदेशी भाषा, (३) गणित (केवल बालकों के लिए), गृह विज्ञान (केवल बालिकाओं के लिए)।

इन विषयों के अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है। वैकल्पिक विषयों में निम्नांकित वर्ग हैं जिनमें से केवल एक वर्ग विद्यार्थी को लेना पड़ेगा।

(क) साहित्यिक वर्ग, (ख) वैज्ञानिक वर्ग, (ग) कृषि वर्ग, (घ) वाणिज्य वर्ग, (ड) रचनात्मक या पूर्व प्राविधिक वर्ग, (च) कलात्मक वर्ग तथा (छ) प्राविधिक वर्ग।

उत्तर उच्चतर माध्यमिक परीक्षा (इण्टरमीडिएट परीक्षा) के परीक्षार्थियों को (कृषि वर्ग को छोड़कर) पाँच विषयों की परीक्षा देनी पड़ती है। इसके अतिरिक्त शारीरिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है।

दो विषय, (१) हिन्दी तथा (२) हिन्दी के अतिरिक्त कोई भारतीय भाषा या कोई एक आधुनिक विदेशी भाषा, अनिवार्य है।

वैकल्पिक वर्ग ये हैं :

(क) साहित्यिक वर्ग—इसके अन्तर्गत परीक्षार्थी को निम्नांकित विषयों में से कोई भी तीन विषय लेने पड़ते हैं। कोई भारतीय भाषा या कोई आधुनिक विदेशी भाषा, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, गणित, अर्थशास्त्र, कोई प्राचीन भाषा, मनोविज्ञान या शिक्षा, तर्कशास्त्र, चित्रकला (ड्राइंग) या संगीत, गृह-विज्ञान (बालिकाओं के लिए) सैन्य विज्ञान।

(ख) वैज्ञानिक वर्ग इसके अन्तर्गत परीक्षार्थी को निम्नांकित विषयो में से कोई तीन विषय लेने पड़ते हैं। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान, गणित, सैन्य विज्ञान या चित्रकला (ड्राइंग), गृह विज्ञान (बालिकाओं के लिए) भूगोल, भूगर्भ विज्ञान।

(ग) वाणिज्य वर्ग—इसके अन्तर्गत वाणिज्य दो विषयो के बराबर माना गया है। इसके अतिरिक्त निम्नांकित विषयों में से किसी एक को लेना अनिवार्य है—अर्थशास्त्र, भूगोल या वाणिज्य सम्बन्धी भूगोल, गणित, इतिहास।

(घ) कलात्मक वर्ग—इस वर्ग में परीक्षार्थी को निम्नांकित विषयों में से किन्ही दो विषयों का अध्ययन करना पड़ता है

संगीत (गायन), संगीत (वादन), चित्रकला, मूर्तिकला, रंजनकला, नृत्य, वाणिज्य सम्बन्धी चित्रकला तथा साहित्यिक वर्ग से एक विषय।

(ङ) रचनात्मक वर्ग—निम्नांकित विषयों में से कोई एक विषय दो विषयों के बराबर माना जाता है।

काष्ठकला, पुस्तककला, सिलाई, धातुकला, कताई, बुनाई, चमड़े का काम। तीसरा विषय साहित्यिक वर्ग से लेना होगा।

औद्योगिक रसायन शास्त्र (इण्डस्ट्रियल केमेस्ट्री) तथा कुलाल विज्ञान अलग-अलग तीन विषयों के बराबर हैं।

(च) कृषि वर्ग की परीक्षा प्रत्येक वर्ष के अन्त में दो भागों में होती है।

(छ) प्राविधिक वर्ग।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न रुचि, रुझान, योग्यता के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुसार माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुमुखी पाठ्यक्रमों का समावेश उत्तर प्रदेश ने अपने ढंग से किया।

मुदालियर कमीशन के बहुद्देशीय और उ० प्र० के बहुवर्गीय विद्यालय :

मुदालियर कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद उत्तर प्रदेश में कई प्रतिक्रियाएँ हुई। पहली प्रतिक्रिया तो यह हुई कि उत्तर प्रदेश ने ३ वर्ष के उच्चतर माध्यमिक और ३ वर्ष के डिग्री कोर्स को स्वीकार नहीं किया और ४ वर्ष के माध्यमिक शिक्षा के अपने पाठ्यक्रम को (२ वर्ष का हाई स्कूल और दो वर्ष का इण्टर) जारी रखा। यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि जैसा बाद में कोठारी कमीशन ने स्वीकार किया कि माध्यमिक शिक्षा को अगर व्यवसायपरक और अपने में पूर्ण इकाई बनाना है तो उसमें एक वर्ष कम करके एक वर्ष विश्वविद्यालयों में जोड़ना शिक्षा के हित में नहीं होगा। परन्तु दूसरी प्रक्रिया बड़ी अजीब थी। मुदालियर कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होने के बाद शिक्षा विभाग के कुछ वरिष्ठतम अधिकारियों ने कहा कि मुदालियर कमीशन के बहुद्देशीय विद्यालयों और उत्तर प्रदेश के बहुवर्गीय विद्यालयों में कोई अन्तर नहीं है। यह बात ठीक नहीं है। अतः १९५९ में नैनीताल में बहुद्देशीय विद्यालय के विषय पर उस समय के उप-शिक्षा निदेशक श्री श्रीनिवास शर्मा की अध्यक्षता में एक सेमिनार हुआ था जिसमें प्रदेश के अनेक शिक्षाविदों और उच्च शिक्षा-अधिकारियों ने भाग लिया था।

तथा मान्यता प्राप्ति के हेतु, उसमें उक्त चार कक्षाओं का समावेश अनिवार्य कर दिया गया।

इस नवीन शिक्षा-योजना को चार वर्षों (१९४८ से १९५२) तक कार्यान्वित कर लेने के उपरान्त, उत्तर प्रदेशीय शासन ने मार्च १९५२ में द्वितीय आचार्य नरेन्द्रदेव समिति की स्थापना की। जुलाई १९४८ में परिवर्तित माध्यमिक शिक्षा-योजना की प्रगति के परीक्षण का कार्य इस समिति के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत रखा गया। इस दूसरी समिति की संस्तुतियाँ निम्नांकित हैं :

(क) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के चार वर्षों के पाठ्यक्रम में हिन्दी के साथ संस्कृत का शिक्षण अनिवार्य बना दिया जाय। दोनों में अलग अलग उत्तीर्णाङ्क प्राप्त करना अनिवार्य हो।

(ख) उच्चतर माध्यमिक स्तर की शिक्षा के प्रथम दो वर्षों के पाठ्यक्रम में ६ विषयों तथा अन्तिम २ वर्षों के पाठ्यक्रम में पाँच विषयों की शिक्षा दी जाय।

(ग) इस स्तर पर वैकल्पिक विषयों के चुनाव में शिक्षार्थी की रुचि तथा रुझान पर विशेष ध्यान दिया जाय। राज्य के सभी माध्यमिक विद्यालयों में व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन की सुविधा प्रदान करने की व्यवस्था की जाय।

(घ) मुख्य तथा गौण रूप में विषयों का उपविभाजन समाप्त किया जाय।

(ङ) उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाये जानेवाले रचनात्मक विषय ऐसे हों जो क्रियात्मक रुचि उत्पन्न करें तथा जिनके लिए अधिक उपकरण अथवा व्यय की आवश्यकता न हो।

(च) शिक्षार्थी को सामान्य उच्चतर माध्यमिक प्राविधिक विद्यालय में तथा प्राविधिक से सामान्य उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश करने की पूर्ण सुविधा प्रदान की जाय।

(छ) कृषि तथा वाणिज्य शास्त्र के अतिरिक्त 'ग' वर्ग के पाठ्यक्रम में समाविष्ट शिल्प-कलाएँ अपने शैक्षिक मूल्य के लिए ज्यों की त्यों रखी जायँ।

इसी अवधि में, सितम्बर १९५२ में, भारत के केन्द्रीय शासन ने मुदालियर माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के प्रश्न पर सम्पूर्ण भारत को दृष्टिगत रखकर व्यापक रूप से विचार किया।

आयोग ने माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य, देश की बदली हुई परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित करने की आवश्यकता का अनुभव किया तथा माध्यमिक शिक्षा के नवीन संगठन की रूपरेखा प्रस्तुत की।

उक्त आयोग ने तीन वर्षों का निम्न माध्यमिक स्तर तथा चार वर्षों का उच्चतर माध्यमिक स्तर की संस्तुति प्रस्तुत की। आयोग ने तीन वर्षों के डिग्री कोर्स का समर्थन किया तथा निम्नांकित संस्तुतियाँ की :

(क) विभिन्न रुचि, रुझान तथा योग्यता के शिक्षार्थियों के अनुरूप बहुमुखी पाठ्यक्रम की व्यवस्था के लिए, जहाँ सम्भव हो, बहुद्देशीय (मल्टी परपस) विद्यालयों की स्थापना की जाय।

(ख) ऐसे शिक्षार्थियों के निमित्त, जिन्होंने उक्त पाठ्यक्रमों को सफलतापूर्वक समाप्त कर लिया है, बहुधंधी संस्थाओं (पॉली टेक्निक्स) या शिल्पकला विज्ञान की शिक्षण-संस्थाओं (टेक्नालॉजिकल इन्स्टीट्यूशन्स) में उच्च (विशिष्ट) पाठ्यक्रम की शिक्षा ग्रहण करने की सुविधा प्रदान की जाय।

(ग) सभी राज्यों के देहाती क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों में कृषिशास्त्र के शिक्षण की विशेष व्यवस्था की जाय। ऐसे पाठ्यक्रमों में उद्यान-कला, पशुपालन तथा कुटीर उद्योग का समावेश होना अनिवार्य किया जाय।

(घ) प्राविधिक विद्यालय अलग या बहुद्देशीय विद्यालयों के अंग स्वरूप अधिक संख्या में खोले जायँ।

(ङ) माध्यमिक शिक्षा के उच्च या उच्चतर स्तर पर शिक्षार्थियों के लिए बहुद्देशीय पाठ्यक्रमों में शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

(च) सभी शिक्षार्थियों के लिए, चाहे वे बहुद्देशीय पाठ्यक्रम के किसी भी वर्ग में शिक्षा ग्रहण करें, कतिपय आधारभूत विषय (कोर सब्जेक्ट्स) अनिवार्य कर दिये जायँ। ये विषय (१) भाषा, (२) सामान्य विज्ञान, (३) सामाजिक विषय तथा, (४) शिल्प होंगे।

(छ) शिक्षा के बहुद्देशीय पाठ्यक्रम में निम्नांकित सात वर्गों का समावेश किया जाय।

(१) मानवीय शास्त्र (ह्यूमैनिटीज), (२) विज्ञान, (३) प्राविधिक विषय, (४) वाणिज्य विषय, (५) कृषि विषय, (६) ललित कलाएँ तथा, (७) गृह विज्ञान।

आवश्यकतानुसार अन्य बहुद्देशीय पाठ्यक्रमों का समावेश किया जा सकता है।

(ज) बहुद्देशीय शिक्षा का प्रारम्भ उच्च या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय स्तर के द्वितीय वर्ष में किया जाय।

उत्तर प्रदेश ने मुदालियर कमीशन की इन संस्तुतियों को स्वीकार नहीं

१—भाषा—कोई दो भाषाएँ जिनमें एक आधुनिक भारतीय भाषा, एक विदेशी भाषा और एक प्राचीन भाषा (क्लासिकल) भाषा हो।

२—निम्नांकित में कोई तीन विषय :

(क) एक अतिरिक्त भाषा (ख) इतिहास (ग) भूगोल (घ) अर्थ-शास्त्र (ङ) तर्कशास्त्र (च) मनोविज्ञान (छ) समाजशास्त्र (ज) कला (झ) भौतिक विज्ञान (ट) रसायन विज्ञान (ठ) गणित (ड) जीव विज्ञान (ढ) भूविज्ञान (ण) गृहविज्ञान।

३—कार्य अनुभव और समाज-सेवा

४—शारीरिक शिक्षा

५—कला और शिल्प

६—नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

इस पाठ्यक्रम का अध्ययन किया जाय तो दो बातें स्पष्ट होती हैं। आयोग ने इस स्तर की शिक्षा के लिए कार्य-अनुभव (वर्क एक्सपीरिएन्स) और समाज-सेवा के अतिरिक्त कला अथवा उद्योग की शिक्षा को भी अनिवार्य बनाया अर्थात् उसने उत्पादक काम पर दोहरा जोर दिया है। इसका कारण यह है कि आयोग ने शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य उत्पादकता को माना है और शिक्षा को उत्पादक बनाने के लिए माध्यमिक स्तर की शिक्षा को व्यवसायपरक (वोकेशनलाइज) बनाने का सुझाव दिया है जिससे माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद अधिकांश छात्र उद्योग धन्धों में लगें और केवल योग्य छात्र ही विश्वविद्यालय में प्रवेश लें।

उत्तर प्रदेश के माध्यमिक शिक्षा-परिषद ने इस पाठ्यक्रम पर भी विचार नहीं किया है और इस प्रकार उसने मुदालियर कमीशन के सुझावों और स्वयं अपने सेमिनार की संस्तुतियों की ही अवहेलना नहीं की, बल्कि वह कोठारी कमीशन के सुझावों की भी अवहेलना कर रहा है।

माध्यमिक शिक्षा में सुधार के सुझाव

इतने पर्यवेक्षण के बाद उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा रहे हैं

(१) कम-से-कम इतना तो तत्काल करना ही चाहिए कि इस समय के प्रचलित माध्यमिक शिक्षा-पाठ्यक्रम के साहित्यिक और वैज्ञानिक वर्ग में किसी न किसी उद्योग अथवा हाथ के उत्पादक काम की शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय। शेष वर्गों में किसी न किसी प्रकार से कला-कौशल की शिक्षा मिल ही जाती है।

. (२) जितना शीघ्र हो कोठारी कमीशन के सुझावों को मानकर इस आयोग के सुझाये हुए पाठ्यक्रम के अनुसार उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाय।

कार्यानुभव (वर्क एक्सपीरिएन्स) को माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग मानकर कार्यानुभव के शिक्षण का तत्काल प्रबन्ध किया जाय। कार्यानुभव शिक्षण के लिए काम के लक्ष्य निर्धारित किये जायें। कार्यानुभव के लिए पर्याप्त समय दिया जाय। शिक्षा आयोग ने कार्यानुभव, समाजसेवा, आर्ट, क्राफ्ट और शारीरिक शिक्षा के शिक्षण के लिए प्रतिदिन की कुल अवधि का एक चौथाई भाग का सुझाव दिया है अर्थात् अगर प्रतिदिन आठ कालांश होते हैं तो इन विषयों के शिक्षण के लिए दो कलांश दिये जायें (कोठारी कमीशन ८२४)।

(३) माध्यमिक स्तर की शिक्षा का पूर्ण व्यवसायीकरण किया जाय जिससे अधिकांश छात्र (८५ प्रतिशत या इससे भी अधिक) माध्यमिक स्तर की शिक्षा के बाद व्यवसायों में लगें और लगभग १५ प्रतिशत योग्य और प्रतिभाशाली लड़कों को ही विश्वविद्यालयों में दाखिल करने का प्रबन्ध किया जाय। जब तक यह नहीं होता, ये माध्यमिक संस्थाएँ बेकारों को तैयार करने का कारखाना ही बनी रहेंगी।

५—लखनऊ के रचनात्मक प्रशिक्षण विद्यालय से विज्ञान का प्रशिक्षण हटा दिया जाय और इस महाविद्यालय में विविध प्रकार के उद्योगों और कार्यानुभवों का ही प्रभावी प्रशिक्षण हो। एक बार जब कार्यानुभव का शिक्षण माध्यमिक स्तर पर अनिवार्य हो जायगा तो रचनात्मक महाविद्यालय का काम बढ़ जायगा और उसे इन्हीं विषयों में प्रयोग और शोध तथा प्रशिक्षण के काम से फुर्सत नहीं मिलेगी।

—श्री ब्रह्मदत्त दीक्षित, एम० ए० प्रधानाचार्य, राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय, लखनऊ।

सेमिनार में बहुद्देशीय विद्यालयों की सकल्पना पर विचार करने के लिए एक उप-समिति नियुक्त की गयी थी जिसने स्पष्ट स्वीकार किया कि उत्तर प्रदेश की बहुवर्गीय माध्यमिक शिक्षा और मुदालियर कमीशन द्वारा प्रस्तुत बहुद्देशीय विद्यालयों की सकल्पना में अन्तर है और सबसे प्रधान अन्तर यह है कि जब मुदालियर कमीशन प्रत्येक वर्ग के लिए कुछ मूल विषयो का (कोर विषयो) जिनमें शिल्प (क्राफ्ट) भी एक विषय है अनिवार्य मानता है, तब उत्तर प्रदेश में प्रत्येक वर्ग के विद्यार्थी के लिए शिल्प अथवा 'क्राफ्ट' लेने की कोई अनिवार्यता नहीं है। यह बहुत बड़ा अन्तर है और उस लक्ष्य को ही समाप्त कर देता है जिसके लिए मुदालियर कमीशन को स्थापना हुई थी।

वास्तव में मुदालियर कमीशन की स्थापना प्रमुखत दो लक्ष्यों से हुई थी— एक लक्ष्य यह था कि बेसिक शिक्षा की परम्परा को जिसे देश ने प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय प्रणाली (नेशनल पैटर्न) स्वीकार कर लिया था, माध्यमिक स्तर तक बढ़ाना। आठ वर्ष तक विद्यार्थियो ने किसी उद्योग की जिसकी शिक्षा पायी है, वह अगर किसी रूप में आगे चले तो सामंजस्य और औद्योगिक शिक्षा के बीच में समन्वय स्थापित होगा, जो राष्ट्र के हित में होगा। इसीलिए कमीशन ने उद्योग अथवा हाथ के काम को मूल विषयो में से एक रखा। कमीशन लिखता है—"माध्यमिक विद्यालय का प्रत्येक विद्यार्थी एक उद्योग अनिवार्य रूप से पढ़े, क्योंकि इस स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी के लिए किसी उद्योग में अथवा हाथ के काम में कुछ समय लगाना और उस उद्योग में दक्षता प्राप्त कर लेना जरूरी है जिससे आवश्यकता पड़ने पर उस उद्योग के द्वारा वह अपना भरण-पोषण कर सके।"[1] इस प्रकार कमीशन ने यह चेष्टा की है कि विद्यार्थी आठ वर्ष तक जिस उद्योग का सीख चुके हैं उसके ज्ञान को अधिक परिपक्व बनायें और उनका अर्जित कौशल व्यर्थ न जाय।

नैनीताल के सेमिनार में कमीशन की इस संकल्पना की पुष्टि की गयी परन्तु उस सेमिनार की संस्तुतियों के अनुसार प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा में सुधार नहीं किया गया। केवल इतना किया गया कि माध्यमिक शिक्षापाठ्यक्रम में एक प्राविधिक वर्ग और बढ़ा दिया गया और इस वर्ग को संचालित करनेवाली संस्थाओं को बहुद्देशीय या बहुधन्धी स्कूल कह दिया गया। उ० प्र० ने माध्यमिक शिक्षा के बहुवर्गीय स्कूलों को बहुधन्धी विद्यालय कहा और उनकी नयी परिभाषा

१—मुदालियर कमीशन रिपोर्ट, अंग्रेजी संस्करण, १९५६, पृष्ठ ९५, नयी दिल्ली

दी। "हमारे बहुधन्धी विद्यालय" नाम के शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित पम्पलेट में यह परिभाषा इस प्रकार दी गयी है (पृष्ठ २४) 'बहुधन्धी विद्यालय हमारी परिभाषा के अनुसार वे उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हैं, जिनमें निर्धारित सात वर्गों में से कम से-कम तीन वर्गों को शिक्षा प्रदान की जाती है तथा जिनमें कम-से-कम एक वर्ग की वैज्ञानिक कृषि, रचनात्मक एवं प्राविधिक आदि क्रियात्मक वर्गों में होता है। इन विद्यालयों में किसी शिल्प को मूल विषय में रखने की आवश्यकता को व्यावहारिक न समझकर छोड दिया गया है" इस परिभाषा के अनुसार अगर किसी भी विद्यालय में अन्य वर्गों के अलावा एक क्रियात्मक वर्ग की शिक्षा दी जाती है तो उसे बहुधन्धी या बहुद्देशीय विद्यालय कह देंगे। मुदालियर कमीशन की कल्पना यह नहीं है कि किसी एक स्कूल में अधिक वर्गों की शिक्षा उपलब्ध हो और उसमें से एक क्रियात्मक वर्ग अवश्य हो। उसकी सकल्पना तो प्रत्येक विद्यार्थी के लिए दो उद्देश्य (एक से अधिक उद्देश्य) प्राप्त करने की है। एक है सामान्य शिक्षा और दूसरा है साथ साथ किसी उद्योग की भी शिक्षा का लक्ष्य। यदि आवश्यकता पड़े तो विद्यार्थी रोटी कमाने के लिए कोई काम भी कर सके। उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा से इन दोनो उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती है। अत उत्तर प्रदेश के माध्यमिक विद्यालयों को बहुद्देशीय विद्यालय कहना गलत होगा।

एक उदाहरण ले लीजिए। उत्तर प्रदेश में ८० प्रतिशत से भी अधिक लड़के दो वर्गों में होते हैं या तो साहित्यिक वर्ग में अथवा वैज्ञानिक वर्ग में। अत इन दोनो वर्गों के लड़कों को किसी उद्योग या हाथ के काम को सीखने से छुट्टी मिल जाती है और फलत उत्तर प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा आज भी ८० प्रतिशत से अधिक ऐसे ही विद्यार्थी तैयार कर रही है जिन्हें माध्यमिक स्तर पर भी किसीको उत्पादक उद्योग की शिक्षा नहीं दी जाती। उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा प्रदेश है। यहाँ देश की १७ प्रतिशत जनता रहती है। इस वर्ष यहाँ की माध्यमिक शिक्षा परिषद की हाई स्कूल और इण्टरमीडिएट की परीक्षाओं में लगभग ८ लाख परीक्षार्थी बैठ रहे हैं। इनमें से ८० प्रतिशत से भी अधिक बिना किसी कला-कौशल या उद्योग धन्धे की शिक्षा पाये निकल रहे हैं। यह बड़ी भयकर स्थिति है। इस प्रदेश की माध्यमिक शिक्षा अगर व्यवसायपरक न बनायी गयी तो परिणाम घातक होगा यह निश्चय है।

मुदालियर कमीशन के बाद कोठारी कमीशन ने माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए निम्नलिखित पाठ्यक्रम सुझाया है :

है कि उससे कोई लाभ नहीं होता।[1]

अतः समिति ने नार्मल स्कूलों के पाठ्यक्रम को बदलने का सुझाव दिया कि पाठ्यक्रम में नागरिक शास्त्र, ग्रामीण स्वच्छता, स्वास्थ्य, ग्रामीण अर्थशास्त्र, और ग्रामीण पुनर्रचना को स्थान मिलना चाहिए। इसके अलावा छात्राध्यापकों को उन विषयों का पूरा ज्ञान होना चाहिए जो बेसिक शिक्षा-योजना में शामिल हैं।"[2]

उ० प्र० में भी १९३८-३९ ई० में, नरेन्द्रदेव समिति की संस्तुतियों के अनुसार, प्रारम्भिक स्तर पर बेसिक शिक्षा को लागू किया गया। यह भी निश्चय किया गया कि प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में बुनियादी और गैर बुनियादी दो प्रकार की पाठशालाएँ न चलाकर बेसिक शालाएं ही चलायी जायें जिससे प्रारम्भिक स्तर पर शिक्षा की दो प्रणालियाँ न चलें।

योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए सबसे पहले जरूरत यह महसूस हुई कि प्रारम्भिक स्तर की बेसिक शिक्षा के लिए उपयुक्त शिक्षकों का प्रबन्ध किया जाय और बेसिक शिक्षा के सिद्धान्तों से परिचित निरीक्षकों का भी एक ऐसा वर्ग तैयार किया जाय जो बेसिक स्कूल के अध्यापकों का पथ-प्रदर्शन कर सके। अतः उ० प्र० की सरकार ने अगस्त १९३८ई० में इलाहाबाद में स्नातकों के लिए एक पोस्टग्रेजुएट बेसिक ट्रेनिंग कालेज खोला। इसके लिए प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष की थी। इसी कालेज में जिला परिषदों के १०० प्रशिक्षित अध्यापक बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों और शिल्प कार्य में प्रशिक्षण पाने के लिए तीन महीने के लिए बुलाये गये।

बेसिक ट्रेनिंग कालेज से निकलने के बाद इन स्नातकों और जिला-परिषदों के अध्यापकों को प्रदेश के सात रिफ्रेशर कोर्स ट्रेनिंग केन्द्रों में भेज दिया गया, (मेरठ, बरेली, आगरा, लखनऊ, फैजाबाद, इलाहाबाद और वाराणसी)। इन केन्द्रों पर ३ महीने के रिफ्रेशर कोर्स के लिए जिले के प्रारम्भिक स्कूलों के वे अध्यापक आये जो प्रशिक्षित थे। प्रत्येक केन्द्र पर २५० अध्यापक आते थे। इस तरह साल भर में लगभग ७००० अध्यापकों को रिफ्रेशर कोर्स देने की व्यवस्था की गयी। चूंकि ये अध्यापक भी प्रशिक्षित थे अतः केन्द्रों पर उन्हें बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त बताये जाते थे और समवाय पद्धति से परिचित कराया जाता था। इन्हें कताई, पुस्तक शिल्प और कला सिखाई जाती थी। बागवानी और

१—नरेन्द्रदेव समिति की प्रथम रिपोर्ट—१९३९—पृष्ठ ९५
२— ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ९६

खेती नहीं सिखायी जाती थी क्योंकि उसका प्रशिक्षण बेसिक ट्रेनिंग कालेज में भी नहीं हुआ था।

३ महीने के प्रशिक्षण के बाद ये अध्यापक वापस जाकर अपने स्कूलों को बेसिक स्कूलों में परिवर्तित कर लेते थे और जैसे-जैसे इन केन्द्रों से प्रशिक्षित होकर अध्यापक निकलते गये, वैसे-वैसे प्रदेश के प्रारम्भिक विद्यालय बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित होते गये। ये केन्द्र सन् १९४६ तक चले और इनमें लगभग ३५,००० शिक्षकों को बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोग की शिक्षा दी गयी। १९४६ ई० के बाद इन केन्द्रों को बेसिक नार्मल स्कूलों में परिवर्तित कर दिया गया। उनके पाठ्यक्रमों में बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त का समावेश कर दिया गया और मूल उद्योग तथा तत्सम्बन्धित कला के शिक्षण की व्यवस्था कर दी गयी। कक्षा-शिक्षण के अन्तर्गत भी ६० पाठों में से प्रत्येक छात्राध्यापक के लिए कम-से-कम १० उद्योग से सम्बन्धित पाठ पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया। इस प्रकार प्रारम्भिक प्रशिक्षण से सम्बन्धित संस्थाओं को बेसिक लाइन पर संचालित किया गया और किया जा रहा है।

बेसिक शिक्षा की अखण्डता के लिए यह आवश्यक समझा गया कि उसे माध्यमिक स्तर तक ले जाया जाय। मुदालियर कमीशन ने, जिसे भारत सरकार ने देश की माध्यमिक शिक्षा की जाँच के लिए नियुक्त किया था, बुनियादी शिक्षा की परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए अर्थात् सामान्य और औद्योगिक शिक्षा के समन्वय के लिए बहुद्देशीय विद्यालयों की संस्तुति की है जिससे हमारे माध्यमिक विद्यालय एकांगी संस्थाएँ न होकर ऐसी संस्थाएँ हो जायें जहाँ तरह तरह के शैक्षिक कार्यक्रम उपलब्ध हों तथा जिनसे विभिन्न प्रकार की अभिरुचियों, प्रवृत्तियों और मानसिक क्षमताओं का पोषण हो सके। इसीलिए कमीशन ने इन विद्यालयों के पाठ्यक्रम में कुछ ऐसे मूल विषय रखे हैं, जिनका अध्ययन प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य है। उद्योग अथवा हाथ के काम की शिक्षा इन मूल विषयों में से एक है। कमीशन की संस्तुति है कि विद्यालय का प्रत्येक विद्यार्थी एक उद्योग अनिवार्य रूप से पढ़े, क्योंकि इस स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी के लिए बुद्धि अथवा हाथ के काम में कुछ समय लगाना और उस उद्योग में दक्षता प्राप्त कर लेना जरूरी है जिससे आवश्यकता पड़ने पर उस उद्योग के द्वारा वह अपना भरण पोषण कर सके। चूँकि देश में बुनियादी स्कूलों की संख्या अभी कम थी और अधिकांश विद्यार्थी परम्परागत स्कूलों से माध्यमिक संस्थाओं में आते थे, अतः उनके लिए हाथ के काम को एक मूल विषय रखकर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा को उद्योग-

आचार्य राममूर्ति

उत्तर प्रदेश में शिक्षक-प्रशिक्षण

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१८५४ ई० और १८५९ ई० के बीच वुड डिस्पैच की संस्तुतियों के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश में ३ नार्मल स्कूलों की (मेरठ, आगरा और वाराणसी) स्थापना हुई। १९६२ ई० में चौथा नार्मल स्कूल अल्मोड़ा में खुला। इनमें वर्नाक्यूलर स्कूलों के शिक्षकों का प्रशिक्षण होता था।

लार्ड मैकाले के प्रसिद्ध विवरणपत्र (मैकालेज मिनिट्स) के बाद हिन्दुस्तान की शिक्षा-व्यवस्था इंग्लैण्ड में बनने बिगड़ने लगी। फलतः इन नार्मल स्कूलों का ढाँचा भी इंग्लैण्ड की प्रारम्भिक प्रशिक्षण संस्थाओं की तरह ही बना। उस समय इंग्लैण्ड में विद्वानों का एक वर्ग शिक्षक प्रशिक्षण के मामले में फ्रांसीसी प्रणाली के पक्ष में था, जिसमें शिक्षण विधियों की अपेक्षा विषयों को अधिक महत्त्व दिया जाता था। दूसरा वर्ग जर्मन प्रणाली के पक्ष में था जिसमें शिक्षण-शैली और शिक्षण-

सिद्धान्त पर अधिक बल दिया जाता था। फलतः जब हमारे यहाँ नार्मल स्कूल प्रारम्भ हुए तो फ्रान्सीसी दृष्टिकोण का प्राधान्य रहा। यद्यपि लोगों ने महसूस किया कि शिक्षण के सिद्धान्त और शिक्षण-विधि का ज्ञान भी आवश्यक है। उस समय नार्मल स्कूल के एक छात्राध्यापक को हिन्दी, उर्दू, प्रारम्भिक गणित, इतिहास, भूगोल, ड्राइंग, शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोगात्मक-शिक्षण उत्तीर्ण होना पड़ता था।[1]

धीरे धीरे प्रशिक्षित शिक्षक का महत्त्व स्वीकार किया जाने लगा और उनकी माँग बढ़ी। फलस्वरूप मिडिल स्कूलों के साथ पी० टी० सी० (प्राइमरी टीचर्स सर्टिफिकेट) के कोर्स संलग्न हुए। इन कक्षाओं में आठ-दस छात्राध्यापक होते थे जो वर्नाक्यूलर मिडिल पास होते थे। कोर्स की अवधि १ वर्ष की थी। परीक्षोत्तीर्ण होने के बाद ये लोअर प्राइमरी कक्षाओं को पढ़ाने के अधिकारी होते थे।[2] साथ ही साथ नार्मल स्कूलों में वी०टी०सी० (वर्नाक्यूलर टीचर्स सर्टिफिकेट) कोर्स था जो दो वर्ष का था जिस कोर्स के बाद छात्राध्यापक अपर प्राइमरी और मिडिल स्कूल में पढ़ाते थे। इस शताब्दी के प्रारम्भ में दोनों प्रकार के स्कूल चल रहे थे। अब नार्मल स्कूलों की संख्या ८ हो गयी थी। १९६२ ई० में कानपुर जिला परिषद ने ट्रेनिंग कक्षाओं के स्थान पर नरवल में सेण्ट्रल स्कूल खोला। प्रथम नरेन्द्रदेव समिति ने जब काम शुरू किया तो प्रारम्भिक कक्षाओं के शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिए यही तीन प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाएँ उत्तर प्रदेश में थी—(१) नार्मल स्कूल ८ (२) सेण्ट्रल स्कूल (ट्रेनिंग) १३ और (३) ट्रेनिंग कक्षाएँ २४। लड़कियों के लिए भी ३ नार्मल स्कूल थे और कुछ ट्रेनिंग कक्षाएँ भी थी।

नरेन्द्रदेव समिति की आस्था थी कि नार्मल स्कूल की शिक्षा यथार्थता से दूर थी और बहुत कुछ औपचारिक थी—समिति लिखती है—"ये प्रशिक्षण विद्यालय शिक्षण-विधियों के अध्यापन से अधिक समय विषयों के शिक्षण में लगाते हैं। अध्यापकों में अपने पेशे के लिए निष्ठा नहीं होती। किसी विषय को पढ़ाने की पद्धतियों का ग्रामीण परिस्थिति में सफलतापूर्वक प्रयोग करना भी उन्हें नहीं आता।...नार्मल स्कूल के एक वर्ष का पी०टी०सी० का कोर्स तो इतना अपर्याप्त

१—डॉ० डी० डी० तिवारी—प्राइमरी एजूकेशन इलाहाबाद उ० प्र० (अंग्रेजी) पृष्ट—२८५.

२—प्रोग्रेस ऑव एजूकेशनल इन इण्डिया १९१७–२२ पैरा १२२।

सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने प्रकाशित की है। इस सेमिनार में विभिन्न प्रदेशों में प्रशिक्षण के प्रकार (टाइप्स ऑव ट्रेनिंग) पर भी विचार किया गया था। उस समय मद्रास, मैसूर, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल और आन्ध्र प्रदेश में दो प्रकार की प्रशिक्षण सस्थाएं थीं—कुछ सस्थाओं में बेसिक स्कूलों के लिए और कुछ सस्थाओं में गैर-बुनियादी स्कूलों के लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण होता था।

अत. सेमिनार ने सस्तुति की कि शिक्षक-प्रशिक्षण में इस दोहरी नीति का अन्त शीघ्र हो जाना चाहिए—जितनी जल्दी हो उतना ही अच्छा है। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना होगा कि १९५६ ई० में शिक्षामंत्रियों के सम्मेलन में यह निश्चित हुआ कि प्रदेशों में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक स्नातक स्तर के नीचे की सभी गैर-बुनियादी प्रशिक्षण सस्थाओं को बेसिक प्रशिक्षण संस्थाओं में परिवर्तित कर दिया जाय। चूंकि १९५८-५९ तक देश भर के ९७३ ट्रेनिंग स्कूलों में ६८२ को ही बेसिक ट्रेनिंग स्कूलों में परिवर्तित किया जा सका था अत: कुछ प्रदेशों के प्रतिनिधियों ने बताया कि यह अब तक सम्भव नहीं हुआ है। इसलिए सेमिनार में निम्नांकित प्रस्ताव पास किया गया था :

'सभी प्रशिक्षण सस्थाओं को बुनियादी प्रशिक्षण सस्थाओं के रूप में परिवर्तित करने के लिए अत्यन्त शीघ्र कदम उठाना चाहिए और तीसरी योजना के अन्त तक इसे निश्चित रूप से कार्यान्वित कर लेना चाहिए।'[1]

इसी राष्ट्रीय सेमिनार में गैर-बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं को बुनियादी प्रशिक्षण सस्थाओं में कैसे परिवर्तित किया जाय, इस सम्बन्ध में भी विचार-विमर्श हुआ और तय पाया गया कि "जो पाठ्यक्रम तैयार किया जाय उसमें गैर-बुनियादी और बुनियादी प्रशिक्षण के सर्वोत्तम तत्वों को शामिल किया जाय। पाठ्यक्रम का क्षेत्र क्या हो—इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कहा गया कि शिक्षा सिद्धान्त, शिक्षा मनोविज्ञान और विभिन्न विषयों की शिक्षाविधियों एव पाठशाला-प्रबन्ध के अतिरिक्त कला और शिल्प की ट्रेनिंग भी अनिवार्य रूप से दी जाय एवं इसके अन्तर्गत एक मुख्य शिल्प, दूसरा गौण शिल्प, तीसरा आर्ट (कला), सगीत और नाटक भी रखा जाय।"

क्रियात्मक कार्य में सामुदायिक सर्वेक्षण और समाज-सेवा को भी रखा जाय। पूरा पाठ्यक्रम बनाने के लिए शिक्षा मंत्रालय को एक उपसमिति नियुक्त करने

१—एजूकेशन ऑव प्राइमरी टीचर्स इन इण्डिया (प्रथम राष्ट्रीय सेमिनार की रिपोर्ट-पृष्ठ ३३-३४)

परक बनाने की चेष्टा की है। परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश में भी कुछ बहुद्देशीय विद्यालय खोले गये और वर्गों में भी कृषि, वाणिज्य, कलात्मक वर्ग खुले। ये वर्ग भी उद्योगपरक हैं। इन वर्गों के लिए शिक्षक तैयार करने की दृष्टि से ही उत्तर प्रदेश ने रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय खोला जो आज भी चल रहा है।

१९५४ ई० में उ० प्र० में शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना प्रारम्भ हुई और बेसिक शिक्षा को प्रारम्भिक शिक्षा के सीनियर स्तर तक (कक्षा ६, ७, ८) बढ़ा दिया गया। शिक्षा पुनर्व्यवस्था की योजना के प्रारम्भ होने पर नार्मल स्कूलों के पाठ्यक्रम में खेती-बागवानी का उद्योग भी जोड़ दिया गया। इसी वर्ष केन्द्रीय सरकार की शिक्षा-योजना न० १ के अन्तर्गत प्रदेश में ३ जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेज (इलाहाबाद, लखनऊ और मुजफ्फरनगर) खोले गये और इन कालेजों के लिए नया पाठ्यक्रम बनाने के अतिरिक्त बेसिक ट्रेनिंग कालेज और रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय के पुराने पाठ्यक्रमों में भी परिवर्तन किया गया। (यही पाठ्यक्रम अभी भी चल रहा है)

सन् १९६२ में उत्तर प्रदेश में बेसिक एजूकेशन बोर्ड की स्थापना हुई और उसने बेसिक स्कूलों और बेसिक स्कूलों से सम्बन्धित प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रम में सुधार के लिए प्रस्ताव किया और इस काम के लिए एक टेकनिकल आस्पेक्ट्स कमिटी एवं एक स्टडी टीम नियुक्त की। इस टीम ने सभी स्तर के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में संशोधन किया। एच० टी० सी० और जे० टी० सी० को मिलाकर बी० टी० सी० का एक पाठ्यक्रम बनाया गया जिसकी अवधि दो वर्ष की थी। परन्तु पीछे उसे १ वर्ष का कर दिया गया। यह पाठ्यक्रम आज भी चल रहा है। सी० टी० बेसिक (जे० बी० टी० सी०) बेसिक एल० टी० सी० और रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय के पाठ्यक्रमों में भी सुधार हुए, परन्तु किन्हीं कारणों से इनका कार्यान्वियन नहीं हुआ और इन संस्थाओं में १९५४ के ही पाठ्यक्रम चल रहे हैं। उसी समय यह भी निश्चय हुआ था कि इलाहाबाद के एल० टी० और उससे सम्बन्धित ट्रेनिंग संस्थाओं में भी शिल्प को पढ़ाने की व्यवस्था की जाय, क्योंकि व्यवहार में इन संस्थाओं से उत्तीर्ण स्नातक भी नार्मल स्कूलों और एस० डी० आई० के पदों के लिए चुने जाते हैं। इस सम्बन्ध में राजकीय सेण्ट्रल पेडागाजिकल संस्थान में २-३ बैठकें भी हुई थीं। पाठ्यक्रम में सुधार भी हुआ था, परन्तु यह पाठ्यक्रम भी कार्यान्वित नहीं हुआ।

१—रिपोर्ट ऑव दी सेकेण्डरी एजूकेशन कमीशन (मु० क० रि०) नयी दिल्ली, शिक्षामंत्रालय, सन् ५६—पृष्ठ ९९

१९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब बेसिक शिक्षा को प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय शिक्षण पद्धति को स्वीकार कर लिया गया तो शिक्षक-प्रशिक्षण के रूप में भी परिवर्तन करना आवश्यक हो गया।

बेसिक शिक्षा के प्रमुखत दो सिद्धान्त हैं—एक है शिक्षा का माध्यम पुस्तकें नहीं, बालक की सोद्देश्य सृजनात्मक क्रियाएँ हैं, जिनका सम्बन्ध बालक के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण से है। दूसरा है बेसिक शिक्षा की सामुदायिकता। बेसिक शिक्षा का लक्ष्य भी माध्यमिक शिक्षा के विद्यार्थी तैयार करने के स्थान पर जीवन के लिए उपयोगी नागरिक तैयार करना है। ये दो बेसिक शिक्षा की क्रान्तिकारी उपलब्धियाँ हैं। अत यदि इनका क्रियान्वयन ठीक ढग से होता है तो शिक्षक प्रशिक्षण की प्रक्रिया में तदनुरूप क्रान्तिकारी परिवर्तन करना होगा। इसीलिए भारत सरकार ने बेसिक शिक्षा के प्रसार के लिए जो गोष्ठियाँ और सम्मेलन किये उनमें निम्नांकित निर्णय लिये गये

१—बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त और अभ्यास को प्रशिक्षण-सस्थाओं के पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया जाय और प्रत्येक छात्राध्यापक को किसी शिल्प में इतना प्रशिक्षण दिया जाय कि उसे उस शिल्प में वाछित दक्षता प्राप्त हो जाय। इस काम के लिए प्रशिक्षण सस्थाओं को आवश्यक सुविधाएँ और साधन दिये जायँ।

२—प्रशिक्षण सस्थाओं के अध्यापकों को बेसिक शिक्षा में विशेष प्रकार से तैयार किया जाय।

३—छात्राध्यापक सामुदायिक जीवन व्यतीत कर सकें, इस दृष्टि से उन्हें प्रशिक्षण सस्थाओं के प्रागण में सहजीवन व्यतीत करने की सुविधा मिले। अत प्रशिक्षण सस्थाएँ आवासिक सस्थाएँ बनें और उनमें छात्रावास का प्रबन्ध अनिवार्य हो।

४—छात्राध्यापकों को पास पड़ोस के गाँवों, मुहल्लों के सामुदायिक जीवन में भाग लेने का अवसर प्रदान किया जाय। अर्थात् शिल्प की भाँति सामुदायिक कार्य को प्रशिक्षण का अभिन्न अग बना दिया जाय।

३ अक्तूबर से १० अक्तूबर १९६० में प्राथमिक अध्यापकों की शिक्षा पर पहला राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित हुआ था। इस सेमिनार की रिपोर्ट भारत

१—एजूकेशन ऑव प्राइमरी टीचर्स इन इण्डिया—जे० पी० नायक—अंग्रेजी पृष्ठ ३२ ३३

बेसिक शिक्षा तो उत्पादन मूलक (प्रोडक्शन ओरियेन्टेड) शिक्षा का दूसरा नाम है। आज भारत को अधिक उत्पादन की आवश्यकता है। हमें अपने विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक शिक्षा देने के स्थान पर वस्तुओं के उत्पादक और सृजन की शिक्षा देनी चाहिए।" यही कारण है कि भारत सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाओं में परिवर्तित करने की सलाह दी।

मई १९५४ ई० में नयी दिल्ली में पोस्टग्रेजुएट बेसिक ट्रेनिंग कालेज के प्रधानाचार्यों की एक बैठक हुई थी। उसी वर्ष अगस्त में बेसिक और स्पेशल एजूकेशन समिति की भी एक बैठक हुई थी। बैठक में जो प्रस्ताव पास हुए उनका कार्यान्वयन उत्तर प्रदेश में हो रहा है। इस सम्बन्ध में उस समय के शिक्षा निदेशक सी०एन० चक ने तत्कालीन शिक्षा सचिव श्री बी०पी० बागची को एक अर्द्धशासकीय पत्र अंग्रेजी में लिखा था (पत्र संख्या डी० ओ० संख्या पी० एल०।२५४० XLiv ५२दिनांक ८ सितम्बर १९५५)।

इस अर्द्धशासकीय पत्र में स्वीकार किया गया है कि उपर्युक्त दोनों समितियों के सुझावों के अनुसार क्राफ्ट (उद्योग) के प्रशिक्षण के लिए इस प्रदेश के बेसिक ट्रेनिंग कालेज और जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेजों में तीन घण्टा नित्य दिया जा रहा है और कमिटी ने काम का जो स्टैण्डर्ड सुझाया है उतना स्टैण्डर्ड भी हमारी संस्थाओं में प्राप्त किया जाता है।

पत्र के पैरा (सी) में यह स्वीकार किया गया है कि चूँकि प्रदेश के सभी प्रारम्भिक स्कूल बेसिक लाइन पर संचालित हो रहे हैं और जूनियर हाई स्कूल स्तर पर लगभग २५०० जूनियर हाई स्कूलों में कृषि और लगभग १०० स्कूलों में दूसरे क्राफ्ट (उद्योग) पढ़ाये जा रहे हैं। अतः प्रशिक्षण संस्थाओं में तदनुकूल परिवर्तन प्रारम्भ हो गया है। तदनुसार :

"(क) प्रशिक्षण के प्रत्येक स्तर पर एच० टी० सी०, जे० टी० सी० (अब दोनों मिलाकर बी० टी० सी०) जे० बी० टी० सी० की और एल० टी० सी० बेसिक और रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय में सामुदायिक कार्य प्रशिक्षण का अंग है और गाँवों में एक एक सप्ताह में तीन शिविर किये जाते हैं जिनमें प्रत्येक छात्राध्यापक की उपस्थिति अनिवार्य है।

(ख) उसी तरह शिल्प कार्य भी प्रशिक्षण के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग है। इसमें परीक्षा भी होती है। रचनात्मक प्रशिक्षण विद्यालय, लखनऊ में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में शिल्प-शिक्षण के लिए अध्यापकों का प्रशिक्षण होता है।

इसी अर्द्धशासकीय पत्र के पैरा (ई) में यह भी स्वीकार किया गया है कि यद्यपि हम शिक्षा के स्वावलम्बन के सिद्धान्त में विश्वास नहीं रखते, परन्तु हम मानते हैं कि शिल्प का काम दक्षतापूर्वक किया जाय और काम सोद्देश्य हो। अत. वह निश्चत रूप से उत्पादक होगा। इसीलिए प्रारम्भिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में १२ पीरियड प्रति सप्ताह शिल्प के लिए रखा गया है और यह पर्याप्त है। परन्तु अधिकांश अध्यापकों को क्राफ्ट (उद्योग) में अधिक प्रभावी प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इस ओर विभाग का ध्यान है।"

इस प्रशिक्षण नीति का औचित्य

सक्षेप में आज इस प्रदेश को ही नहीं, पूरे को देश को निर्णय करना है कि जो शिक्षा हम बच्चों को दें वह ऐसी हो जिससे उन्हें किसी समाजोपयोगी उत्पादक काम की शिक्षा मिले। उन्हें अपने हाथ से उपयोगी काम करना आये और उनमें अपने पैरो पर खड़ा होने का आत्मविश्वास पैदा हो। इस दृष्टि से निम्नांकित सुझाव दिये जाते है

(१ मूल्यांकन समिति यह संस्तुति करे कि उ० प्र० की प्रशिक्षण संस्थाओं मे, जो उद्योगपरक और सामुदायिक कार्यमूलक पाठ्यक्रम चल रहे हैं उन्हें और भी अधिक पुष्ट किया जाय और निर्दोष बनाया जाय।

(२) पाठ्यक्रम को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए बेसिक प्रशिक्षण संस्थाओं को अधिक सुविधाएँ दी जायें और उनमे अधिक योग्यतावाले अध्यापकों की नियुक्ति की जाय।

(३) वाराणसी राजकीय बेसिक ट्रेनिंग कालेज को, जो प्रदेश के नार्मल स्कूलों के संचालन के लिए अध्यापक और प्रारम्भिक स्तर की बेसिक शिक्षा के निरीक्षण के लिए निरीक्षक वर्ग तैयार करता है, रिसर्च आदि की अधिकाधिक सुविधाएँ दी जायें। कुछ दिन पहले इस कालेज में एक शोध-शाखा (रिसर्च विंग) भी थी। अभी उसके स्टाफ में कटौती कर दी गयी है। उसकी पुन प्रतिस्थापना ही न की जाय, बल्कि उसमें वृद्धि भी की जाय।

(४) यह शिक्षा के हित में होगा कि बेसिक ट्रेनिंग कालेज से उत्तीर्ण स्नातक ही नार्मल स्कूलों में प्राध्यापक हो और वहां प्रारम्भिक शिक्षा के निरीक्षक वर्ग के निरीक्षण के कार्य के लिए लिये जायें। ऐसा इसलिए कि जिन स्कूलों के लिए अध्यापक तैयार करते हैं अथवा जिनका निरीक्षण करते हैं वे बेसिक स्कूल हैं और अगर वे आज अच्छे बेसिक स्कूल नहीं है तो शिक्षा और राष्ट्र के

हित में उन्हें अधिक अच्छे बेसिक स्कूल बनाना चाहिए। बेसिक ट्रेनिंग कालेज की स्थापना ही बेसिक नार्मल स्कूलों के लिए प्रशिक्षित अध्यापक और बेसिक स्कूलों के लिए निरीक्षक तैयार करने के लिए हुई थी। वह इस काम को अधिक सुचारु रूप से करे इसके लिए उसे सब प्रकार के साधन मिलने चाहिए।

(५) एल० टी० आदि प्रशिक्षण संस्थाओं में जहाँ किसी उद्योग की शिक्षा नहीं दी जाती वहाँ भी उद्योग की शिक्षा का प्रावधान होना चाहिए, क्योंकि आज देश की सबसे अधिक जरूरत यही है कि शिक्षा कार्यपरक (वर्क ओरियेण्टेड) हो।

●

वंशीधर श्रीवास्तव

उत्तर प्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा का राष्ट्रीयकरण

उत्तर प्रदेश की सरकार प्रारम्भिक शिक्षा का प्रशासन जिला परिषदों और नगरपालिकाओं से निकालकर अपने हाथ में ले रही है—ऐसी घोषणा की गयी है। यह १९७२ ई० के उत्तर प्रदेश के शिक्षा जगत की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। शिक्षा परिषदों और नगरपालिकाओं की शैक्षिक प्रशासन इतना दोषपूर्ण था कि लगभग इस विषय में लोग एकमत थे कि जब तक इन स्थानीय बोर्डों से प्रारम्भिक शिक्षा निकाल नहीं ली जाती तब तक प्रारम्भिक शिक्षा की प्रगति सम्भव नहीं है। यह सच है कि बुरा प्रशासन किसी अच्छी योजना की हत्या कर देता है और विगत २५ वर्षों से प्रारम्भिक शिक्षा की अनेक अच्छी योजनाओं का गला इन स्थानीय बोर्डों के दूषित प्रशासन ने घोटा है। अत सरकार प्रारम्भिक शिक्षा का प्रशासन अपने हाथ में ले रही है यह सुनकर बहुतों ने राहत की साँस ली है। वैसे प्रारम्भिक स्तर की शिक्षा की लगभग सभी महत्त्व की पाठ्य-पुस्तकों

का राष्ट्रीयकरण पहले ही हो चुका था। सरकार इन बोर्डों को लगभग समूचा खर्च भी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए देती ही थी। अतः प्रशासन को भी अपने हाथ में लेकर उसने अगला स्वाभाविक कदम ही उठाया है और बहुत लोगों का विश्वास है कि यह कदम शिक्षा के हित में होगा।

लेकिन दूसरे ऐसे भी लोग हैं जो कहते हैं कि लोकतन्त्र में किसी भी प्रकार का राष्ट्रीयकरण घातक प्रवृत्ति है और अन्ततोगत्वा अधिनायकवाद को जन्म देती है तथा शिक्षा का राष्ट्रीयकरण तो और भी घातक है, क्योंकि उससे तो विचारों का 'रेजिमेण्टेशन' होता है, जो लोकतन्त्र की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के प्रतिकूल प्रवृत्ति है।

लेकिन एक तीसरा मत भी है जो कहता है कि सरकार शिक्षा का पूरा पैसा दे—सरकार का पूरा सहकार रहे—परन्तु शैक्षिक प्रशासन अधिक से-अधिक विकेन्द्रित हो। उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद इस विकेन्द्रीकरण के लिए बराबर प्रयास होते रहे हैं।

इनका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयास है—'१९६१ ई० का क्षेत्रीय समिति और जिला परिषद् एक्ट।' इसके अनुसार डिप्टी इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स शिक्षा-अधिकारी की भाँति काम करेगा। इस एक्ट के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा (१ से ५ तक) क्षेत्रीय समिति की देखभाल का विषय है और जिला परिषद जूनियर हाई स्कूल (सीनियर बेसिक स्तर) की शिक्षा का इन्चार्ज है।

लेकिन इसके बाद भी (१) गाँव सभाओं के सभी प्रधान (२) खण्ड स्थित प्रत्येक टाउन एरिया समिति और नोटिफाइड एरिया समिति के चेयरमैन (३) सहकारी समितियों के पाँच प्रतिनिधियों में से दो (४) खण्ड से सम्बन्धित जिला परिषद के सभी सदस्य (५) लोक सभा और विधान सभा के वे सदस्य जो खण्ड में रहते हैं।

प्रत्येक क्षेत्र समिति का एक प्रमुख होता है और दो उप प्रमुख। क्षेत्र समिति के कार्य भी विस्तार पूर्वक सूची दी हुई है और यह आशा की गयी है कि ये खेती के विकास, सहकारिता का विकास और ग्रामोद्योगों के विकास आदि का काम करेंगे और इसी दृष्टि से क्षेत्र समिति को तो महत्त्वपूर्ण उपसमितियाँ भी बनाई गयी हैं (क) कार्य कारिणी समिति (ख) उत्पादन समिति (ग) कल्याण समिति।

सबसे चिन्ता का विषय यह है कि जहाँतक शिक्षा का सम्बन्ध है इन क्षेत्र-समितियों की स्थिति स्पष्ट नहीं है। इसीलिए क्षेत्र समितियों ने विद्यालय भवनों

के निर्माण और मरम्मत के महत्वपूर्ण काम के अतिरिक्त बहुत कुछ नहीं कर सकी हैं और इसीलिए क्षेत्र समिति एक्ट के लागू होने के बावजूद प्रारम्भिक-शिक्षा के प्रशासन में कोई सुधार नहीं आया और न तो शिक्षा का स्तर ही बढ़ा और न परिषदों के अध्यापकों को कोई सुरक्षा ही मिली। सबसे बुरी बात तो यह हुई इस नियम के बाद भी जिला परिषदों के ये अध्यापक जिले की दलगत राजनीति की दलदल में फसे ही रहे। जिले की राजनीति के मोहरे वे पहले भी थे और क्षेत्रीय समितियों के बनने के बाद भी बने रहे।

सरकार की इस घोषणा से कि वह प्रारम्भिक शिक्षा को अपने हाथ में ले रही है, तीन आशाएँ करनी चाहिए

(१) प्रारम्भिक शिक्षा का स्तर ऊँचा होगा और प्रारम्भिक शिक्षा-योजनाओं का अधिक प्रभावकारी ढंग से कार्यान्वयन होगा।

(२) प्रारम्भिक शिक्षकों को अधिक सुरक्षा उपलब्ध होगी और जिला परिषदों की दलगत राजनीति से अलग होने के कारण उनको अध्ययन-अध्यापन का अधिक अवसर प्राप्त होगा।

(३) हमारी लोकतान्त्रिक सरकार इस सरकारी काम का प्रयोग शिक्षकों की अभिव्यक्ति को कुण्ठित करने के लिए नहीं करेगी।

यह तभी सम्भव होगा जब सरकार अधिक मौका इस बात का दे कि प्रारम्भिक विद्यालय की प्रवृत्तियों का संचालन छात्र, अध्यापक और अभिभावक की मिली जुली-समितियों के माध्यम से हो। इस सिलसिले में निम्नांकित समितियों को काम करने का पूरा अवसर मिलना चाहिए :

(क) विद्यालय समिति

विद्यालयों की सारी प्रवृत्तियों का संचालन विद्यालय के प्रतिनिधियों द्वारा हो। प्रत्येक स्कूल या निश्चित क्षेत्र के कुछ समान स्तर के स्कूलों के लिए एक विद्यालय समिति हो, जिसमें विद्यालय के अध्यापकों के प्रतिनिधि, ग्रामसभा के प्रतिनिधि (अभिभावक) और जिलाशिक्षा बोर्ड द्वारा मनोनीत जिले के कुछ शिक्षा-विशेषज्ञ रहें।

(ख) प्रखण्ड स्तरीय समिति

प्रखण्डस्तरीय समिति में आधे सदस्य प्रखण्ड के विद्यालयों के प्रतिनिधि होंगे और आधे में प्रखण्ड की ग्रामसभाओं और स्थानीय स्वायत्त निकायों के प्रतिनिधि और जिला शिक्षा बोर्ड द्वारा नामजद शिक्षा-विशेषज्ञ होंगे। यह समिति ब्लाक (प्रखण्ड) में स्थित समस्त शिक्षा का संचालन करेगी। अगर ब्लाक में कोई

डिग्री कालेज होगा तो वह भी समिति के अन्तर्गत होगा। समिति के निम्न कार्यक्रम होंगे

(१) अध्यापकों की नियुक्ति और प्रखण्ड के अन्तर्गत स्थानान्तरण।

(२) वेतन वितरण और अन्य वित्तीय उत्तरदायित्व।

(३) पाठ्यक्रम निर्माण और पाठ्यक्रमीय एवं पाठ्यक्रमेतर प्रवृत्तियों का संचालन।

(ग) जिला शिक्षाबोर्ड

प्रत्येक जिले में जिले की समग्र शिक्षा के संचालन के लिए एक जिला शिक्षाबोर्ड स्थापित होना चाहिए, जो जिले के सारे विद्यालयों (जिसमें डिग्री कालेज भी शामिल होंगे) का कार्यभार सम्भालेगा। इस बोर्ड के निम्न कार्यक्रम होंगे

(१) जिला की सभी शिक्षा-संस्थाओं को अनुदान देना।

(२) प्रखण्ड समिति की संस्तुति पर जिले के भीतर अध्यापकों का स्थानान्तरण।

(३) प्रखण्ड की शैक्षिक एवं पाठ्यक्रमेतरीय प्रवृत्तियों का संचालन।

(४) शिक्षा उपकर (एजूकेशनल सेस) लगाने और उसके विनियोग का अधिकार।

इस जिला शिक्षाबोर्ड के निम्न सदस्य होंगे

(१) जिलास्थित सभी प्रखण्ड स्तरीय समितियों के प्रधान।

(२) जिले की लोकसभा, विधानसभा और राज्यसभा के सदस्य।

(३) उन सभी विभागों के प्रतिनिधि जिन पर शिक्षा का भार हो जैसे-उद्योग, कृषि आदि।

(४) शिक्षा विभाग और विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि एवं शिक्षाविभाग द्वारा मनोनीत शिक्षा-शास्त्री।

(५) उच्च शिक्षा-संस्थाओं के छात्र प्रतिनिधि।

जिला शिक्षाबोर्ड का वेतनभोगी पूर्णकालिक अध्यक्ष और उसका कार्यालय होना चाहिए।

नोट—प्रखण्ड स्तर एवं जिला स्तर की समितियों में छात्र प्रतिनिधियों को अवश्य रखा जाय। विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों में उन्हें कोर्ट में, विद्यापरिषद् और कार्यकारी परिषद में भी स्थान दिया जाय, जिससे विद्यार्थी शैक्षिक प्रयास में केवल निष्क्रिय भागीदार न रहें, वरन् शैक्षणिक प्रशासनिक दोनों मामलों में सक्रिय साझेदार बन सकें।

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष: २०
अंक: ९
मूल्य: ७५ पैसे

अनुक्रम

अप्रैल, '७२

निवेदन

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे (इस अंक का ७५ पैसे)
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित,
अनुपम प्रेस, के २९/३० दुर्गाघाट, वाराणसी में मुद्रित

नयी तालीम : अप्रैल, '७२

पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

तरुण-विद्रोह

★ नयी पीढ़ी का असन्तोष और उसके परिणामस्वरूप प्रकट हो रहा उनका विक्षोभ इस युग की समस्या भी है और आवश्यकता भी।

★ समस्या तब है जब यह निरुद्देश्य भटकन, सतही विरोध और छिटपुट विध्वंस तक ही सीमित रह जायगा, क्योंकि इससे असन्तोष के मूल कारण और भी सुदृढ़ होंगे, उनके अभिशापों से मुक्ति के दिन और दूर चले जायेंगे।

★ और आवश्यकता तब है, जब यह (अज्ञात या हो सही) एक उत्कट अन्वेषण बुनियादी विद्रोह और नयी रचना के नये आयाम प्रस्तुत करने के लिए होगा, क्योंकि तब मौजूदा सामाजिक संरचना का यह सड़ा-गला ढाँचा ध्वस्त होगा और साथ-साथ क्षितिज पर एक नया अरुणोदय प्रकट होता नजर आयेगा।

★ अब इस नयी पीढ़ी को तय करना है कि अपने असन्तोष और विक्षोभ को वह क्या रूप देगी। इन्हें इतिहास की समस्या बनायेगी या आवश्यकता सिद्ध करेगी।

★ अगर तरुणों की आकांक्षा और इस 'आवश्यकता' का कोई मेल सम्भव लगे तो प्रस्तुत पुस्तक उस स्थिति को लाने में मदद करेगी, लेकिन अगर 'मेल' की सम्भावना से कोई तरुण इनकार करे तो भी इस पुस्तक को पढ़ने में हर्ज क्या है? विश्वास कीजिए, आपका असन्तोष और विक्षोभ इससे रंचमात्र भी कुण्ठित नहीं होगा।

इस पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण 'क्वेस्ट ऑव ए न्यू सोसाइटी'
और मराठी संस्करण 'आजचा विद्यार्थी-विद्रोह'
भी प्रकाशित है।

लेखक प्राध्यापक सुरेश श्री० पाढरीपाण्डे
अनुवादक रामचन्द्र राही
मूल्य १ रुपया

प्रकाशक सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी–१

आवरण मुद्रक खण्डेलवाल प्रेस मानमन्दिर वाराणसी १

वर्ष : २०
अंक : १०

मई १९७२

शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति

[सुश्री सरला बहन ने लक्ष्मी आश्रम कौसानी अल्मोड़ा में वर्षों शिक्षण की साधना की है। आज वह व्यापक लोक शिक्षण की साधना में लगी हुई हैं। वह अपनी साधना के अनुभवों से, जिस नतीजे पर पहुँची हैं उसे उन्होंने इस लेख में बखूबी रख दी है। स०]

वर्ष : २०
अंक : १०

गांधीजी भविष्य-द्रष्टा थे। वे बहुत गहराई से सोचते थे। उनके अनुभव ठोस हुआ करते थे। उनकी दृष्टि दूरगामिनी थी। उनके विचारों का विकास निरन्तर होता रहता था। उनके गतिशील विकास की दिशा प्राय क्रान्तिनिष्ठ होती थी। इस देश में गाँवों की परिस्थिति और किसानों की प्रतिभा को उनकी तरह जानने समझनेवाला दूसरा कोई शायद ही रहा हो। आजादी मिलने के बाद हमने जिस खुले समुद्र में प्रवेश किया उसमें हम मार्गदर्शन देने के लिए वे हमारे बीच रह नहीं पाये, यह हम सबके लिए एक बड़े दुर्भाग्य की बात हुई। यदि वे हमारे बीच रहे होते, तो आज वे हमें क्या सलाह देते और खुद क्या करते, यह कहने का दुस्साहस हममें से कौन कर सकता है ? फिर भी हमें लगता है कि वे हमेशा क्रान्ति की दिशा में ही आगे बढ़ते रहते, पीछे तो कभी भी न हटते और वे विनोबाजी के इस विचार से पूरी तरह सहमत होते कि आजादी के साथ साथ हम अपनी शिक्षा पद्धति को भी बदलना चाहिए था।

शासन आधार रहित शिक्षा

एक बात उन्होंने बहुत अच्छी तरह से समझ ली थी। केन्द्रीकृत व्यवस्था से उत्पन्न होनेवाले खतरों को वे भली भांति जानते थे। वे जानते थे कि राजनीति, अर्थनीति, उद्योग-नीति और शिक्षा-नीति के क्षेत्र में केन्द्रीकृत व्यवस्था

के कारण समाज में वर्ग भेद का विस्तार होता है। गरीब और अमीर के बीच की खाई बढ़ती जाती है। गरीबों की अपनी कोई आवाज नहीं बनती। सारी योजनाएँ अनुपयुक्त सिद्ध होती हैं। भ्रष्टाचार बढ़ता है, नगरों द्वारा गाँवों का शोषण होता रहता है तथा गाँवों की गरीब जनता और अधिक गरीब बनती जाती है। वे यह भी जानते थे कि इस देश में अंग्रेजी सरकार द्वारा चलायी गयी शिक्षा पद्धति इन सारी बुराइयों को बढ़ावा देनेवाली है। इसके अलावा, उस समय की कर-व्यवस्था में सरकार शिक्षा पर खर्च तभी बढ़ा सकती थी, जब देश में शराब की खपत बढ़ती। उन दिनों आबकारी से सरकार को जो आमदनी होती थी, उसीकी मदद से वह शिक्षा और स्वास्थ्य विभाग का अपना सारा खर्च चलाती थी। यह सच है कि आजादी के बाद की अपनी व्यवस्था में हमारी सरकार ने आबकारी की आमदनी को सीधे शिक्षा आदि के खर्च के साथ जोड़ा नहीं है फिर भी आज आबकारी की आमदनी सरकारी आय का एक मुख्य स्रोत है। प्रश्न यह है कि कल्याणकारी राज्य का दावा करनेवाली सरकार देश में आबकारी की आमदनी को लगातार बढ़ा-बढ़ाकर किसका कल्याण कर पायगी? आज शराबखोरी देश की एक मुख्य समस्या बन चुकी है। इसलिए लगता है कि कम-से-कम जिन प्रान्तों में नशाबन्दी नहीं है, जहाँ आज भी शराबखोरी सरकारी आमदनी का मुख्य स्रोत बनी हुई है उन प्रान्तों में हमें उत्पादक उद्योगों के द्वारा शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। सरकारी शिक्षा का और सरकार के प्रमाण पत्रों का बहिष्कार किया जाना चाहिए।

तकनीकी शिक्षा व बेकारी -

पुरानी शिक्षा पद्धति से न तो विद्यार्थी का ही जीवन बनता है और न आर्थिक दृष्टि से उसका भविष्य ही सुरक्षित हो पाता है। साठ लाख सरकारी नौकरों में से हर साल ज्यादा से ज्यादा ढाई तीन लाख नौकर अवकाश प्राप्त करते होंगे। साल में कुछ ही हजार नयी नौकरियाँ खुलती होंगी। दूसरी तरफ हर साल सरकारी सर्टिफिकेट लेकर नौकरी की तलाश में निकलनेवाले लोगों की गिनती तो लाखों में होती है। फिर बढ़ते हुए यंत्रीकरण के कारण गाँवों के उद्योग-धन्धे टूटते जा रहे हैं। कृषि के क्षेत्र में भी गाँवों में बेकारी बढ़ती जा रही है। यह बेकारी अनुत्पादक नौकरियों की मदद से मिट नहीं सकती। शिक्षित-बेकार स्वयं किसी प्रकार का कोई उत्पादन कर नहीं पाते। वे देश के लिए मात्र बोझ-भर बनकर रहते हैं। आज तो इस देश में इंजीनियर और

डॉक्टर जैसे तकनीकी शिक्षा पाये हुए लोग भी हर साल हजारों की संख्या में बेकारी के शिकार हैं। इतनी महँगी तकनीकी शिक्षा भी बेकारी के बोझ को बढ़ानेवाली सिद्ध हो रही है।

समग्र नयी तालीम

नित्य नयी तालीम अथवा समग्र नयी तालीम के रूप में गांधीजी ने देश के सामने एक चुनौती पेश की थी। जन्म से लेकर मृत्यु तक हम समाज में जो भी कुछ करना चाहते हैं, वह सब नयी तालीम के क्षेत्र में आ जाता है। बच्चा को हम जो भी ज्ञान देना चाहते हैं, उसका समवाय या तो किसी बुनियादी उद्योग से होना चाहिए, या प्राकृतिक अथवा सामाजिक वातावरण से। सात सालों की नयी तालीम के पढ़ने विद्यार्थियों की उत्पादन-क्षमता में इतनी वृद्धि होनी चाहिए कि वे अपनी शिक्षा के चालू खर्च की पूर्ति अपनी कमाई से कर सकें।

शिक्षा का यह एक ऐसा विशाल क्षेत्र था, जो स्थानीय परिस्थितियों में स्थानीय प्रतिभा और स्थानीय मार्गदर्शन के सहारे भलीभाँति विकसित हो सकता था। इसे किसी केन्द्रीकृत समयचक्र और शिक्षाक्रम से बाँधा नहीं जा सकता था। जो भी शिक्षाक्रम बनता, वह मार्गदर्शन-भर होता, उसमें सुझाव तो भरपूर रहते, पर वह शिक्षा के लिए बन्धनरूप नहीं बनता।

इस नयी और स्वतंत्र तालीम के कारण प्रचलित परीक्षा पद्धति अपने आप ही समाप्त हो जाती। शिक्षक स्वयं अपने विद्यार्थियों की प्रगति की समीक्षा करनेवाले बनते। केन्द्रीकृत परीक्षा एक ढोंग है एक ऐसा भूत है, जिसका वास्तविक शिक्षा के साथ कोई ताल-मेल नहीं। इस भूत के फेर में पड़नेवाला विद्यार्थी रट्टू बनकर रह जाता है। वह न अपनी विचार-शक्ति बढ़ा पाता है और न अनुभव-जन्य ज्ञान बढ़ाने की दिशा में ही कुछ कर पाता है। नतीजा यह होता है कि परीक्षा पास करने के लिए वह हर तरह की बेईमानी का सहारा लेने लगता है, क्योंकि परीक्षाफल और प्रमाणपत्र का सीधा सम्बन्ध उस नौकरी से जुड़ा रहता है जिसका वह उम्मीदवार होता है। अतएव सारे प्रान्त के लिए एक ही प्रकार की परीक्षा और एक-से प्रश्नपत्र सही शिक्षा के मूल पर ही प्रहार करते हैं। इससे विद्यार्थी के व्यक्तिगत विकास में बाधा उपस्थित होती है और उसकी विचार शक्ति का ह्रास होता रहता है। गांधीजी ने नयी तालीम के लिए जो लक्ष्य निर्धारित किया था, उसके अनुसार सात साल के अन्दर अंग्रेजी को छोड़कर विद्यार्थी की योग्यता दसवीं कक्षा की योग्यता के बराबर होनी चाहिए। लेकिन चूँकि नयी तालीम में विद्यार्थी को किसी-न-किसी उत्पादक उद्योग में दक्षता

प्राप्त करनी होती है, इसलिए पढ़ाई की अवधि को सात के बदले आठ साल तक बढ़ाना जरूरी माना गया।

गांधीजी मानते थे कि असली शिक्षा तो घर और परिवार में ही मिल सकती है। जहाँ माता-पिता योग्य हैं; वहाँ बच्चों को पाठशाला में भेजना जरूरी नहीं है। लेकिन चूँकि बहुत कम परिवारों में योग्य माता-पिता पाये जाते हैं, इसलिए देश में पाठशालाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। विशेषकर शिक्षा-सम्बन्धी नये प्रयोगों का व्यावहारिक अनुभव तो संस्थाओं में ही प्राप्त किया जा सकता है, (यद्यपि शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य विशाल जन-समुदाय के बीच प्रवेश का है) इसलिए देश के अलग अलग प्रान्तों में नयी तालीम का काम करनेवाली कुछ संस्थाएँ स्थापित हुईं। इसका एक मुख्य प्रयोग सेवाग्राम (वर्धा) में गांधीजी के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में चला।

नयी तालीम के प्रयोग : हमारा दृष्टिकोण

जहाँ भी इस प्रकार की संस्थाओं ने काम किया, वहाँ लोगों ने इस शिक्षा के महत्त्व को समझा। इन संस्थाओं से जो विद्यार्थी निकले, वे उद्योगी, अभिक्रमशील और उत्तरदायी बनकर निकले। वे स्वतन्त्रतापूर्वक सोचनेवाले और स्वयं सारी परिस्थिति की समीक्षा करनेवाले बने। सेवाभाव के साथ ही उनमें नेतृत्व की शक्ति का भी विकास होता पाया गया। सरकारी शिक्षा-संस्थाओं से निकलनेवाले उत्तम विद्यार्थियों की तुलना में वे उन्नीस नहीं बल्कि बीस ही साबित होने लगे। वे चाहे स्वतंत्र रूप से गाँव में काम करते बैठे हों, या राष्ट्रीय संस्थाओं में अथवा सरकारी नौकरियों में लगे हों, हर जगह उन्होंने देश की सेवा का काम कुशलतापूर्वक करके अपनी सेवा-शक्ति को सुशोभित किया है।

क्रान्ति समग्र हुआ करती है। इसलिए शिक्षा में क्रान्ति तब तक एकांगी ही रहेगी, जब तक समाज के हर अंग में क्रान्ति नहीं होगी। आज देश के अभिभावक चाहते हैं कि उनके बच्चों को अच्छी शिक्षा मिले, लेकिन इसके साथ ही वे यह भी चाहते हैं कि साधारण अर्थों में उनके बच्चों का भविष्य 'सुरक्षित' रहे अर्थात् पुराने मूल्यों पर आधारित समाज में उन्हें नौकरी मिलती रहे। इसलिए वे चाहते हैं कि अच्छी शिक्षा को सरकारी मान्यता भी मिले। एक दो प्रान्तों में, जहाँ की सरकारें अनुकूल रहीं, बिना विशेष समझौते के, सरकारों ने नयी तालीम की संस्थाओं के प्रमाणपत्रों को मान्यता दी है। लेकिन आम तौर पर केन्द्रीकृत व्यवस्था के अन्तर्गत काम करनेवाले शिक्षाधिकारी इतने जड़ होते हैं कि

उनके सामने नयी तालीम की शिक्षा-संस्थाओं को यह कहने की हिम्मत नहीं हुई कि वे 'सरकारी शिक्षा को नहीं मानेंगी' बल्कि उन्होंने सरकार से समझौता करके अपनी संस्थाओं में सरकारी परीक्षा को जगह दी।

अतएव नयी तालीम को अच्छा मानने पर भी आज उसके बारे में कहने की एक फैशन-सी चल पड़ी है कि वह आम जनता के बीच लोकप्रिय नहीं हो पायी। उसे असफल भी कहा जाने लगा है। माँग यह की जाती है कि उसमें ऐसे परिवर्तन और संशोधन कर दिये जायँ, जिससे वह सरकार द्वारा मान्य की जा सके। मतलब यह हुआ कि हमने 'शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति' और 'शिक्षा से अहिंसक क्रान्ति' के विचार से हाथ धो लिया है और हम प्रचलित शिक्षा-पद्धति में थोड़ा परिवर्तन कर सन्तुष्ट हो जाना चाहते हैं। फिर भी लगता है कि आज हमारे बीच कुछ ऐसे कार्यकर्ता हैं, जो अपने बच्चों को नयी तालीम देना चाहते हैं। वे इसलिए निराश हो रहे हैं कि उन्हें अपने क्षेत्र में ऐसी कोई उपयुक्त संस्था मिल नहीं रही है। सारे भारत में कुछ ऐसे भी पुराने विद्यार्थी बिखरे पड़े होंगे, जो स्वयं अच्छी शिक्षा पाने को उत्सुक हैं और चाहते हैं कि शिक्षा का काम गांधीजी द्वारा सुझाये गये रास्ते से ही आगे बढ़ता रहे।

ग्रामस्वराज्य में नयी तालीम की सम्भावना

बिहार राज्य के सहरसा जिले में और मुजफ्फरपुर जिले के मुसहरी प्रखण्ड में ग्रामस्वराज्य के निमित्त से अब हम एक विस्तृत और समग्र क्रान्ति के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। ग्रामस्वराज्य का व्यावहारिक प्रयोग वास्तव में समग्र लोकशिक्षा का ही एक प्रयोग और प्रक्रिया है। ग्रामस्वराज्य को सफल बनाने के लिए हम ठीक उसी प्रकार के व्यक्ति चाहिए, जो नयी तालीम की हमारी सफल शिक्षा-संस्थाओं से निकलते रहे हैं। गाँवों की अर्थनीति, राजनीति और उद्योगनीति को विकेन्द्रित ढंग से विकसित करने के काम में ये लोग ही गाँववालों का सफल मार्गदर्शन कर सकेंगे। गाँवों, प्रखण्डों और जिलों के स्तर पर अब ऐसे लोगों को सेवा करने में बहुत अवसर मिल सकता है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में लोग अभी से अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के बारे में गम्भीरता पूर्वक सोचना शुरू करें। यही एक ऐसा क्षेत्र है, जहाँ वास्तव में शिक्षा में क्रान्ति की ओर शिक्षा से अहिंसक क्रान्ति की दिशा में चलकर हमें समग्र नयी तालीम के सच्चे स्वरूप की ओर बढ़ने का अवसर मिल सकेगा।

ऊपर सूचित दोनों क्षेत्रों में आचार्यकुल का काम अच्छी तरह जम रहा है और वह ग्रामीण शिक्षकों तक भी पहुँच रहा है, यह सचमुच बहुत खुशी की बात

है। गाँवों में गाँवों की जनता के अपने अभिक्रम से विकेन्द्रित, स्वावलम्बी और सर्वांगीण शिक्षा का प्रसार किस प्रकार हो सकेगा, यह अपने-आप में एक चुनौती-भरा प्रश्न है। शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति के विचार के लिए भी यह एक गम्भीर चुनौती ही है। इसी रास्ते हमें उस समग्र नयी तालीम की ओर बढ़ने का अवसर मिल सकेगा, जो इस देश के लिए गांधीजी की अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ देन कही जाती है। क्या हम सब मिलकर उसका प्रतिपादन कर सकेंगे? या इस विषय में भी हम उनकी आत्मा को धोखा ही देंगे? अब हमें असली खोज का और संशोधन का अवसर मिला है। इसीसे देश में नयी तालीम पुनः पनप भी सकेगी। केन्द्रित व्यवस्था में गैरहाजिर व्यवस्थावाद की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति रहती है, जो आजकल इस देश में भी बढ़ रही है। इसके बदले ग्रामीण क्षेत्र में हम गाँववालों के अपने व्यावहारिक अभिक्रम को जगाकर उन्हें ग्राम-स्वराज्य की दिशा में बढ़ने का अवसर दे सकते हैं। लोकतंत्र के सच्चे विकास के लिए आज देश को और दुनिया को इसकी बहुत आवश्यकता है।

●

नयी तालीम और ग्रामदान

१-ग्रामदानी क्षेत्रों में नयी तालीम का उद्देश्य

ग्रामदान को एक नयी सामाजिक व्यवस्था लानी है जो स्वतन्त्रता, समानता, प्रेम और उत्पादन पर आधारित हो। नयी तालीम को एक ऐसा यन्त्र बनाना चाहिए कि सभी उम्र के पुरुष और महिलाओं की योग्यता पूरे तौर से विकसित हो सके, ताकि वे इस नयी सामाजिक व्यवस्था में अपना योगदान दे सकें। इसका अर्थ होगा, एक भरपूर जीवन के लिए ट्रेनिंग।

२-वास्तविक कदम

ग्रामदानी क्षेत्रों में शिक्षा की ऐसी प्रणाली स्थापित करनी होगी, जहाँ सारी प्रवृत्तियाँ, पाठ्यक्रम, अनुभव, ग्राम निर्माण के नये सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने में सहायक हो सके। ग्रामसभाओं की आवश्यकताओं, आशाओं और अभिलाषाओं को शिक्षा की व्यवस्था में स्थान मिलना चाहिए। प्रत्येक ग्रामसभा को नयी तालीम के अपने स्कूल स्थापित करने चाहिए। इन स्कूलों का ग्रामसभा और गाँव के समुदायों की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन से गहरा सम्बन्ध होना चाहिए।

३-शिक्षा के राज्य विभाग का निचले स्तर से सम्बन्ध

वैज्ञानिक उपकरण, शिक्षण की सहायक सामग्री और पाठ्यपुस्तकों को प्रकाशित करने में राज्य का काम समन्वय (कोआर्डिनेशन) का होगा। इसका मुख्य

कार्य सेवा और आपूर्ति होगा, मार्गदर्शन और सलाह देना कम। जिला समितियाँ, नीति-निर्धारण का काम करेंगी, और पंचायत समितियाँ तथा ग्रामसभाएँ उन्हें कार्यान्वित करेंगी। ग्रामसभा से ऊपर की ओर और जिला समिति से नीचे की ओर की यह दोहरी पद्धति का चलना आवश्यक है। साथ ही साथ नीति-निर्धारण को कार्यान्वित करने की पद्धति में लोच होना भी जरूरी है ताकि स्कूलों में स्थानीय आवश्यकताओं और विशेषताएँ पूर्णरूप से प्रकट हो सकें। विशेषज्ञों का मार्गदर्शन, मूल्यांकन और वित्त राज्य के शिक्षा-विभाग की जिम्मेदारी होनी चाहिए, परन्तु यहाँ भी निचले स्तर का प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

४-मैं क्रम क्रम से चलने की वकालत करूँगा, परन्तु यह चाहूँगा कि प्रचलित स्कूलों के कार्यक्रम की पुनर्व्यवस्था (रिओरियेण्टेशन) को प्राथमिकता दी जाय ताकि छात्र और अध्यापक इस बात से परिचित हो सकें कि ग्रामदान के कारण उत्पन्न होनेवाली नयी परिस्थिति के अनुसार उन्हें अपने आपको ढालना है।

सरकारी आर्डर द्वारा यह घोषित करने कि सभी प्राइमरी स्कूल बेसिक स्कूल हैं, नयी तालीम को बहुत नुकसान पहुँचा है। ये स्कूल केवल कागज पर बुनियादी रहे, उनमें कोई परिवर्तन नहीं आया। हर ग्रामसभा को इस बात का ख्याल रखना चाहिए कि कम-से-कम एक स्कूल ऐसा हो जो नयी तालीम की लाइन पर हो। जो नये स्कूल खुलें वे बुनियादी स्कूल हों। सामान्य स्कूलों को योजनापूर्वक बुनियादी स्कूलों में बदलने का कार्यक्रम हो।

५-कई ग्रामसभाओं को चाहिए कि मिलकर किसी केंद्रीय स्थान पर एक स्कूल स्थापित करने के लिए अपने साधनों का प्रयोग करें, परन्तु वह स्कूल नयी तालीम की लाइन पर हो।

६- किसी चुने हुए जिलादानी क्षेत्र में दो घण्टे का स्कूल चलाने का एक प्रायोगिक कार्यक्रम हो। हर जिले में एक ट्रेनिंग कालेज हो, जो अपने आम क्षेत्र में इन स्कूलों को स्थापित करे, जहाँ लोगों को ट्रेनिंग दी जाय। जब शिक्षक इसमें ट्रेनिंग पा जायँ, तो वे अपने-अपने क्षेत्रों में दो घण्टे के स्कूल चलायें। इस तरह थोड़े ही समय में जिले में ऐसे दो घण्टे के कई स्कूल होंगे जो साधारण स्कूल के कामों में मदद पहुँचायेंगे।

७- नया पाठ्यक्रम किस प्रकार बनाया जाय ? पहले समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्रों की आवश्यकता है, इसकी सूची बनायी जाय। इस सूची को सामने रखकर सार्थक अनुभवों और प्रवृत्तियों के बारे में सोचना चाहिए और उनके इर्दगिर्द एक नया पाठ्यक्रम बनाना चाहिए। नयी

पाठ्यपुस्तकें लिखनी होंगी परन्तु जब तक कि ये तैयार न हों तब तक चालू पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें ही प्रयोग में लायी जायं। बुनियादी स्कूलों का मूल्यांकन विकेन्द्रित हो और यह शिक्षकों तथा दूसरे स्कूल के अधिकारियों के द्वारा किया जाय, किसी बाह्य अधिकारी द्वारा नहीं।

८- प्रत्येक जिले में एक प्रशिक्षण केन्द्र हो और अगर यह पहले से हो तो इसमें एक नया विभाग जोड़ा जाय, जिसमें उन शिक्षकों का प्रशिक्षण हो, जो ग्रामदानी क्षेत्रों में काम करना चाहते हैं। ट्रेनिंग पाये हुए शिक्षकों का रिफ्रेशर कोर्स और दूसरे महत्वपूर्ण काय ट्रेनिंग कालेज में होंगे।

९- शिक्षण के कार्यक्रम का उद्देश्य ट्रेनिंग के प्रकार और छात्रों पर निर्भर करेगा। अल्पकालीन रिफ्रेशर कार्यक्रम में तीन बातों पर जोर दिया जायगा—

(क) ग्रामदान सामाजिक निर्माण (पुनर्जीवन का एक साधन है।)

(ख) नयी सामाजिक व्यवस्था में नयी तालीम का स्थान।

(ग) नये मूल्य, शिक्षा द्वारा नये मूल्यों का संस्कार कैसे पड़ेगा ?

पूर्णकालीन प्रशिक्षण में ये सारी बातें होंगी और इनके अतिरिक्त ग्रामदान-व्यवस्था के अन्तर्गत, शिक्षा-पद्धति, शिक्षा का मनोविज्ञान, साधन सहायता, पढ़ाने के तरीके, स्कूलों के संगठन, स्कूलों की व्यवस्था और इस प्रकार के दूसरे विषय भी शामिल होंगे।

मूल्यांकन के प्रश्न का संक्षेप में उल्लेख नहीं किया जा सकता। इसके लिए एक अलग गोष्ठी होनी चाहिए, ताकि तफसील से इस बात का अनुमान लगाया जा सके कि किस हद तक शिक्षा ग्रामदानी समाज के उन उद्देश्यों को पूरा कर सकी है, जिनके लिए स्कूल खोले गये हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में काम करनेवाले शिक्षकों के लिए अल्पकालीन रिफ्रेशर कोर्स की बड़ी आवश्यकता है। जिला स्तर पर यह ग्रामस्वराज्य समिति की शिक्षा शाखा की जिम्मेदारी है।

१०-ग्रामदान की सफलता सामान्य लोगों की शिक्षा पर निर्भर करती है। अगर ऐसा होगा तभी एक नया समाज बन सकेगा। गाँव के अशिक्षित लोगों को कार्यकारी (फक्शनल) शिक्षा देनी होगी और ग्रामसभा को प्रौढ़ शिक्षा में इतनी ही सार्थकता और तेजी से पहल करनी होगी, जितनी गाँव के प्राथमिक स्कूलों के लिए है।

मेरा सुझाव है कि दो घण्टे का प्रौढ़ शिक्षा का स्कूल भी हो जो उसी शिक्षक के द्वारा चलाया जाय। इसे निम्नलिखित तौर से किया जाय .

हर जिले में एक ट्रेनिंग कालेज हो। ये ट्रेनिंग कालेज दो खण्ड के नये स्कूल और प्रौढ शिक्षा के वर्ग साथ चलायेंगे। इनमें ग्रामीण क्षेत्रों के वालेण्टियरों का शिक्षण होगा। ट्रेनिंग कालेजों का विभाग इन स्कूलों का मार्गदर्शन करेगा। इन्हीं की यह जिम्मेदारी भी होगी कि ट्रेनिंग कालेजों के लिए शिक्षा के साधन और फर्नीचर जुटायें। शिक्षकों का वेतन इन गांवों की प्रौढ शिक्षा समिति का उत्तरदायित्व होगा।

जहाँ तक प्रौढ शिक्षा के अध्यापकों की ट्रेनिंग का सम्बन्ध है मिर्जापुर एवं दरभंगा के प्रयोगों पर ध्यान दिया जाय। इन दोनों जिलों में १०० रात्रि पाठशालाएँ चलायी जा रही थी। इस योजना में सर्व सेवा संघ, शिक्षा केन्द्र और गांधी विद्या संस्थान शामिल थे।

११-सर्व सेवा संघ की ट्रेनिंग समिति ने भिन्न भिन्न स्तरों पर कार्यकर्ताओं के शिक्षण के लिए एक योजना बनायी है। तीन प्रकार के पाठ्यक्रम सोचे गये हैं

(क) नये कार्यकर्ताओं, सेवकों युवकों और प्रगतिशील किसानों के लिए नवीनीकरण अभ्यास क्रम।

(ख) मध्य स्तर के कार्यकर्ताओं के लिए जाब ट्रेनिंग (धन्धा प्रशिक्षण)।

(ग) अनुभवी और उच्च स्तर के कार्यकर्ताओं के लिए इण्टर डिसिप्लिनरी ट्रेनिंग।

ग्रामदान ग्राम निर्माण में नयी तालीम, उसका स्थान, अपेक्षाएँ और उनका प्रयोग, इन तीनों प्रकार के कार्यक्रम का अनिवार्य भाग हो।

१२-कार्यकर्ताओं के लिए एक वर्कशाप जरूरी है।

१३-इस कार्यक्रम के लिए आर्थिक व्यवस्था ग्रामस्वराज्य समिति तथा सर्वोदय मण्डल और जनता करगी। सरकारी सहायता ली जा सकती है, परन्तु उस पर निर्भर नहीं किया जा सकता।

१४-जिलादानी जिला की एक शिक्षा-परिषद होनी चाहिए, जिसे नयी तालीम समिति भी कहा जा सकता है। यह जिले में ट्रेनिंग कालेज चलायगी और टक्निकल शिक्षा को छोड़कर यह समिति जिले के ग्रामीण क्षेत्रों के सभी स्तरों की सामान्य शिक्षा के लिए उत्तरदायी होगी। जिला स्तर पर और नीचे के लिए भी राज्य के शिक्षा निदेशालय की कार्यकारी शाखा (एक्जीक्यूटिव आम) होगी।

इस नयी तालीम समिति की इस प्रबन्ध समिति में शिक्षा के विशेषज्ञ होंगे, और कुछ दूसरे लोग होंगे जो ग्रामसभा और पंचायत के हित का प्रतिनिधित्व करेंगे। लेकिन यह सलाहकार समिति होगी। इसकी एक कार्यकारी शाखा भी होगी।

१५–सबसे पहले यह जरूरी है कि नयी तालीम का कार्यक्रम चलाने के लिए जिलादानी क्षेत्रों में एक शीर्ष सगठन बनाया जाय । वस्तुत नयी तालीम समिति स्वय इस काम को कर सकती है । फिर यह जिले भर में नयी तालीम समितियाँ बनाये । इसमें देर नही होनी चाहिए ।

१६–सरकारी पदाधिकारियो द्वारा इसमे अडचन लगायी जायगी । जब तक कि एक ऐसा सगठन नही होता, जो धीरे धीरे ग्रामीण क्षेत्रो की पूरी शिक्षा की मिशनरी अपने हाथ में कर ले, उस समय तक सरकारी पदाधिकारियो से सघर्ष होता ही रहेगा । इससे बचने का एक रास्ता यह है कि नयी तालीम समिति से वांछित परिणाम प्राप्त हो जिससे लोग इसका समर्थन करें और इसे मजबूत करें जिस तरह पब्लिक स्कूलों को जनता ही सहायता देती है ।

१७ कुछ चुने हुए जिलो में प्रौढ शिक्षा के दो घण्टे के स्कूल चलाने के लिए माडल ट्रेनिग कालेज खोले जायें । यह काम तुरन्त करने का है । नये तरह के स्कूल चलाना ताकि ग्रामदानी क्षेत्रो की जरूरतें पूरी हो सके , एक ऐसी जिम्मेदारी है, जिसे इन सस्थाओ के अध्यापको को पूरी करनी चाहिए । अर्थ है कि इन ट्रेनिग कालेजों के स्टाफ को पहले स्वय ट्रेनिग का विशेषज्ञ होना चाहिए, और बाद में सर्वोदय कार्यकर्ता को ।

प्रो० विश्वबन्धु चटर्जी, गाधी विचार सस्थान, वाराणसी ।

डाक्टर सीता मिश्रा

गाँव का स्वावलम्बी शिक्षालय

शिक्षा हमारी आवश्यकताओं की पूरक रूप होनी चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रथम हम अपने आदर्शानुसार अपने समाज की संरचना की रूपरेखा बनायें, क्योंकि उस रूपरेखा को पूर्ण करनेवाली शिक्षा ही हमारे अनुकूल होगी। अतः अब समाज की रूपरेखा का प्रश्न विचारणीय है।

यदि हमें शोषणमुक्त समाज बनाना अभीष्ट है तो शिक्षा का भी शोषण-रहित ढाँचा तैयार करना होगा। जिस समाज में ज्यादा लोग थोड़े लोगों के लिए श्रम करते हैं, वह शोषणमुक्त समाज नहीं हो सकता। अतएव हमारी शिक्षा-प्रणाली में प्रत्येक के लिए जीविकोपार्जनहेतु श्रम अनिवार्य होगा, ताकि बेकारी, बेरोजगारी और असमानता न रह सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु गांधीजी ने बुनियादी-शिक्षा का प्रवर्तन किया था। बुनियादी-शिक्षा द्वारा यदि हम ग्रामवासी गाँव को सुशिक्षित करना चाहते हैं तो हमें शिक्षा निम्नांकित ढंग से प्रारम्भ करनी होगी

५–६ भाई बहनों के एक दल को इस प्रयोग के लिए थोड़ी भूमि लेनी होगी। इस दल में २–३ भाई-बहन हस्त-उद्योगों में निपुण अवश्य हों, जैसे भवन-निर्माण कला, कताई, बुनाई, लोहार का कार्य, बढ़ईगिरी आदि। बहनों को कपड़े सीने में दक्ष होना चाहिए तथा कृषि में सबकी रुचि अवश्य हो। वे सब मिलकर उस भूमि में खेती प्रारम्भ कर दें। इसके साथ ही निजी आवास-हेतु मकान बनाना भी आरम्भ कर दें। उक्त उभयविध कार्यों के साथ-साथ बच्चों को प्रातः से साय तक शिक्षण देना भी परमावश्यक है।

यदि खेत में कुछ काम हो तो प्रातःकालीन प्रार्थना वहीं होगी। जिन दिनों प्रातःकाल खेत में काम न हो, (प्रातः की प्रार्थना) आँगन में चरखे से होगी।

पढ़ना लिखना उक्त कार्यों के माध्यम से ही सिखाया जायगा। जैसे, खेती के औजारों के नाम, खाद्य पदार्थों के नाम लिखना सिखाना (अक्षरज्ञान की अपेक्षा) तथा कताई में सूत की लम्बाई आदि का हिसाब सिखलाना और गृह निर्माण में घर की लम्बाई, चौड़ाई एवं ऊँचाई के लिए ईंटों का हिसाब सिखाना, बढ़ईगिरी में चौखट-दरवाजे आदि बनाते समय लकड़ी की लम्बाई-चौड़ाई और मोटाई इत्यादि। इस ढंग से पढ़नेवाले बच्चों को पृथक् रूप से किसी भी प्रकार की सामग्री, वस्तुओं और धन की आवश्यकता न पड़ेगी। जब तक अपने आवास योग्य भण्डार घर आदि तथा काम करने के लिए बरामदें आदि बनते रहेंगे, तब तक ये बच्चे हमारे सहायक के रूप में काम करते करतें योग्य होते जायेंगे। तत्पश्चात् जैसे जैसे ग्रामसभा अपने गाँव के रास्ते नालियाँ आदि पक्के कराने के लिए आर्थिक तौर पर सुदृढ़ होती जायेगी। हम और हमारे सहायक ये बच्चे उस कार्य को निपुणता से करते चले जायेंगे। जो बहनें सिलाई तथा पाक-कला आदि कार्यों में निपुण होंगी, वे ग्रामबालाओं एवं वधुओं को उक्त गृहकार्यों द्वारा शिक्षण देंगी।

गाँव का कोई भी व्यक्ति अपना जो काम करवाना चाहेगा, उसके लिए हमें गुण्डी का माध्यम रखना होगा। कताई हमें गाँव के आबाल वृद्ध और स्त्रियों को भरपूर कोशिश से सिखानी होगी, जिससे की गुण्डियाँ माध्यम के रूप में उपलब्ध हो सके तथा गाँव वस्त्र-स्वावलम्बन प्राप्त कर सके।

यदि उस गाँव में बुनकर न हो तो हमें अपनी पाठशाला में एक बुनकर-परिवार को भी सम्मिलित करना होगा। हमारे और बच्चों के श्रम से जो भी उत्पत्ति होगी, उस उसका मूल्य हमें गुण्डियों में आँकना है, जैसे बढ़ई भाई ने एक चौकी, तख्त या चारपाई बनाई तथा गाँव का कोई व्यक्ति वह खरीदना चाहता है तो हम उसका दाम पैसों में न लेकर गुण्डियों में लेंगे। उन गुण्डियों का कपड़ा बन जाने पर उसका दाम भी गुण्डियों में ही रखेंगे। जितनी गुण्डियाँ एक मीटर कपड़े में लगी होंगी, उसके साथ १ या १½ गुण्डी बुनाई जोड़कर, वह उसका दाम प्रति मीटर होगा। इसी प्रकार गाँव में अन्य लोगों की उपज और उद्योगों का भी दाम गुण्डी में बना, उनसे ले लेंगे और उसके बदले में अपनी आवश्यकता की चीजें उन गुण्डियों के हिसाब से ले लेंगे। कोई भाई अपना मकान बनवाना चाहे तो हमारा गृहनिर्माण-दल उसको बनवाई उसे गुण्डियों की शक्ल में बता देगा, उसके पास अनाज, दूध अथवा जो भी चीज होगी, वह गुण्डियों के हिसाब से ली जायेगी। उसे अपनी उपज अथवा चीजें बाहर न

बेचनी पड़गी। शेष गाँववालो को भी अपनी आवश्यकता की चीजें उस पाठशाला से अपनी उपज के बदले में मिलती जायेंगी। इस ढग से बच्चे शिक्षण प्राप्त करते करते हमारे सहयोगी बनते चले जायेंगे। उस सहयोग में ही उनकी शिक्षा का उत्तरोत्तर विकास होता जायेगा। कुछ वर्षों के अनन्तर हमारा वह परिवार दक्षता म और सख्या में भी बढ़ता चला जायेगा। तब हम एक दल पड़ोस के गाँव मे भी (जहाँ के लोग चाहेंगे) इसी ढग का शिक्षालय शुरू करने के लिए भेज देंगे। उस गाँव की दूरी ५ मील से अधिक न होगी, क्योंकि सायकाल उस दल को वापस अपने ठिकाने पर पहुँचना होगा। यह दल एक वर्ष तक अपने आहार और आवासादि का प्रबन्ध कर लेने के पश्चात स्थायी रूप से वहीं रहेगा, रात्रि को अपने ठिकाने पर वापस न लौटेगा। इसी प्रकार ये शिक्षालय हमारे चारो ओर बढते जायेंगे। ये शिक्षालय आवश्यकता पड़ने पर हमारे मुख्य शिक्षालय से कुछ सप्ताह के लिए विशेषज्ञ भी ले सकेगे। किसी भारी काम के लिए अन्य शिक्षालयो के दल भी एक दूसरे की सहायता के लिए तत्पर रहेंगे।

इस ढग से उक्त विषयो की प्रायोगिक एव सैद्धान्तिक उभयविध शिक्षा उन्हें क्या मिल सकगी ? दक्षता-प्राप्त करनेवाले निजी तौर पर स्वतन्त्र कार्य भी कर सकेंग तथा समय कुसमय हमारे सहयोगी भी रह सकेंग। साथ ही, सारा गाँव भी प्रशिक्षित होता जायेगा। उस प्रशिक्षण में ही आत्म-निर्भरता बढती चली जायेगी। एक गाँव का शिक्षालय अपने पास बची वस्तुओ को अन्य गाँवो के शिक्षालयो को देकर निजी आवश्यकता की चीजे ले लेगा। इस ढग से बहुत थोडी पूँजी तथा अपने श्रम से ही शिक्षालय बढते चले जायेंगे और देश आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होगा।

डा० सीता मिश्रा एम० ए० पी० एच० डी० पुस्तक मन्दिर ३४७ चावडी बाजार, नयी दिल्ली—

मोती लाल शर्मा

कार्यानुभव बनाम वास्तविक शिक्षण

कोठारी कमीशन ने कार्यानुभव (वर्क एक्सपीरियन्स) की बात की। राजस्थान ने इसको प्रयोग के लिए अपना लिया—एक स्थायीत्व के रूप में। सीखो-कमाओ की योजना चल निकली। कुछ ऐसा लगा कि हम कोई नयी तालीम अथवा तालीम की योजना शुरु कर रहे हैं। परिभाषा दी गयी शिक्षा का व्यवसायीकरण। बालक में परिश्रम (शारीरिक) के प्रति विश्वास बढ़ेगा, तालीम शिक्षा समाप्त कर बेकारों की कतारों में खड़ा नहीं होगा, स्वयं अपने हाथ-पैर से काम लेगा, स्वावलम्वी बन सकेगा। पढ़ाई के समय पढ़ाई का खर्च निकाल सकेगा। एक आदर्श योजना, शुभ उच्च लक्ष्य, भविष्य की सुन्दर कल्पना, एक आदर्श उद्देश्य, भारत का वास्तविक अपना विश्वास, सांस्कृतिक परछाई, क्या—क्या नहीं। पर आदर्श उद्देश्य की यह अरग, अधूरी परिभाषा, यह दायरा। क्या कार्यानुभव सीखो-कमाओ अथवा व्यवसायीकरण तक ही सीमित है? क्या स्कूल में एक घण्टा बैठकर चाक बना लेना, बढ़ई, चमार, सोनार, लुहार, अथवा कुटी मिट्टी का काम कर लेने मात्र से कार्यानुभव के उद्देश्य पूरे हो जाते हैं?

शिक्षा शारीरिक एवं मानसिक कार्य का मिला-जुला या परिणत रूप है। शिक्षा अथवा शिक्षण से कार्यानुभव को दूर कर देने पर मरी हुई पीढ़ी का निर्माण होता है, बिना नींव के राष्ट्र का निर्माण होता है। भारतीय संस्कृति की आत्मा 'कार्य' है। भारतीय गुरुओं ने शिक्षा का माध्यम आदिकाल से कार्य को रखा है। ज्यों ही इससे हमारा शिक्षण, हमारी शिक्षा दूर हटी, परतन्त्रता, गरीबी, गुलामी आदि महामारियों ने हमें घर दबोचा। देश की रीढ़ की हड्डी टूट गयी। एक सुनहरा युग कल्युग में पलट गया। आज फिर कार्यानुभव के रूप में शिक्षा-क्षेत्र में 'कार्य' ने प्रवेश किया और ऐसा लगता है कि यह मंत्र किसी विदेशी के द्वारा दिया गया हो। पर विश्वास रखिये यह भारतीय है, भारतीयों

का है, हम भूल चुके थे, वापस याद आया है, गलती मत कीजिए, इसके अर्थ का अनर्थ करने की।

यही मंत्र था जिसके आधार पर (लर्निंग बाई डूइंग) कार्य के द्वारा शिक्षण पद्धति सामने आयी। गाधीजी की बुनियादी शिक्षा का शिलान्यास हुआ जिसको आज उनके हिमायतियों ने असफल करार दे दिया है। पर वास्तविकता है कि हमने अपने पुराने मंत्र को वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार नहीं ढाला, परिभाषित नहीं किया। तो आइये इस मंत्र का विश्लेषण करें।

शिक्षा क्या है? शिक्षा का सीधा अर्थ है "जीने की कला"। शिक्षा के द्वारा बालक को आदर्श जीवन जीने एवं समाज तथा राष्ट्र को जीवित रखने के लिए तैयार किया जाता है। अगर वह जीने की कला जान लेता है अगर वह जीवन प्रक्रिया को समझ लेता है। अगर वह जो कुछ किसी माध्यम से सीखता है उसकी उपयोगिता का मूल्यांकन कर अपने दैनिक जीवन में काम लेने में प्रवीण हो जाता है तो मान लेना चाहिए कि उस पर शिक्षा का प्रभाव हुआ है। मानो शिक्षा का केन्द्रबिन्दु है 'समझना', याद रखना या याद किए हुए को परीक्षा में उगल देना मात्र नहीं।

अब प्रश्न उठता है कि बालक समझता कब है? उत्तर सीधा है। बालक जो कुछ सुनता है उसे कुछ समय उपरान्त भूल जाता है। जो कुछ वह देखता है उसे याद रखता है, (पर आवश्यक नहीं कि उसको अपने दैनिक जीवन में प्रयोग कर सके) परन्तु जो कुछ वह करता है उसे वह समझता है और यहीं से असली शिक्षा का प्रारम्भ होता है। यहाँ स्पष्ट होता है कार्य के द्वारा सीखने की शिक्षण-पद्धति का महत्त्व। यहाँ सामने आता है कार्यानुभव, यानी कार्य अनुभव। कार्य करके अनुभव प्राप्त करना अथवा अपने हाथ से करके समझना। अपने आपको कार्य की गहराई में डुबोकर उसकी गहराई को, उसकी आत्मा को समझना।

कक्षा में अगर शिक्षक भाषणबाजी करके अथवा विद्यार्थियों की उपस्थिति में बोर्ड पर एक दो सवाल हल करके यह चाहे कि बालक भारतीय संस्कृति पर दिये गये भाषण से भारतीय संस्कृति जान गये हैं, मीरा के भजन के सुनाये गये अर्थ को उन्होंने जीवन में उतारने लायक समझ लिया है, बोर्ड पर ब्याज निकालना बतला देने मात्र से घर पर अपने पिताजी को ब्याज का हिसाब रखने में मदद कर देंगे, तो हम भूल करते हैं। जब तक बालकों को आप अपने शिक्षण कार्य में भाग लेने का, उन्हें वास्तविक उद्देश्य के साथ जूझने का, उन्हें अपने में निहित सृजनात्मकता का उपयोग करने का, उन्हें बौद्धिक व्यायाम

का मौका नहीं देंगे तब तक समझने का कार्य अधूरा रहेगा जो कि हमारा वास्तविक उद्देश्य है। ईमानदारी पर भाषण देने से ईमानदारी का अर्थ छात्र की समझ में नहीं आ सकता, बल्कि वह तो समझेगा कि यह सब कहने की बातें मात्र हैं, शिष्टाचार मात्र है। एक चोरबाजारी करनेवाले व्यापारी का लड़का भी बातचीत में ईमानदारी के गुण गायेगा पर वास्तविक अनुभव जिसका प्रभाव उसके जीवन पर है ईमानदारी नाम की चीज को उसके पास नहीं फटकने देगा। "श्रम ही जीवन है" का नारा लगानेवाले नेताजी का लड़का जानता है कि यह तो श्रमिकों को धोखे में डालने के लिए है, जीवन का अंग नहीं है।

अब आप बताइये कि हमारी कक्षा के कमरों में जहाँ सब श्रेणियों के बच्चे आते हैं, चोरबाजारी करनेवालों के, काला धन रखनेवालों के, झूठे नारेबाजी करनेवाले नेताओं के, दो नम्बरी धन से भरी तिजोरियोंवाले राष्ट्रीय सम्पत्ति के चोरों के अध्यापन व्यवसाय में संलग्न शिक्षकों, खून-पसीना एक कर कमाने वाले किसानों, मजदूरों के, घूसखोरी में विश्वास रखनेवाले राष्ट्रद्रोहियों आदि सभी के बालक एक ही कक्षा में विद्यमान हैं। अब आप अन्दाजा लगा सकते हैं शिक्षण कार्य की कठिनाइयों का। अब अगर आप एक भाषण द्वारा सभी बालकों पर समान प्रभाव डालना चाहें तो लेखक की राय में कभी सफल नहीं हो सकते। परन्तु अगर आपके शिक्षण का केन्द्र कार्य है जिसमें प्रत्येक बालक हिस्सा लेता है तो निश्चित रूप से प्रत्येक बालक शिक्षण की आत्मा को समझेगा। यही जरूरी नहीं कि हर वक्त शारीरिक कार्य का ही सहारा लिया जाय अथवा ऐसा कार्य हो जिससे भौतिक उत्पादन सम्भव हो, ऐसी बात नहीं अगर मानसिक कार्य है तो भी सृजनात्मकता प्रस्फुटित होगी, बालकों को अनुभव मिलेगा, बालक समझेगा। खेती में खाद की उपयोगिता की बात करते हैं पर बालक को कभी यह मौका नहीं मिलता कि कुदाली को कैसे पकड़ा जाता है। "श्रम ही जीवन है" का मंत्र शालीय भवन की दीवारों पर पोत देते हैं तथा खेल के मैदान तैयार कराने के लिए मजदूर लगाये जाते हैं। यहाँ आप यह नहीं समझें कि लेखक आदर्शरूपी मकड़ी के जाल में फँसा हुआ है, यह वास्तविकता है।

हम अपने ही तरीकों को भूले हैं, तथा जब विदेशियों ने कहा कि कार्य द्वारा सीखने से बालक अधिक सीखता है तो हमारा जी मचल उठा और कार्यानुभव सामने आया।

वास्तविकता है कि कक्षा का कमरा युद्ध-क्षेत्र के समान है जहाँ हमें अपने

प्रयत्न द्वारा अपनी रक्षा करती है। अत बालक की शिक्षा को अगर सुचारु रूप से संचालित करना है तो कार्यानुभव को कक्षा के कमरे की चहार दीवारी में घुसने का मौका दीजिए। अधिक से अधिक अवसर पैदा कीजिए कि बालक को स्वयं कार्य करके अनुभव प्राप्त करने एवं समझने का मौका मिले तभी वह वास्तविकता को समझेगा, उसमें विश्वास उत्पन्न होगा।

अब हम विश्वास कर सकते हैं कि बालक जो कुछ करता है उसे समझता है तथा यहीं उसकी सीखने की गति बढ़ जाती है। अत शिक्षक को कक्षा में ऐसा वातावरण, ऐसी परिस्थितियाँ तैयार करनी चाहिए कि बालक को अधिक-से अधिक आगे आने, काम करने एवं इस प्रकार अनुभव प्राप्त करने के अवसर प्राप्त हों। बालकों के लिए वर्क बुक तैयार की जाती है। इसके पीछे उद्देश्य यही है कि बालक को कक्षा में कार्य करने का मौका मिले। ज्यों ही अध्यापक अपना कथन पूरा कर देंगे त्यों ही बालक को कार्य का अनुभव दिलाने, शिक्षक द्वारा बतायी गयी बातों को समझने के लिए वास्तविक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जायें। गृहकार्य से इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती क्योंकि गृहकार्य बालक अकेले में करता है। कक्षा का वातावरण एवं शिक्षक का निर्देशन नहीं मिल पाता। अत हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि बालक को कक्षा में अधिक-से अधिक कार्य करने का मौका दिया जाय, उसे अधिकाधिक अनुभव प्राप्त करने हेतु प्रेरित किया जाय।

सहायता सामग्री (मटेरियल) के निर्माण में शिक्षक विद्यार्थियों से सहयोग ले सकता है। प्रारम्भ में कुछ कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं पर आगे चलकर आप देखेंगे कि बालक अपने द्वारा निर्मित सहायक सामग्री की सहायता से पढ़ाये जा रहे आपके पाठ में कितनी रुचि ले रहे हैं।

आपका कार्य पढ़ाना (टीचिंग) नहीं है। शिक्षक के रूप में आपका कार्य सीखने की परिस्थिति तैयार करना है। पारिवारिक व्यावहार को सिखाने के लिए माता-पिता बच्चों की कक्षा नहीं लगाते हैं, परन्तु बच्चों को वास्तविक परिस्थितियों में अनुभव प्राप्त करने का मौका मिलता है और वे उसे सीख लेते हैं। व्यापारी के बालक को १० वर्ष स्कूल में पढ़ाकर हम व्यापारी के खाते तैयार करने लायक नहीं बना पाते हैं परन्तु जब वही लड़का अपने पिता के साथ एक वर्ष कार्य कर लेता है तो अगले वर्ष खाते तैयार करने में प्रवीण हो जाता है—यह है कार्यानुभव का चमत्कार। कार्यानुभव को चाक, कुर्सी, टेबुल बनाने तक ही सीमित नहीं किया जाना चाहिए। इसकी परिभाषा

इतने महत्त्व अर्थों में नहीं को जानी चाहिए, परन्तु कार्यानुभव शिक्षण का ये द्रवित हो कायानुभव शिक्षण सस्थान के कार्यक्रमो की आधारशिला हो।

अत हमारा उद्देश्य होना चाहिए कार्यानुभव को कक्षा के कमरे की चहार दीवारो में प्रवश कराना, अपने शिक्षण का माध्यम बनाना। बालको के अनुभव के लिए कार्यानुभव से श्रेष्ठ कोई भी साधन नहीं हो सकता।

जो भी कार्यानुभव चल रहा है उसे हम देखते हैं। शालाओ में देखन म आता है कि सिलाई अध्यापक के निर्देशन में बालक सिलाई सीख रहे हैं तथा दो साल के अन्त में और तो क्या कच्छा बनाना भी नहा सीख पाते हैं। कारण स्पष्ट है, जब सिलाई अध्यापक को ही सिलाई का व्यावहारिक ज्ञान नहीं है तब बालक कहां से सीखेंगे। यही कताई-बुनाई, लकडी एव लोह के काम का हाल है। मानवीय एव भौतिक दोनो प्रकार की शक्तियो का अपव्यय हो रहा है। क्यो? उत्तर स्पष्ट है कि कार्य को ध्यान मे रखकर व्यक्ति चयन नहीं किये जाते। अगर आपको सिलाई का कार्य सिखाना है कि बालक सिलाई में प्रवीण हो सके तो आप सिलाई अध्यापक के पद पर प्रवीण दर्जी की नियुक्ति कीजिए। वह यहां तक पढा है उसके पास हाई स्कूल का प्रमाण पत्र है या नही इस पर अधिक जोर न देव। अब आप कहेंगे कि सैद्धांतिक पक्ष का क्या होगा। दर्जी सैद्धान्तिक पक्ष भी जानता है वह भाषा द्वारा बोलकर बता सकता है, कमी है कि लिखकर बता नहीं सकता। पर परीक्षा मौखिक भी तो होती है, लिखित आवश्यक नही। दूसरा तरीका हो सकता है कि एक सिलाई-अध्यापक रखा जाय जो शैक्षणिक योग्यता प्राप्त हो प्रशिक्षित हो, जो बालको को सैद्धान्तिक पक्ष में तैयार कर सकेगा तथा व्यावहारिक पक्ष के लिए एक दर्जी रहे। आप कहगे खर्चा बढेगा। बिल्कुल नही। क्योकि प्रवीण दर्जी के निर्देशन में सिलाई का कार्य सुचारु रूप में चलेगा, उत्पादन बढेगा जो गुणात्मक दृष्टिकोण से ऊंचे स्तर का होगा। यही बात लोहे के काम, कताई, बुनाई, कुटी मिट्टी आदि कामों के लिए लागू होती है।

इस प्रकार जहाँ विद्यालय सीखने का केन्द्र बनगा वहाँ शिक्षा का व्यावसायीकरण सम्भव हो सकेगा तथा सृजनात्मक वातावरण विद्यालयो में उत्पन्न होगा। इस प्रकार स्वावलम्बी नागरिक तैयार हो सकेंगे। अत कार्यानुभव को विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि का केन्द्र बनाकर आगे बढ़ाया जाय तब शिक्षा के उद्देश्य प्राप्त हो सकेंगे।

श्री मोती लाल शर्मा, सेन्टर ऑव एडवान्स्ड स्टडी इन एजुकेशन, बडौदा।

टी० आर० अनन्तरामन

अध्यात्म और विज्ञान

युद्ध और विश्वशान्ति के सन्दर्भ में चार शब्द आजकल बार-बार इस्तेमाल किये जाते हैं—विज्ञान, अध्यात्म, तकनीकी और धर्म। फिर भी इन शब्दों का सही अर्थ तथा उनका परस्पर सम्बन्ध बहुत कम लोग जानते होंगे । मानव जाति के भवितव्य की इन चारों कुंजीरूपी शक्तियों में विज्ञान ऐसी शक्ति है, जो आज लगभग निरपवादरूप से सर्वमान्य हो गयी है। कुछ लोगों की मनोवृत्ति विज्ञान के प्रतिकूल सी दिखाई देती है, लेकिन अगर उनसे बातें करें, तो पता चलता है कि वे विज्ञान के नहीं, तकनीकी के प्रतिकूल हैं, जो वैज्ञानिक खोजों के विनियोग के साथ जुड़ी हुई है। अध्यात्म का ऐसा नहीं है। यद्यपि अन्तर-धर्मीय मंचों पर—खासकर हमारे देश में अध्यात्म शब्द का प्रयोग रूढ़ हो रहा है, अंग्रेजी भाषा में वह अभी रूढ़ नहीं हुआ है। धर्म शब्द आमतौर पर इस्ते-माल किया जाता है, लेकिन संकुचित अर्थ में। धर्म मानव हृदय में तीव्र आवेग को जगाता है, हर्ष-शोक को बढ़ाता है तथा समाज के एकीकरण और विघटन में मदद करता है। तकनीकी का विज्ञान के साथ जो सम्बन्ध है और धर्म का अध्यात्म के साथ, उसमें कुछ समानता है। इन चारों शब्दों का साधारणतया यही अर्थ किया जाता है, फिर भी वह सर्वमान्य नहीं हुआ है—खासकर विद्वज्जनों ने उसे मान्य नहीं किया है।

विज्ञान और तकनीकी

साइन्स शब्द लेटिन धातु 'सायरे' से बना है, मतलब है जानना। तो साइन्स का मूल अर्थ है ज्ञान। दूसरी ओर टेकनालॉजी में मूल ग्रीक धातु है 'टेक' यानी कला और इसी से उसका अर्थ किया जाता है 'औद्योगिक कला का ज्ञान'। विज्ञान और तकनीकी में यह जो फरक है, वह ध्यान में न लेकर कुछ लोग विज्ञान का ही विरोध करते रहते हैं और उसे मानव-जाति के लिए अभिशाप मानते हैं। *विज्ञान का मतलब है विश्व और उसके परिवेश का ज्ञान और तात्पर्यपूर्वक, संयम-पूर्वक* उस ज्ञान की सम्पूर्ण खोज। यह खोज निरपेक्ष भी होनी चाहिए। मतलब, इन खोजों का मानव के भौतिक जीवन के लिए उपयोग होना ही चाहिए, यह अपेक्षा न रखते हुए खोज होनी चाहिए। तकनीकी यानी मानव-सेवा के लिए विज्ञान के विनियोग की पद्धतियाँ, वस्तु का मानव सुख के लिए परिवर्तन या आविष्कार। इस फरक को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए एक मिसाल लें। यूरेनियम के न्यूक्लीअस की विघटन प्रक्रिया में, विघटित कणों की संख्या की गणना है साइन्स का विषय। और इस ज्ञान का उपयोग अणुबम या अणुशक्ति केन्द्र बनाने में करना है तकनीकी का विषय। विज्ञान और तकनीकी में यह फरक है। अत तकनीकी को हम नैतिक या अनैतिक कह सकते हैं, लेकिन विज्ञान नीति अनीति से परे है, वह मानव कल्याण का विरोध कभी नहीं कर सकता। यह बात अलग है कि कोई वैज्ञानिक या तकनीकी विशेषज्ञ, एक मनुष्य के नाते विज्ञान का विरोधी हो।

धर्म

अंग्रेजी शब्द रेलिजन (धर्म) ग्रीक धातु 'रि-लिगेर' से बना है, जिसका अर्थ है टू बाईंड यानी बाँधना। तो धर्म यानी वह ज्ञान, जो बाँधता है। इस अर्थ को अधिक विशद करना हो, तो कह सकते हैं कि धर्म यानी वह ज्ञान, जो मनुष्य को जीव, जगत और ईश्वर से जोड़ता है। मजा तो यह है कि भारतीय शब्द 'धर्म' का तात्पर्य यही है, और इसलिए अंग्रेजी शब्द रेलिजन का वह समानार्थक है। संस्कृत धातु धृ (यानी एक साथ बाँधना) से धर्म शब्द बना है। इसलिए धर्म यानी वह ज्ञान जो जीव, जगत, परमात्मा, इस त्रिमूर्ति की एकता को प्रकट करता है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि आज 'धर्म' की बात होती ही नहीं, धर्मों की बात होती है और धर्म शब्द की जो प्राचीन शुद्धता थी, उसको हम इतिहास की सकरी गलियों में खो बैठे हैं। धर्म का उद्भव निश्चय ही

जोड़ने के लिए था, लेकिन आज भिन्न भिन्न धर्मपथ तोड़ने का ही काम अधिक कर रहे हैं।

भारतीय धार्मिक परम्परा में धर्म की कल्पना केन्द्रस्थान पर है और प्राचीन काल से आज तक, व्यक्ति और समाज के साथ अनुबन्ध रखकर उसका व्यापक विश्लेषण किया गया है। सनातन धर्म—सृजन के सार्वकालिक समग्र कानून से आरम्भ कर विशिष्ट काल से सम्बन्धित युगधर्म, विशिष्ट राष्ट्र से सम्बन्धित राष्ट्रधर्म, विशिष्ट जमात से सम्बन्धित कुलधर्म तथा विशिष्ट व्यक्ति से सम्बन्धित स्वधर्म तक का विश्लेषण इसमें समाविष्ट है। सनातन धर्म के ये विविध गतिशील पहलू है, जो परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित भी होते हैं और उनमें अन्योन्य आदर, ग्रहणशीलता तथा सहिष्णुता की अपेक्षा भी रहती है। ततोगत्वा प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक विशिष्ट धर्म होता है, जो उसे ढूँढना पड़ता है और अपना सुख सन्तोष के लिए तथा समाज से सवादिता साधने के लिए उसे उस धर्म के अनुसार जीना पड़ता है। अपने इस 'स्व' धर्म के लिए उसे विज्ञान की जरूरत होगी और उसे अपनी खुद की तकनीकी को सम्बन्धित करना पड़ेगा। ऐसा जो धर्म होगा, उसका विज्ञान या तकनीकी से सघर्ष होने का कोई कारण ही नहीं होगा। वास्तव में विज्ञान और धर्म हाथ मिलाकर आगे जा सकते है और सिम्पल (अजटिल), इण्टरमिडिएट (माध्यमिक) और सोफेस्टिकेटेड (अत्याधुनिक) तकनीकी को योग्य स्वरूप दे सकते हैं। मानव समाज की आज की स्थिति विज्ञान और धर्म की इस महान सधि से काफी दूर है, क्योंकि व्यवहार में विज्ञान और धम, दोनो का दर्शन अति सकीर्ण बना देता है।

अधिकाश लोगो को तो 'धर्म' की नही, 'धर्मों' की भाषा में सोचने की ही शिक्षा मिलती है। पिछले दो हजार वर्षो के ज्ञात इतिहास से ध्यान म आता है कि समाज का, भिन्न भिन्न धर्म, धर्मपथ और सम्प्रदायो में जो विभाजन हुआ है, वह आगे जाकर अनिवार्यत असहिष्णुता, कट्टरता, सघर्ष तथा युद्ध में भी परिणत हुआ है। आज के जमाने म, विज्ञान और तकनीकी के विकास के साथ इन भेदो का भी स्फोटक शक्ति में विकास हुआ और इस शक्ति ने कई बार हिंसक विप्लवों का रूप लेकर मानव समाज की बुनियाद को ही हिला दिया। आज दुनिया के विभाजन की यह जो निराशाजनक स्थिति है उसमें प्रचलित सगठित धर्मों के सहअस्तित्व और सहयोग की नीव पर दुनिया का एकीकरण असम्भव है। आज के युग की माँग है एक नया विचार, जो धर्मों से ऊपर उठेगा

और उन्हें जोड़ेगा। वस्तुत अध्यात्म शब्द में ही वह दृष्टिगोचर होता है जिसे भारत के दो महान सुपुत्रों ने–श्री अरविन्द और विनोबा ने अभिव्यक्त कर समझाया है।

आध्यामिकता

आध्यात्मिकता स्वभावत ही चैतन्यस्वरूप का निर्देश करती है, जड तत्व का नहीं। स्पिरिच्युअलिटी (अध्यात्म) में मूल लैटिन धातु है 'स्पिरीरे' यानी श्वास लेना। चैतन्यस्वरूप आत्मा जीवन का श्वास ही है और इसलिए उस अर्थ में आध्यात्मिकता का आशय होगा शरीर, मन तथा बुद्धि से गहनतर मूलभूत गुण। आध्यात्मिकता बुद्धि को लाघते हुए, उस अतीत अवस्था में बौद्धिक स्तर के अवबोधन और संवाद वहन की गम्भीर समस्याएँ अनिवार्यत उपस्थित कर देती है। और इसी कारण, विनोबाजी ने अध्यात्म के लिए संस्कृत शब्द वेदात इस्तेमाल किया है। वेदात का अर्थ है–वेद ज्ञान और अत समाप्ति। इस तरह की प्रत्येक वस्तु के लिए जागरूकता और संवेदनशील, दूसरों के लिए प्रेम और सद्भाव तथा निरपवाद रूप से सर्व की सेवा इनके रूप म अध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि प्रतिबिंबित होती है। इस अध्यात्म का विज्ञान के साथ कोई झगडा नही, वह विज्ञान की केवल पूर्ति करता है।

अध्यात्म और विज्ञान

लेकिन, दुर्भाग्य से व्यवहार में विज्ञान और अध्यात्म के बीच एक दरार पैदा हुई है। वैसे तो वैज्ञानिक ज्ञान के सब अगो से निस्पत रखता है किन्तु आज उसने अपने को वस्तुनिष्ठ ज्ञान के अनुशीलन तक ही सीमित रखा है। वस्तुनिष्ठ ज्ञान यानी वह ज्ञान, जो इद्रियो के द्वारा होनेवाले निरीक्षण और बुद्धि के द्वारा होनेवाले विश्लेषण पर आधारित है, तथा जो जाँच पडताल के लिए बौद्धिक स्तर पर दूसरो तक पहुँचाया जा सकता है। अध्यात्म महद अश में आत्मनिष्ठ ज्ञान है जो बौद्धिक स्तर पर ठीक-ठीक नही बताया जा सकता और न दूसरो के द्वारा उसकी यथार्थता की सही जाँच पडताल हो सकती है। वैज्ञानिक आध्यात्मिक विषयो की चर्चा के लिए अधिकतर अनिच्छुक रहता है, क्योकि जिसे वह आत्मलक्षी या व्यक्तिगत विषय मानता है जिस पर वह अपने अमूल्य स्वत्व के रूप में बहुत प्यार करता है उस वस्तुनिष्ठा को अध्यात्म-चर्चा में अनिवार्य रूप से छोड देना पडता है। अत ऐसी चर्चा में वह बहुत बेचैन हो जाता है। दूसरी ओर, आध्यात्मिक मनुष्य की प्रवृत्ति आध्यात्मिक अनुभव और चर्चा में विज्ञान के वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण को कोई महत्त्व न देने की ओर हुआ करती है, बल्कि वह शास्त्रीय ज्ञान की पूरी तरह से उपेक्षा करता है जबकि वह अपने

दैनंदिन जीवन में विज्ञान और तकनीकी का टाल ही नहीं सकता। पवित्र धर्म-शास्त्रों के शब्दों से चिपके रहने के कारण वह विज्ञान की नयी खोजों को और शंका और डर की दृष्टि से भी देखता है, क्योंकि उसे भास होता रहता है कि वे खोजें उसके धर्मशास्त्रों के वचनों के विरुद्ध हैं। विज्ञान के उपासक और अध्यात्म के समर्थक दोनों सत्य शोधक होने के नाते एक दूसरे को समर्पण और योगदान का महत्व यथोचित स्वीकार करें, यह अतीव आवश्यक है। मुक्त और सम्पूर्णता के लिए किये गये अपने अथक प्रयत्नों में मनुष्य जिन नानाविध अनुभवों से गुजरता है उन अनुभवों के सच्चे स्वरूप को जब ये दोनों समझेंगे, तभी वे एकत्र आकर समान उद्देश्य की पूर्ति में सहभागी बन सकेंगे।

हम जब अपने दैनंदिन जीवन के अनुभवों पर सोचने लगते हैं, तब हमें कबूल करना पड़ता है कि ये अनुभव बहुत जटिल होते हैं और हमारे व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरों में हम प्रतीत होते हैं। मोटे तौर पर देखा जाय तो उन अनुभवों का निम्न या इससे अधिक स्तरों पर वर्गीकरण किया जा सकता है— (१) शारीरिक (२) भावात्मक, (३) बौद्धिक और (४) आध्यात्मिक। एक से अधिक स्तरों को जब वे व्यापते हैं, तब अधिक जटिल और सूक्ष्म बनते हैं। जब हम अपने ये अनुभव के बारे में विचारों का आदान प्रदान करते हैं, या उसकी चर्चा करते हैं तब यह बौद्धिक स्तर पर करते हैं। उस स्तर पर या उसके नीचे के स्तर पर उसे समझने में या दूसरों को समझाने में हम दिक्कत नहीं आती। लेकिन जहाँ चौथा यानी आध्यात्मिक स्तर अंतर्भूत होता है, वहाँ हमें उसे, दूसरों के लिए तीसरे यानी बौद्धिक स्तर पर लाना पड़ता है। यह विविध प्रकार से किया जा सकता है। *जैसे त्रि परिमाणी (डायमनशन्स) चीज को द्वि परिमाण में विभिन्न तरीकों* से बताया जाता है। घनाकृति भूमिति के विद्यार्थी यह जानते हैं कि कोई भी *द्विपरिमाणी रखांकन त्रि परिमाणी चीज का ठीक से निरूपण नहीं कर पाता,* यद्यपि वह विविध समवनीय द्वि-परिमाणी निरूपण मूल से यथावत और प्रामाणिक है। बुद्धि से पर आध्यात्मिक अनुभवों का बौद्धिक वर्णन इसी तरह विविध रूप ले सकता है। वह न अप्रामाणिक होगा, न मूल अनुभव को पूर्णत: अभिव्यक्त करनेवाला होगा। जब यह विशिष्ट मुद्दा आ जाता है तब याग विज्ञान और अध्यात्म के बीच कोई संघर्ष सम्भव नहीं होता। तब मानवीय व्यक्तित्व के प्रथम तीन स्तरों पर प्राप्त शास्त्रीय तथ्यों के सम्मुख होने के लिए आध्यात्मिक मनुष्य को कोई भय नहीं रहेगा। चतुर्थ स्तर पर प्राप्त आध्यात्मिक अनुभव की चर्चा और विचारों का आदान प्रदान बौद्धिक स्तर पर करने में वैज्ञानिक को भी

परकीय या अनिच्छा नही रहेगी। दोनो के ध्यान में यह भी आयगा कि किसी को भी एकान्तिक वैज्ञानिक या निरा आध्यात्मिक बनना सधेगा नही। वास्तव में मनुष्य समाज में सृजनात्मक पुरुषार्थ के लिए विज्ञान और अध्यात्म, दोनों को एक दूसरे की जरूरत है। तकनीकी की प्रत्येक पद्धति विज्ञान का विनियोग है, जिसे न्यूनाधिक प्रमाण म अध्यात्म में मार्गदर्शन मिलता है। और प्रत्येक धर्म अध्यात्म का ऐसा प्रकटीकरण है, जो अपने नियमन और सगठन मे न्यूनाधिक प्रमाण में विज्ञान से सहायता पाता है।

पदार्थ विज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान के अब तक सीमित विज्ञान, या सगठित धम पथो तक सीमित सकुचित धम, दोनो म से कोई भी ज्ञान के मानव समाज की विविध समस्याओ का समाधानकारक उत्तर नही दे सकता, यह बात अब बहुत व्यापक प्रमाण में समझा जा रही है। कई चीजो के बारे में विज्ञान हमको 'कैसे' का जवाब देता है किन्तु 'क्यो' का जवाब वह दे ही पायेगा, एसा मान नही सकते। जीवन के उद्देश्य के और नीति या नीतिशास्त्र के आधार से सम्बद्ध बुनियादी प्रश्नो का उत्तर देन का वह प्रयत्न नही करता। विज्ञान न शक्ति की कुजी हासिल करा दी है। लेकिन आनन्द की नही। उसन मनुष्य के हाथ में अत्यधिक साधन स्रोत दे रखे है किन्तु उसने उसको यह नही बताया कि मानव सुख के लिए उसका कैसे उपयोग किया जा सकता है। जाहिर है, एसा विज्ञान आज के विश्व क प्रति अपना कोई उत्तरदायित्व पूरा नही कर सकता। पारम्परिक सगठित धर्मों म मनुष्य को मनुष्य के साथ, प्रकृति के साथ, परमेश्वर के साथ जोडने के अपने मूलभूत उद्देश्य की जगह अधविश्वास, कट्टरता, असहिष्णुता और मनुष्यो के बीच भेदो को ही प्रोत्साहन दिया है। विश्व के महान आचार्यों के मूलभूत सन्देशो की शुद्धता धमशास्त्रियो और तत्ववादियों के शुष्क भाष्यो में खो गयी। विज्ञान के डर से छिपनेवाले धर्म आज अपना कोई उत्तरदायित्व पूरा नही कर सकते।

विनोबाजी इन दिनो, बार बार भारपूर्वक कहते हैं कि आधुनिक मनुष्य की इस सकटापन्न अवस्था का सामना विज्ञान और अध्यात्म के सबल समन्वय से ही किया जा सकता है। गूढ अनुभूति प्राप्त करनेवाले तथा सत्य की खोज करनेवालो के अनुभवों को और शास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाय, यह आज के युग के लिए एक ज्वलन्त आवश्यकता है। भाषिक, राष्ट्रीय और जातीय अव रोधो को दूर करने में तथा मानव जाति की उदात्त धार्मिक पारम्परिक सम्पत्ति-रूप ग्रथों तथा उपदेशो को समझने में सच्ची वैज्ञानिक दृष्टि रही तो समाज बहुत

सारे संघर्षों और उलझनों से बच सकता है। विश्व के धर्मशास्त्रों के प्रति ऐसे पूर्वाग्रहरहित अभिगम की एक अनिवार्य परिणति यह होगी कि यह लोगों और राष्ट्रों के बीच संवादी और सहयोगी सहअस्तित्व की बुनियाद बनायेगा। विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय में रुचि रखनेवाले को चाहिए कि वह इसका प्रारम्भ करे। यह इसी से होगा कि जितनी प्रमुख धार्मिक परम्पराएँ हैं, उनमें से हर परम्परा के एक प्रातिनिधिक ग्रंथ का वह नम्रतापूर्वक और गहरा अध्ययन करे। यह काम भले ही सुगम न हो, विश्वशांति और विश्वमैत्री की दृष्टि से यह उसे करना होगा।

दुनिया के धर्मशास्त्रों का सरसरी अभ्यास भी यह दिखाता है कि उनमें से प्रत्येक में अति उदात्त बात कही गयी है, वैसे ही मामूली बातें भी उसमें पायी जाती हैं। उन सब में चमत्कार, गहनता और रहस्यमय अनुभव भी निर्दिष्ट होते हैं, जो आकलन के लिए सुलभ नहीं होते। इन धर्मशास्त्रों के कई वचनों के विविध अर्थ लगाये जा सकते हैं और कई वचन तो आज की परिस्थिति और समाज-रचना के सन्दर्भ में समझने में बहुत कठिन हैं। जिस प्रकार एक ही धर्मशास्त्र के अनुयायी उस ग्रंथ का अपनी बुद्धि के अनुसार अर्थ समझते हैं और उनका अपना भाष्य करते हैं, उसी तरह हम भी अनिवार्यतः इस निष्कर्ष पर आते हैं कि प्रत्येक साधक का अपना अनन्य धर्म होता है और दुनिया में जितने व्यक्ति हैं उतने धर्म हैं। वैज्ञानिक के लिए यह बात नयी नहीं है क्योंकि वह जानता है कि कोई भी दो मनुष्य शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक स्थिति में एक नहीं होते। वास्तव में आश्चर्य तो यही समझा जायेगा कि दो व्यक्तियों के धर्म एक से हो हैं, उनके बीच समान मुद्दे हो सकते हैं, यह दूसरी बात है। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि जिस स्वधर्म के तत्त्व को कुछ भारतीय धर्मग्रंथों में बहुत ही स्पष्टता से प्रतिपादित किया गया है उन स्वधर्म के और ऐसे वैयक्तिक अलग अलग धर्मों के लिए पारस्परिक आदर और सहिष्णुता का पूर्णतया समर्थन विज्ञान करता है।

उपरोक्त विश्लेषण के अनुसार यह बात स्पष्ट हो है कि विज्ञान और अध्यात्म के बीच संघर्ष का कोई कारण नहीं। मानव समाज की संगठित एकात्मता के पुनर्निर्माण के विराट कार्य में पहले कभी नहीं थी। उतनी मानव को आज दोनों की जरूरत है। शान्ति और समृद्धि की नयी दुनिया में प्रवेश करने के लिए, व्यक्तिगत राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान का समन्वय यद्यपि अभी वह व्यवहार में आना बाकी है—नितांत

आवश्यक है। तकनीकों और धर्मों का एक दूसरे से और आपस में भी संघर्ष तब तक चालू रहेगा, जब तक उसकी बुनियादों में विज्ञान और अध्यात्म का संवादी संयोजन नहीं रहेगा। इस प्रकार का वाञ्छनीय समन्वय प्राप्त करने की लम्बी और कष्टपूर्ण प्रक्रिया में बहुत सारी हानि दूर की जा सकती है और बहुत अधिक कल्याण प्राप्त किया जा सकता है। आज की तकनीकियों और धर्मों की मर्यादाओं का स्पष्ट भान और उस भान के परिणामस्वरूप एक दूसरे के धर्मों और तकनीकियों के प्रति पारस्परिक आदर-भाव के द्वारा ही कल्याण सध सकता है।

—बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, धातुकी विभाग के प्रमुख

•

राजेश्वर उपाध्याय

विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा क्यों? और कैसे?

एक-अध्ययन

'वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था एवं छात्र' विषय पर गत वर्ष एक स्थानीय संस्थान के तत्वावधान में एक गोष्ठी हुई। गोष्ठी में वाराणसी नगर के कुल २० व्यक्तियों ने भाग लिया। प्रस्तुत लेखक को भी गोष्ठी में भाग लेने का अवसर मिला। भाग लेनेवालों में अध्यापक, वकील तथा डाक्टर थे। कुछ लोगों ने इस बात पर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया कि शिक्षा क्षेत्र में बढ़ती हुई अराजकता को रोकने का क्या उपाय होना चाहिए? कुछ लोगों का दृष्टिकोण था कि जबतक हमारा समाज केवल भौतिक समृद्धि के लिए ही प्रयत्नशील रहेगा तब तक समाज में उथल-पुथल रहेगी और समाज के प्रतिबिम्ब के फलस्वरूप विद्यालयों में भी अशान्ति ही रहेगी। कुछ वक्ताओं के विचार से सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों में निरन्तर ह्रास होने के कारण हमारे विद्यालय अशान्ति के शिकार हो गये हैं अतएव उन मूल्यों की अभिवृद्धि करने से युवा जगत को सन्मार्ग पर ले जाया जा सकता है। एक प्रमुख वक्ता से जब पूछा गया कि सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकासार्थ कौन सा उपाय उचित है तो उनका उत्तर था कि विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जाय। अधिकांश लोगों का विचार था कि धर्म के ज्ञान से उच्चतम मूल्यों का विकास हो सकता है, धार्मिक शिक्षा से छात्रों में आत्मबल की वृद्धि हो सकती है तथा नैतिक-सामाजिक स्तर का उन्नयन धार्मिक शिक्षा से ही सम्भव है। इस प्रकार के विचारों को सुनने के पश्चात प्रस्तुत शोधकर्ता के मन में इस विषय पर शिक्षाविदों के विचार जानने की जिज्ञासा हुई।

प्रक्रिया—अध्ययन का क्षेत्र केवल वाराणसी नगर ही रखा गया। चूँकि नैतिकता के निर्माण की नींव मुख्यतः हाईस्कूल स्तर पर ही बनती है अतः उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों तक ही अध्ययन को सीमित रखा गया। इस प्रकार १० वर्ष या उससे प्राचीन उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के ९५ प्रधानाचार्य तथा उन्हीं विद्यालयों के ५ वर्ष या उससे अधिक अनुभवी ५, ५ अध्यापक अध्ययनार्थ लिये गये। इस प्रकार ९० व्यक्तियों का कुल नमूना (सैम्पुल) लिया गया तथा केवल दो प्रश्न प्रत्येक को दिये गये।

प्रश्न १—क्या अन्य विषयों की भाँति धर्म की शिक्षा को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाय?

२—यदि स्थान दिया भी जाय तो क्या उसे *अनिवार्य विषय* रखा जाय?

अध्ययन कई महीनों तक चलता रहा तथा उसकी विधि सुव्यवस्थित साक्षात्कार की रखी गयी। जब भी शोधकर्ता को समय मिलता था तो वह नमूने के सदस्यों से सम्पर्क स्थापित करता था तथा उनकी विचारधारा को जानने का प्रयत्न करता था। उनके विचारों को जानने के पश्चात् वह उन्हें स्वीकारात्मक, निषेधात्मक एवं सुझावात्मक तीन विभागों में विभक्त कर देता था। उनकी संख्या एवं प्रतिशत निम्न तालिका के रूप में अन्तिम रूप से रखा गया

उत्तर—१	स्वीकारात्मक	निषेधात्मक	सुझावात्मक
वास्तविक उत्तरदाता	२५	५०	६०
प्रतिशत उत्तरदाता	२७·८%	५५ ६%	६६ ७%
उत्तर—२			
वास्तविक उत्तरदाता	१५	४०	५०
प्रतिशत उत्तरदाता	२५%	६६ ७%	८३ ३%
		पूर्ण संख्या—६०	

तालिका का आधार—९० व्यक्तियों के नमूने में २५ ने उत्तर दिया कि धर्म की शिक्षा को अन्य विषयों की भाँति पाठ्यक्रम में उचित स्थान दिया जाय तथा ५० व्यक्तियों ने धर्म को पाठ्यक्रम में अलग से पाठ्य विषय बनाने का निषेध किया, पर स्वीकार करनेवाले सभी २५ व्यक्तियों ने तथा धर्म को अलग से विषय बनाने के विरोधियों में से ३५ व्यक्तियों ने धार्मिक शिक्षा के महत्त्व का प्रतिपादन किया तथा धार्मिक शिक्षा कैसे दी जाय इस पर सुझाव भी दिया। इस प्रकार धार्मिक शिक्षा की अनिवार्यता पर बल देनेवाले कुल ६०

व्यक्ति हुए। द्वितीय प्रश्न का निरूपण उन्ही ६० व्यक्तियों के उत्तरों से किया गया। १५ व्यक्तियों ने एक अनिवार्य विषय के रूप में धार्मिक शिक्षा को रखना चाहा। ४० व्यक्तियों ने धार्मिक शिक्षा को अलग से अनिवार्य होने पर आपत्ति प्रकट की। उन लोगों का कहना था कि जो व्यक्ति धार्मिक शिक्षा नहीं चाहता उसके ऊपर उसकी रुचियों के विपरीत धार्मिक शिक्षा एक विषय के रूप में क्यों थोपी जाय? साथ ही स्वीकारात्मक उत्तर के १५ व्यक्ति तथा निषेधात्मक उत्तर के ३५ व्यक्तियों ने छात्रों में नैतिक बल के विकास पर बल देते हुए अपने विभिन्न सुझाव प्रकट किये। इस प्रकार यह देखा गया कि केवल २७.८ प्रतिशत लोग ही धार्मिक शिक्षा को अलग से विषय बनाने के पक्ष में थे, पर ६६.७ प्रतिशत लोग किसी न किसी रूप में धार्मिक शिक्षा के पक्षपाती थे। धार्मिक शिक्षा के पक्षपाती लोगों में से ८३.३ प्रतिशत ऐसे व्यक्ति थे जिनका विचार था कि धर्म को अलग से विषय के रूप में न पढ़ाकर उद्धरणों एवं प्रत्यक्ष उदाहरणों के आधार पर धार्मिक शिक्षा दी जाय। इन लोगों का धार्मिक शिक्षा से तात्पर्य नैतिक शिक्षा से था।

कुछ मनोरंजक उत्तर : एक २० वर्ष के अनुभवी प्रिंसिपल ने कहा कि राष्ट्रीय एकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिज्ञान के लिए सभी धर्मों के मूलभूत तत्वों की जानकारी मनुष्य के लिए आवश्यक है।

२—एक अवकाश ग्रहण करनेवाले प्रिंसिपल का कथन था कि बालकों को प्रेरणा प्रदान करने का एक मात्र स्रोत धर्म ही है अतः धार्मिक शिक्षा अनिवार्यतः दी जानी चाहिए।

३—एक ५ वर्ष के अनुभवी अध्यापक का उत्तर था कि धर्मनिरपेक्ष राज्य में सभी धर्मों की सामान्य बातों का संग्रह करके विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यम से धार्मिक शिक्षा दी जाय तथा छात्रों को विभिन्न धर्मों की संकीर्णता से दूर रखा जाय।

४—एक अ. म. विद्यालय के ७ वर्ष के अनुभवी अध्यापक ने कहा कि धार्मिक शिक्षा कोई अलग से विषय नहीं है। अतः महापुरुषों की जीवनी तथा उच्च आदर्शों के उदाहरण द्वारा धार्मिक शिक्षा दी जाय।

५—एक अत्यन्त सुलझे हुए व्यक्ति का उत्तर था कि धार्मिक शिक्षा का रूप नैतिक होना चाहिए, इसके द्वारा छात्रों का चरित्र निर्माण किया जाना चाहिए। इसके लिए विद्यालय के अध्यापक अपने कार्यों द्वारा ऐसा आदर्श

परिणत करें कि छात्रों में कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक उत्पन्न हो तथा समयोचित कार्य करने के लिए वे स्वत: प्रवृत्त हों। इसकी शिक्षा के लिए धार्मिक शिक्षा को पाठ्यविषय बनाने की आवश्यकता नहीं है।

उपर्युक्त अध्ययन से लेखक ने यह निष्कर्ष निकाला कि धार्मिक शिक्षा हमारे विद्यालयों में तो दी ही जानी चाहिए पर धर्म की शिक्षा के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक शिक्षा के रूप में, कर्त्तव्य की शिक्षा के रूप में, तथा सामाजिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में, व्यावहारिक शिक्षा के रूप में, भारतीय परम्परा में धर्म का अर्थ रेलिजन नहीं है। रेलिजेन का प्रयोग संकीर्ण अर्थ में किया जाता है, पर 'धर्म' की परिभाषा की गयी है 'धारणाद्धर्ममित्याहु' अर्थात् जिसके धारण करने से व्यक्ति एवं समाज का हित निहित है वही धर्म है। इसी लिए मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षण धृति क्षमा दमो—दशकं धर्मलक्षणम् जो कहे गये हैं वे सभी नैतिक एवं व्यावहारिक मूल्यों की ओर इंगित करते हैं। साथ ही कोई भी अन्य धर्म इन मूल्यों का विरोधी नहीं, अत: कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेक कराना ही धार्मिक अथवा नैतिक शिक्षा है। इस प्रकार की शिक्षा विद्यालयों में अध्यापकों के व्यवहार, खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा अन्य शैक्षणिक क्रियाओं के सुचारु संचालन से सम्यक् रूप से दी जा सकती है।

उपर्युक्त विवेचन लेखक द्वारा प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से निकले तथ्यों पर ही आधारित है। अत: इस प्रकार का विश्लेषण एवं परिणाम सर्वथा नहीं है। विचारक लोग अन्य प्रकार की विचारधाराओं को भी प्रकट कर सकते हैं। इतना अवश्य है कि विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए आधुनिक भारत धर्म-निरपेक्षता, भारतीय संस्कृति की भूमिका, भारत की परम्परा तथा आधुनिक नवोदित मूल्यों के सन्दर्भ में से किसी की भी अवहेलना हम नहीं कर सकते।

●

सम्पादक मण्डल :
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वंशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष : २०
अंक : १०
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

मई, '७२

•

● 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
● 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
● पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
● रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित
अनुपम प्रेस, के० २३/२० दुर्गाघाट, वाराणसी में मुद्रित

पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

"भारत और अणुबम"

भारत अणुशक्ति का उपयोग शान्ति एवं विकास के लिए रचनात्मक कार्यों में करे या सुरक्षा अथवा एशिया के शक्ति-सन्तुलन बनाये रखने के नाम पर अणुबम के निर्माण में, यह प्रश्न चीन द्वारा अणु विस्फोट के बाद भारत में कई बार उठाया गया है। भारत में एक वर्ग ऐसा है जो चीन की तुलना में भारत के पास अणुबम रहना अति आवश्यक मानता है।

एक ओर जहां मानवीय सम्बन्धों का दायरा विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व तक फैला है, वहीं मानवीय स्वार्थ और संघर्षों के दायरे भी बढ़े हैं। संघर्षों के बढ़ते हुए दायरे में सुरक्षा के नाम पर आज इतने ध्वंसात्मक अस्त्रों का निर्माण हुआ है कि उनसे इस विश्व को कई बार नष्ट किया जा सकता है। शस्त्र निर्माण की होड़ में अणुबम से भी अधिक ध्वंसात्मक शस्त्रों का निर्माण हो चुका है, अणुबम या इससे भी अधिक संहारक शस्त्रों के निर्माण की यह होड़ हमें विनाश के किस कगार पर ले जाकर खड़ा करेगी यह कहना अब अति कठिन हो गया है। फिर भी भारत में अणुबम बनाने की मांग किसी-न किसी कोने से आ ही रही है।

आपकी यह छोटी-सी पुस्तिका अणुबम की अनिवार्यता को समझने में करेगी।

पृष्ठ ३६, मूल्य ५० पैसे

प्रकाशक अ० भा० शान्तिसेना मण्डल, राजघाट, वाराणसी–१

आवरण मुद्रक : वर्धमान प्रेस मानमन्दिर वाराणसी-१

नयी तालीम

सर्व-सेवा-संघ की मासिकी

वर्ष : २०
अंक : ११

अखिल भारत
नयी तालीम
सम्मेलन
अंक

वर्ष : २०
अंक : ११

इस अंक के विषय में

३-४ जून १९७२ को एक युग के बाद देश भर के नयी तालीम के निष्ठावान कार्यकर्ता शारदाग्राम, गुजरात में मिले। १९५९ में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के सर्व सेवा संघ में विलयन के बाद यह नयी तालीम का पहला अखिल भारतीय सम्मेलन था।

शारदाग्राम भारत में अपने ढंग का एक ही बुनियादी शिक्षण संस्थान है। विद्या के मन्दिर का वातावरण कितना पवित्र, कितना स्वच्छ हो सकता है—यह वही जान सकते हैं, जो शारदाग्राम हो आये हैं। नारिकेल के झुरमुटों और आम्रकुञ्जों के बीच में आधुनिक ढंग के साफ सुथरे पक्के भवनों में बसी हुई बुनियादी शिक्षा की यह संस्था अचानक प्राचीन आश्रमों की याद दिला देती है। एक अपूर्व मिलन हुआ है यहाँ नये और पुराने का, सादगी और वैभव का।

शारदाग्राम सुन्दर है भव्य है। अच्छा हुआ यहाँ बुनियादी शिक्षा का सम्मेलन बुलाया गया। एक मूक सन्देश दिया शारदाग्राम ने कि 'बुनियादी शिक्षा के कार्यकर्ताओं—देखिए, बुनियादी शिक्षा की संस्था ऐसी हो सकती है और कोई कारण नहीं कि बुनियादी शिक्षा में निष्ठा रखनेवाले यदि प्रयास करें तो देश की सारी बुनियादी संस्थाएँ शारदाग्राम न बन जायँ, भले ही उनमें इतने सुन्दर नारिकेल और आम्रकुञ्ज न हों।'[२]

अस्तु, शारदाग्राम के इस पवित्र वातावरण में बैठकर बुनियादी शिक्षा के उसूलों में निष्ठा रखनेवाले देशभर के कुछ चुने हुए कार्यकर्ताओं ने बुनियादी शिक्षा की समस्याओं पर दो दिन तक विचार विमर्श किया। इस सम्मेलन का चिन्तन ही इस अंक का विषय है।

आशा है शारदाग्राम के चिन्तन से देश में ऐसा वातावरण बनेगा जिसमें बेसिक शिक्षा का कार्यान्वयन सहज हो सकेगा, और राष्ट्र की शिक्षा-जगत की समस्याओं का हल निकलेगा।

—वंशीधर श्रीवास्तव

उच्छंग राय नवल किशोर ढेबर

समाज-परिवर्तन का कार्य महान शिक्षक ही कर सकते हैं

[अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष श्री उच्छंग राय नवल किशोर ढेबर थे। आप अपनी बीमारी के कारण स्वयं उपस्थित नहीं हो सके थे, परन्तु अपना लिखित भाषण आपने भेज दिया था, जो यहाँ दिया जा रहा है।—सं०]

गुजरात का यह सौभाग्य है कि इस प्रकार के अखिल भारतीय सम्मेलन का दूसरी बार मेजबान बनने का मौका मिल रहा है।

चूँकि मेरा इस संस्था के साथ नाता जुड़ा हुआ है इसलिए आप सब लोगों का स्वागत करने का मुझे आकस्मिक योग मिल गया है। हमारे जैसे कुछ लोग, जो आकण्ठ राजनीति में डूबे हुए हैं, उन्हें अपने राजकीय जीवन के प्रारम्भ में ही दर्शन हो गया था कि प्रजा की आध्यात्मिक या सांस्कृतिक जड़ के साथ सम्बन्ध न रखनेवाली राजनीति बालू की नींव पर खड़ी की गयी इमारत जैसी है। हमें यह भी दिखायी दिया कि हम राजनैतिक कार्यक्रम चलाने के लिए शक्तिशाली थे, मगर इस प्रकार के काम के लिए हम योग्य नहीं थे। आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत की हिफाजत तो शिक्षक ही कर सकता है। गुजरात के अन्य राजनैतिक नेताओं की तरह ही मैं भी इस दृष्टि से शिक्षा संस्थाओं की स्थापना में तथा उन्हें खड़ी करने में साथ देता रहा हूँ। इस क्षेत्र में मुझे स्वर्गीय श्री नाना भाई भट्ट की, जो लोकभारती सणोसरा की आत्मा और प्राणस्वरूप थे,

और आज जिसकी परिवरिश थी मनुभाई पचोली कर रहे हैं, उनका साथी बनने का योग हुआ। इसी मार्ग पर चलते हुए अलियाबाडा को गगाजला, विद्यापीठ की ज्योति समान स्वर्गीय श्री डोलर भाई माकड, वल्लभ कन्या केलवाणी मण्डल के जन्मदाता स्वर्गीय श्री दरबार साहब, गोपाल दास देसाई, तथा इस गारदाग्राम को प्राण प्रतिष्ठा करनेवाले और उसे संजीवनी देनेवाले श्री मनसुख राम भाई जैसे महानुभावो का सग लाभ हुआ। इन सभी सस्थाओ में मेरा जो भी स्थान है वह उसे कुछ खोजने के लिए है। क्योंकि मुझे प्रतीति हुई है कि जिस राजपुरुष को लोगो के चारित्र्य के गठन में दिलचस्पी होगी, उसे अनुभव होगा कि राजनीति की प्रेरणा का मूल स्रोत ढूँढने के लिए उसे और गहराई में जाना होगा और यह काम शिक्षक ही कर सकता है।

मेरा मुख्य रस शिक्षा नहीं बल्कि राजनीति है। फिर भी मेरे जैसा के हिसाब से भारतीय समाज मनुष्य जाति के विकासक्रम में एक असाधारण हिम्मत का प्रयोग है। कई धूप-छाँव के बीच उसने जीवन की एक ऐसी परम्परा विकसित की है जिसमें खुद को टिके रहने की शक्ति तो दी ही है, मगर समग्र मनुष्य जाति को भी कुछ चिरतन मूल्योंवाली परसादी समर्पित की है। इसका कारण कोई अन्तःप्रेरणा हो या सामाजिक विरासत में मिली प्रतिभा भी हो, मगर इस हकीकत का इनकार नहीं किया जा सकता है कि अनेक उत्थान-पतन के बीच भी उसने सस्कारित सयानपन और आध्यात्मिक ज्ञान का विशाल खजाना इकट्ठा किया है, और मनुष्य जाति के चरणो में समर्पित किया है।

क्या हम ऐसे किसी समाज की कल्पना कर सकते हैं कि जिसने नासदायक गरीबी के बीच भी जीवन के एक छोर पर उर्ध्वगामी मूल्यो को सम्भाल रखा हो और जिसकी प्रेरणा से महावीर, बुद्ध, शकर, माधव, वल्लभ, तुलसी, मीरा, नरसिंह, ज्ञानेश्वर, तुकाराम नामदेव, तिरुवल्लर, कबीर, गुरुगोविन्द सिंह, रामकृष्ण, विवेकानन्द, अशोक, प्रताप, शिवाजी, टैगोर, गाधी और नहरू जैसों की परम्परा चलती रहे और दूसरी छोर पर देखें तो अपार धीरजवाली-शान्त मनवाली गृहिणी है। ८ करोड झोपडो में बसनेवाली इन गृहिणियो पर आज और आनेवाले कल की चिंता का दुख भरा बोझ रहता है। ऐसी परिस्थिति में भी वह अपने गौरव को भूली नहीं है। चारित्र्य के लिए अपने आदर का, कुटुम्ब वात्सल्य को, अपने सृजनहार ईश्वर को, गौमाता, पीपल और सबसे अधिक अमूल्य धन समान अपने बच्चो को वह कभी भूली नहीं है।

ऐसी निष्ठा का सृजन करने के लिए कितना सस्कार सिंचन हुआ होगा,

इस ध्येय के लिए कितने संस्कारदाताओं ने अपने जीवन को कितनी सदियों तक समर्पित किया होगा ? इस बात का जब मैं विचार करता हूँ तब जिन्होंने यह सिद्धि प्राप्त की है उन संस्कारदाता गुरुओं के चरणों में मेरा सिर झुक जाता है।

गांधीजी अपनी पहचान शिक्षाशास्त्री के हैसियत से कभी नहीं देते थे। मगर उन्होंने जो सामाजिक परिवर्तन किया है वह तो स्पष्ट तथा खुला है। तीन दशक में उन्होंने हिन्दुस्तान की सूरत पलट डाली।

पिछले डेढ़ दशक में गुजरात में नयी तालीम का जो कुछ विकास हुआ, इसके सम्बन्ध में मेरी जानकारी नहीं है। इसकी तफसील देने का बोझ मैं जुगत-राम भाई तथा पचोली भाई पर डालता हूँ। मगर एक बात मैं कह सकता हूँ कि जिन्होंने यह रास्ता पसन्द किया है वे इस देश की खासियत के अनुसार उससे दृढ़तापूर्वक चिपके हुए हैं। जुगतराम भाई, दिलखुश भाई, मनुभाई, मूलशंकर भाई, गुजरात विद्यापीठ के मित्र, सब यहाँ हैं, मगर दो महानुभावों का अभाव हमें अखरता है श्री नाना भाई भट्ट तथा श्री डालर भाई। वे इस नयी तालीम के मोर्चे पर की आखिरी पंक्ति में जूझते हुए कुर्बान हो गये हैं।

गांधीजी के बताये हुए कार्यक्रम में गुजरात की भक्ति रही है। इसका अर्थ यह न कीजिएगा कि हम हर कसौटी में सफल हुए हैं। मगर इसकी तड-पन के बारे में शंका की गुंजाइश नहीं है। इसका कारण कोई रागात्मक झुकाव नहीं है। हम तो हैं व्यवहार-परायण। गांधीजी के कार्यक्रमों के परिणाम हमने देखे हैं। सबसे ज्यादा तो उनके लोकडतर के रचनात्मक अभिगम ने हमें कार्य-कर्ताओं की एक बड़ी फौज दी है। इनमें से कुछ तो हैं अडिग और मुट्ठीभर ऊँचे लोकनेता। कईयों ने तो विश्वविद्यालय की उपाधि प्राप्त करने के बाद भी देहातों की धूल में दब जाना पसन्द किया है। श्री मनुभाई और रामलाल भाई इसके आँकड़े दे सकेंगे। शिक्षा की यह एक महत्त्व की कसौटी है।

सौराष्ट्र के करीब ३०० राजाओं में गांधी ने आत्मखोज की प्रक्रिया का प्रवेश कराया। राजाओं ने भी ख्याल किया कि समय पलटता जा रहा है, इसके साथ हमें भी बदलना होगा। सरदार की सहायता से उन्होंने अपने राज्यों कि एकत्रीकरण की प्रक्रिया शुरू की। इतना ही नहीं, ढीठ माने जाते राजपुरुषों के चोरों को भी उन्होंने मैंसे पसीजा डाला।

जमींदारी उन्मूलन का कानून भी जमींदारों की सम्मति से ही पास किया गया था, यह भूलना नहीं चाहिए। इस प्रक्रिया को सफल करने में सौराष्ट्र कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने काम का जो हिस्सा रहा है उसका मूल्य तो आंका ही

नहीं जा सकता है। समाज-परिवर्तन में कार्यकर्ताओं की फौज का निर्माण तथा पुरानी रचना का शान्तिमय परिवर्तन कोई छोटे शिक्षक का कार्य थोड़े ही हो सकता है?

इस तरह आज हमारे यहाँ ३०० के करीब रचनात्मक केन्द्र चलते हैं। कुछ तो दूर दूर के जंगलों में हैं। कहीं नमूनेदार जंगल, सहकारी मण्डलियाँ चलायी जाती हैं, कहीं नमूनेदार खादी पैदा की जाती है और हमारी बच्चों को कपड़े की दृष्टि से स्वावलम्बी बनाया जाता है। हमारी कमियाँ भी हैं। हम उनसे नावाकिफ नहीं हैं। हमारे किये हुए भूमि सुधार-कानून को और अधिक ठीक करने की जरूरत है। इसका मतलब यह हुआ कि किसान का थोड़ा बहुत शोषण हुआ ही करता है। सम्पत्ति की आयों में, या सम्पत्ति रखने के सम्बन्ध में बड़ी भारी असमानता है। इसका अर्थ है कि सामाजिक शान्ति पर से भय का बादल अभी पूरा हटा नहीं है। अस्पृश्यता-निवारण का काम भी जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं हुआ है। शिक्षण-संस्थाएँ विद्यार्थियों से छलछला गयी हैं। मगर गुणवान शिक्षक-समूह जिस परिमाण में मिलने चाहिए उतने मिले नहीं हैं। इसकी कमी विद्यार्थियों को बाधारूप होती है। जीवन के जिन मूल्यों ने भारत और गुजरात को टिकाया है, उनमें यहाँ भी अब धीरे-धीरे उतार आ रहा है।

ये सब समस्याएँ हैं और शिक्षा के मार्फत ही इनका हल हो सकता है। पाठ्यक्रम का लगातार सुधार तथा वैज्ञानिक निरीक्षण परीक्षण की लगातार आवश्यकता बढ़ी है। मगर इस दरम्यान तालीम की बुनियाद को बदलना पड़ेगा। घर के जीवन, जहाँ इस राष्ट्र की संस्कारिता, इस राष्ट्र की आध्यात्मिक तथा आर्थिक परिस्थिति का रसायन तैयार हो रहा है, के साथ शाला-जीवन का सम्बन्ध जोड़ना पड़ेगा। तभी हमें गांधीजी की तरह अपनी विरासत की गहराई-भरे समानेपन की प्राप्ति होगी।

यह तो एक आम आदमी की हैसियत से मेरी अपेक्षा है। इस सम्मेलन में जिन विषयों की चर्चा होनेवाली है उस पर अधिकार रूप से कुछ कहने की मेरी योग्यता नहीं है। मगर मुझे यहाँ एकत्रित समुदाय के पुरुषार्थ के सम्बन्ध में गहरी श्रद्धा है।

●

देश के विकास के लिए बुनियादी शिक्षा

[ता० ३ ६ '७२ को शारदाग्राम गुजरात में अखिल भारत नयी तालीम सम्मेलन में राज्यपाल श्री श्रीमन्नारायणजी का अध्यक्षीय भाषण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है–स०]

मेरा ख्याल है कि शायद १० साल के बाद इस प्रकार का अखिल भारतीय बुनियादी तालीम सम्मेलन शारदाग्राम में आज मिल रहा है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार का सम्मेलन बहुत पहले होना चाहिए था और हर वर्ष हमको मिलना चाहिए।

मैं बहुत आभारी हूँ शारदाग्राम के संचालकगणों का और गुजरात के नयी तालीम संघ के पदाधिकारियों का जिन्होंने यह सम्भव किया कि हम यहाँ एक बार फिर मिलें और जो समस्याएँ बुनियादी तालीम के सम्बन्ध में है उनपर कुछ चर्चा करें, विचार करें और तेजी से आगे बढ़ें। एक खास उद्देश्य सम्मेलन का यही है कि देश के विभिन्न भागों के जो कार्यकर्ता इस क्षेत्र में हैं जिन्होंने वर्षों तक काम किया है वे एक दूसरे से मिलें, अपने राज्य में बुनियादी तालीम का क्या हाल है उसका भी जिक्र करें और हमें जानकारी दें और सब मिलकर यह सोचें कि जो सिलसिला पूज्य बापूजी ने सन् १९३७ में प्रारम्भ किया था उसको अब हम कैसे आगे बढ़ायें। इसके विस्तृत इतिहास में मैं जाना नहीं चाहता। कुछ खट्टा भी है कुछ मीठा भी है। लेकिन अब सवाल तो यह है कि अब हम क्या करें? किस तरह इस काम को प्रगतिशील बनायें?

यह सभी मानते हैं। राष्ट्रपतिजी और प्रधानमंत्रीजी से लेकर सारे देश के मुख्यमंत्री और शिक्षामंत्री तक, कि आज की शिक्षा में आमूल परिवर्तन होना चाहिए। जब मैं पिछले ही महीने पूज्य विनोबाजी से पवनार आश्रम में मिला, तो उन्होंने मुझसे यही सवाल पूछा। मैंने जिक्र किया यहाँ सम्मेलन हो रहा है हम सब जायेंगे वहाँ, तो उन्होंने प्रश्न पूछा कि इतने आपके कमीशन बैठे, इतनी रिपोर्ट पेश की गयी, राष्ट्रपतिजी से लेकर प्रधानमंत्रीजी, मुख्यमंत्री, शिक्षामंत्री, और शिक्षाशास्त्री तक सभी कहते हैं कि शिक्षा में आमूल परिवर्तन किया जाय लेकिन होता नहीं? इन कमीशनों का होता

क्या है ? क्या प्रचार किया जाता है उसकी सिफारिशों का ? उनका खास प्रश्न यह था कि जो कुछ आपने तय किया है, अच्छा है या बुरा पूरा सन्तोषजनक है या नहीं है लेकिन उस पर अमल क्यों नहीं होता। यह क्यों सब रिपोर्टें वैसे ही कार्यालय की अलमारियों में सुशोभित की जाती हैं ?

भारत सरकार की तरफ से बेसिक एजुकेशन एवेंल्युएशन कमिटी बनायी गयी थी उसके अध्यक्ष श्री जी० रामचन्द्रन् थे जो आजकल खादी ग्रामोद्योग कमीशन के अध्यक्ष हैं। तो वे देश में काफी घूमे, राज्य सरकारों से भी चर्चा की और उनका निष्कर्ष यह निकला कि बेसिक एजुकेशन इसलिए आगे नहीं बढ़ा क्योंकि शासनने उसका साथ नहीं दिया। शासन ने जिस तीव्रता से, उत्साह से और जिस श्रद्धा से इसको आगे बढ़ाना चाहिए था वह नहीं बढ़ाया। इस प्रकार से वह विफल गया! मैं भी यह मानता हूँ कि पूज्य बापूजी ने सन् १९३७ में जो विचार पेश किये थे उनमें परिवर्तन स्वाभाविक हो गया है। और जो योजना सन् १९३८ में जाकर हुसेन कमिटी ने पेश की थी वह हू बहू लागू नहीं की जा सकती। जाहिर है कि उस वक्त न तो हमारे हाथ में यहाँ के विकास का कोई काम था न कोई देश में योजना थी, न कोई संयोजन था, न कोई पंचवर्षीय योजना बन पायी थी। लेकिन आज जब हम सन् १९७२ में मिल रहे हैं तो देश का नक्शा काफी बदला हुआ है। हमें आजाद हुए २५ वर्ष हो गये हैं। चार पंचवर्षीय योजनाएँ करीब समाप्त हो रही हैं। हजारों करोड़ रुपये विकास-कार्य में खर्च हुए हैं और हो रहे हैं। केन्द्र सरकार और सभी राज्य सरकारें स्वतन्त्र हैं। हमारा संविधान है। उसमें भी कई आदेश दिये गये हैं—बुनियादी आदेश, डायरेक्टिव प्रिंसिपल्स उन सबको हमें अमल में लाना चाहिए। इसलिए इस समय जो बुनियादी तालीम का ढाँचा होगा उसमें सन् १९३८ से विस्तार में कुछ फर्क होगा। लेकिन मूल सिद्धान्त तो वही रहेगा। उसके विस्तार में जरूर फर्क होगा।

पहले हमने बुनियादी शिक्षा का अनुबन्ध (को रिलेशन) रखा था वह कताई बुनाई से था। मैंने एक बार बापूजी से पूछा कि आपने खेती के बारे में जोर क्यों नहीं दिया। उन्होंने मेरी तरफ देखा और कहा, 'श्रीमन, क्या बात करते हो ? इसके बारे में हमारा क्या अनुभव है। न हमारे हाथ में कोई सत्ता है। जब तक कि काफी भूमि सुधार न किये जायँ, कृषि विकास के लिए कार्य न किये जायें, मैं उसको किस तरह से महत्त्व दूँ। वह बात एक कागज पर रह जायगी। लेकिन खादी और ग्रामोद्योग का अनुभव हमने वर्षों किया है। विनोबाजी

ने अपनी सारी शक्ति लगायी है। इसलिए सहज हमने यह चीज ले ली। लेकिन कृषि का हो सके तो जरूर करो। उन्होंने यह भी कहा कि जिस जगह जिस क्षेत्र में जो उद्योग चलता है उसको लीजिए। मेरा यह आग्रह नहीं है कि आप खादी ही लें। कताई बुनाई इसलिए ली गयी कि वह सहज प्राप्त एक उद्योग था जिसके पीछे अनुभव भी था। लेकिन जिस क्षेत्र में जो उत्पादक काम आप दे सकें विद्यार्थियों को उस काम के मार्फत शिक्षा दी जाय। यह बापूजी ने सब कहा। जाहिर है आज कि जब इतना विकास का काम गाँव गाँव में, हर क्षेत्र में चल रहा है तो उससे हम अनुबन्ध करें। उसमें कृषि भी आ गयी और उद्योग भी आ गया। इसमें खेती आ ही जाती है। पशुपालन भी आ गया। जहाँ जंगल है वहाँ वन विभाग से सीधा सम्बन्ध आता है। जो हमारे तट हैं, खास तौर से गुजरात का जैसा कोस्ट है ७०० मील का, वहाँ फिशरीज से सम्बन्ध आ ही जाता है। समुद्र के किनारे के लोगों को खादी सिखायेंगे तो कहेंगे कि दिन रात तो काम हम समुद्र में करते हैं खादी का काम क्यों सिखाते हैं? तो जहाँ जो चीज है उससे हमको सम्बन्ध जोड़ना है। जो जहाँ विकास का काम चल रहा है उससे विद्यार्थियों को परिचित कराना है।

इस दृष्टि से मेरे ख्याल से गुजरात में कुछ वर्षों से काम हुआ है। वैसे तो शुरू से ही हुआ है लेकिन कुछ वर्षों से इस दृष्टि से बहुत अच्छा काम रहा है। यहाँ के शिक्षा विभाग ने श्री मनुभाई पचोली की अध्यक्षता में दो साल पहले एक कमिटी बनायी थी कि बुनियादी शिक्षा का मूल्यांकन किया जाय, बुनियादी तालीम का विकास के काम से सम्बन्ध जोड़ा जाय और उसकी एक योजना बनायी जाय। सो वह योजना भी तैयार हो गयी है। कई बातों पर तो अमल भी शुरू हुआ है। उसका कुछ साहित्य है वह आपको उपलब्ध हुआ होगा। यहाँ शिक्षा विभाग की तरफ से रखा भी गया है। आप उसको जरूर लें और उसका अध्ययन करें। मैं आशा रखता हूँ कि गुजरात में यह काम अब और भी बड़ी तेजी से चलेगा। पिछली जून में अर्थात् जून सन् '७१ से जितनी यहाँ प्राथमिक शालाएँ हैं, बुनियादी और गैर-बुनियादी उन सबमें बुनियादी तालीम के जो मूल सिद्धान्त हैं उनको लागू करने की कोशिश की गयी है। अब इस जून से यह प्रयत्न है कि अभी जो नया अभ्यासक्रम बना है गुजरात में, उसमें विकास से सम्बन्ध जोड़ दिया गया है। इस नये पाठ्यक्रम को एक से सात कक्षा तक सब में लागू किया जायगा। यह भी कोशिश है कि पंचायतों से इसमें काफी सहकार प्राप्त किया जाय और वे हर स्कूल में इस काम को आगे बढ़ायें—सात कक्षा के

बाद भी। मुझे खुशी है कि गुजरात ने नयी तालीम के झण्डे को फहराये रखा है और यहाँ उसे बढाने की पूरी कोशिश की जारही है।

अब सवाल यह है कि नयी तालीम समिति और हम सब मिलकर, जो इस काम में प्रारम्भ से लगे हुए हैं, किस प्रकार इस काम को बढ़ायें। देश में किस प्रकार बुनियादी तालीम के लिए फिर एक उत्साहपूर्ण वातावरण बने। यह हमें नही भूलना चाहिए कि देश में बुनियादी तालीम के लिए वातावरण पूरा नही बन पाया है जनता में। कई जगह माँग की गयी, दिल्ली का मुझे ख्याल है कि वहाँ के जिला परिषद ने माँग की है कि बुनियादी तालीम को हटा कर हमको मामूली तालीम आप दीजिए। बिहार में बुनियादी स्कूल का नाम बदल कर मिडिल स्कूल रख रहे हैं। गुजरात में भी कठिनाइयाँ हैं। अब यह दुख की बात है। कुछ तो जो अधिकारी होते हैं उनका पूरा सहकार नही मिलता। कुछ गलतियाँ भी होती है। आज जो नयी तालीम का काम चलता है उसमें जो शिक्षक की योग्यता है, उनकी ट्रेनिंग है, उसमें भी कमी है, यह मैं मानता हूँ। इसकी वजह से भी हम लोगो में सब जगह श्रद्धा पैदा नहीं कर पाये। चूँकि जब तक जनता में पूरी श्रद्धा न हो, पूरा उनका समर्थन न हो, तब तक सरकारें भी हिम्मत हार जाती हैं। चूँकि आखिरकार हर एक सरकार को वोट चाहिए। अगर बुनियादी तालीम के लिए वातावरण अनुकूल हो तो कोई सरकार उसकी अवहेलना नही कर सकती।

दो-तीन बातें तो बिलकुल स्पष्ट हैं। पहली बात तो यह है कि अगर हम चाहते हैं कि हमारे देश का आर्थिक विकास तेजी से बढे, समाजवाद का ढाँचा यहाँ विकसित हो, तो हमको देश में उत्पादन बढाना होगा। बिना उत्पादन बढाये न समाजवाद आ सकता है और न लोकशाही टिकेगी। लेकिन उत्पादन कैसे बढे ? एक तरफ जो नयी पीढी है उसे हम निकम्मा बनाते जायें, सिर्फ किताबें पढ़ायें, और जो काम करता हो वह भी काम न करे, तो इससे कैसे होगा ? जब मैं प्लानिंग कमीशन का सदस्य था तो जगह-जगह जाता था और अगर प्राइमरी पाठशाला देखता तो उसमें अवश्य जाता था। बहुत कम लडके स्कूलों में आते थे। ५० फीसदी गाँव के बच्चे आ गये तो बहुत बडी बात है। यहाँ (गुजरात में) मैं गाम में गया, एक ऐसे क्षेत्र में तो एक भाई हाथ जोड-कर बोला कि साहब एक लडका तो हमारा खराब हो गया है। मतलब, स्कूल में गया तो निकम्मा बन गया। मेरे दो बच्चे हैं। अब जो दूसरा बच्चा है उसको मैं स्कूल में भेजना नही चाहता। क्योंकि मेरे पास रहता है तो कुछ तो खेती में

मदद देता है। कुछ मेरे जानवर चरा लाता है। गुजरात में अहमदाबाद के पास एक किसान सम्मेलन हुआ। वहाँ मैंने उत्पादन बढाने की बात की। भाई, कृषि-उत्पादन बढाये बिना देश का उत्थान नहीं होगा। एक बुजुर्ग किसान आकर मेरे सामने खडा हो गया और हाथ जोडकर बोला, 'आप अगर बुरा न माने तो मैं एक सवाल पूछूं।" मैंने कहा, "पूछिए।" दो लडके उसके थे। मेरे सामने उसने खडे किये। कहा, देखिये ये दो लडके हैं और यही जो सामने स्कूल है हाई स्कूल वहाँ पढते हैं। यह गाँव में स्कूल है हाई स्कूल लेकिन यहाँ कृषि का कुछ भी काम नहीं कराया जाता है। कृषि तो पढाई ही नहीं जाती है यहाँ। वही अलग-अलग विषय पढाये जाते है। मैं तो जब तक मेरी जान में जान है तब तक खेती का ही काम करूंगा, उत्पादन ही बढ़ाऊंगा। इसलिए दो लडके जो मेरे है यह तो खेती बिलकुल नहीं करेंगे। चूंकि खेती सिखाई नहीं गयी उनको। तो अब बताइये मैं क्या करूं? मेरे बाद कौन खेती करेगा। यही मुझे दिन रात चिन्ता है। मैं क्या उसका जवाब देता। सही बात है। गाँव में स्कूल और कालेज खोल दिये जाते हैं, लेकिन कृषि का नाम नहीं। कही आर्ट कालेज होंगे, कहीं साइन्स भी होने लगे और कही कॉमर्स का होगा। लेकिन ऐग्रिकल्चर के बहुत कम हैं। और जो एग्रीकल्चर स्कूल और कालेज हैं उनका हाल भी जरा सुनिए

काका साहेब कालेलकर पिछले साल जापान गये। जापान से काफी उनका सम्बन्ध है। आते जाते हैं और काफी अच्छा सम्बन्ध उन्होंने बना रखा है। जब वहाँ से वापस आये तो बहुत दुख के साथ उन्होंने मुझ से कहा कि एक बात से मुझे बडा धक्का लगा। क्या हुआ कि पिछले वर्ष या उसके एक वर्ष पहले भारत सरकार ने यह तय किया कि कृषि मंत्रालय ने २० चुने हुए बी०एस०सी० (ए० जी०) को देश से जापान भेजा जाय और वे अध्ययन करके और अनुभव लेकर आयें कि किस प्रकार खेती का फी एकड उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। आप जानते हैं इस दिशा में जापान ने बहुत प्रगति की है। एक एकड में जितना हमारा उत्पादन होता है औसत उससे तीन गुना, चार गुना उत्पादन जापान में होता है। तो भारत सरकार ने निश्चय किया कि २० अच्छे-से अच्छे एग्रिकल्चर के ग्रेजुएट अलग-अलग युनिवर्सिटियो के स्नातक जापान भेजे जायें जैसा कि तरीका है। यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन ने अर्जियाँ प्राप्त की, इन्टरव्यू लिये और २० फर्स्ट क्लास फर्स्ट जितने होंगे अच्छे-से-अच्छे उन्होंने विद्यार्थी चुनकर जापान भेजे। अब काकासाहब सुनाते हैं। वहाँ जो डाइरेक्टर थे एग्रीकल्चर के उसने उनका खुद कहा कि काकासाहब हमको बड़ा दुख है कि

आपके २० चुने हुए कृषि के स्नातक यहाँ आये। तीन, चार, पाँच दिन हमने उनको साथ में लिया। हमारे खेतों में गये। हमने काम किया। उन्होंने भी काम किया। चूँकि यही तरीका है सिखाने का कुछ किताबों से तो नहीं सिखाया जाता। तो तीन चार दिन के बाद वह हमसे बोलते हैं कि साहब किताबें कौन-कौन-सी हैं। हमको बता दीजिए आप। कुछ नोट्स आपके पास हो तो वह दे दीजिए। यहाँ खेतों में काम करने तो हम नहीं आये। उनको बहुत बुरा लगा कि क्या बात करते हैं ये लोग। बी० एस० सी० हैं और बोलते हैं कि खेतो में काम करने नहीं आये हैं हम तो पढ़ने आये हैं, अध्ययन करने आये हैं। दो-तीन दिन तक और उन्होंने कोशिश की। उन्होंने कहा, हमारा तो यही तरीका है सिखाने का। आखिर हैरान होकर उसने यहाँ मंत्रालय को लिखा कि माफ करियेगा आपने बहुत अच्छे विद्यार्थी भेजे होंगे लेकिन हमारे बूते के तो वे नहीं हैं। आप उनको वापस बुला लीजिए। खैर! उन बीसों विद्यार्थियों को भारत सरकार को शर्म के साथ वापस बुलाना पड़ा। अब यह मैं आपको इसलिए कह रहा हूँ कि आखिर क्या हम करना चाहते हैं। छोड़िए बुनियादी तालीम की बात। अगर आप समझते हैं कि गांधीजी ने बुद्धिमानी नहीं दिखलाई है, लेकिन आप यह तो चाहते हैं न कि कृषि का उत्पादन बढ़े। उद्योग बढ़ें। यहाँ बेकारी के लिए गाँव गाँव में कुछ लघु उद्योग हों। गृह उद्योग हों। ग्रामोद्योग हो। उसके बिना तो बेकारी दूर होनेवाली नहीं है। और भी हर प्रकार से देश को अगर तेजी से बढ़ाना है तो बिना शिक्षा के बदले यह काम कैसे होगा?

दो साल पहले सूरत में जो यूनिवर्सिटी है साऊथ गुजरात यूनिवर्सिटी वहाँ मैं पदवीदान समारम्भ के लिए गया। तो, जाते ही मैंने देखा एक पोस्टर कि उपाधि नहीं चाहिए, नौकरी चाहिए। कुछ शोर भी मचा रहे थे। तो मैंने कहा, 'आप बाद में मुझे मिलियेगा।' तो बाद में आये मेरे पास मिलने। मैंने कहा, 'कहिए आपको क्या तकलीफ है।' कहने लगे, 'साहब हम बेकार हो गये हैं कोई हमको नौकरी नहीं मिलती। अब यहाँ के ५ साल तो हमने पूरे कर लिये, डिग्री भी ले ली। डिग्री आपने दे दी।' मैंने कहा 'हाँ शर्म तो मुझे भी आती है डिग्री देते हुए।' मैं भी चान्सलर हूँ बहुत सी युनिवर्सिटीज का। जब पदवीदान का समारम्भ होता है तो मेरा दिल धड़कता है कि निकम्मे लोगों में और नम्बर मैं जोड़ रहा हूँ। तो उनको मैंने पूछा, "कहिये आप किस प्रकार का काम चाहते हैं। गुजरात सरकार ने बहुत अच्छी योजना बनायी है जिसमें हम आपको लोन भी देंगे २०,००० या ५०,००० या एक लाख तक लोन दे

सकते हैं और अगर आप कोऑपरेटिव सोसाइटी बनायें तो ढाई से पाँच लाख तक भी लोन मिल जायगा आपको। तो कोई स्माल इण्डस्ट्री शुरू करिए आप। स्कीम बनाइये तो रुपया हम दिलवा दें। बोले अच्छा साहब, खुश हुए, ३ ४-५ लड़के थे। पर जब उठने लगे तो फिर जरा सकोच से बोले, "माफ करियेगा हमें, हम एक बात कहना चाहते हैं। बोले स्कीम तो आपने अच्छी बना दी, रुपया भी मिल जायगा हमको, लेकिन साहब हमको कुछ प्रैक्टिकल अनुभव तो है ही नहीं। हम तो यह जानते ही नहीं कि कैसे इण्डस्ट्री बनायें। कैसे शुरू करें। फिजिबिलिटी रिपोर्ट क्या होती है। क्या हम यहाँ सर्वे करें ? किस प्रकार का यहाँ छोटा उद्योग खड़ा करें। हमको तो कुछ अनुभव ही नहीं है। मशीन भी आ जायगी, रुपया भी आप दे देंगे। लेकिन हमको तो कोई व्यावहारिक ज्ञान नहीं है। हमको आप नौकरी ही दिलवा दीजिए। अब बोलिए क्या किया जाय। जिस देश में जो वोकेशनल हायर एजुकेशन कहलाती है कृषि की इन्जीनियरिंग की या बी० काम० या एम० काम० ग्रेजुएट्स हो गये, पढ़ ली किताबें लेकिन अगर उनको आप किसी औफिस में भेजिए तो बिलकुल कोरे हैं। न कोई हिसाब आता है, न तो करेस्पौंडेंस कर सकते हैं। न उनको कोई ऑर्गेनाइजेशन का ज्ञान होता है। अब यह दोष नवयुवकों को मैं नहीं देना चाहता। कोई उनका दोष नहीं है। दोष हमारा आपका है। शिक्षा-विभाग का है। चाहे भारत सरकार हो, चाहे राज्य सरकार हो। हमारा दोष है। विद्यार्थियों को क्या ? वह क्या बेकार होना चाहते हैं ?

आज स्वावलम्बन की बात सब करते हैं। खास तौर से पिछली बार जो पाकिस्तान से समर हुआ तो देश में एक स्वावलम्बन का वातावरण बना। हर एक के मन में आत्मविश्वास जगा कि हम अपने बूते पर खड़े हो सकते हैं। विदेश के लोग जो सुपर पावर्स हैं मदद न भी दें हमको फिर भी हमारे पास अस्त्र-शस्त्र भी हो गये। हमारे पास अन्न भी काफी है। हम कोई भीख माँगते नहीं। हमारे पास और भी उत्पादन के साधन काफी हैं। हमने हिम्मत से मुकाबला किया और विजयी हुए। बांगला देश का भी जो जन्म हुआ वह विचित्र हुआ। भारत ने जो हिस्सा उसमें लिया उससे भारत का भी नाम रोशन हुआ और एक नये राष्ट्र का उदय हुआ, जो २५ वर्ष पहले गलत बुनियाद पर बना था, जिसका नारा था एक धर्म एक राष्ट्र 'टू नेशन थियरी का।' वह बिलकुल निकम्मा साबित हुआ। गांधीजी ने कहा था तभी, कि यह बिलकुल गलत बुनियाद पर पाकिस्तान बन रहा है। लेकिन हम भी शामिल हो गये उसमें।

सभी शामिल हो गये। २५ साल के बाद जो ढाँचा था वह टूट गया। और खुशी है कि सर्वधर्म समभाव के आधार पर एक नया राष्ट्र बना, जहाँ का नेता मुसलमान है। लेकिन वहाँ के शरणार्थी जो ९०-९५ फीसदी हिन्दू थे उस पर श्रद्धा रखकर सब वापस चले गये। यह कोई मामूली बात नहीं है। यही गांधीजी का जो स्वप्न था वह आज साकार हुआ है। आज सवाल है सर्वधर्म समभाव का। अगर बांगला देश के बनने के बाद भी आपस में धर्मों का संघर्ष चलता रहा तो पाकिस्तान के जैसे हम भी टूटेंगे। हमारा भविष्य उज्ज्वल नहीं होगा। सवाल सर्वधर्म समभाव के वातावरण का है। मैं विनोबाजी से मिला था। वे पूछते थे कि धर्म निरपेक्षता के नाम पर छात्र को धर्म से वंचित क्यों रखते हैं? उसे तो सब धर्मों की जानकारी होनी चाहिए। इससे सहिष्णुता पनपेगी। उन्होंने वेदों का सार, कुरान का सार, बाईबिल का सार, धम्मपद का सार आदि तैयार किया है। उन सबका निचोड़ तैयार करने में उन्होंने अकेले कितनी मेहनत की! उनका कहना है कि हर एक विद्यार्थी को चाहे वह जिस मजहब का हो उसे सभी धर्मों की बुनियादी जानकारी होनी चाहिए। गांधीजी ने कहा था कि विविधता में एकता होनी चाहिए। अलग-अलग जातियाँ, अलग अलग भाषा फिर भी हम एक हैं यह वातावरण कौन देगा जब तक कि हम बचपन से बच्चे को संस्कार न दें।

विनोबाजी ने कहा था कि स्वतंत्र भारत के साथ स्वच्छ भारत होना चाहिए। इन्दिराजी ने चर्चा के बीच एक दिन बताया कि उनसे जब कोई विदेशी मिलता है तो वह कहता है कि आपके यहाँ गरीबी है, और भी भीषण सवाल है लेकिन एक बात मेरी समझ में नहीं आती कि यहाँ गन्दगी क्यों है? इसका जवाब मेरे पास क्या है? सिवाय इसके कि बचपन से हम कोई संस्कार नहीं देते हैं। यह शुरू से संस्कार देने से होता है। शारदाग्राम में आदर्श सफाई है। जीवनपुत्रा जी ने इस सफाई को शिक्षा का अविभाज्य अंग बना लिया है। इसलिए वहाँ यह सहज हो जाता है। उसके लिए फाइन करना पड़ता है ऐसा नहीं है। वहाँ रोज का कार्यक्रम बन गया है। यह सब बातें कौन करे? जवाब एक ही है कि शिक्षा को ही इसे करना होगा। येही सब बातें गांधीजी ने कही हैं। और बेसिक एजुकेशन उन्होंने नाम दिया क्योंकि वह जानते थे कि यह बुनियादी बात है। बच्चों को श्रमाधारित जीवन, सर्वधर्म समभाव, स्वच्छता, स्वावलम्बन की शिक्षा दी जाय। जहाँ रहें, वहाँ आसपास का समाज हो, गाँव हो या शहर हो, उसके बारे में अपनी जिम्मेवारी व समझें जितनी वे उठा सकते हैं।

शिक्षा और विकास का तालमेल हो। स्वास्थ्य अच्छा रहे। यही बातें बुनियाद में थी। इसलिए बुनियादी शिक्षा जो नाम राष्ट्रपिता ने दिया उसी को रखना चाहिए—बुनियादि तालीम। नये नामो में क्या रखा है ?

मेरी समझ में नही आता, क्या हमारे दिमागो को हो गया है। राष्ट्रपिता ने जो नाम दिया है उसमें कोई खराबी हो तो आप बतायें। उस पाठ्यक्रम में जो सुधार करना चाहे करें। यह कोई नही कहता कि गाधीजी ने जो ढांचा सन् १९३८ में बना दिया था वही आप चलावें। आप उसमें सुधार करें, बेसिक रास्ते हैं उसकी लिस्ट बनायें फिर विकास का काम होने लगेगा। उसके सम्बन्ध में जरूरी नही है कि हर एक को वर्कशॉप दीजिए, हर एक को फार्म दीजिए। जो कुछ है, जहाँ काम चलता है वह दीजिए। कोई अलग खर्च करने की जरूरत नही है। हर एक को फार्म मिल सके तो अच्छा है। लेकिन कोई आवश्यक नही है। विनोबाजी ने बार-बार कहा कि बुनियादी तालीम का बेसिक क्राफ्ट वहाँ के गाँव है। जो कुछ वहाँ चलता है, जैसे लोग वहाँ रहते है, उनका विकास कीजिए।

मैं जापान गया। आप देखेंगे, वहाँ जब फसल बोने का समय रहता है तो सब खेतो पर काम करते है। सब काम में लग जाते है। सब बच्चे माँ बाप के पास रहते हैं। फसल जब काटनी होगी तब भी कोई स्कूल नही चलेगा। वे कहते है बिलकुल स्वाभाविक है। जब कोई काम खेत में होता है तब बच्चे घर रहते है। वे कहते हैं पढकर क्या करेंगे। काम करना चाहिए। हाँ, जब खेत में काम नही होता है तो पढेंगे। बिलकुल सहज चीज है, लेकिन हमारे यहाँ उसे कठिन बना दिया है।

हमारे सविधान में १४ साल तक अनिवार्य शिक्षा देने को कहा है। लेकिन २५ साल बाद भी आज वह नही हो सका है। गुजरात में १९८०-८१ तक हो सकता है ऐसा आप कहते है। लेकिन और राज्यो में पता नही कितने वर्ष लगेंगे। मान लीजिए कर भी लिया तो क्या होगा ? प्राइमरी के बाद लडके सेकेण्डरी स्कूल में, कालेज में जायेंगे। क्योकि हमने देखा माँ बाप कहते है कि लडका मैट्रीक पास तो हो गया। अब कही न कही तो भेजेंगे। यूँही लडका निठल्ला रहेगा तो लडता-झगडता रहेगा। खाली खिलाने पिलाने से कुछ मतलब नही। शायद कुछ नौकरी लगे या न लगे देखा जायेगा। इस प्रकार के युवको को विनोबाजी अन-एम्प्लायेबल ग्रेजुएट्स कहते हैं। ऐसे स्नातक, जो कुछ काम करने को तैयार नही है, उनकी फैक्टरी खोलते जायेंगे। यह सिलसिला कब

तक चलता रहेगा ? लेकिन जैसे हैं वही और मल्टीप्लाई करते चले जाते हैं और संविधान की दुहाई देते चले जाते हैं। ऐसा संविधान में लिखा है तो वह ब्रह्मवाक्य हो गया । चाहे कैसे ही निकम्मे लोग निकलें, उसकी हमको कोई फ़िकर नहीं है।

आखिर हम चाहते क्या हैं ? हम चाहते हैं—फ्री एण्ड कम्पल्सरी एजुकेशन (निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा,) लेकिन कैसी शिक्षा ? ऐसी शिक्षा जो काम-धाम कुछ नहीं सिखाती बस पढ़ते चले जायें। काम धाम कुछ नहीं। देश एक तरफ जा रहा है और देश की मांग एक तरफ। शिक्षा दूसरी तरफ। मेरा निवेदन इतना ही है कि हम लोग जो यहाँ एकत्र हैं व समझें कि आज के जमाने में बुनियादी तालीम के सिद्धान्त, जितने १९३७ में थ उससे कहीं ज्यादा आवश्यक हैं।

कुछ लोग वर्क एक्सपीरियन्स की बात करते हैं ? क्या है वर्क एक्सपीरियन्स ? क्या मालूम कहाँ से शब्द लाये हैं। कोठारी कमीशन से लिया है, या अमेरीका से। बुनियादी तालीम को सब छोड़कर दूसरी तरफ चले जा रहे हैं—*जिसे गांधीजी ने दुनिया में फैलाया।*

मुझे याद है १९४९ में न्यूयार्क में मैं प्रोफेसर जान ड्यूई से मिला था। जान ड्यूई ने शिक्षा में बहुत अच्छा काम किया है। प्रोजेक्ट मैथड उन्होंने चलाया। वे इस युग के सबसे बड़े शिक्षा शास्त्री माने जाते हैं। बापूजी के साहित्य की एक प्रति मैंने उनको दी। एक सेट दिया। बेसिक एजुकेशन पर भी उस सेट में एक किताब थी। उन्होंने इतनी दिलचस्पी से देखा मेरे सामने ही पन्ने पलटा गये। मेरी तरफ देखकर कहने लगे, मुझे पता ही नहीं कि गांधीजी ने इतने काम किये शिक्षा के बारे में। जितने मैंने कार्य किये उससे कई कदम आगे वे निकल गये। मैं तो सिर्फ एक ही बात करता हूँ कि बच्चे कुछ श्रम करें। मुझे अफसोस हो रहा है कि गांधीजी ने इतनी दूरदर्शिता की बात की। अब *बुढ़ापे में नया एक्सपेरिमेण्ट मैं कैसे करूँ। अगर मैं नवजवान होता तो बहुत बड़ी* श्रद्धा से इसे आगे बढ़ाता। इस काम को और भी चमकाता। तब वे लगभग ९० साल के थे कुछ ही वर्ष बाद वे चल गये।

अब नये शब्द चले हैं। 'वर्क एक्सपीरियन्स' (कार्यानुभव),कम्युनिटी स्कूल। ये नये शब्द हैं। सन् १९३७ से जो शब्द प्रयोग होता आया है बुनियादी तालीम अब उसे छोड़ कर कम्युनिटी स्कूल या वर्क एक्सपीरियन्स ये सब शब्द क्यों इस्तेमाल किये जायें ? मैं समझता हूँ कि बुनियादी शिक्षा शब्द से हमें कोई

एलर्जी हो गयी है। हो सकता है कि इसमें कुछ कमियाँ रही हों। बुनियादी शालाएँ जो चली वह हर राज्य में अलग अलग ढंग से चली। मुझे याद है डा० सम्पूर्णानन्द ने, सन् '३७ में, जो सम्मेलन हुआ था उसमें कहा था कि हम बुनियादी शिक्षा जरूर चलायेंगे लेकिन स्वावलम्बन हम नहीं मानते। पीछे उत्तर प्रदेश में उत्पादन की बात भी छोड़ दी गयी। बिहार में बहुत अच्छा काम हुआ। तमिलनाडु में भी अच्छा काम हुआ। केरल में हुआ। गुजरात में हुआ और कई स्टेट्स में हुआ। महाराष्ट्र में भी कुछ अच्छी संस्थाएँ चली, लेकिन मैं यह नहीं कहता हूँ कि सब जगह बुनियादी शालाएँ अच्छी चली। जब कोई चीज व्यापक बनती है तो उसमें बुराइयाँ भी आ जाती हैं। कहीं-कहीं सूत के ढेर लग गये। न बुनाई हुई न कपड़े बने, न उससे लड़कों को कुछ आमदनी हुई। तो इस दिशा में जो खामियाँ हैं उनको जरूर आप सुधारें। यह हम नहीं कहते कि जो एक लकीर गांधीजी ने खींची थी वह पत्थर की लकीर हो गयी। उस जमाने में जो उनको सूझा वह उन्होंने किया। अब इतना जमाना निकल गया है। उसे हम सुधारें। शिक्षा को विकास से ज्यादा जोड़ें। प्लानिंग हो गयी है अब। लेकिन फिर भी बुनियादी बातें तो वही हैं। बेसिक नाम से क्यों हिचकते हैं आप ? यह मेरी समझ में नहीं आता। तो यह फिर भी मैं कहता हूँ कि शब्दों से मेरा कोई झगड़ा नहीं है। अगर आप कोई दूसरा शब्द इस्तेमाल करके मुख्य जो बातें हैं, बुनियादी बातें हैं, उनको अगर चालू करें तो दूसरा नाम, कोई देशी नाम देखें, तो अच्छा है। कोई अमेरिका, इंग्लैण्ड और रूस से नाम न लिया जाये। अपना कोई देशी नाम सूझता हो तो करिये। लेकिन इसमें तो कोई शक ही नहीं है कि तालीम को जब तक हम काफी तेजी से और बुनियादी ढंग से नहीं चलायेंगे तब तक परेशानी ही परेशानी खड़ी होनेवाली है इस देश में। मैं तो यह भी देखता हूँ कि जैसा केरल में अभी मैंने आपको मिसाल दी सभी ग्रेजुएट हो जायेंगे क्योंकि शिक्षा फ्री हो जायगी और करोड़ों, सैकड़ों और हजारों करोड़ रुपया खर्च हो जायगा इस काम में। लेकिन आखिर यह निकम्मे लड़के करेंगे क्या ? सिवाय इसके कि हमारे और आपके सिर फोड़ेंगे या आपस में सिर फोड़ें, और लोकशाही जो है उसकी जड़ खोदेंगे। लोकशाही तो तभी चल सकती है जब शान्ति हो। लेकिन जब अशान्ति हो मन में, और आदमी भूखा हो और बेकार हो तो क्या करेगा सिवाय इसके कि ऊधम करे। नक्सलवादी को आप देख रहे हैं। बंगाल में क्या होता है ? मुझे एक तरह से हमदर्दी भी होती है उनके लिए। ये नवजवान बेवकूफ हैं या जो कोई भी हैं लेकिन उनके साथ सहानुभूति भी होती है। क्योंकि फर्स्ट क्लास फर्स्ट ये लड़के हैं लेकिन

बेकार हैं, निकम्मे हैं, उनके पास खाने का नहीं है कुछ। उनके माँ-बाप भूखे मर रहे हैं। खुद भूखों मर रहे हैं। क्या करते सिवाय इसके कि तोड़-फोड़ शुरू करें। ये कालेज को बन्द कर रहे हैं। यूनिवर्सिटीज को चलने नहीं देते। वे कहते हैं कि *निकम्मी चीज को क्यों चलने दें।* सब जगह यही हाल होने वाला है। जो केरल और बंगाल में हो रहा है वही सारे देश में होगा। आज नहीं तो ५ साल के बाद होगा, अगर हमने काफी तीव्रता से ढाँचे का नहीं बदला। मैं तो इतना ही कहता हूँ कि यह बुनियादी तालीम का सवाल नहीं है और इसमें गांधीजी के ऊपर कोई मेहरबानी दिखलाने की बात नहीं है। गांधीजी को मुझे कोई फिक्र नहीं है। वहाँ वह होंगे, देखते हैं कि नहीं देखते हैं। हमारा काम लोग कर रहे हैं कि नहीं कर रहे हैं। फिक्र तो आपको अपनी होनी चाहिए। अपने बच्चों की होनी चाहिए। हर एक घर में आज तीन पीढ़ियाँ हैं। माता-पिता बैठे हैं, नवयुवक आ गये और उनके भी बच्चे आ गये। इन तीन पीढ़ियों का क्या होगा? सवाल तो हमारे स्वार्थ का है। परमार्थ का सवाल नहीं है।

अगर हमको अपने देश को ठीक तरह से आगे ले आना है तो सोचना ही पड़ेगा इसके बारे में। जो अनुभव ३५-३६ वर्षों का है बुनियादी तालीम का, जैसा भी हो, अच्छा भी है और बुरा भी है उसका उपयोग अगर सरकारें नहीं करतीं तो *इससे ज्यादा दुखद बात और क्या हो सकती है! मैंने आपका काफी* समय लिया इसलिए कि जिस प्रकार से मैं सोचता हूँ देश की बात वैसे आप भी सोचें। मैं कोई नैरो टाइप या संकुचित ढंग से बुनियादी तालीम को नहीं देखता हूँ। यह व्यापक चीज है। जो आज की समस्याएँ हैं वे सन् '३७ की अपेक्षा ज्यादा उग्र रूप धारण की हुई हैं, गम्भीर हैं। उनका मुकाबला करने का तरीका वही है जो गांधीजी ने बतलाया था। उसका बुरका बदल सकता है लेकिन जो मूलभूत सिद्धान्त हैं वे तो आज भी वैसे रहेंगे और सैकड़ों-हजारों वर्षों बाद भी वैसे रहनेवाले हैं। चूँकि वे सनातन सत्य हैं। चीन में आप देखें, रूस में देखें, कम्यूनिस्ट हैं। कितना परिवर्तन उन्होंने किया है। मैं तो कहूँगा कि बुनियादी तालीम का प्रचार ज्यादा हुआ है तो वहाँ हुआ है क्योंकि वे व्यावहारिक लोग हैं। वे जानते हैं कि इसके बिना वे बेकारी दूर नहीं कर पायेंगे, उत्पादन नहीं बढ़ा पायेंगे। लेकिन जहाँ यह चीज शुरू हुई वहीं वह पनप नहीं पा रही है, फल नहीं रही है। तो मैं आशा रखता हूँ कि आप सब जो यहाँ पधारे हैं, जितने भी आ सके हैं, हम पहले अपने दिमाग को साफ करें। उसके बाद अपने प्रान्तों में एक वातावरण बनायें जनता के बीच। जनता भी कुछ समझे न! जनता अगर

मानती रही पुराने ढर्रे को तो कैसे चलेगा ? कुछ नहीं होगा। हम और आप कुछ भी कहते रहें। इस शिक्षा से सन्तोष तो किसी को भी नहीं है। माता पिता भी परेशान हैं। हम आप भी परेशान हैं। सरकारें भी परेशान हैं। लेकिन कुछ करते बनता नहीं है। कमीशन की रिपोर्ट आती है वह भी कार्यान्वित नहीं होती। कुछ करना चाहिए। अब जमाना आया है कि राज्यों को करना चाहिए। मैं उस मत का नहीं रहा कि भारत सरकार की योजना बनेगी तब काम होगा। शिक्षा तो स्टेट सब्जेक्ट है। उसको अलग-अलग जो राज्य हैं उनको आगे बढ़ाना चाहिए। अपना अपना अलग-अलग काम करना है। केन्द्र सरकार उनको सलाह देती है और मदद देती है। लेकिन केन्द्र की तरफ राह देखकर बैठना कुछ ठीक नहीं है। यह नहीं कि जब वह कुछ ढाँचा देंगे तब चलायेंगे। वह जमाना गया।

बिहार में बेसिक स्कूल नाम बदल कर मिडिल स्कूल कर दिये हैं। अब हमको देखना है कि बिहार की जनता क्या चाहती है। अगर जनता नहीं चाहती तो आप लोग कहते रहें कोई सुनेगा नहीं। लेकिन जनता की आवाज उठेगी कि क्या कर रहे हैं आप ? जो अच्छा काम होता है उसको भी आप बिगाड़ रहे हैं। निकम्मे स्कूल फैलाने से क्या फायदा ? उसकी आप बुनियाद अच्छी बनाइये। उसमें जो कमियाँ हैं उनको भी दूर कीजिए। कोई गवर्नमेण्ट ऐसी नहीं है जो बात न सुने। लेकिन अगर जनता यह कहेगी कि नहीं यह स्कूल सब बेकार है। सिर्फ चरखा ही चलाते हैं बाकी कुछ ज्ञान तो देते ही नहीं हैं। को रिलेशन भूल गये, सिर्फ चरखा चलवा दिया आपने, जो एकेडमिक साइड थी उसको ही निकम्मा बना दिया। बहुत सी बुनियादी शालाएँ ऐसी भी हैं जो कहती हैं इतनी खादी हमने पैदा कर ली। यह ठीक है कि खादी पैदा की। लेकिन आपने गणित, भूगोल, भाषाशास्त्र, अर्थशास्त्र वगैरह क्या सिखाया उसके मार्फत ? जहाँ बुनियादी स्कूल हैं वहां इन सब चीजों की तरफ भी हमको ध्यान देना होगा। अगर यह वातावरण जनता में बनेगा तो कोई शक्ति ऐसी नहीं है जो उसकी अवहेलना कर सके। खास तौर से प्रजातन्त्र में कोई राज्य ऐसा नहीं हो सकता जो कि प्रजा की जो माँग है उसको ठुकरा सके। कोई नहीं ठुकरा सकता, न केन्द्र में न राज्य में। क्योंकि आखिर ५ साल के बाद उन्हीं के पास वोट के लिए आना पड़ता है।

आप लोग सब इकट्ठा हुए हैं, तो गम्भीरता से आप इन बातों को सोचें। और अन्त में एक ऐसा वक्तव्य दें, निवेदन प्रस्तुत करें जिस पर भारत सरकार और राज्य सरकारें ध्यान दें। ●

नयी तालीम सम्मेलन
का
कार्य-विवरण

दिनांक ३ जून, '७२, पहली बैठक

स्वागत-भाषण

श्री मनुभाई पचोळी, उपाध्यक्ष नयी तालीम समिति

आपलोगों के स्वागत का भार श्री ढेबर भाई ने हमलोगों की विनती से उठाया था लेकिन उनकी तबीयत अच्छी नहीं है। उनकी यहाँ आने की इच्छा बहुत थी लेकिन डाक्टर ने इजाजत नहीं दी। इसलिए उनका व्याख्यान आपके सामने पढ़ने का काम मुझे करना पड़ रहा है। गुजरात में जो भी नयी तालीम का काम हुआ है उसमें उनका बहुत बड़ा हिस्सा है। वह अगर यहाँ आये होते तो नयी-नयी बातें समझने सीखने का मौका मिलता, लेकिन वह नहीं आ सके। मैं उनका स्वागत भाषण❀ अध्यक्षजी की अनुमति से आपके सामने पढ़ रहा हूँ।

सन्देश वाचन और मंत्री का निवेदन

नयी तालीम समिति के मंत्री श्री के० एस० आचार्लु ने देश विदेश से आये सम्मेलन के निमित्त विभिन्न सन्देशों का वाचन करने के बाद अपना लिखित निवेदन, जो पहले से ही सदस्यों में वितरित करवा दिया गया था, प्रस्तुत किया।

❀ यह भाषण पृष्ठ ४९० पर दिया हुआ है।

इसके बाद श्री श्रीमन्नारायण, राज्यपाल गुजरात राज्य ने, जो इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे, सम्मेलन के सम्मुख अपना अध्यक्षीय भाषण दिया[1]।

श्री गोवर्द्धनदासजी चोखावाला, शिक्षामंत्री, गुजरात राज्य

आज तो देशभर में सब लोग चर्चा कर रहे हैं कि यह शिक्षा ठीक नहीं है और इसमें से बहुत सी समस्याएँ खड़ी हो रही हैं, और भी कठिन समस्याएँ खड़ी होंगी, यह सबको लगता है। लेकिन इस शिक्षा के ढाँचे को बदलने का काम हम नहीं कर रहे हैं। जहाँ-जहाँ बुनियादी शिक्षा दाखिल की गयी वहाँ पर यह प्रयोग निष्ठापूर्वक काम में नहीं लाया गया। इससे शिक्षा की क्षति हुई। अतः देश में इसके पक्ष में वातावरण बनाने का काम नयी तालीम के लोगों को करना चाहिए। इसके बिना इसको सफलता नहीं मिलेगी। काम करते-करते शिक्षा कैसे मिले, इसके लिए योग्य शिक्षक भी मिलने चाहिए। बुनियादी शिक्षा में जो काम करने वाले शिक्षक हैं उनमें निष्ठा की काफी कमी है। यह काम उन पर दबाव डालकर नहीं कराया जा सकता है। शिक्षकों को यदि आप समझा लेंगे तो आपका प्रयोग सफल होगा। आज शिक्षा के माध्यम के विषय में भी काफी संदिग्धता पैदा की जा रही है और उसके अलग-अलग प्रवाह देश में चल रहे हैं। हमारा बहुत-सा व्यवहार अंग्रेजी में चल रहा है। उससे नुकसान यह हो रहा है कि देश की जनता उस विकास को नहीं समझती जो उसके लिए किया जा रहा है। यदि शिक्षा मातृभाषा में होगी तो बहुत-से लोगों को शिक्षण मिल सकता है। गुजरात में लगभग ५००० बुनियादी शालाएँ हैं। अलग अलग जगहों पर निष्ठापूर्वक कार्यकर्ता बढ़ रहे हैं। जिला परिषद के अध्यक्ष भी इसमें रुचि ले रहे हैं। इसलिए यह काम अच्छा चल रहा है। आज बुनियादी शिक्षा के पक्ष में हवा पैदा करने का काम काफी अनुकूल है। यह केवल सम्मेलनों से नहीं होगा। बुनियादी तालीम की तरफ सरकारों का ध्यान खींचने का काम नयी तालीम समिति का है। मुझे आशा है कि नयी तालीम समिति इस दिशा में काम करेगी। इस सम्मेलन का जो निवेदन होगा वह देश के लिए मार्गदर्शक होगा, ऐसी आशा है।

श्री सादा, राज्य शिक्षा मंत्री, बिहार

आजाद हुए हमें २५ साल हो गये फिर भी हम विदेशी शिक्षा पद्धति को अपनाये हुए हैं। बुनियादी शिक्षा भी ठीक नहीं चली। ऐसा देखा गया कि

१–यह भाषण पृष्ठ ४९४ पर दिया हुआ है।

बुनियादी स्कूल में ज्यादा से-ज्यादा उन्ही लोगो के बच्चे जाने लगे जो देहाती हैं, गिरे हुए समाज के हैं। बडे लोगो के बच्चे सेण्ट जेवियर्स जैसे स्कूल में जाते हैं। कुछ दिनों के बाद इसकी प्रतिक्रिया हुई, द्वेष भावना पैदा हुई कि क्या बुनियादी स्कूल हम लोगो के लिए ही हैं ? क्या बडे घर के लडके उसमें नही पढेंगे ? आज सेण्ट जेवियर्स या नेतरहाट (दोनो बिहार के पब्लिक स्कूल हैं) में पढकर जो बच्चे निकलते हैं वे ऊँचे पदो पर जाते हैं। क्या यह डिस्क्रिमिनेशन नही हुआ है ? इसलिए लोगो में निराशा की भावना पैदा हुई। इसी वजह से लोग बुनियादी शिक्षा के प्रति उदासीन हुए। उसमे बुनियादी शिक्षा रास्ता में गिरावट आयी। लेकिन यह कोई रास्ता नही है, समस्या का कोई जवाब नही है। एक बात निश्चय है कि यदि आज की शिक्षा-पद्धति आगे जारी रही तो पता नही देश का भविष्य क्या होगा। बिहार में शिक्षको की हडताल चल रही है अपने वेतनों की वृद्धि के लिए। बिहार की सरकार अभी तक कोई निर्णय नही कर पायी है कि क्या किया जाय। इसके बावजूद मैंने सोचा कि एक दिन के लिए भी क्यों न हो, यहाँ आना चाहिए। शारदाग्राम-जैसा वातावरण मुझे अन्यत्र कही नही मिला। ऐसी संस्थाओ को देखने से विश्वास होता है कि पुराने जमाने में ऋषि लोग कैसी शिक्षा देते थे, किस तरह की आध्यात्मिक वृत्ति थी, जिसके बदौलत समाज में सुख-शान्ति थी। ऐसे आश्रमो में आने से उस युग की याद आती है। हमारी पुरानी संस्कृति विलीन होती आ रही है। उसके विलीन होने से हम कही के नही रहनेवाले हैं।

बुनियादी शिक्षा की वृद्धि होनी ही चाहिए। बिहार मे प्रारम्भ में बुनियादी शिक्षा की काफी अच्छी शुरुआत हुई। लोगो की रुचि इसकी तरफ बढी। इस बीच में जब गिरावट आयी तो लोग बुनियादी शिक्षा की उपेक्षा करने लगे। हमारे यहाँ पाँच वर्ष में नौ बार सरकार बनी और गिरी। इसमें से नौकरशाही प्रबल हुई। यह बात सही है कि नौकरशाही नहीं चाहती है कि पावरफुल सरकार बने। अभी हाल में एक फैसला यह हुआ कि सीनियर बेसिक स्कूलो को मिडिल स्कूलों में बदल दिया जाय। इसका बहुत से विधायकों ने विरोध किया है। समाजवादी पार्टी ने भी इस बात का विरोध किया है। इस तरफ हम लोगो का ध्यान गया है और हम समझते हैं कि इस सम्बन्ध में ठीक निर्णय लिया जायगा। मैं इतना चाहता हूँ कि इस समस्या पर सहानुभूतिपूर्वक विचार हो। जैसाकि राज्यपाल महोदय ने बताया, नाम कुछ भी रखें, पर जो काम की बातें हैं वे बुनियादी हैं, उनको छोड़कर हम कहाँ जा सकते हैं ? बुनियादी शिक्षा जो,

मनुष्य को स्वावलम्बी बनाती है, जो मनुष्य को अपने ऊपर भरोसा रखना सिखाती है, उसकी वृद्धि नहीं होगी तो इतने बड़े देश की, जिसकी जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, बेकारी और भी बढ़ेगी। बिहार में अभी २९ प्रतिशत ही पढ़े-लिखे लोग हैं, तो वहाँ बेरोजगारी की यह हालत है, और यदि ९८ प्रतिशत लोग पढ़े-लिखे हो जायेंगे तो क्या हालत होगी? इसलिए हमको तो ऐसे लोगों को तैयार करना है जो अपने पर भरोसा रखें और सरकार से यह माँग न करें कि हमको नौकरी दो।

यह बात भी समझ में नहीं आती कि कुछ लोगों के लिए एक तरह के स्कूल और कुछ लोगों के लिए दूसरी तरह के स्कूल आजकल चलते हैं। इससे जनतन्त्र, समाजवाद कैसे सफल हो सकता है? हम चाहते हैं कि सभी प्राइमरी स्कूल एक ढंग के हों। स्कूलों में भी सभी बच्चों को पढ़ने का मौका मिलना चाहिए। इस भेद को जब तक नहीं मिटाया जायगा, तब तक एकीकरण के उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी।

आज शिक्षा-पद्धति में आमूल परिवर्तन करने की जरूरत है। जो लोग चाहते हैं कि सबको बराबर अवसर न मिले वे लोग इसे पसन्द नहीं करेंगे। सबको बराबर अवसर मिले, इसके लिए सरकार सचेष्ट है। आज तो लगता है कि आजादी देश के बड़े-बड़े शहरों तक ही आयी है। देहातों में कोई खास विकास नहीं हुआ। देहातों में कहीं-कहीं तो प्राइमरी स्कूल के लिए मकान भी नहीं हैं। जिस राज्य में प्राइमरी स्कूल के लिए मकान तक न हो, उसके लिए आजादी का क्या अर्थ हो सकता है? इसलिए जिनके हाथ में शासन है उनकी निगाह देहातों की ओर जानी चाहिए। जहाँ तक बुनियादी शिक्षा का सम्बन्ध है मेरी पूरी सहानुभूति है।

श्रीमन्‌जी—स्कूल सर्वत्र एक-से हों। इसमें कोई शक नहीं है कि देहात और शहरों में सब जगह स्कूल एक तरह के होने चाहिए। ज्यादातर बुनियादी शालाएँ देहातों में ही की गयी हैं। यह बात जरूर गलत हुई है। इससे लोगों के ख्याल में आया कि यह पिछड़े हुए लोगों के लिए स्कूल है। इससे बुनियादी तालीम का बहुत बड़ा नुकसान होता है। इसलिए देहात और शहरों, दोनों जगहों पर बुनियादी स्कूल होने चाहिए। दोनों में कुछ अन्तर होगा, उद्योग भिन्न होंगे, निर्माण के काम भिन्न होंगे, विकास के काम भिन्न होंगे, लेकिन सिद्धान्त सबके लिए एक नहीं होगा तो इस काम को आगे नहीं बढ़ाया जा सकेगा।

श्री मनुभाई पचोली, गुजरात

गुजरात में जो काम बुनियादी तालीम का चल रहा है उसकी रूपरेखा आपके सामने मैं दूँगा और कुछ बातें श्री वसन्त भाई कहेंगे। यहाँ पर जो काम हुआ है अच्छा हुआ है। फिर भी उससे सन्तोष हो, ऐसा नहीं है। आगे कुछ करना बाकी नहीं, ऐसा भी नहीं है।

श्री काकासाहबजी ने कहा कि शिक्षा में सबसे महत्त्व की बात शिक्षकों के प्रशिक्षण की है। गुजरात में जो भी ट्रेनिंग कालेज हैं वे सभी बेसिक ट्रेनिंग कालेज हैं। यूनिवर्सिटीज बी० एड० कालेज चलाती हैं लेकिन जो प्राइमरी ट्रेनिंग कालेज हैं वे सभी बेसिक हैं, और जो प्राइमरी शालाओं के निरीक्षक होते हैं वे भी बेसिक ट्रेनिंग स्कूल के ट्रेण्ड होने चाहिए। यह बात सरकार से तय हो चुकी है।

शिक्षा में निरीक्षण का जो महत्त्व है वही टीचर्स-ट्रेनिंग का भी है। इसी प्रकार शिक्षा में शोध का भी महत्त्व है। एजुकेशन ऐसा हो, जिसका परिस्थिति के साथ सम्बन्ध हो। ऐसे रिसर्च, जिनका तत्कालीन परिस्थिति के साथ सम्बन्ध हो, वह चलते रहने चाहिए। वही प्रेरणा का स्रोत है। इस प्रकार के रिसर्च के लिए राज्य शिक्षा संस्थान में यहाँ सुविधा प्राप्त है जो मेरे ख्याल से ठीक चल रहा है। पिछले तीन चार सालों में जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए वे बुनियादी तालीम के पोषक हैं।

प्राथमिक शालाओं के बारे में कहा गया कि ९ हजार बेसिक स्कूल हैं उनमें कुछ अच्छे हैं और कुछ अच्छे नहीं भी हैं यह स्वाभाविक है। हमको जिनसे सन्तोष है ऐसे बहुत कम स्कूल हैं। उद्योग की पसन्दगी और कच्चे माल आदि के बारे में काफी गड़बड़ी है। उसको दूर करने में राज्य सरकार ने सहयोग करने का स्वीकार किया है।

बेसिक एजुकेशन के बारे में गुजरात में कोआर्डिनेशन कमिटी बनायी गयी है। पोस्ट बेसिक का अभ्यासक्रम यहाँ पर काफी सालों से चल रहा है। उद्योग में ज्यादातर खेती और पशुपालन है। चार पाँच सालों से और भी उद्योग चलाये जा रहे हैं। उसमें होम सान्इस और विलेज इंजीनियरिंग आदि हैं। वस्त्र विद्या गौण है। खेती और पशुपालन मुख्य विषय पोस्ट बेसिक में हैं। एक नया विषय रखा गया है—समाज नवनिर्माण का। यह किस पद्धति से हो सकता है? 'सोशल डायनेमिक्स' का सिद्धान्त क्या है? यह अभ्यासक्रम पोस्टबेसिक में अनिवार्य रखा है, क्योंकि समाज का नवनिर्माण करना है तो वह वैज्ञानिक ढंग से कैसे

हो सकता है उसकी मूल बातों की जानकारी बच्चों को मिलनी चाहिए। वे कहीं भी जायेंगे तो उनके ख्याल में ये बातें रहेंगी कि समाज का नवनिर्माण कैसे करना है। यह सब पोस्ट बेसिक स्कूल में बनाया जाता है।

तीसरी बात जो विश्वविद्यालय में जाना चाहते हैं, उनके लिए रास्ता है। क्योंकि वे एस० एस० सी० पास हैं। लेकिन जो नहीं जाना चाहते हैं उनके लिए भी चार विद्यापीठ चल रहे हैं। इनके प्रमाण पत्रों को राज्य-स्वीकृति है। कुछ विश्वविद्यालयों से भी मान्यता मिली है। ऐसा नहीं है कि हम बेसिक स्कूल में आये तो हमारा फेट सील हो गया, ऐसा गुजरात में नहीं है। हायर स्टडी करना चाहते हैं तो वह भी कर सकते हैं। यह एक महत्त्व की बात है।

यहाँ का काम कुछ सफल हुआ है इसका कारण यह है कि खादी बोर्ड, खादी कमीशन का इस प्रकार के शिक्षण से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध है। सूत आदि का सही विनियोग हो सके, इसमें खादी कमीशन की काफी मदद है। कमीशन के कार्य-कर्ता सरंजाम सुधार का काम करते हैं, ट्रेनिंग देते हैं। सभी कार्यकर्ताओं की स्थिति ऐसी है कि वे पोस्ट बेसिक स्कूल में गये तो उनको मदद करते हैं। मूलभूत दृष्टिकोण जो है जिसके कारण लोगों की सहानुभूति हमें मिली है, वह यह है कि बेसिक एजुकेशन कोई पोलिटिकल प्रोग्राम है, ऐसा हमने नहीं होने दिया। हमने बताया कि यह नेशनल एजुकेशन है। आप कुछ भी मानते हों लेकिन आपका किस तरह के आदमी चाहिए? टूटे हुए हृदय का आदमी वर्कशाप में जायेगा तो क्या होगा? आप किसी भी सिद्धान्त को मानिए लेकिन कार्यकर्ता ऐसा चाहिए कि जिसका दिल न टूटा हो, श्रद्धा न टूटी हो, काम करने के लिए तैयार हो। जिसके दिल में यह भावना हो कि मैं जो भी काम करूँगा वह सामाजिक दृष्टि से पूर्ण वफादारी से करूँगा। हमने पार्टी का सहकार जहाँ-जहाँ माँगा वहाँ हमें पूरा सहकार मिला। शिक्षा पोलिटिकल पार्टी से भिन्न है।

दूसरी बात यह है कि हम जब चरखा को लेते हैं तो इसका अर्थ यह नहीं कि विद्यार्थी बुनकर होगा। खेती लिया तो वह कृषक होगा, ऐसा नहीं है। जैसे इतिहास पढ़ाते हैं या भूगोल पढ़ाते हैं तो वह इतिहासकार होगा या भूगोल शास्त्री होगा, ऐसा नहीं है। छोटी उम्र में चरखा चलायेगा और उम्र बड़ी होगी तो ट्रैक्टर भी चलायेगा। हम खेती की आधुनिकतम विधरों जेनेटिक्स भी पढ़ाते हैं। पहली-दूसरी कक्षा में चरखा हो ही सकता है। कोई ऐसा नहीं कहता है कि १०वें ११वें में भी वह होगा। यह सफाई हमने बहुत बार की है। हमको यहाँ के पंचायत-राज से भी काफी अच्छा सहयोग मिला। हमको राज्य सरकार से भी सब तरह

का सहयोग प्राप्त होता है। हमारे यहाँ जो रचनात्मक काम करते हैं वह केवल रचनात्मक ही नहीं, उनका राजकीय प्रभाव भी रहा है। शिक्षा की मुख्य जवाबदारी राज्य की ही है। बहुत सी बातें समाजवाद के नाम पर चल रही हैं। मैं सबसे कहता हूँ कि मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण कर, यह कब खतम होगा? जब आदमी अपने हाथों से काम करेगा। बेसिक एजुकेशन में यह है कि विद्यार्थी को अपना काम खुद करना चाहिए। आज जो कालेज चल रहे हैं उनसे सामाजिक न्याय नहीं मिल सकता है। पोस्ट बेसिक के लड़के को यदि नौकरी में वरीयता दी जायगी तो आज के जो हाईस्कूल चलते हैं वे खतम हो जायेंगे। केवल जनता को जागृत कर दें, इतने से ही काम नहीं होगा। सरकार को भी अपना पार्ट अदा करना चाहिए।

श्री वसन्तभाई मेहता, शिक्षा सचिव, गुजरात

गुजरात राज्य में बुनियादी शिक्षा के बारे में जो कुछ काम हुआ है वह दुहराना नहीं चाहता। लेकिन खासतौर से गुजरात में बुनियादी शिक्षा का कार्य जिस ढंग से चला है और इस कार्य का मूल्यांकन करके जिस तरह से इसे चलाया जा रहा है वह और तेजी से कार्यक्षम हो, उसके लिए जो कार्यक्रम तैयार किया गया है वह आपके सामने रखूँगा।

बम्बई में बुनियादी तालीम की शुरुआत हुई या जिसमें कताई बुनाई बागबानी आदि उद्योग थे। इस तरह की शालाओं की शुरुआत प्रथम सूरत जिले में हुई थी। सौराष्ट्र में भी लोकशालाएँ चलती थीं। गुजरात में उद्योग शाला सामान्य शाला और लोक शाला का प्रारम्भ हुआ था।

राज्य में बुनियादी शिक्षण की परिस्थिति का मूल्यांकन करने के लिए सरकार ने बुनियादी शिक्षण कार्यक्रम, मूल्यांकन समिति की रचना सितम्बर १९७० में मनुभाई पंचोली की अध्यक्षता में की थी। इस समिति द्वारा प्रस्तुत सुझाव को सरकार ने सैद्धान्तिक तौर पर स्वीकार किया है।

'वर्क एक्सपीरियन्स' बुनियादी शिक्षा का स्थान नहीं ले सकता है। बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य व्यापक है। 'वर्क एक्सपीरियन्स' शब्द संकुचित है। बुनियादी शिक्षा अधिक सार्थक शब्द है जो कि गुजरात में पहले से ही है। वही नाम होना चाहिए। राज्य में प्रत्येक प्राथमिक शाला में किसी न किसी प्रकार के उद्योग का शिक्षण अनिवार्य बनाया जा रहा है। पहली और दूसरी कक्षा में रचनात्मक प्रवृत्तियाँ हैं—मिट्टी का काम, बाग का काम और कागज का काम। तीसरी और चौथी कक्षा में उद्योग को स्थान दिया गया है। शाला में भौगोलिक

परिस्थिति के अनुरूप उद्योग को स्थान दिया गया है। नयी तालीम का जो कॉनसेप्ट है, विचार भूमिका है, उसके बारे में कहने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन क्रान्ति के लिए तीन चीजें आवश्यक हैं—कॉन्सेप्ट (संकल्प), प्रोग्राम, और इम्पलीमेण्टेशन (कार्यान्वयन)। भूमिका स्पष्ट होनी चाहिए। उसके आधार पर कार्यक्रम बनाना चाहिए। वह बेसिक एजुकेशन में गांधीजी ने रखा था। मेरा ख्याल है वह यूनिवर्सल है। इसलिए जब सोसाइटी का ढंग बदला तो उसमें भी कुछ परिवर्तन आ सकता है। लेकिन जो बुनियादी बाते हैं वे तो रहेंगी ही। अभी बताया गया कि नयी तालीम असफल हुई है। मैं यह नहीं मानता कि विफल हुई। हम इसको ठीक ढंग से इम्पलीमेण्ट नहीं कर सके हैं इसलिए हम फेल हुए हैं। प्रोग्राम कैसा बनाना चाहिए, क्या करना चाहिए, इस सबके बारे में विस्तार से बताया गया है। मनुभाई कमिटी ने जो रिपोर्ट पेश की है वह समग्र है। यह बुनियादी शिक्षा के अमल के लिए बहुत आवश्यक है।

मेरे ख्याल से बुनियादी शिक्षा अद्यतन रहनी चाहिए। उसका सम्बन्ध समाज के साथ होना चाहिए। समाज में परिवर्तन होते हैं इसलिए शिक्षा की जो पद्धति है उसमें भी परिवर्तन लाना चाहिए। इसके लिए सामाजिक और आर्थिक तौर पर कार्यक्रम बनाना चाहिए। एक तो यह कि शिक्षा का सम्बन्ध, समाज में जो आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन हो रहे हैं उनके साथ जुड़ना चाहिए। वह उत्पादनमूलक होना चाहिए। उसे और प्रवृत्तियों के साथ कैसे सम्बन्ध जोड़ सकते हैं यह भी बताना चाहिए। दूसरा, समाज में जो कुछ परिवर्तन होते हैं उनके साथ-साथ शिक्षा का परिवर्तन होना चाहिए। विकास के साथ उसका सम्बन्ध होना चाहिए। प्रोग्राम को किस प्रकार से इम्पलीमेण्ट किया जाय उसके बारे में भी सुझाव होना चाहिए। ये तीनों बातें मनुभाई कमिटी ने बतायी हैं।

शिक्षा का अमल ठीक हो रहा है या नहीं, उसका निरीक्षण होना चाहिए। शिक्षकों और निरीक्षकों का प्रशिक्षण कैसा होना चाहिए उसका भी मनुभाई कमिटी ने सुझाव दिया है, और जो सुझाव दिया है उसके अमल के लिए राज्य सरकार ने कदम उठाया है।

बुनियादी शिक्षा का ठीक से कार्यान्वयन हो इसके लिए राज्य सरकार ने एक सलाहकार कमिटी बनायी है। बुनियादी शिक्षा का ठीक से प्रयोग हो उसके लिए सरकार ने एक अलग विभाग नियुक्त किया है। (इस रिपोर्ट का सारांश नयी तालीम के अगले अंक में दिया जा रहा है।)—सं०

श्री रामलाल पारीख, कुलपति, गुजरात विद्यापीठ

मुझे कहा गया है कि बुनियादी शिक्षा का प्रसार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुजरात में कैसा हुआ है इसकी जानकारी पेश करूँ। गुजरात विद्यापीठ बापू ने बनाया। उसका संचालन किया। उसमें बुनियादी शिक्षा के जो पहलू हैं उनका प्रयोग शुरू हुआ। वह स्वराज्य आने के पहले ही शुरू हुआ था। वहाँ पर पाँच चीजें खासतौर पर रखी गयी हैं। पहला सर्वधर्म समभाव का अभ्यास, दूसरा हर एक को कुछ-न-कुछ उत्पादक काम करना चाहिए, तीसरा शिक्षा का ढाँचा इस प्रकार का बनाया जाय जिससे कि ग्राम्य जीवन की आवश्यकता की पूर्ति में मदद मिले, चौथा, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो और पाँचवाँ हिन्दी अनिवार्य रूप में सिखायी जाय। इस नींव पर शिक्षा का काम आगे बढाने की शुरुआत हुई। जुगतराम भाई, दिलखुशभाई व बबलभाई ने यह सब आरम्भ किया। उसका उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति के लिए कार्यकर्ता तैयार करना था। स्वराज्य आने के बाद बापू से पूछा गया कि विद्यापीठ को चालू रखा जाय या बन्द किया जाय? बापू ने कहा कि मेरी कल्पना का स्वराज्य अभी आया नहीं इसको देखते हुए आपको जो समझ में आये वह कीजिए। तो सबने समझा कि स्वराज्य के बाद जो नयी समस्याएँ हैं उनको देखते हुए अपना काम चालू रखना चाहिए। बापू ने लिखा था कि बेसिक एजुकेशन का काम प्राइमरी एजुकेशन तक सीमित नहीं है बल्कि उसे यूनिवर्सिटी तक फैलाना है। यह बात बापू ने सन् '४६ में स्पष्ट की थी। इस बात को लेकर स्व० मगनभाई देसाई ने महादेव भाई की स्मृति में समाज-सेवा महाविद्यालय की स्थापना ९ विद्यार्थियों को लेकर की। यह २५ साल पूर्व की बात है। तब से अब तक करीब १००० स्नातक निकले हैं और महिलाओं को छोड़कर करीब ९५ प्रतिशत स्नातक गाँवों में काम कर रहे हैं। इन्हीं स्नातकों में से एक श्री गोविन्द रावलकर गुजरात विद्यापीठ के सदस्य भी चुने गये हैं। यहाँ से निकलनेवाले युवक पोस्ट बेसिक स्कूलों में गये। उससे केन्द्र बढ़ने गये। इससे प्रोत्साहित होकर मनुभाई ने सणोसरा में, और बेडछी में जुगतराम भाई ने विद्यापीठ चालू किया। इन सबका कार्यक्रम एक ही है। अनुभव यह है कि हमारे स्नातकों में कोई 'अनइम्प्लायड' नहीं है।

बुनियादी शिक्षा की कमजोरियाँ बढ़ा-चढ़ाकर बतायी जाती हैं। लेकिन जो अच्छी बातें हैं वे लोगों के सामने आती नहीं, जिससे लोगों को लगता है कि समाज में इसकी जरूरत नहीं है। यह समाज को बदलनेवाली चीज

नहीं है। लेकिन मेरा अनुभव उल्टा है। यदि वेडछी आदि में जो काम हुआ है वह नहीं हुआ होता तो आज गुजरात में एक भी आदिवासी स्नातक नहीं होता। आज वे सैकड़ों हैं, कठिन व दुर्गम स्थानों में वे काम करते हैं।

मुझे तो लगता है कि बुनियादी शिक्षा को सफल बनाने के लिए आपको उच्च शिक्षा में काम करना चाहिए। जब तक यूनिवर्सिटी पर प्रभाव नहीं डालेंगे तब तक इसकी जो प्रतिष्ठा चाहते हैं वह नहीं मिल सकेगी। यूनिवर्सिटी में दूसरी चीज की प्रतिष्ठा रखें और बुनियादी शिक्षा केवल १ से ७ तक ही चलायेंगे तो इसको प्रतिष्ठा नहीं मिलनेवाली है।

गुजरात विद्यापीठ में जो काम होता है उसमें सबको तीन चार चीजें सिखायी जाती हैं, जो बालवाड़ी से लेकर पी० एच०डी० तक हैं। अभी गुजरात विद्यापीठ ने आदिभाषा में एक शब्दकोश का निर्माण किया है जिसकी इंग्लैण्ड में भी प्रशंसा हुई है। मातृभाषा के माध्यम से हमारा विश्व से सम्बन्ध है। गुजराती भाषा सीखने के लिए बहुत से ब्रिटेन के लोग आते हैं और यहाँ के लोग वहाँ जाते हैं। अतः मातृभाषा के माध्यम से हमारा कोई नुकसान नहीं है। इसमें हमारी गुणवत्ता उत्तम होनी चाहिए। यहाँ के छात्र शिक्षा पूरी करने के बाद गाँव में वापस जाकर काम करना चाहते हैं। यह सब बुनियादी शिक्षा के कारण है। तो मातृभाषा अनिवार्य उद्योग चाहे जैसा उद्योग हो, समाज सेवा का कोई-न-कोई काम तथा समूह जीवन ये चार बात हमने मानी हैं। पी० एच० डी० वालों को भी कताई में निष्णात होना अनिवार्य है। हम मान लेते हैं कि बुनियादी शिक्षा में कमी है। हमारा आत्मविश्वास चला गया तो हमें कोई नहीं बचा सकता है। हम इसकी आलोचना करें लेकिन आत्मविश्वास के साथ करें। मेरे साथियों को विश्वास हो गया है कि बुनियादी शिक्षा का काम ऊँचे पैमाने पर भी हो सकता है।

हमें यहाँ के शासन का अच्छा सहयोग मिला है। मूल बात तो यह है कि हम डटे हुए हैं। जब तक हम सही मानते हैं तब तक करेंगे, चाहे शासन इसे स्वीकार करे या नहीं इस विश्वास के साथ हम काम कर रहे हैं। देश के सामने यह प्रयोग सफलता से हुआ। अब इसको आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। मुझे लगता है कि नयी तालीम के काम में यूनिवर्सिटी का शामिल नहीं करेंगे तो यह काम आगे नहीं बढ़ेगा। क्योंकि उसका असर नीचे के स्तर पर पड़ता है।

शिक्षा में आमूल परिवर्तन की बात सभी कहते हैं। सवाल आमूल क्रान्ति का है, एक-एक इश्यू को लेकर। जैसे आर्ट कालेज हैं, यदि वे आठ घण्टे से कम काम करें, तो उन्हें ग्राण्ट बन्द करें। 'वर्क एक्सपीरिएन्स' का अनुभव अच्छा नहीं है। राष्ट्र सेवा-योजना के नाम से इसे यूनिवर्सिटी में दाखिल किया गया है। साल में सिर्फ १५ दिन का शिविर किया जाता है। इस काम का, इनके अभ्यास-क्रम से, मूल्यांकन से कोई मतलब नहीं है। बुनियादी शिक्षा में महत्त्व की चीज 'इन्टेग्रेशन' की है। अतः विश्वविद्यालय के स्तर से सुधार हो। हिन्दुस्तान की यूनिवर्सिटियों में कुछ परिवर्तन फौरन करने पड़ेंगे। नयी तालीम समिति कुलपतियों और प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाये। नयी तालीम समिति एक संगठन बनाये। नयी तालीम समिति का यह काम हो जाता है कि जो शिक्षा-शास्त्री हमारे साथ हैं उनकी मदद से देश में वातावरण बनाये। दूसरी चीज हमारे देश में जल्द-से-जल्द छुट्टियों की जो परम्परा है, गलत समय पर छुट्टी दी जाती है, वह बदला जाय। हमारे यहाँ, जितनी छुट्टियाँ होती हैं उतनी और किसी देश में नहीं होती। छुट्टियों की संख्या कम करनी चाहिए, जिससे काम के घण्टे बढ़ाये जा सकें।

तीसरी चीज परीक्षा में सुधार हो। बेसिक एजुकेशन में रिसर्च की बहुत कमी रही है। गांधी शताब्दी काल में विज्ञान अहिंसा और शिक्षा को लेकर एक सेमिनार हुआ था। बुनियादी शिक्षा और विज्ञान का समन्वय करने के लिए कोई तरह होनी चाहिए। उनके लिए यू० जी० सी० प्रयत्नशील है। साइंस का उद्धार बेसिक एजुकेशन के जरिये होगा, ऐसा हमेशा विक्रम साराभाई कहते थे। वे मानते थे कि वातावरणीय विज्ञान—एनवरनमेण्टल साइंस—का महत्त्व बढ़ाना चाहिए।

नयी तालीम राष्ट्र-व्यापी आन्दोलन बन जाना चाहिए। यह केवल गोष्ठियों के द्वारा नहीं होगा। इसमें जन-अभिरुचि जागृत करनी होगी। शिक्षा सारे देश के मूल में है, इसलिए इसको बढ़ाने में हमको लगना चाहिए।

श्री जुगतराम दवे, कुलपति, गांधी विद्यापीठ, वेडछी

गुजरात से मेरे पहले भी चार लोग बोल चुके हैं। सभी अपने-अपने दृष्टिकोण से बोलते हैं। मैं भी अपने दृष्टिकोण से बोलूँगा। नयी तालीम नियमित रूप से आरम्भ हुई, उससे भी पहले बीज रूप में थी ही। गांधीजी शिक्षक तो नहीं थे, पर परिवार के बालकों को लेकर कुछ तो शिक्षण करते ही थे। अतः नयी तालीम के तत्त्व उनमें थे। सत्याग्रह आश्रम का आरम्भ देश-सेवकों के आश्रम

के रूप में हुआ था। किंतु बाद में हमने कई आश्रम चलाये। वेडछी में स्वराज्य-आश्रम चलाया। स्वराज्य ही तब मुख्य प्रवृत्ति थी और हथियार था चरखा, और अधिक गहराई में जाते तो प्रार्थना और सफाई। ये तीन-चार बातें थीं जो इन आश्रमों की जान थीं। बापू में एक आकर्षण था जो सबमें नहीं था। चरखे से काम आरम्भ किया। आगे आदिवासियों में रहने के कारण काम बढ़ेगा तो सोचा कि कार्यकर्ता चाहिए। इस तरह कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण का कार्य आरम्भ हो गया। देहात से भी लोग निकलने लगे। लोगों को लगा कि इस तरह का गांधीवादी आश्रम गाँव के लिए कई प्रकार के कामों के उपयुक्त आश्रम बन गया। इस तरह कई केन्द्र बन गये। तब विद्यापीठ की माँग आयी और यह विद्यापीठ बन गयी। अब तो यह काम विशिष्ट हो गया है। विश्वविद्यालय का अनुसरण किया, पर सावधानी के साथ। यह इतना बड़ा न हो कि गाँव से हम अलग पड़ जायँ, इसकी सावधानी रखी। बड़ी चीजें ग्रामीण-जीवन से पृथक पड़ जाती हैं, तब संस्था में और गाँव में दुराव पैदा होता है। गाँव के मन में धाका पैदा होती है, तब वह आश्रम न रहकर शोषण का केन्द्र बन जाता है। अस्तु जो भी हो, यह फैला हुआ हो। अब तो वेडछी मेरी इच्छा के विपरीत भी बहुत बड़ा हो गया है। सरकार से पैसा लेकर उत्तर बुनियादी चलाना यानी 'उत्तर' मिल गया, पर 'बुनियादी' मिट गयी। फिर भी इसकी आकांक्षा बढ़ी। ३०-३५ ऐसी उत्तर बुनियादी संस्थाएँ बनीं जिनमें खेती मुख्य उद्योग है। अध्यापक भी खेती करते हैं।

हर विद्यालय के साथ बालवाड़ी आवश्यक है। यह हमारा पुराना अनुभव है कि बच्चों का काम करो तभी माँ-बाप का सहयोग मिलता है। इससे हमारा भी शिक्षण होता है। बालकों का काम करनेवाले हर जगह सफल होते हैं। बालक किसी का दुश्मन नहीं होता। नयी तालीम के सिद्धांत किसी विद्यापीठ के माध्यम से नहीं समझा सकते, पर बालवाड़ी से समझा सकते हैं, क्योंकि बालकों के साथ हमारे व्यवहार से ही वे नयी तालीम को समझ लेते हैं।

नयी तालीम को लोकप्रिय करना हमारा कर्तव्य है, सरकार का नहीं। नयी तालीम के कहे जानेवाले जो नेता लोग हैं वे बहुत काम नहीं आये हैं। नयी तालीम का काम शिक्षकों का ही है ऐसा नहीं है। नयी तालीम के जो नेता हैं उनका काम है। नयी तालीम लोकप्रिय नहीं है, इसका दोष केवल सरकार पर डालना ठीक नहीं। हमारी जवाबदारी हमारे सिर पर से फेंकना नहीं चाहिए। नयी तालीम को लोगों में लोकप्रिय बनाने का काम हमारा आपका

है। आर्यनायकम् युग में तालीमी संघ था। आज की समिति तो इतिहास से निकली है। तालीमी संघ सर्व सेवा संघ में विलीन हुआ। किन्तु वह सब पर उचित ध्यान नहीं दे सका, तब यह समिति बनी। लेकिन हमारा नम्र अभिप्राय है कि हर प्रदेश में नयी तालीम का संघ बने और उसमें से एक महासंघ बने जो काम को आगे बढ़ावे।

श्री द्वारिका प्रसाद सिंह, सदस्य, नयी तालीम समिति, बिहार

मैं आपके सामने चार बातें रखूँगा (१) बिहार में अब तक किस तरह का काम होता रहा है। (२) १९५८ साल के बाद से बिहार में नयी तालीम के काम में क्या क्या व्यवधान उपस्थित होते रहे। (३) उन कठिनाइयों में से निकलने के लिए हमलोगों ने क्या सोचा, क्या किया, और (४) राष्ट्रीय महत्त्व का है। इस सभा को उन पर पूरे मनोयोग से सोचना चाहिए।

१९३८ के जून माह में सदाकत आश्रम में स्व० राजेन्द्र बाबू की उपस्थिति में बैठक हुई जिसमें कहा गया कि डा० सैयद महमूद और रामशरण उपाध्याय नयी तालीम का काम आरम्भ करें। डा० आमेर ने एक योजना पेश की। तीन व्यक्ति इसके लिए चुने गये। इसमें मैं भी था। सात लोगों को प्रशिक्षण दिया गया। ३५ बुनियादी विद्यालयों की स्थापना की गयी। इस फिर सरकार का सहयोग मिला और ८ वीं तक शिक्षा बढ़ी। स्व० आर्यनायकम्‌जी ने बापू से सलाह करके करीब ३३ पन्ने की पोस्ट बेसिक की एक स्कीम रखी। जब पोस्ट बेसिक के लड़कों का एडमिशन यूनिवर्सिटी में करने का प्रश्न आया तो सब कुलपतियों ने कहा कि ये लोग आयेंगे तो शैक्षणिक स्तर बिगाड़ देंगे। जब पोस्ट बेसिक के छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश नहीं दिया गया तब एक अलग संस्था बनायी गयी जिसे सबने मान्यता दी।

किन्तु सन् ५०-५१ के बाद नीति बदली और काफी काम हुआ। १९५८ तक यह खूब चला। पर अब तक संस्थागत नयी तालीम चलती रही, समग्र नयी तालीम नहीं बन सकी। १९५३ में सैयदेन कमिटी ने सिफारिश की, कि प्राथमिक व बुनियादी स्कूलों का फर्क खत्म कर दिया जाय, और तब एक समन्वित पाठ्यक्रम १९५९ में बनाया गया। किन्तु बजाय इसके कि प्राथमिक विद्यालय बुनियादी बनते, बुनियादी विद्यालय ही प्राथमिक विद्यालय बन गये। सब कुछ गड़बड़ हो गया। बिहार में शिक्षा नौकरशाही का शिकार हो गयी। अब १६ मार्च १९७२ से बिहार के सभी बुनियादी विद्यालयों को मिडिल स्कूल बना दिया गया। यह केन्द्र का निर्णय था कि ८ वीं तक बुनियादी शाला होगी, इसे भी भुला दिया गया है।

यह व्यवधान कैसे दूर हो, इसके बारे में बिहार के शिक्षा विभाग ने बुनियादी शिक्षा परिषद के माध्यम से चर्चा शुरू की है। बिहार में ५५,००० प्राथमिक बुनियादी स्कूल हैं। इन्हें अच्छा बुनियादी विद्यालय कैसे बनायें यही मूल प्रश्न है। निम्न बातो से शिक्षा मे गिरावट आयी है :

१ शिक्षा-नीति स्पष्ट नही है। यह केन्द्र का काम है। इस मामले में केन्द्र व राज्य में समन्वय नही है।

२ शिक्षक-प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था नही है। अभी देश में ऐसी कोई जगह नही है जहाँ पर ऐसे शिक्षा अधिकारियो को प्रशिक्षण दिया जाय।

३. शिक्षण-पद्धति दूषित है। यह मनमानी है। गैर-अनुभवी लोग शिक्षण-पद्धति निश्चित करेंगे तो यही होगा।

मुझे एक बात और कहनी है। जैसे राष्ट्रध्वज के अपमान को बर्दाश्त नही किया जाता है वैसे ही बुनियादी शिक्षा के नाम परिवर्तन को सहन नही किया जाना चाहिए। इसके साथ बापू की आत्मवेदना जुडी हुई है। उसका नाम ज्यो का-त्यो रहना चाहिए। एक केन्द्रीय बुनियादी शिक्षा संस्थान बने, जिसकी शाखा हर एक प्रान्त में बने।

श्री वंशीधर श्रीवास्तव, सदस्य, नयी तालीम समिति, उ० प्र०

मैं शिक्षा में क्रान्ति के विषय को प्रस्तुत करने के लिए खड़ा हुआ था। परन्तु अध्यक्षजी का आदेश है कि उत्तर प्रदेश के विषय में भी कुछ बताऊँ। पुराना सरकारी नौकर हूँ और मेरा पूरा जीवन ही उत्तर प्रदेश की बेसिक शिक्षा में बीता है। इस नाते केवल इतना ही कह सकता हूँ कि उत्तर प्रदेश के बेसिक स्कूल वास्तव में बेसिक स्कूल नही हैं, क्योंकि उनमें न शिल्प-शिक्षण होता है और न शिल्प के माध्यम से शिक्षण होता है। उत्तर प्रदेश का एकमात्र स्नातक प्रशिक्षण महाविद्यालय बेसिक लाइन पर चलता है। परन्तु शायद अब वह भी न चल सके। वैसे उत्तर प्रदेश के सभी प्रारम्भिक स्कूल बेसिक स्कूल हैं, और कोठारी कमीशन के इस सुझाव के बाद भी कि किसी स्तर की शिक्षा को बेसिक शिक्षा न कहा जाय, उत्तर प्रदेश ने अब तक अपने स्कूलो का नाम नही बदला है। उत्तर प्रदेश में जूनियर स्कूलो (कक्षा १ से ५ तक) की संख्या ६१,९५९ और सीनियर बेसिक स्कूलों (कक्षा ६ से ८ तक) की संख्या ८०८९ है। इन सीनियर स्कूलों का मुख्य क्राफ्ट खेती है और इनके पास लगभग २१,००० एकड़ भूमि है। ६६५ सीनियर स्कूल ऐसे भी चलते हैं,

जिनमें कताई बुनाई, काष्ठ-शिल्प और धातु-शिल्प आदि दूसरे उद्योग सिखाये जाते हैं।

इस वर्ष उत्तर प्रदेश में तीन ऐसे काम हुए हैं जिनका शिक्षा को दृष्टि से बहुत महत्त्व है और जो प्रदेश की तथाकथित बेसिक शिक्षा को भी प्रभावित करेंगे :

(१) उत्तर प्रदेश के एकमात्र स्नातक बेसिक ट्रेनिंग कालेज (वाराणसी) की कार्यविधि की जाँच के लिए और बेसिक शिक्षा की सामान्य नीति के मूल्यांकन के लिए प्रदेश के राज्य शिक्षामंत्री की अध्यक्षता में एक मूल्यांकन समिति नियुक्त की गयी है। इस समिति की एक बैठक भी हो चुकी है।

(२) १९५४ ई० के बाद पहली बार प्रारम्भिक विद्यालयों (बेसिक स्कूलों) के पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जा रहा है और उत्तर प्रदेश का इलाहाबाद स्थित राज्य शिक्षा संस्थान यह पाठ्यक्रम तैयार भी कर चुका है। उत्तर प्रदेश में पहले उद्योग अथवा रचनात्मक काम के लिए १२ पीरियड दिये जाते थे। इस संशोधित पाठ्यक्रम में कुल ६ पीरियड ही दिये गये हैं और इसमें कला का काम भी शामिल है। जाहिर है इतने कम समय में कोई भी उत्पादक काम वैज्ञानिक ढंग से नहीं होगा, होगी काम की विडम्बना।

(३) तीसरा काम और भी खतरनाक है। अभी हाल में राज्य सरकार ने ऐलान किया है कि वह प्रारम्भिक शिक्षा को स्थानीय बोर्डों से निकाल कर अपने हाथ में ले रही है। यद्यपि यह इसलिए किया जा रहा है कि स्थानीय निकायों का शैक्षिक प्रशासन अत्यन्त भ्रष्ट रहा है और सबकी माँग है कि उनके हाथ से प्रारम्भिक शिक्षा निकाल ली जाय, परन्तु नयी तालीम सम्मेलन के इस मंच से हमको सोचना है कि शिक्षा के क्षेत्र में राज्य का अंकुश कहाँ तक वाछनीय है।

उत्तर प्रदेश में हाल ही में ये तीन ऐसे कदम उठाये गये हैं जिनसे उत्तर प्रदेश में बुनियादी शिक्षा जैसी भी है वह भी शायद न रहे।

अब मैं शिक्षा में क्रान्ति के विषय में कुछ कहूँगा। यही मेरा विषय भी है। शिक्षा में क्रान्ति की बात लोग करते हैं परन्तु उन्हें इतना समझना चाहिए कि यह किसी प्रकार का शार्टकट नहीं होगा। शिक्षा तो रचनात्मक विषय है और उसमें क्रान्ति या परिवर्तन भी रचनात्मक ही होगा। आज इस देश को बचाना है तो शिक्षा में क्रान्ति करनी ही होगी। यह कैसे होगा, यही सोचना है।

सबसे पहली बात तो यह करनी है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक विद्यार्थी को समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग वैज्ञानिक ढंग से सिखाने का प्रबन्ध

किया जाय। इस उद्योग के माध्यम से ही उसके व्यक्तित्व का विकास और संस्कार हो। यही बेसिक शिक्षा का मूलभूत सिद्धान्त है। जब गांधीजी ने यह कहा था तो उन्होंने एक मौलिक क्रान्ति की बात कही थी। कृषि के अन्वेषण के बाद से दास-प्रथामूलक जिस मानव संस्कृति की स्थापना हुई, उसमें मनुष्य के जिस व्यक्तित्व का विकास हुआ, वह शोषणमूलक है। इस शोषणमूलक व्यक्तित्व के स्थान पर यदि अशोषण और समतामूलक व्यक्तित्व का विकास करना है तो सबको अपने हाथ से किसी समाजोपयोगी उत्पादक धन्धे की शिक्षा मिलनी ही चाहिए। यही शिक्षा में सबसे बड़ी क्रान्ति होगी।

परन्तु इस देश के करोड़ों बच्चों के लिए उत्पादक उद्योग के वैज्ञानिक शिक्षण के लिए साधन देना क्या सम्भव है? क्या यह किसी सरकार के वश की बात है? केवल एक मार्ग है कम्यूनिटी इन्वाल्वमेण्ट का। अगर समुदाय को मालूम हो कि विद्यार्थी उसके खेतों और कारखानों में वैज्ञानिक ढंग से उत्तम काम करेंगे, तो वह उनका स्वागत करेगा। जो भी हो, यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि अगर यह काम होना है तो शैक्षिक संस्था के भीतर ही साधन देने की बात छोड़कर समुदाय में जाना होगा।

क्रान्ति के दूसरे पक्ष का सम्बन्ध शिक्षा-प्रणाली से है। इस देश में इस समय दो प्रकार के स्कूल चल रहे हैं। एक हैं पब्लिक स्कूल, जिनमें प्रारम्भ से ही शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहता है। दूसरे हैं सामान्य स्कूल, जिनमें शिक्षा का माध्यम मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा है। पब्लिक स्कूल बहुत महँगे होते हैं और उनमें धनी लोगों के लड़के बहुत अधिक फीस देकर पढ़ पाते हैं। जो देश लोकतान्त्रिक समाजवाद की बात करता है उस देश में शिक्षा की दो प्रणालियाँ नहीं चलनी चाहिए। इसलिए कोठारी कमीशन ने सारे देश में लोकशिक्षा की समान प्रणाली (कामन स्कूल सिस्टम) की सिफारिश की है। पब्लिक स्कूलों के सम्बन्ध में सबसे अधिक चिन्ता की बात यह है कि ये स्कूल देश की सामान्य जीवनधारा से बिलकुल कटे हुए हैं, और सबसे खतरनाक बात यह हो रही है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश का प्रशासन धीरे-धीरे इन्हीं पब्लिक स्कूलों से निकले हुए लोगों के हाथों में चला जा रहा है। यह राष्ट्र के हित में नहीं है। अत. मेरी प्रार्थना है कि यह सम्मेलन जोरदार शब्दों में सिफारिश करे कि देश में लोकशिक्षा की एक ही प्रणाली चलेगी और यद्यपि प्रयोग की छूट होगी परन्तु कुछ मूल बातें सबमें समान होंगी। ये मूल बातें होंगी :

१—शिक्षा का माध्यम मातृभाषा (अथवा क्षेत्रीय भाषा) होगी।

२–शुल्क का ढाँचा समान होगा, और
३–सभी विद्यार्थी समाजोपयोगी उत्पादक श्रम करेंगे।

मेरा सुझाव है कि शिक्षा-प्रणाली के इस प्रश्न को नयी तालीम समिति को आन्दोलन के रूप में उठाना चाहिए, क्योंकि जब तक देश में दो प्रणालियाँ चलती रहेंगी, देश में समाजवाद नहीं आयेगा। सर्वोदय समाज की स्थापना तो दूर की बात है।

तीसरी क्रान्तिकारी बात का सम्बन्ध परीक्षा-पद्धति से है। १९५८ में विनोबाजी ने प० जवाहरलालजी को सुझाया था कि प्रमाण-पत्र का नौकरी से सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिए। अर्थात् नौकरी देनेवाला किसी प्रमाण-पत्र की माँग न करे और अपनी परीक्षा स्वयं ले ले। पंडितजी को बात बहुत अच्छी लगी थी परन्तु बात आगे नहीं बढ़ी। लेकिन परीक्षा-पद्धति में और शिक्षा में भी अगर क्रान्ति करनी है तो इस मंच से सशक्त ढंग से यह बात कही जाय और नौकरी तथा शिक्षा में जो अपवित्र सम्बन्ध स्थापित हो गया है उसे समाप्त किया जाय।

शैक्षिक प्रशासन के बारे में केवल इतना कहना है कि शिक्षा पर राज्य का अंकुश नहीं होना चाहिए और शिक्षा स्वायत्त होनी चाहिए। अगर किसी भी तरह शिक्षा पर राज्य का अंकुश रहा और शिक्षा का सरकारीकरण हुआ तो विचारों का रेजिमेण्टेशन होगा और इस हालत में अधिनायकवाद से बचा नहीं जा सकता। अगर हम देश में लोकतंत्र की रक्षा करना चाहते हैं तो हमें शिक्षा को सरकारमुक्त और शासनमुक्त रखना होगा। सरकार के हाथ में शिक्षा का नियंत्रण देना वैदिक शिक्षा की भी नीति नहीं है। उसकी नीति तो पूरे शैक्षिक प्रशासन को छात्र, अध्यापक और अभिभावक के सहयोग से चलाने की है। इस बारे में हमारी नीति साफ होनी चाहिए। क्योंकि इधर प्रायः शिक्षक संघों ने भी शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग की है। विनोबाजी ने तो बार-बार कहा है कि न्याय-विभाग की भाँति शिक्षा-विभाग भी स्वायत्त होना चाहिए। शिक्षा, शिक्षा-शास्त्रियों के हाथ में हो। वे ही यह निर्णय करें कि क्या पढ़ाया जाय, क्या शिक्षा-पद्धति हो, क्या परीक्षा पद्धति हो, आदि। यह दूसरी बात है कि प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय स्तर पर समन्वय समितियाँ हों, परन्तु मूल सिद्धान्त यही रहे कि शिक्षा पर राज्य का अंकुश नहीं रहेगा।

एक बात छात्र-असन्तोष के विषय में कहनी है। आज का छात्र-विद्रोह एक जागतिक समस्या है। यह विद्रोह अगर क्रान्तिकारी है तो वह यथास्थितिवाद

के खिलाफ होगा। विनोबा तो ऐसे विद्रोह का स्वागत करते हैं। वे कहते हैं कि युवकों के दिल में समाज को बदलने की जो आग जल रही है उसे बुझने नहीं देना चाहिए। नयी तालीम को छात्र विद्रोह को रचनात्मक मोड़ देना चाहिए और उसके प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम बनाना चाहिए। आचार्यकुल की भी यही नीति है। नयी तालीम समिति को इस सम्बन्ध में अपनी नीति निश्चित करनी चाहिए। उसी प्रकार उसे यह भी साफ कर देना चाहिए कि शैक्षिक प्रशासन में छात्र प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उसकी क्या राय है। मैं तो मानता हूँ कि विश्वविद्यालयों के कोर्टों और ऐकेडमिक कौन्सिलों (विद्वत परिषदों) में छात्रों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और स्कूलों में भी काम उनकी राय से होना चाहिए। बेसिक स्कूलों का पूरा ढाँचा ही गणतान्त्रिक है।

उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में एक बात कहकर मैं समाप्त करूँगा। मैं अपने पूर्व वक्ता भाई रामगालजी से सहमत हूँ कि उच्च शिक्षा में बुनियादी शिक्षा के तत्वों को दाखिल किये बिना हमें सफलता नहीं मिलेगी। नीचे की शिक्षा बेसिक लाइन पर हो और ऊपर पुरानी तालीम चलती रहे, तो कुछ नहीं होगा। बात यह है कि प्रत्येक देश में विश्वविद्यालय प्रतिक्रियावादी और सामन्तवादी भावनाओं के संरक्षक होते हैं, यथास्थितिवाद के गढ़ होते हैं। भारत भी इसका प्रतिवाद नहीं है। चीन में माओ ने जब शिक्षा में सुधार करना चाहा तो वहाँ के विश्वविद्यालय ही उसके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बने। माओ ने घोषणा की कि चीन के विश्वविद्यालय ही बुर्जुआ विचारों के सबसे सुरक्षित किले हैं, और जब प्रयत्न करने पर भी उनमें सुधार नहीं कर सका तो उसने उन्हें बन्द कर दिया। आज चीन में हर विद्यार्थी के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करने का फाटक खुला नहीं है। हायर सेकेण्डरी स्तर के बाद प्रत्येक विद्यार्थी को ३-४ वर्ष तक किसी फार्म या कारखाने में अनिवार्य रूप से काम करना पड़ता है और उसके बाद जिस विद्यार्थी की सिफारिश कम्यूनिस्ट पार्टी करती है वही विश्वविद्यालयों में जाता है। इस प्रकार चीन में विश्वविद्यालयों का बोझ घटा है, और परिणाम यह हुआ है कि तेजी से विश्वविद्यालयों में नीचे की शिक्षा करीब शत प्रतिशत हो गयी है। हमारे देश में लोकतन्त्र है। अतः हम चीन का मार्ग अपनायें, ऐसी बात तो मैं नहीं कहता, परन्तु हमारे सामने भी अपनी माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण की समस्या तो है ही, जिससे इस स्तर के बाद अधिकांश लड़के काम धन्धे में लगें और कुछ प्रतिभाशाली लड़के ही विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों में जायें। यह कैसे करेंगे इस पर आप सोचें।

विनोबाजी ने आचार्यकुल चलाया है। तीन-चार वर्षों में आचार्यकुल का विचार देश में कुछ फैला है। आशा है आचार्यकुल पनपेगा। नयी तालीम शिक्षा-नीति निर्धारण करे, आचार्यकुल उसका कार्यान्वियन करेगा। आचार्यकुल का सहयोग पूरा आपको मिलेगा, ऐसा आश्वासन मैं आपको देता हूँ।

श्री काशिनाथ त्रिवेदी, मध्य प्रदेश

मैं ऐसे प्रदेश से आया हूँ जहाँ पर नयी तालीम नाम-शेष की स्थिति में है। अब तो नाम भी सहन नहीं होता है। नवम्बर १९५६ में मध्य-प्रदेश का जन्म हुआ। उसके बाद हम लोगों ने कोशिश की कि देश के हृदय भाग में नयी तालीम का काम व्यापकता के साथ फैले। मध्य प्रदेश के जो दूसरे मुख्यमंत्री डा० कैलाशनाथ काटजू हुए, तो हमलोगों ने उनसे प्रत्यक्ष मिलकर प्रार्थना की कि म० प्र० में भी नयी तालीम के कार्य के लिए मण्डल का गठन किया जाय। उसे मानकर उन्होंने मण्डल गठित कर दिया लेकिन स्वयं रुचि नहीं ली। उसके बाद हमारे यहाँ जो स्थिति बनती गयी उससे कुछ काम नहीं हुआ। मण्डल की बैठक का कोई सिलसिला हुआ हो नहीं। शिक्षामंत्री बदलते गये। इस विषय में कोई ध्यान नहीं दिया। बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय कुछ जिलों में थे। धीरे धीरे दृष्टि बदली, वृत्ति बदली, जो १३ विद्यालय थे वे भी अब नहीं रहे। उन सबका नाम बदलकर अब शिक्षा महाविद्यालय कहा जाता है। इनमें बुनियादी शिक्षा की बात एक विषय के रूप में थोड़ा-बहुत पढ़ने की गुंजाइश रखी है, बाकी में और कोई चीज उसमें रही नहीं है। सरकारी तौर पर आज भी कुछ विद्यालय बुनियादी माने जाते हैं, लेकिन वे सभी पाँचवें छठे स्तर के हैं। वे भी अब समाप्त-से हो गये हैं।

गुजरात की मूल्यांकन समिति की सिफारिशें वहाँ की सरकार को दी गयीं, किन्तु किसी ने नहीं सुना। वहाँ पाँच ऐसी संस्थाएँ हैं, जो बुनियादी शिक्षा का काम कर रही हैं। एक तो बैतूल में गंगाधरजी पटवर्धन की है। दूसरा कस्तूरबाग्राम, इन्दौर में है। वहाँ भी ११ वीं तक शिक्षा है। तीसरी टवलाई में है। वहाँ बालवाड़ी व कुमार मंदिर है। वहाँ आठवीं तक अंग्रेजी नहीं रखने का आग्रह रहा है किन्तु अब सरकार का आदेश निकला है कि छठी से अंग्रेजी अनिवार्य हो जायेगी। पहले तो यह बी०ए० तक हटा दी गयी थी, पर अब पुन: चालू हो रही है। समिति से निवेदन है कि हम इस सम्बन्ध में कोई राष्ट्रीय स्तर पर एक नीति बनायें। इस बारे में नौकरशाही पर न छोड़ा जाय। वे बालकों से खिलवाड़ ही करते हैं। हमारा मनावर तहसील का अनुभव है कि निरीक्षक

अनुकूल न हो तो हमारा सारा कार्य बिगड़ जाता है। हम शुरू से कहते रहे हैं कि निरीक्षण-परीक्षण की पद्धति बदलनी चाहिए। आज जो लोग नयी तालीम को समझते नहीं, वे ही लोग मूल्यांकन करने आते हैं तो बहुत विचित्र स्थिति हो जाती है।

परीक्षा के बारे में हमारी स्पष्ट राय हो। आज जो परम्परागत शिक्षा चल रही है उसमें जो विकृति आयी है उसकी सीमा नहीं है। पूरे देश के सामने परीक्षा पद्धति के सम्बन्ध में हमारा स्पष्ट निर्देश आना चाहिए। शिक्षा को शुद्ध और उन्नत कैसे कर सकते हैं, इस बारे में विचार करना चाहिए।

४ जून, '७२ : तीसरी बैठक

श्री धवलभाई मेहता, अध्यक्ष, गुजरात नयी तालीम संघ

आज जो चालू शिक्षा है वह हमारे समाज को अस्वस्थ बना रही है। उसको स्वस्थ बनाने के लिए क्या क्या करना है, उसका ढाँचा क्या होना चाहिए? उसके लिए बापू ने बुनियादी तालीम का विचार पेश किया था। वह सारे देश को स्वीकृत भी हुआ था। लेकिन अनेक कारणों से हम जैसा वायुमण्डल पैदा करना चाहते थे वैसा नहीं कर पाये। आज हम देख रहे हैं कि उसी चीज को ज्यादा निष्ठा बढ़ाकर हमें आगे बढ़ाना होगा।

गुजरात में नयी तालीम का काम कुछ हो रहा है जैसा कि आपने सुना। यहाँ की सरकार बहुत अनुकूल है और जो कार्यकर्ता लोग हैं वे भी निष्ठा से साथ मिलकर काम कर रहे हैं तो भी जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ है। कई दिक्कतें हमारे सामने हैं। बुनियादी तालीम में आये हुए बच्चे भी अपने पैर पर खड़ हो जायें, ऐसा परिणाम नहीं निकलता है। क्योंकि वायुमण्डल उसके विरुद्ध है। इसलिए वायुमण्डल को अनुकूल करना और काम को इस ढंग से बढ़ायें कि लोगों में विश्वास हो जाय कि इनका अच्छा परिणाम निकल रहा है। जैसा कि रामलाल भाई ने कहा, उच्च शिक्षा में भी इसका समावेश होना चाहिए। उसके लिए हम प्रयास कर रहे हैं। एन० एस० एस० का कार्यक्रम चला है। यहाँ से हमारे ध्येय की पूर्ति हो सकती है। इसमें कई जगह अच्छा काम हुआ है। गाँवों में शौचालय, सफाई व समाज शिक्षा का अच्छा काम किया गया है। अतः प्राध्यापकों की दृष्टि इसमें स्पष्ट हुई, इसलिए उनका एक शिविर वेडछी में लगा। परिणाम अच्छा रहा। लोगों में नया उत्साह आया है। नया अनुभव मिला है। अतः सब जगह हवा बनानी होगी।

गुजरात नयी तालीम संघ के कारण यहाँ तीन चार अच्छे विद्यापीठ विकसित

करना सम्भव हो सका है। ये हमारे मॉडल हो सकते हैं। कभी-कभी मन में शंका होती है, जैसे रविशंकर महाराज कहते हैं कि यह शिक्षा तत्काल बन्द करनी चाहिए। किन्तु लोकतंत्र में यह हो कैसे? सभी कहते हैं कि यह शिक्षा गलत है; लेकिन उसके लिए क्या करें? उसमें केन्द्रीय नीति का बारबार बदलना एक कारण है। एक निश्चित नीति बन जाय तथा लोग इस विचार को मान्य करें, तभी कुछ होगा।

अभी मूल्यांकन समिति ने सुझाव दिया है कि जहाँ बुनियादी शिक्षा नहीं है वहाँ भी एक न्यूनतम कार्यक्रम चले। यह सर्वत्र चले तभी शिक्षा शोषण का जरिया नहीं रहेगी। इससे श्रम की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। यह काम सबको साथ लेकर करना होगा। इसे छात्र, अध्यापक सबके लिए प्रेरणादायी बनाना होगा।

इस सम्मेलन से आशा है कि सबको प्रेरणा मिलेगी। आशा है कि गुजरात की ही तरह दूसरे राज्यों में भी नयी तालीम संघ बन जायेगा। यह बहुत सहज ढंग से बन गया। तब उसमें बड़ा तेज था और सरकार भी उससे डरती थी। सब स्वतंत्र संस्थाओं ने मिलकर संघ बनाया। इससे सरकार की गलतियाँ सुधरवाने में मदद मिलती है। यह मूल्यांकन समिति संघ ने ही बनायी थी और उसे सरकार ने मान्य किया। ऐसे ही और राज्यों में करना चाहिए, तभी हम परिस्थितियों का सामना कर सकते हैं।

डा० कौल, एन० सी० ई० आर० टी०, नयी दिल्ली

हमारी संस्था स्वायत्त संस्था है, पर केन्द्रीय शिक्षा-विभाग का एक अंग है। हमने कई सेमिनार किये और 'कान्सेप्ट ऑव वर्क एक्सपीरिएन्स' का एक कार्यक्रम बनाया है। इसे सभी राज्य-सरकारों ने अपनाया है, पर हर राज्य ने इसका ढंग अपना ही रखा है।

बुनियादी शिक्षा कैसे बढ़े, यही प्रमुख प्रश्न है। गांधीजी ने शिक्षा का जो दर्शन दिया वह सारी दुनिया के लिए आवश्यक है। परन्तु गांधीजी ही थे जिन्होंने कहा था कि भारत की समस्याओं का हल भारतीय तरीके से ही किया जा सकेगा। हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी।

यह मानते हुए हम नीचे लिखे कुछ सुझाव देना चाहेंगे :

एक सुझाव यह है कि 'बुनियादी शिक्षा' शब्द को ही हमें अपनाना चाहिए। इसे छोड़ना ठीक नहीं है। 'नाम' का एक इतिहास होता है। उसे झुठलाना नहीं चाहिए।

दूसरा सुझाव यह है, जैसा कमीशन ने भी कहा है, कुछ स्वतंत्र विद्यालय

प्रयोग-केन्द्र हो। गांधीजी की विशेषता थी कि उन्होंने प्राध्यापकों को पूर्ण आजादी दी। अत: शिक्षा स्वायत्त हो। सरकार के आदेश से यह नहीं हो सकता। यह सब लोकशाही से ही हो सकता है। अतः ऐसे प्रयोग-केन्द्र बनें। केन्द्रीय सरकार कुछ 'मॉडल केन्द्र स्कूल' बनाने को तैयार है। अत: उन्हें बुनियादी ढंग से बनाया जाय, हम यह प्रयास करें। हमें इस मौके का लाभ लेना चाहिए और कोशिश करनी चाहिए कि ये आदर्श केन्द्र बुनियादी शिक्षा की लाइन पर बनें।

तीसरा सुझाव यह है कि बुनियादी शिक्षावाले बजाय आपस में ही बात करने के गैर-बुनियादीवालों से बातें करें। इसकी बहुत आवश्यकता है।

चौथा सुझाव यह है कि हमें पहले की तरह राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा-संस्थान की आवश्यकता है। वह पुन: स्थापित होनी चाहिए। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बनाने में मदद मिलेगी।

श्री ग० स० पाटणकर, सदस्य, नयी तालीम समिति, मध्य प्रदेश

चार वर्ष सरकारी नौकरी में रहने के बाद १९४५ में मैं सेवाग्राम चला गया। एक नयी प्रेरणा मिली और बैतूल जैसे पिछड़े जिले में एक संस्था बनायी। कौटुम्बिक शाला के रूप में आरम्भ किया। आज वहाँ लगभग १०० बच्चे हैं। हमने प्रारम्भ से ही समस्त ग्रामीण जीवन को शाला से जोड़ दिया और वहाँ कई उद्योग आरम्भ किये। इसे लोगों ने धीरे-धीरे माना। आज हम पुरानी तालीम पर नयी तालीम के पैबन्द लगाकर चल रहे हैं। किंतु अनुभव आया कि इसमें भी हम कुछ विशेष कर नहीं पा रहे हैं, क्योंकि शिक्षकों की कमी आदि कई कारण हैं। तब हमने अन्य उद्योग छोड़कर खेती व गोपालन ही रखा है। गाँवों से सम्पर्क रखा और शराबबन्दी का काम किया है। दो गाँवों में यह हो सका है। यह छात्रों के सत्याग्रह के कारण हो सका। उस संकल्प को आज तक उन गाँवों ने नहीं तोड़ा है। यहाँ तक कि एक सम्पन्न परिवार के दो बेटों ने बाप के विरुद्ध सत्याग्रह किया। परिवार का बहिष्कार तक किया। इसी प्रकार हरिजन सेवा का काम भी किया। सहभोज किये। इन गाँवों में छुआछूत लगभग समाप्त हो गयी है। विद्यालय का उत्पादन पूरक भोजन के रूप में सब बालकों को बाँट दिया जाता है। अब तो गर्भवती महिलाओं को भी विद्यालय से पौष्टिक आहार दिया जाता है। कम्पोस्ट खाद, सफाई आदि के सब काम शिक्षक-छात्र साथ करते हैं। मल-मूत्र की खाद का असर गाँव में भी दिखता है। वे इसे अपना रहे हैं। गोपालन भी हुआ है। विद्यालय ने अच्छी नस्ल का सांड रखा है उससे किसानों को लाभ मिला। इस तरह विद्यालय की शिक्षा विकास-कार्यक्रम बन गयी है। ३ घण्टे पढ़ाई व

२ घन्टे का काम होता है। हमारे छात्र अन्यत्र अच्छे स्थान पाते हैं। किन्तु अब गाँव में ही शासन ने एक नया स्कूल दे दिया है। इसके पीछे राज है वोट का। इस प्रकार शासन के द्वारा पीठ पीछे छुरा मारने जैसी बात हुई है। हमारे काम की प्रशंसा कनाडा के शिक्षकों तक ने की है और वहाँ के स्कूलों को बुनियादी ढंग पर बदल रहे हैं।

श्री वंशीधर श्रीवास्तव

ग्रामदानी गाँवों में शिक्षा का क्या रूप हो, इस विषय को आचार्य राममूर्तिजी प्रस्तुत करनेवाले थे। परन्तु अस्वस्थता के कारण वे सम्मेलन में नहीं आ सके हैं। अतः अध्यक्ष महोदय के आदेश से मैं इस विषय को प्रस्तुत कर रहा हूँ। आचार्य राममूर्तिजी का यह सन्दर्भ लेख (वर्किंग पेपर) वितरित किया जा चुका है अतः उसे पूरा पढ़कर आपका समय नष्ट नहीं करूँगा। इस लेख में आचार्यजी ने प्रमुखतः निम्नांकित बातें कही हैं :

ग्रामस्वराज्य के ६ तत्त्व माने गये हैं : (१) स्वायत्त ग्रामस्वराज्य-सभा, (२) दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व, (३) पुलिस-अदालत निरपेक्ष व्यवस्था- (४) ग्रामाभिमुख अर्थनीति, (५) स्वतन्त्र शिक्षण (सरकार के कण्ट्रोल से मुक्त शिक्षा) और (६) सर्व धर्म समभाव।

अतः ग्रामदानी गाँवों के शिक्षण में इन ६ तत्त्वों की सिद्धि होनी चाहिए। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि ग्रामदानी गाँवों के लिए एक व्यापक शिक्षण-योजना बनायी जाय, जिसमें—

(क) गाँव के प्रौढ़, युवक, बच्चे सब शामिल हों।

(ख) ग्रामीण जीवन की हर प्रक्रिया शिक्षण का माध्यम हो।

(ग) शिक्षण, विकास और संगठन तीनों ही एक समन्वित प्रक्रिया और कार्यक्रम के अंग हों। ऐसा होगा तो गाँव का विद्यालय गाँव से अलग नहीं रहेगा बल्कि गाँव स्वयं एक विद्यालय बन जायगा।

उन्होंने अपने लेख में गाँव में नित्य एक घण्टे की शाला चलाने की बात भी कही है और नये नेतृत्व के शिक्षण के लिए एक कार्यक्रम भी सुझाया है। इस सम्बन्ध में मुझे एक बात और कहनी है। मुसहरी में प्रखण्ड समिति बन जाने के बाद जयप्रकाश बाबू ने अनुभव किया कि ग्रामदानी गाँवों में पुरानी शिक्षा नहीं चलनी चाहिए और इस सम्बन्ध में नया प्रयोग करने के लिए वेडछी के स्नातक प्रशिक्षण विद्यालय के आचार्य श्री ज्योति भाई को बुलाया गया है। मुसहरी में ज्योति भाई कुछ प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन अभी उसके विषय में कुछ

कहा नहीं जा सकता। अच्छा होता वे स्वयं आते और बताते। इस दिशा में सहरसा में भी कुछ काम हुआ है और इस ओर पूज्य धीरेन भाई और श्री ग० उ० पाटणकरजी ने कुछ चिंतन किया है जिसे नयी तालीम में प्रकाशित किया गया है। श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा जी यहाँ हैं। अतः मैं उनसे प्रार्थना करूँगा कि सहरसा में इस ओर जो कुछ हुआ है उस पर प्रकाश डालें।

श्री कामेश्वर प्रसाद बहुगुणा, संगठक, आचार्यकुल, सहरसा, बिहार।

सहरसा जिले में ग्रामदान पुष्टि का काम पिछले वर्ष से हो रहा है। ग्रामस्वराज्य की दृष्टि से सहरसा हमारा राष्ट्रीय मोर्चा है। यह आप सब जानते हैं। सहरसा में पूज्य धीरेन्द्र भाई अपना पूरा समय दे रहे हैं। अभी श्री पाटणकरजी भी सहरसा गये थे। दोनों ही नयी तालीम के विचारक और विशेषज्ञ हैं। सहरसा में इन दोनों के कारण और ग्रामदान पुष्टि के काम के कारण नयी तालीम के लिए अनुकूल वातावरण बना है और मेरा सुझाव है कि नयी तालीम समिति को सहरसा को अपना प्रयोग का सघन क्षेत्र बनाना चाहिए।

वैसे बुनियादी शिक्षा के मूल्यों और समाज के मूल्यों में आज विरोध है। जब तक यह विरोध मिटता नहीं, नयी तालीम पनपती नहीं। अतः समाज-परिवर्तन का काम नयी तालीम की पहली चुनौती है। इसीलिए मेरा तो कहना है कि नयी तालीम का काम करना है तो ग्रामस्वराज्य का काम पहले करना चाहिए।

श्री चन्द्रभूषण भाई, सेवापुरी, वाराणसी, उ० प्र०

इस मंच से गुजरात में नयी तालीम की जो चर्चा हुई है वह मैंने सुनी है। गुजरात में नयी तालीम का काम अच्छा हुआ। सच पूछिए तो देश में गुजरात ने ही नयी तालीम को बचा रखा है। इधर मनुभाई पंचोली की अध्यक्षता में जो समिति बनी है उसके सुझावों के कार्यान्वित होने से गुजरात में नयी तालीम का काम और अधिक बढ़ेगा और सारे देश के लिए आदर्श होगा। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि आज सरकार द्वारा विकास का जो काम हो रहा है उसी से अनुबंधित करके जो शिक्षा दी जायगी उससे बुनियादी शिक्षा के लक्ष्य पूरे नहीं होंगे। विकास के काम से अनुबन्ध अवश्य हो परन्तु बेसिक शिक्षा का क्षेत्र उससे अधिक व्यापक है। यह न भूला जाय।

श्रीमती शान्ति उपाध्याय, बिहार

हमने माननीय अध्यक्षजी से निवेदन किया था कि वे कृपापूर्वक हमारे बिहार में पधारें। बिहार में बिखरते हुए बेसिक परिवार को सजोने का उपाय किया जाय, किन्तु उन्हें समय ही नहीं मिला। उससे हमारी बड़ी क्षति हुई। हमारी

शिक्षा-संस्थाओं से बुनियादी शिक्षा को हटाने का उपक्रम हो रहा है। सेवाग्राम-परिवार बिखर गया है। तुर्की प्रशिक्षण विद्यालय की बारबार बात होती है। जहाँ पर अपने कार्यकलापों को प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाता था वहाँ की भी परिस्थिति अब बदल दी गयी है।' ६६ में सबसे बड़ा कदम बिहार म उठा कि जनता-कालेजों को तोड़ डाला गया। उसके बाद यह कार्य इस तरह से चला कि बुनियादी शब्द भी खटकने लगा है। नाम बदलने का असर अवश्य होता है। मेरी विनती है कि इस पर जरूर विचार किया जाय। बिहार में आज अट्टालिकाएं ढह रही हैं और हम पतन के कगार पर खड़े हैं। मेरी प्रार्थना है नयी तालीम समिति इस ओर ध्यान दे और इस पतन को रोके।

श्री काशिनाथ त्रिवेदी

इसके बाद अध्यक्ष महोदय के आदेश से श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने चम्बल घाटी के डाकुओं के आत्म-समर्पण की कहानी बताते हुए कहा कि उनके पुनर्वास में नयी तालीम महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है।

इसके बाद श्री द्वारिका बाबू न सम्मेलन का निवेदन प्रस्तुत किया जो बाद में कुछ सशोधनों के बाद स्वीकृत हुआ। (देखिये पृष्ठ ५३३ पर)

समापन भाषण

सम्मेलन का समापन श्रीमन्नारायण, अध्यक्ष, नयी तालीम समिति के द्वारा सम्पन्न हुआ। अपने भाषण में अध्यक्ष ने कहा, 'मैं आप सबका बहुत आभारी हूँ। जो सुझाव आप सबने दिये, उनको समाविष्ट करके यह जो निवेदन और प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, मैं समझता हूँ उसका काफी दूर तक असर होगा। लेकिन यह भी सही है कि नयी तालीम समिति को काफी सक्रिय होना होगा। पिछले १० वर्ष निकल गये। इन वर्षों में वार्षिक सम्मेलन न होने से काम को काफी धक्का लगा। हम नयी तालीम समिति को सक्रिय बनाने की पूरी कोशिश करेंगे। हमने तय किया है कि अक्तूबर '७२ में दूसरा सम्मेलन सेवाग्राम में किया जाय। वहाँ पर सन् '३७ में एक कान्फ्रेंस हुई थी, ३५ वर्ष बाद फिर करने जा रहे हैं। करीब ५०० चुन हुए लोगों को बुलाया जायेगा, जिसमें देश के शिक्षाशास्त्री, विश्वविद्यालयों के कुलपति और प्रधानमन्त्री को भी शामिल होने के लिए निवेदन करेंगे। हमने जो काम किया है वह उस सम्मेलन की बुनियाद होगा। जो इस सम्मेलन का प्रस्ताव है वह धरातल का काम करेगा। उसमें कुछ और बातें जोड़ेंगे। मैं आशा रखता हूँ कि उसके बाद यह काम और तेजी से चलेगा।

अगले तीन चार साल मैं बहुत भयकर मानता हूँ। मैं तो यहाँ यह भी

स्पष्ट करना चाहता हूँ कि गरीबी हटाओ का जो कार्यक्रम है, यदि शिक्षा का ढाँचा वही रहा, तो कुछ भी होनेवाला नहीं है। जो कुछ भी करना चाहते हैं शिक्षा उसकी बुनियाद होगी। यह बहुत आवश्यक है कि तालीम का ढाँचा बदला जाय। समाजवाद के लिए यह आवश्यक है। इतनी सारी योजनाओं के बाद भी गरीबी कम नहीं हुई है। अब यह करना है। यह गावों पर कृपा नहीं है। देश के जीवन-मरण का सवाल है। शायद सेवाग्राम सम्मेलन में हम इस दिशा में कुछ काम कर सकेंगे।

मैं इन सभी प्रतिनिधियों का, जो दूर से आये हैं, आभार मानता हूँ। गुजरात नयी तालीम संघ को, जिसने यहाँ का जिम्मा लिया, और यहाँ के संचालकगण तथा अन्य सहयोगियों के हम सब आभारी हैं। स्वागत समिति ने कम समय में अच्छी व्यवस्था की और सम्मेलन को सफल बनाया, उसके भी हम आभारी हैं।

प्रतिनिधियों की ओर से श्री पाटणकरजी ने स्वागत समिति की सुन्दर व्यवस्था के लिए आभार प्रदर्शन किया।

•

नयी तालीम सम्मेलन का निवेदन

शारदाग्राम (गुजरात) में ३, ४ जून, १९७२ को आयोजित अखिल भारतीय नयी तालीम सम्मेलन ने आपसी विचार विमर्श के बाद तीव्रतापूर्वक यह अनुभव किया कि भारत की स्वतंत्रता की रजत जयन्ती वर्ष को शिक्षा में आमूल क्रान्ति का वर्ष मानकर सारे देश में बाल मंदिर से लेकर विश्वविद्यालय तक की समूची शिक्षा-प्रणाली को इस तरह बदला जाय जिसमे देश के लोक-जीवन में शिक्षा अपने वास्तविक रूप में विकसित और प्रतिदित हो सके और उसमें बुनियादी शिक्षा के समस्त सर्वमान्य तत्त्वो का भली भांति समावेश किया जा सके। शिक्षा को लोकतांत्रिक समाजवादी राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए उक्त परिवर्तन अनिवार्य है। इस समय देश में प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की शिक्षा का जो रूप प्रचलित है उसमें राष्ट्रीय शिक्षा के उन तत्त्वो का भारी अभाव है जो शिक्षकों और विद्यार्थियों के चरित्र और जीवन को सही दिशा और दृष्टि देते हैं।

इस सम्मेलन की यह निश्चित राय है कि देश म पूर्व प्राथमिक से लेकर विश्वविद्यालय तक की समूची शिक्षा व्यवस्था में, बुनियादी शिक्षा के नीचे ये चार तत्त्वो का समावेश निर्विवाद रूप से किया जाय

(१) शिक्षा का माध्यम आदि से अंत तक बालक की अपनी मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा हो।

(२) शिक्षा के द्वारा तरुण नागरिकों में सब धर्म समभाव की वृत्ति को विकसित और पुष्ट किया जाय।

(३) शिक्षा किसी न किसी समाजोपयोगी उत्पादक उद्योग और प्राकृतिक व सामाजिक वातावरण के माध्यम से दी जाय।

(४) शिक्षा को समाज निर्माण और समाज सेवा की प्रवृत्तियों के साथ जोडा जाय।

सम्मेलन का अपना यह दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा के क्षेत्र में शहरी और देहाती शिक्षा के बीच कोई भेद न रखा जाय। मूलभूत तत्त्वों का आग्रह सर्वत्र समान रूप से रहे। उत्पादक उद्योगों के प्रकार में आवश्यकता के अनुसार गाँवो या शहरो में अन्तर रखना इष्ट हो तो रखा जाय।

शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी किसी व्यवस्था को आश्रय न दिया जाय जिससे समाज में वर्ग-भेद और श्रेणी-भेद को प्रोत्साहन मिले। देश में शिक्षा को

समानान्तर प्रणालियाँ न चलायी जायें और लोक-शिक्षा की एक सामान्य विद्यालय-प्रणाली सर्वत्र अनिवार्य रूप से अपनायी जाय।

प्रस्ताव

(१) यह सम्मेलन भारत सरकार से और राज्य सरकारों से अनुरोध करता है कि वे अपने यहाँ बुनियादी शिक्षा को उसके सच्चे रूप में विकसित करने का बीड़ा उठावें और ऐसा कोई भी प्रतिगामी कदम न उठने दें जिससे बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति को बाधा पहुँचे।

(२) सम्मेलन यह भी चाहता है कि शासकीय सेवाओं के लिए जो प्रादेशिक और अखिल भारतीय स्पर्द्धात्मक परीक्षाएँ ली जाती हैं, वे एक तर्कसंगत प्रान्तीय कोटा के आधार पर मातृभाषा में ही ली जायें और जो लोग इस प्रकार शासकीय सेवा के लिए चुने जायें उनको एक निश्चित अवधि में हिन्दी और अंग्रेजी सिखाने की समुचित व्यवस्था की जाय।

(३) सम्मेलन का यह दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा के क्षेत्र में प्रमाण पत्रों का नौकरी से सम्बन्ध विच्छेद होना ही चाहिए। नौकरी या रोजगार देनेवाला विभाग अपनी परीक्षाएँ स्वयं ले और इस परीक्षा में बैठने के लिए किसी दूसरी परीक्षा के प्रमाण पत्र की आवश्यकता न हो। इस प्रकार के सम्बन्ध विच्छेद से एवं परीक्षा पद्धति से वे बहुत से भ्रष्टाचार दूर हो सकेंगे जो आजकल सामान्य हो रहे हैं। सम्मेलन यह चाहता है कि केवल वार्षिक परीक्षाओं के स्थान पर छात्रों के कामों का वर्ष भर सतत मूल्यांकन होता रहे।

(४) सम्मेलन यह आवश्यक समझता है कि उत्तर बुनियादी अथवा माध्यमिक स्तर पर विविध उद्योगों के शिक्षण की ऐसी व्यवस्था की जाय जिसका लाभ लेकर अधिकांश छात्र आत्मनिर्भर जीवन जीने योग्य बन सकें और विश्वविद्यालयों में पहुँचनेवाली भीड़ छँट जाय।

(५) सम्मेलन की यह मान्यता है कि इस देश में शिक्षा स्वायत्त बननी चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्तों को स्पष्ट रूप में स्थापित कर और इस हेतु एक दीर्घकालीन नीति तय करने के बाद शिक्षा संचालन की ऐसी व्यवस्था हो जिसमें

१ सरकारी नियन्त्रण कम-से कम रहे।

२ प्रयोग करनेवालों के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता का अवसर रहे।

३. नीति के निर्धारण और अमल में हर स्तर पर ऐसे शिक्षाविद् रखे जायँ जिनका शिक्षा में अपना प्रत्यक्ष अनुभव हो तथा जो निर्विवाद रूप से असाम्प्रदायिक एवं पक्ष-मुक्त हों।

(६) सम्मेलन को विश्वास है कि यदि उपर्युक्त बिन्दुओं को ध्यान में रखकर भारतीय स्वतन्त्रता की रजत-जयन्ती वर्ष में शिक्षा को राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुरूप ढालने का निश्चय किया जायेगा तो उन अनेकानेक जटिल समस्याओं के हल खोजे जा सकेंगे जो आज इस देश के शिक्षा जगत के सामने गम्भीर चुनौती के रूप में खड़ी हैं।

(७) बुनियादी शालाओं के सम्बन्ध में बिहार सरकार ने हाल ही में जो नीति घोषित की है उसकी जानकारी से इस सम्मेलन को गहरी चिन्ता हुई है। यह सम्मेलन आशा करता है कि बिहार सरकार इस विषय में पुनर्विचार करेगी और राज्य में बुनियादी शिक्षा को केवल जारी ही नहीं रखेगी बल्कि आगे भी बढ़ायेगी।

(८) सम्मेलन देश की सभी सरकारों और समस्त नागरिकों से अनुरोध करता है कि वे बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के आधार पर आमूल क्रान्ति का हृदय से स्वागत करें और उसके लिए सब प्रकार की आवश्यक तैयारी में अविलम्ब लग जायँ।

(९) सम्मेलन की निश्चित राय है कि लोअर प्राइमरी और अपर-प्राइमरी स्कूलों की परिभाषा को वापस लेकर बुनियादी और उत्तर-बुनियादी शब्दावली को प्रचलित किया जाना चाहिए।

(१०) देश में इस प्रकार की काफी बुनियादी शालाएँ स्थापित करनी चाहिए जो विभिन्न प्रकार के नये नये प्रयोग करती रहें। सम्मेलन की राय है कि भारत सरकार की ओर से जो हर ब्लॉक और जिले में "माडेल कम्युनिटी-स्कूल" प्रारम्भ किये जानेवाले हैं वे बुनियादी ढंग के हों।

(११) सम्मेलन की राय है कि सरकारी या गैरसरकारी स्तर पर बुनियादी तालीम का एक 'राष्ट्रीय संस्थान' स्थापित किया जाय जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से बुनियादी शिक्षा सम्बन्धी अनुसन्धान का कार्य करे।

●

वर्ष : २०
अंक : ११
मूल्य : ५० पैसे

अनुक्रम

जून, '७२

●

- 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से प्रारम्भ होता है।
- 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छः रुपये है और एक अंक के ५० पैसे।
- पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।
- रचनाओं में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित,
अनुपम प्रेस, के २९/३० दुर्गाघाट, वाराणसी में मुद्रित

नयी तालीम : जून, '७२

पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त

लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

आवरण मुद्रक : वर्द्धमान प्रेस मानमंदिर वाराणसी १

वर्ष : २०
अंक : १२

- शिक्षा में क्रान्ति : व्यावहारिक स्वरूप
- शिक्षा, जिसकी हमें आवश्यकता है
- शिक्षा का लक्ष्य
- ग्राम-गुरुकुल

जुलाई, १९७२

शिक्षा में क्रान्ति : व्यावहारिक पक्ष

शिक्षा में क्रान्ति नारेबाजी के रूप में जितनी आसान लगती है उसका व्यावहारिक पक्ष उतना ही कठिन है। मगर बेसिक शिक्षा की बात छोड़ दी जाय तो आज तक शिक्षा में क्रान्ति का काम जुलूस और नारों से ऊपर नहीं उठा है। और नारे सबने लगाये हैं—शिक्षा-शास्त्रियों ने भी, राजनीतिज्ञों ने भी, आम आदमियों ने भी और सबसे अधिक आज के तरुणों ने। परन्तु नारों को जमीन पर उतारने का काम किसी ने नहीं किया है। मैं छोटे-मोटे सुधारों की बात नहीं करता हूँ, क्रान्ति की बात कर रहा हूँ।

शिक्षा में क्रान्ति को जमीन पर उतारने का सबसे पहला और सबसे अहम कदम होगा देश की शिक्षा को, जो आज अनुत्पादक है, उत्पादक बनाना। शिक्षा उत्पादक बने यह सभी कह रहे हैं—पर कैसे बने यह कोई कह नहीं कर रहा है। गांधीजी ने बेसिक शिक्षा के माध्यम से यही कहा था, परन्तु उसे देश ने नहीं सुना। कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में देश विदेश के मूर्धन्य शिक्षा-शास्त्रियों ने हजारों-हजार गवाहियाँ लेकर "कार्यानुभव" की शिक्षा को देश की शिक्षा का अभिन्न अंग बना देने की सिफारिश कर, यही बात कही है, परन्तु देश उस संस्तुति को कार्यरूप में परिणत नहीं कर रहा है। कार्यानुभव क्या है? इसकी संकल्पना क्या है? इसको कार्यरूप में कैसे परिणत किया जाय? इस सम्बन्ध में कागज पर योजनाएँ बन रही हैं, परन्तु जमीन पर उतारने की किसी प्रकार की व्यापक चेष्टा नहीं हो रही है और देश में बेरोजगारी तथा बेकारी के कारखाने ज्यों-के-त्यों चल रहे हैं।

वर्ष : २०
अंक : १२

आज हमारी शिक्षा जिस व्यक्तित्व का निर्माण करती है वह शोषक व्यक्तित्व है—दूसरों के शोषण पर पलनेवाला

विश्वविद्यालय ऐक्ट मे सशोधन किया गया और कोर्ट मे अध्यापकों तथा छात्र-प्रतिनिधियो को स्थान दिया गया तो एक हगामा मच गया है।

इसी तरह शिक्षा मे क्रान्ति को जमीन पर उतारने का अर्थ होगा परीक्षा-पद्धति मे आमूल परिवर्तन। जब तक परीक्षा-पद्धति मे क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं होगा, शिक्षा मे किसी प्रकार की क्रान्ति नही होगी। वह क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा नौकरी का परीक्षा से सम्बन्ध-विच्छेद। अर्थात् किसी भी नौकरी के लिए स्कूल या कालेज के किसी प्रमाण-पत्र की आवश्यकता न हो और नौकरी देनेवाला अपनी परीक्षाएँ स्वय ले ले। यद्यपि इस क्रान्तिकारी परिवर्तन की बाते अनेक लोग कर रहे हैं और अभी हाल मे मैसूर राज्य मे शिक्षा मे सुधार के लिए सुझाव देने के लिए नियुक्त कमीशन के अध्यक्ष श्री देवगोडा ने भी यह सस्तुति की है परन्तु कहीं भी इस सस्तुति को लागू नहीं किया गया है।

शिक्षा मे क्रान्ति के व्यावहारिक पक्ष का सम्बन्ध शैक्षिक प्रशासन से भी है। दुख की बात है कि स्वातन्त्र्योत्तरकाल मे शिक्षा के सरकारीकरण की माँग बढी है और सबसे अधिक इसकी माँग स्वय शिक्षक सगठनो ने की है। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण प्रतिगामी कदम होगा। और किसी भी हालत मे लोकतन्त्र के हित मे नहीं होगा। प्रशासन के क्षेत्र मे शिक्षा मे क्रान्ति का केवल एक अर्थ होता है—शिक्षा सरकार के नियत्रण से मुक्त हो। आज तो जब सरकार भी शिक्षा को अपने नियत्रण मे लेने की चेष्टा कर रही है (उत्तर प्रदेश मे प्राइमरी शिक्षा का राष्ट्रीयकरण हो रहा है—गुजरात मे माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीयकरण का प्रयास है और केरल मे शायद उच्च शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कर दिया जाय और बिहार ने तो विश्वविद्यालयो मे वाइस-चॉसलरों के स्थान पर आई० ए० एस० अफसर नियुक्त कर ही रखा है।) तब तो इस मुक्ति की चेष्टा और भी अधिक आवश्यक हो गयी है। शिक्षा के सरकारीकरण का सगठित विरोध करना चाहिए क्योंकि देश को अधिनायकवाद की ओर से जानेवाला यह सबसे सशक्त कदम होगा। अगर शिक्षा का सरकारीकरण हुआ तो अधिनायकवाद से बचा नहीं जा सकता।

—वंशीधर श्रीवास्तव

रामनन्दन मिश्र

शिक्षा का लक्ष्य

देश का यह दुर्भाग्य है कि आज तरह तरह के आर्थिक और राजनैतिक कार्यक्रमों की चर्चा तो चल रही है परन्तु देश के कुमारों को स्वस्थ शिक्षा देने की ओर राजनैतिक नेताओं का ध्यान नहीं है। समाज का वातावरण, राजनैतिक नेताओं के द्वारा अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए शिक्षा-संस्थाओं का उपयोग और शिक्षक तथा शिक्षा अधिकारियों की कुमियों ने इस देश की शिक्षा संस्थाओं को भयंकर दुरवस्था में पहुँचा दिया है। शिक्षा संस्थाओं की चक्की में पीसकर जिस तरह के नौजवान तैयार हो रहे हैं उनसे किसी तरह के स्वस्थ समाज के निर्माण की आशा नहीं की जा सकती है।

एक अमरिकन विद्यार्थी से यह प्रश्न पूछा गया कि इतनी साधन सम्पन्नता होते हुए भी अमेरिका के नौजवानों की मनोभावना विशृंखलित क्यों है, तब उस युवक ने अत्यन्त मार्मिक उत्तर दिया—विज्ञान ने हवाई जहाज पर उड़ना और चन्द्रमा को छूना तो सिखाया, पर उसने रहना और जीना नहीं सिखाया। मुख्य बात तो यह है कि 'मनुष्य बनाना' शिक्षा संस्थाओं का सबसे प्रधान ध्येय होना चाहिए, इसका कोई चिन्ह शिक्षा-संस्थाओं में रहा नहीं। उदाहरणस्वरूप दो प्रश्न मैं शिक्षा प्रेमियों के सामने विचारार्थ रखना चाहता हूँ

१—मानव जाति पर जो संकट है उसके मूल में सबसे बड़ी कठिनाई आज क्या है?

इस प्रश्न पर विचार करें, तो स्पष्टरूप से समझ में आयेगा कि व्यक्तिवादी भावनाओं की सीमाविहीन जागरण समाज निर्माताओं के सभी प्रयत्नों को विफल कर रहा है। मानव के अन्तर में रहनेवाली पशुता उद्दाम वेग से जग पड़ी है, भोग लिप्सा की तृप्ति के लिए जो कुछ सत्य है सुन्दर है, कल्याणकारी है, उस सबको अपने पैरों के नीचे रौंदकर वह क्षणिक सुखभोग की तृप्ति चाहती है। दूसरों को पीछे छोड़कर, या उन्हें आघात पहुँचाकर भी हर व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है। इस तरह की अनैतिक प्रतिस्पर्द्धा में जो शामिल नहीं हो सकता, उसे जीवन की साधारण आवश्यकताओं से भी वंचित रहना पड़ता है।

परिणामस्वरूप समाज में यह मान्यता दृढ़ हो गयी है कि आदर्शों की चर्चा, व्याख्यान वगैरह के लिए अच्छी है, परन्तु व्यवहार में येन केन प्रकारेण सफलता प्राप्त करनी ही चाहिए, अथवा जैसे भी बने धन संग्रह और प्रतिष्ठा प्राप्त करनी चाहिए। ऐसी भावनाओं के मूल में है मानस साथ लगा हुआ 'विशेष व्यक्तित्व' का आधार। इस 'मैं' के स्थान पर 'हम' का जन्म नहीं हुआ, तो सामाजिक जीवन कलुषित और निरर्थक हो जायेगा। इसकी स्थापना तभी सम्भव है, जब सिद्धान्त, व्यवहार और अनुभूति, तीनों स्तर पर व्यक्ति विशेष चेतना का सामूहिक चेतना से सम्बन्ध जोड़ा जाय। इसी को आध्यात्मिक परिभाषा में जीवभाव के स्थान पर ब्रह्मभाव की स्थापना कहते हैं।

२—दूसरा प्रश्न है, शिक्षक वर्ग विद्यार्थियों में शिक्षा-कार्य के प्रति श्रद्धा और प्रेम क्यों पैदा नहीं कर पाता है?

शिक्षा प्रदान करने का काम इतना महान और पवित्र है कि किसी भी स्वस्थ समाज में उसके लिए सहज आकर्षण रहना चाहिए। परन्तु आज किसी विद्यार्थी से यह पूछिए कि वह आगे चलकर क्या होना चाहता है, तो वह कहेगा—डाक्टर, इंजिनियर, मिनिस्टर, या व्यावसायिक। शायद ही कोई विद्यार्थी खुशी से किसी स्कूल का अध्यापक होना चाहेगा। डाक्टर होना क्या चाहेगा? उसको मरीजों की सेवा करने में रुचि नहीं है, उसकी रुचि मरीजों के पास से रुपया ऐंठने में है। इंजिनियर का दिल का शौक अच्छे पुल, मकान या नहर बनाने में नहीं है, बल्कि रुपया कमाने में है। ऐसा क्यों हो रहा है?

स्पष्ट है, व्यक्ति की भावना समाज के कल्याण के साथ जुड़ी हुई नहीं है। इस मनोदशा को यदि हम नहीं बदल पाये, तो किसी तरह के स्वस्थ समाज का निर्माण असम्भव हो जायेगा। अफसोस है कि आज भारतवर्ष के नेता धर्म-निरपेक्षता जैसे अशोभनीय शब्दों के प्रयोग पर तुल गए हैं। धर्म सृष्टि के साथ सहज रूप से जुड़ा हुआ है। आग का धर्म है गरमी देना। जिस दिन आग अपने धर्म को छोड़ देगी, उस दिन सृष्टि का ध्वंस हो जायगा। पृथ्वी का धर्म है अपनी धुरी पर नाचते हुए सूर्य की परिक्रमा करना। इसमें तिलमात्र का भी अन्तर पड़ा, तो पृथ्वी का सर्वनाश हो जायेगा। मनुष्य का धर्म है प्रेम और श्रम करना। जिस दिन मानव-जाति से प्रेम का भाव मिट जायेगा और श्रम से अरुचि पैदा हो जायेगी, उस दिन मानव जाति जीवित नहीं रह सकेगी। धर्म निरपेक्ष तो गधे और बिल्लियाँ हो सकती हैं। भारतीय संविधान तो इतना ही कहता है कि उसका किसी एक सम्प्रदाय विशेष से विशेष नाता नहीं रहेगा।

भारतीय सविधान का जो दृष्टिकोण है उसका सबसे सुंदर अनुवाद गाधीजी ने किया है—सर्व धर्म समता।

दुर्भाग्यवश धार्मिक सम्प्रदायो का व्यवहार इतना अनैतिक हो रहा है कि मानव समाज का मन सहज ही उनसे विमुख हो रहा है। छूरा भोकना, घर को आग लगाना स्त्रियो और बच्चो पर अत्याचार करना, ऐसे जघन्य अपराध भी धर्म के नाम पर किये जा रहे हैं। दूसरी ओर दबे हुए युवको की साहसिकता उन्हें छूरा भोकना, बम फोडना घरो को आग लगाना, गाधीजी जैसे महापुरुष के चित्र जलाना आदि कुत्सित कार्यों की ओर ले जा रही है। फिर भी यह याद रखना चाहिए कि जीवन मे धार्मिकता की नितान्त आवश्यकता है। धार्मिकता का अर्थ है एक ओर प्रकृति और समाज के नियमो को स्वीकार कर सासारिक जीवन को मर्यादित भाव से चलाना दूसरी ओर व्यक्तिगत चेतना का विश्वचेतना से सम्बन्ध जोडना—अर्थात् विज्ञान और अध्यात्म का सच्चा मिलन मानव जीवन मे लाना।

यह महान कार्य विद्या (लर्निंग) द्वारा ही सम्भव है। भारतीय संस्कृति के अनुसार—सा विद्याया विमुक्तये। परन्तु मुक्ति का अर्थ क्या है? विज्ञान ने हमें एक महान जानकारी की उपलब्धि करा दी है कि सृष्टि नियमो से जकडी हुई है। इन नियमो की लौह शृंखलता से मुक्ति पाने का एक ही अर्थ है—इन नियमो का ज्ञान। ऐसा ज्ञान देना विद्यालयो का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। विज्ञान के आधार को छोडकर अध्यात्म और धर्म टिक नही सकते।

दूसरी ओर धर्म ने मानव-जाति को इस ज्ञान का महादान किया है कि प्राकृतिक शक्तियो और नियमो के परे एव उनके मूल में एक महान विश्व चेतना है। वही जीवन का परम आनन्द रसधार अमृत है। उसके स्पर्श को छोडकर मानव-जाति कभी सुखी नही हो सकती। इसको आधार देना भी विद्यालयो का महत्त्व का लक्ष्य माना जाना चाहिए। इस रस की प्राप्ति भी विद्या से ही होती है। विद्ययामृतमश्नुते। सामान्य और विशेष दोनो का स्वस्थ ज्ञान देना ही विद्यालयो का प्रधान लक्ष्य है। संस्कृत भाषा के अनुसार एक दृष्टि से विद्या ही साध्य है विद्या ही साधन है और विद्या ही पाथेय है।

इसी विद्या के दो भाग हैं—सामान्य और विशेष। (संस्कृत भाषा म सामान्य के ज्ञान को ज्ञान कहते हैं और विशेष के ज्ञान को विज्ञान—अध्यात्म और विज्ञान)। ज्ञान विज्ञानतृप्तात्मा (गीता ६ ८)—ज्ञान और विज्ञान के प्रकाश से जिनका अन्तर प्रकाशित हो उठा है ऐसे मानव कुमारो को तैयार करना ही विद्यालय का प्रधान लक्ष्य है। — मैत्री [illegible] सामार

धीरेन्द्र मजूमदार

ग्राम-गुरुकुल

सन् १९३७ में जब अंग्रेजी राज्य के अन्तर्गत ही भारत के नये संविधान के अनुसार करीब-करीब सभी प्रान्तों में कांग्रेस का मंत्रिमण्डल बना तो गांधीजी ने उन सरकारों को सलाह दी कि सबसे पहले देश की शिक्षा बदलनी चाहिए। वे मानते थे कि किसी देश का निर्माण करना है तो शिक्षा ही एक मात्र ऐसा कार्यक्रम है जिसके जरिये मुल्क को किसी दिशा में प्रगति करायी जा सकती है। वस्तुतः अंग्रेजों ने इस देश में जिस गुलामी मनोवृत्ति का अधिष्ठान और संगठन किया था, वे मेकॉले साहब द्वारा प्रवर्तित शिक्षा का ही परिणाम था। गांधीजी उस पद्धति को बदलकर पुरुषार्थ के आधार पर स्वतंत्र राष्ट्रीय शिक्षा का प्रवर्तन करना चाहते थे। तदनुसार उन्होंने देश के शिक्षा-मंत्री तथा शिक्षा शास्त्रियों का सम्मेलन बुलाकर उनके सामने बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा की योजना को पेश किया। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय जीवन के समस्त कार्यक्रम शिक्षा का माध्यम बनेगा तभी राष्ट्रीयजन की प्रगति के साथ-साथ राष्ट्र की भी प्रगति होती रहेगी। इसी उद्देश्य के प्रथम चरण में उन्होंने सात साल से चौदह साल के बच्चों की बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा का प्रारूप बनवाया। उसमें उन्होंने आवश्यक उत्पादन की प्रक्रिया, सामाजिक वातावरण तथा प्राकृतिक

वातावरण के माध्यम से शिक्षा-योजना चलाने के लिए शिक्षाशाला के अन्तर्गत ही तीनों प्रवृत्तियों के परिवेश का सृष्टि कर उनके मार्फत शिक्षण पद्धति की योजना बतायी।

देश की कांग्रेस सरकारों ने तथा अनेक शिक्षा-शास्त्रियों ने इस नवीन पद्धति का स्वागत किया और देश के अनेक स्थानों में बुनियादी राष्ट्रीय शिक्षा के प्रयोग के लिए बुनियादी शालाएँ खोली गयीं, लेकिन शीघ्र ही १९४१-४२ के आन्दोलन में जब कांग्रेस मन्त्रिमण्डल समाप्त हुआ, तब बिहार को छोड़कर प्रायः सभी प्रदेशों में नयी शिक्षा का प्रयोग समाप्त हो गया।

फिर १९४७ में जब भारत में अंग्रेजी शासन का अन्त हुआ तो देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों की सरकारों ने बुनियादी शिक्षा के पुनः प्रयोग का निर्णय किया, और उसे चालू किया गया। दुर्भाग्य से देश की सरकारों के मन्त्रिमण्डल के सदस्य तथा दूसरे शिक्षित समुदाय लार्ड मेकाले द्वारा प्रवर्तित पद्धति की उपज थे। अतः उनमें विलायती संस्कार इतना अधिक रूढ़ हो गया था कि गांधीजी के प्रति श्रद्धा के कारण बुनियादी शिक्षा के प्रयोग में लगने के बावजूद उन्होंने शिक्षा की मुख्य धारा को लार्ड मेकाले द्वारा प्रवर्तित पद्धति की दिशा में ही प्रवाहित किया और साथ साथ साईडिंग में डालकर कुछ थोड़े पैमाने पर बुनियादी शाला की भी प्रवृत्ति चलाते रहे।

वस्तुतः लार्ड मेकाले भारतीय जनता को भारतीय शकल में अंग्रेज बनाना चाहते थे, और भारत के आज के शिक्षित समाज को देखने से स्पष्ट होगा कि लार्ड मेकाले साहब अपने उद्देश्य में भरपूर सफल हुए हैं।

अंग्रेजी शासन शिक्षित समाज को गैर-भारतीय बनाने में सफल हुआ। इतना ही नहीं बल्कि देश के जन मानस में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया। अंग्रेजी शासन से पहले देश की मान्यता रही है, उत्तम खेती, मध्यम बान, अधम' चाकरी भीख निदान,। अंग्रेजों ने अपने शासन काल में देहाती जनता के मानस को भी बदलकर नयी मान्यता का प्रतिपादन किया। इस बदली हुई मान्यता के अनुसार जनता समझने लगी कि उत्तम चाकरी, मध्यम बान, अधम खेती, भीख निदान है।

सरकार, शिक्षित वर्ग तथा जनता के नापसन्द के फलस्वरूप गांधीजी द्वारा परिकल्पित शिक्षा-पद्धति का प्रयोग आगे न बढ़कर उसकी दिशा पुरानी पद्धति की ओर मोड़ने लगी और आज यद्यपि अनेक पाठशालाओं के नाम बुनियादी

शाला के रूप में ही चालू हैं परन्तु शिक्षा-पद्धति पुरानी पद्धति के अन्तर्गत विलीन हो चुकी है।

शिक्षा के सम्बन्ध में गांधीजी ने एक दूसरी बात कही थी। उनके जेल से छूटने के बाद हिन्दुस्तानी तालीमी संघ ने सन् १९४५ के शुरू में ही सेवाग्राम में नयी तालीम सम्मेलन बुलाया था। उसी समय गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा के नेता तथा कार्यकर्ताओं का संबोधन करके कहा था कि अब वे अपनी शिक्षा-पद्धति को छोटा सागर से निकालकर महासागर में ले जाना चाहते हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, 'अब अंग्रेज जा रहे हैं और शायद हम और आप जितना जल्दी समझते हैं उससे पहले ही चले जायें। इसलिए उन्होंने कहा कि अब देश के सारे रचनात्मक काम को हर गाँव में स्वराज्य कायम करने तथा उसका संगठन करने के लिए समग्र सेवा की दिशा में मोड़ना होगा। तदनुसार उन्होंने बुनियादी शिक्षा को भी समग्र नयी तालीम की दिशा में मोड़ना चाहा था। उन्होंने कहा था कि अब शिक्षा की अवधि गर्भ से मृत्यु तक होनी चाहिए और पूरे समाज को शिक्षा शाला बनना चाहिए। इसी कल्पना के कारण ही उन्होंने कार्यकर्ताओं को सागर से महासागर की ओर ले जाने का संकेत किया था।

इतना कहकर गांधीजी इंग्लैण्ड के कैबिनेट मिशन से चर्चा करने में तथा बाद में भारत विभाजन के विषय पर प्रतिफल के मुकाबले में लग गये। तालीमी संघ को महासागर में कूदने के लिए गांधीजी का मार्गदर्शन नहीं मिला। फलस्वरूप संघ पुराने ढंग से बुनियादी शाला और उत्तर बुनियादी शाला चलाने के काम में लगा रहा और उतना ही मार्गदर्शन सरकारी बुनियादी शिक्षा को दे सका। संघ समग्र नयी तालीम की दिशा में आगे बढ़ने के लिए कोई नया प्रयोग करने में असमर्थ रहा।

इसी बीच १९५१ से सन्त विनोबा ने भूदान यज्ञ का अभियान शुरू कर दिया और १९५५ तक भूदान-यज्ञ आगे बढ़कर ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य के स्तर पर पहुँच गया। सर्वोदय आन्दोलन के ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य तक पहुँचने पर नयी तालीम संसार में ग्रामदानी गाँवों को बुनियाद मानकर समग्र नयी तालीम की दिशा में चिन्तन शुरू हुआ। खासकर विनोबाजी के मन में इस दिशा में तीव्रता के साथ चिन्तन चलता रहा और उन्होंने नयी तालीम जगत के सामने यह घोषणा कर दी कि हर गाँव को एक युनिवर्सिटी बनाना चाहिए।

उन्हीं दिनों सन् १९५६ में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के अध्यक्ष आर्यनायकम्‌जी तालीम को अगले कदम के लिए विनोबाजी से गहराई से चर्चा करने

तथा उनसे प्रेरणा लेने के उद्देश्य से उनकी पदयात्रा में लगातार साथ रहे। परिणामस्वरूप उन्हें विश्वास हो गया कि नयी तालीम की सिद्धि तभी हो सकती है जब गांधीजी के समग्र नयी तालीम के विचार के अनुसार तथा विनोबाजी के ग्राम विश्वविद्यालय की कल्पना के मुताबिक समग्र नयी तालीम के प्रयोग में लगा जा सके। श्री नायकमजी के इस विश्वास के कारण उन्होंने १९५७ में दिल्ली में अनुष्ठित हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की बैठक में पूरे गाँव को तालीम शाला के रूप में परिणत करने के प्रयोग में संघ के लगने के प्रस्ताव को स्वीकृत कराया। प्रस्ताव को पेश करने में श्री नायकमजी का भाषण उल्लेखनीय है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि अगर नयी तालीम को वास्तविक बनाना है तो पूरे समाज को यानी गाँव को ही तालीम-शाला के रूप में परिणत करना होगा।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। लेकिन दुर्भाग्य से तालीमी संघ ने उस प्रयोग के अमल में कुछ नहीं किया और वह प्रस्ताव दफ्तर में ही रह गया। फिर देश में नयी तालीम के प्रति आस्था घटती गयी और तालीमी संघ का उत्साह भी मन्द पड़ता गया। सर्वोदय जगत का ध्यान ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य के प्रति केन्द्रित हुआ और आज ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य के आन्दोलन के प्रति देश और दुनिया का ध्यान व्यापक पैमाने पर आकर्षित हो रहा है।

दूसरी तरफ पिछले कई साल से वर्तमान शिक्षा-पद्धति के प्रति देश में आमतौर पर असन्तोष बढ़ता रहा है। यह असन्तोष अभी दो-तीन सालों से अत्यन्त तीव्र रूप धारण कर रहा है। शिक्षित बेकारों की समस्या और उसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी समुदाय की उदण्डता ने देश के नेताओं तथा प्रदेश की सरकारों को चिन्तित कर दिया है। ऐसे समय में मुल्क को फिर एक बार गांधीजी द्वारा परिकल्पित समग्र नयी तालीम की दिशा में मुल्क के चिन्तनशील व्यक्तियों तथा शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान जाना आवश्यक है। अतः नये सन्दर्भ में इस दिशा में गम्भीर विचार कर अगर कुछ ठोस परिणाम नहीं निकाला गया तो वर्तमान शिक्षा पद्धति देश को सर्वनाश की तरफ ले जायगी, इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया है।

मुल्क ने लोकतंत्र के सिद्धान्त को स्वीकार किया है। लोकतंत्र की दो आवश्यकताओं की पूर्ति शिक्षा के लिए न्यूनतम जिम्मेदारी है। लोकतंत्र की न्यूनतम माँग है कि हर बालिग स्त्री और पुरुष को इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे वह हर उम्मीदवार के घोषणा-पत्र को पढ़कर तथा समझकर निर्णय

कर सके कि किस घोषणा पत्र की नीति देश के भविष्य के लिए सर्वोत्कृष्ट नीति है। दूसरी माँग यह है कि हर मनुष्य जिम्मेदार नागरिक हो ताकि लोकतन्त्र की यह आवश्यकता कि देश की व्यवस्था लोक द्वारा हो, पूरी हो सके।

आज की शिक्षा-पद्धति के अनुसार हर बच्चे के लिए तालीम पाना असम्भव है, यद्यपि सरकार और नेता निरन्तर चौदह साल की उम्र तक के बच्चो की अनिवार्य शिक्षा की घोषणा करते रहते हैं। यह तो सर्वविदित है कि देश की पचासी प्रतिशत जनता ग्रामीण जनता है। इस जनता मे निरन्तर यात्रा के समय जब मैं बच्चो से पूछता हूँ कि कितने बच्चों को शिक्षा की जरूरत है तो सब स्कूल के बच्चे एक साथ कहते हैं कि सबको शिक्षा मिलनी चाहिए। इसी प्रश्न पर सब बच्चे एक साथ कहते हैं कि जो बच्चे स्कूल नही आते हैं वे भैंस, गाय और बकरी चराने मे, छोटे बच्चो को सम्भालने मे, घास छीलने मे तथा दूसरे गृहस्थी के काम मे लगे रहते है। साथ ही साथ उनका यह भी कहना है कि वे सारा काम, जो बच्चे करते हैं उन्हे माँ-बाप अगर अपने जिम्मे लेकर बच्चो को स्कूल मे भर्ती करते हैं तो उनकी गृहस्थी चल नही सकती। भारतीय ग्रामीण समाज की आज की परिस्थिति मे अनिवार्य शिक्षा असम्भव है। बच्चो के साथ शिक्षक तथा गाँव के दूसरे नागरिक भी इस बात को कबूल करते हैं। ऐसी हालत मे अनिवार्य शिक्षा की बात कोरी कल्पना ही बनकर रह जायगी। कभी अमल मे नही आ सकेगी। यही कारण है कि गाधीजी ने समाज के समस्त कार्यक्रम को शिक्षा का माध्यम माना था और मुल्क को इसी सिद्धान्त के अनुसार शिक्षण योजना बनाने की सलाह दी थी।

दूसरा सवाल जिम्मेदार नागरिक का है। देश के गाँव-गाँव मे स्कूल है। चौदह साल के बच्चो तक के स्कूलो के शिक्षार्थियो की गणना की जाती है तो स्पष्ट होता है कि अधिक-से-अधिक सात-आठ बच्चो मे एक बच्चा स्कूल जाता है। ये बच्चे कौन है? बच्चो के परिवारों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि जितने बच्चे स्कूल मे पढ़ते हैं, करीब-करीब वे सब बच्चे घर-गृहस्थी के किसी भी जिम्मेवारी मे शामिल नहीं रहते हैं। वे ऐसे व्यक्ति हैं जो परिवार की जिम्मेदारी से मुक्त हैं अर्थात् वे परिवार के गैर-जिम्मेदार सदस्य रहते हैं। ये ही बच्चे जो बचपन से अपने घर तक की जिम्मेदारी से लापरवाह हैं, आगे चलकर शिक्षित नागरिक बनते हैं और इन्हीं नागरिकों पर मंत्री, ऑफिसर तथा कर्मचारी की हैसियत मे मुल्क की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। जो समुदाय बचपन से गैर जिम्मेदारी के परिवेश मे पला है और बढ़ा है उसी पर जब

देश की जिम्मेदारी रहेगी तो मुल्क की क्या दुर्दशा होगी; यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। वस्तुत देश की जनता आज इसी दुष्चक्र में फँसी हुई है। अगर उपरोक्त परिस्थिति में दो-चार व्यक्तियों में जिम्मेदारी की वृत्ति पायी जाती है तो वह शिक्षा के कारण नहीं बल्कि वर्तमान शिक्षा के बावजूद किसी दूसरी परिस्थिति के कारण ही अपवाद रूप में मौजूद है।

अतएव शिक्षा में क्रान्ति यानी शिक्षा में जब आमूल परिवर्तन की माँग हो रही है तो इस *दिशा में चिन्तनशील व्यक्तियों को उपरोक्त दो वस्तुस्थिति पर* ध्यान देने की आवश्यकता है।

अब प्रश्न यह है कि शिक्षा में क्रान्ति लायेगा कौन ? देश की सरकारों ने १९३७ और १९४७ के दिनों में यानि आजादी के प्रथम चरण में गांधीजी की सलाह के अनुसार बुनियादी शाला के कार्यक्रम को गम्भीरता के साथ अपनाया था, लेकिन जनता की सांस्कृतिक मान्यता वही थी जैसे अंग्रेजी राज्य के दिनों में विदेशी सत्ता ने पनपाया था, तथा देश की पुरानी जातिवादी प्रथा के कारण जनता ने अपनाया था। देश में जातिवादी संस्कृति तथा अंग्रेजी शिक्षा के कारण व्यक्ति द्वारा उत्पादक श्रम हेय हो गया। नयी तालीम का कार्यक्रम प्रतिष्ठा विरोधी कार्यक्रम था। फलस्वरूप जनता ने भी उसे स्वीकार नहीं किया और नेता तथा शिक्षित वर्ग ने तो उसे घृणा की दृष्टि से देखा ही। इसका स्वाभाविक नतीजा वही हो सकता था, जो हुआ। अर्थात् बुनियादी तालीम का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

बुनियादी शिक्षा को समाप्त करने में मुख्य कारण देश की जनता की मान्यता रही है, यह बात मैंने अभी कही है। लेकिन इस बीच में सन्त विनोबा के बीस साल तक भूदान और ग्रामदान आन्दोलन से श्रम-प्रतिष्ठा का विचार काफी फैला है। साथ ही साथ, देश की आर्थिक परिस्थिति तथा समाजवाद आदि विचारों के फैलने के कारण देश के प्रचलित रईसी मन स्थिति में भी काफी कमी आ गयी है, वर्तमान मन स्थिति में जब ग्रामस्वराज्य का आन्दोलन *आगे बढ़ रहा है और काफी गाँवों में ग्रामसभा सचेतन और सक्रिय हो रही है* तो अब ग्राम-समाज को सोचना पड़ेगा कि क्या ग्रामस्वराज्य में भी शिक्षा के प्रश्न पर वही गलती दोहरायी जायेगी जो गलती हिन्द स्वराज्य के नेताओं ने की थी या गांधीजी की परिकल्पना के अनुसार समग्र नयी तालीम के विचार को अपनाया जायगा। सौभाग्य से अपनी लोक गंगा-यात्रा * के क्रम में मैं जब

* लेखक आजकल सहरसा में पैदल या बैलगाड़ी पर निरन्तर घूमते रहते हैं।

ग्रामदानी गाँवो की जनता से चर्चा करता हूँ तब वे स्वीकार करते है कि शिक्षा मे ग्रामूल परिवर्तन कर घर गृहस्थी के काम की जिम्मदारी के साथ-साथ शिक्षा की व्यवस्था हो सके तो जनता उसे स्वागत करेगी। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि नयी शिक्षा पद्धति के लिए ग्रामस्वराज्य-सभा की ओर से पहल हो, सरकार की ओर से नही। सन्त विनोबा द्वारा प्रतिपादित ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन मे सरकार को नही कहा जाता है कि सरकार देश मे ग्रामस्वराज्य कायम करे। क्योकि इतिहास का अनुभव यह है कि किसी प्रकार का आमूल परिवर्तन सरकार द्वारा नही जनता द्वारा ही किया जा सकता है। अतः ग्राम-स्वराज्य आन्दोलन की प्रक्रिया यह है कि जनता को विचार समझाया जाय और जब गाँव के नागरिक विचार समझकर ग्रामदान के संकल्प पत्र पर हस्ताक्षर करें तथा उसके लिए आवश्यक कागजात भरकर सरकार से माँग करें कि सरकार उनके ग्रामदान को स्वीकार कर पुरानी पंचायत-प्रथा को उस गाँव से उठा ले, तभी सरकार उसे स्वीकृति देती है। उसी तरह नयी शिक्षा पद्धति के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण जनता विचार को समझकर उसे स्वीकार करे तथा विचार के अनुसार योजना बनाकर सरकार से माँग करे कि उनके गाँव मे समग्र नयी तालीम की पद्धति के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था हो तथा पुरानी पद्धति की शाला को बदलकर नयी पद्धति, नयी शाला मे परिणत करे। अर्थात् जिस तरह जनता की माँग के अनुसार सरकार ग्रामदान स्वीकार करती है उसी तरह ग्राम-समाज की माँग के अनुसार सरकार समग्र नयी तालीम अर्थात् ग्राम-गुरुकुल को स्वीकार करे, तभी नयी पद्धति स्थायी रूप से चल सकती है।

लेकिन ग्राम-समाज तथा सरकार दोनो की स्वीकृति के बावजूद अगर नयी शिक्षा-पद्धति के प्रयोग के लिए निष्ठावान तथा उत्साही शिक्षक नही मिलेंगे तब भी शिक्षा मे क्रान्ति का कोई प्रयोग नही चल सकेगा। अतएव आचार्यकुल को भी शिक्षा मे क्रान्ति के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना होगा जब आचार्यकुल के सदस्य उत्साह और लगन से इस प्रयोग मे लगने को तैयार होंगे तो उन्हें भी सरकार से माँग करनी होगी कि सरकार उन्हें इस प्रयोग के लिए मौका दे। इस प्रकार जब सरकार की स्वीकृति से तथा कुछ शिक्षकों की और ग्राम समाज की माँग से जब ग्राम-गुरुकुल का प्रयोग शुरू होगा तभी शिक्षा मे क्रान्ति का छोर प्रकट हो सकेगा। वस्तुतः आज की परिस्थिति मे जब ग्राम-समाज तथा उत्साही शिक्षक की सम्मिलित माँग से सरकार नयी शिक्षा के प्रयोग के लिए तैयार होगी तभी समग्र नयी तालीम यानी ग्राम विश्वविद्यालय या

ग्राम-गुरुकुल की शुरुआत हो सकेगी। अतएव ग्रामस्वराज्य की क्रान्ति के सिलसिले में पुष्टि के साथ जब सृष्टि की योजना बनायी जाय तो ग्रामसभा द्वारा शिक्षा की अग्रगामी प्रयोग के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है।

अब प्रश्न यह है कि उत्साही शिक्षक तथा ग्रामसभा की मांग पर अगर सरकार कुछ करने को तैयार भी हो तो योजना की दिशा क्या होगी।

हमने ऊपर कहा है कि देहात के बच्चों की गणना करने पर स्पष्ट होता है कि सात-आठ बच्चों पर एक बच्चा स्कूल जाता है। हमने यह भी कहा है कि लोकतन्त्र की न्यूनतम मांग यह है कि हर बालिग स्त्री और पुरुष को कम-से-कम इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे वह चुनाव के उम्मीदवारों के घोषणा पत्रों को पढ़कर समझ सके। वस्तुतः इसी आवश्यकता के सन्दर्भ में ही देश की भिन्न-भिन्न सरकारें तथा समाजशास्त्री यह घोषणा करते रहते हैं कि शिक्षा के प्रथम चरण में चौदह साल तक के बच्चा को अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता है। लेकिन अनिवार्य शिक्षा की आवश्यकता को चाहनेवाले नेता तथा समाजशास्त्री को शायद इस बात का पूर्ण एहसास नहीं है कि जो अधिसंख्यक बच्चे स्कूल नहीजाते हैं वे अपने घर-गृहस्थी के काम में यानी भैंस, गाय या बकरी चराने में, घास छीलने में या दूसरे खेती के काम में लगे रहते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि कुल बच्चों को अगर आज की शिक्षा पद्धति में शामिल करना हो और इस कारण बच्चों के कामों का उनके माता पिता को सम्भालना पड़े तो ग्रामीण समाज की गृहस्थी चल नहीं सकती है। वस्तुतः जो लोग अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं वे भी अपनी गृहस्थी के उपरोक्त कामों के लिए दूसरों के बच्चों को नौकर रख लेते हैं। तात्पर्य यह है कि सब काम बच्चे ही करेंगे नहीं तो भारत का आज का ग्रामीण समाज चल नहीं सकता है।

अतएव अगर ग्रामसभा यह चाहती है कि गांव के सब बच्चे शिक्षा पायें, शिक्षा ग्रामीण समाज को समृद्ध करने का साधन बने तथा ग्रामसभा को वास्तविक बनाने के लिए हर नागरिक जिम्मेदार बने, तो ग्रामसभा को गांव की खेती-बारी तथा अन्य कार्यक्रमों को इस प्रकार से संयोजित करना होगा, जिससे गांव के समस्त कार्यक्रम शिक्षा का माध्यम बनाये जा सकें। ग्रामीण समाज के शिक्षण की आवश्यकता के कारण इस प्रकार के संयोजन को पूरी सफलता में समय जरूर लगेगा, लेकिन किसी छोटे छोर से प्रारम्भ तो कर ही देना पड़ेगा ताकि दृष्टि स्पष्ट रूप से ग्राम-गुरुकुल की दिशा में बनी रहे। ग्रामस्वराज्य के विचार के उद्बोधन में लगे हुए मित्रों का, जिन्हें शिक्षा में रुचि है, तत्काल

जिन ग्रामसभाओं में सक्रियता तथा सामूहिकता का दर्शन होने लगा है, ऐसे कार्यक्रम की शुरुआत करनी होगी, जिससे ग्रामीण जनता समग्र तालीम की दिशा में उत्साहपूर्वक आकर्षित हो सके।

यद्यपि हमने कहा है कि सरकार, शिक्षक तथा ग्रामीण जनता के समन्वित चाह पर ही समग्र नयी तालीम की यह योजना बन सकती है, फिर भी प्राथमिक प्रयोग सरकार निरपेक्ष ग्रामसभा की शक्ति से ही सम्भव हो सकेगा। क्योंकि इन तीनों तत्वों में से पहल की जिम्मेदारी अगर ग्राम समाज की नहीं होगी तो आजादी के प्रथम दिनों में बुनियादी शिक्षा का जो परिणाम हुआ था वही परिणाम ग्रामस्वराज्य की भूमिका में समग्र नयी तालीम का भी होगा। अतएव शुरूआत में सातत्य के साथ प्रयोग में लगनेवाले कम से-कम दो कार्यकर्ताओं की टोली को जगम ग्राम-गुरुकुल के रूप में स्थायी रूप से खेती को माध्यम बनाकर ग्राम शिक्षण का कार्यक्रम उठाना पड़ेगा। ऐसे जगम ग्राम-गुरुकुल के एक गाँव की अवधि एक सप्ताह की होगी और उसका पड़ाव ऐसे गाँव में होगा जहाँ कम-से कम एक किसान सपरिवार अपनी गृहस्थी को उस साप्ताहिक गुरुकुल में परिणत करने को तैयार हो।

ऐसे दो समर्पित कार्यकर्ता ग्राम गुरुकुल के आचार्य तथा गृहपति का काम करेंगे। वे जिस परिवार को साप्ताहिक गुरुकुल में परिणत करना चाहते हैं, उनके पूरे परिवार को तथा उनके साथ लगे हुए दूसरे सहायकों को गुरुकुल के शिक्षार्थी के रूप में सगठित करेंगे। उनके दैनिक जीवन की दिनचर्या बनायेंगे। जिसमें सुबह से शाम तक का कार्यक्रम रहेगा। सुबह की प्रार्थना और सफाई के अलावा चार घण्टे या साढ़े तीन घण्टे (मौसम तथा परिस्थिति के अनुसार) खेती में काम होगा, वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित ढग से खेती की हर प्रक्रिया को चलाना होगा। खेती-सम्बन्धित खाद बनाना तथा बीजादि की वैज्ञानिक व्यवस्था करनी होगी। इन तमाम कार्यक्रमों के साथ डेढ़ घण्टे प्रतिदिन सैद्धान्तिक वर्ग लेना होगा। इन वर्गों में खेती के विज्ञान, ग्रामस्वराज्य का समाजशास्त्र तथा ग्राम-गुरुकुल का सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक पहलुओं के सम्पूर्ण विवेचन का शिक्षण रहेगा। खेती तथा अन्य व्यावहारिक कार्यक्रम में या सैद्धान्तिक वर्गों में गाँव के जो भी लोग चाहेंगे शामिल हो सकते हैं। आचार्य तथा गृहपति का दैनिक कार्यक्रम निम्न रहेगा।

१—सुबह सफाई, प्रार्थना तथा परिवार और सदस्यों के साथ मिलकर खेती।

२—तीसरे पहर नजदीक के किसी एक गाँव म जाकर खेती वाडी तथा अन्य विभिन्न प्रश्नो पर चर्चा।

३—ग्राम को सैद्धान्तिक वग।

उपरोक्त तमाम कार्यक्रमो को काम के अनुभव के साथ साथ विकसित करना होगा।

इस प्रकार साप्ताहिक गुरुकुल-केन्द्र का आयोजन किसी एक प्रखण्ड म तब तक करते रहना होगा जब तक कोई एक गाँव ग्राम गुरुकुल के प्रयोग का प्रभिक्रम करने को तैयार न हो। जो कोई गाव ग्राम-गुरुकुल के प्रयोग के लिए तैयार हो उस गाँव म प्राचाय तथा गृहपति दूसरे जो कोई शिक्षित नौजवान शामिल होने को तैयार हों उनके साथ प्रयोग क काम म लगे।

हमने कहा है कि ग्राम गुरुकुल का अथ गाँव म गुरुकुल खोलना नही बल्कि पूरे गाँव को गुरुकुल बनाना है। लेकिन शुरुआत मे उतने ही प्रौढ तथा बच्चो को गुरुकुल का शिक्षार्थी बनाना होगा जितने इस प्रकार की शिक्षा मे शामिल होने को तैयार हो अर्थात् गुरुकुल म वे बच्चे शामिल होगे जो गाँव के किसानो के खेत म स्कीम के क्रम के अनुसार सुबह तीन घण्ट काम करने को तैयार हो तथा वे किसान शामिल होग जो शिक्षको तथा ग्रामसभा के सदस्यो क साथ बैठकर अपनी खेती की योजना बनाने तथा सपरिवार शिक्षक और छात्रों के साथ कम से-कम सुबह तीन घण्टे काम करने को तैयार हो।

ग्राम-गुरुकुल के शुरू म माध्यमिक स्तर के प्राथमिक दर्जों को प्रथम चरण म शामिल नही करना चाहिए। निम्न प्राथमिक दर्जो के शिक्षको के लिए डेढ घण्टे की रात्रि पाठशाला चलाने की व्यवस्था करनी होगी। गुरुकुल के कायक्रम के सुबह साढ तीन घण्टे जिनमे दो घण्ट के बाद आधा घण्टा नाश्ते के लिए सुरक्षित रहेगा (यह कायक्रम ग्रामसभा के निणय के अनुसार बदला जा सकता है, यानी डेढ घण्टे के बाद नाश्ते का समय रखा जा सकता है) उत्पादन-काय होगा और दोपहर के बाद भिन्न मौसम म भिन्न समय के अनुसार तीन घण्टे विभिन्न विषयो की पढाई का कायक्रम रहेगा।

अब प्रश्न यह है कि पढाई किन विषयो की हो। वतमान शिक्षा म नीचे वग से ही कुल विषयो की पढाई होनी है लेकिन ग्राम गुरुकुल म सामान्य विज्ञान तथा समाज विज्ञान का प्राथमिक परिचय कृषि उद्योग के कायक्रम के समवाय म शुरू से ही होता रहेगा, लेकिन दोपहर बाद पढाई के वर्गों म तथा रात्रि पाठशाला म धीरे धीरे नये विषयों की पढाई का क्रम बढाना होगा।

पढाने मे शुरू शुरू मे उत्पादन के काम के साथ समवाय नहीं सधेगा फिर भी जहाँ तक सम्भव होगा दैनिक उत्पादन के कार्यक्रम तथा गाँव की सामाजिक परिस्थिति के साथ अनुबन्धित करने का प्रयास करना होगा यद्यपि शुरू-शुरू मे शिक्षक के अनुभव की कमी के कारण यह प्रक्रिया अत्यन्त अल्पमात्रा मे हो सकेगी। वर्गों मे निम्न क्रम के अनुसार विषयो के ज्ञान की व्यवस्था करनी चाहिए।

१—प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वर्ग मे हिसाब तथा मातृभाषा।

२—चतुर्थ वर्ग मे हिसाब, मातृभाषा और भूगोल।

३—पचम वर्ग मे हिसाब, मातृभाषा, भूगोल, इतिहास तथा नागरिक जीवन।

४—षष्टम वर्ग मे हिसाब, मातृभाषा, भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र तथा समाजशास्त्र।

५—सप्तम वर्ग मे हिसाब, मातृभाषा, भूगोल, इतिहास, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र तथा सामान्य विज्ञान।

आज की परिस्थिति मे अगर अंग्रेजी पढाना अनिवार्य है, ऐसी मान्यता ग्रामीण समाज का हो तो सप्तम वर्ग मे थोडी अंग्रजी भी पढायी जा सकती है।

सुबह तीन घण्टे खेती के काम निम्नलिखित क्रम से चलना सुविधाजनक होगा। चार से सात वर्ग के विद्यार्थी अपने गुरु के साथ चार टोली बनायेंगे और एक सप्ताह के लिए गुरुकुल म शामिल किसान तथा ग्रामसभा की सलाह के अनुसार चार किसानो के खेत म मालिक परिवार के साथ वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित ढँग से काम करेंगे। साथ-साथ किसान-परिवार और छात्रो को काम का समवाय सम्बन्धी विभिन्न विषयो का ज्ञान प्राप्त होगा। इस प्रकार प्रति सप्ताह भिन्न भिन्न किसानो की खेती की परिस्थिति के अनुसार चार वर्गों की चार टोली के लिए पारी स किसानो क खेत म काम करने का क्रम रहेगा।

खेती के काम म समय समय पर फुरसत रहती है। उन दिनो सुबह तीन घण्टे छात्रो को उद्योगो के काम मे लगना होगा। प्रथम चरण मे दो उद्योग के शिक्षण का कार्यक्रम रहेगा—डेढ घण्टे कताई तथा डेढ घण्टे कम्पोस्ट बनाने का काम। कम्पोस्ट के काम के लिए जो किसान निमन्त्रित करेगा उसीके यहाँ यह काम होगा, और कताई का काम गुरुकुल म चलाना होगा। छात्र चरखे अपने घर से लेते आयेंगे।

इस प्रकार के कार्यक्रम चलाते हुए ग्राम गुरुकुल की ओर से,यह प्रयास रहना चाहिए कि गाँव म किसान और मजदूर के अन्दर सहकारिता की भावना बढे

तथा भूमिहीनता पूर्ण रूप से मिटकर ग्राम-समाज की सृष्टि हो सके। जबतक ग्राम-सरकार के विकास द्वारा ग्राम-समाज का सगठन नहीं होता है तबतक ग्राम-गुरुकुल की प्रगति सम्भव नहीं है। वस्तुत ग्राम-गुरुकुल का लक्ष्य यह होगा कि पूरा गाँव गुरुकुल की शिक्षण-प्रक्रिया मे शामिल हो ताकि शिक्षण के परिणाम से ही गाँव का समग्र विकास हो सके। यह तभी होगा जब पूरा गाँव ग्राम गुरुकुल मे परिणत हो सकेगा।

हमने कहा है कि साप्ताहिक ग्राम-गुरुकुल का कार्यक्रम तबतक चलाना होगा जबतक किसी गाँव की तरफ से पूरी तैयारी के साथ स्थायी गुरुकुल की माँग न हो। जगम गुरुकुल का काम होगा कि वह कार्यक्रम के साथ साथ ग्राम-सभा के लोगों को इसकी तैयारी के लिए मदद करे। जगम ग्राम-गुरुकुल के आचार्य और गृहपति का काम होगा कि वे साप्ताहिक गुरुकुल के लिए अवस्थान काल मे गुरुकुल केन्द्र के गाँव के निवासियो को तथा आसपास के गाँवो की ग्रामसभा को इस बात के लिए प्रेरित करे कि हर ग्रामसभा अपने-अपने गाँव में हर टोले मे डेट घण्टे की एक रात्रि पाठशाला का सगठन करे। रात्रि पाठशाला के शिक्षक उसी गाँव के पढ़े लिखे युवक होगे और उसके खर्च के लिए गाँव मे सर्वोदय पात्र का सगठन हो। इस प्रकार व्यापक पैमाने पर ग्रामसभा के पहल पर तथा आचार्यकुल के साथ सम्बन्ध जोडकर जब डेढ घण्टे की पाठशालाओ की हवा फैलेगी तो कुछ-कुछ गाँवो के लिए सम्भव होगा कि वे अपने गाँव म स्थायी गुरकुल के लिए गम्भीरता से विचार करें।

जिस क्षेत्र म आचायकुल सक्रिय हुआ है, आचार्यकुल के सदस्यों ने डेढ घण्टे की पाठशाला चलाने का सकल्प कर उसके अमल का प्रयास किया है। उसी क्षेत्र में जगम ग्राम-गुरुकुल का कार्यक्रम शुरू करने पर अनुकूलता होगी, ऐसा समझना चाहिए।

हमने कहा है कि सरकार उत्साही शिक्षक तथा ग्राम-समाज के समन्वित चाह पर ही ग्राम-गुरुकुल का काम चला सकती है। लेकिन प्रयोग-अवस्था मे उन ग्रामसभाओ को पहल करना होगा जो अपने गाँवो म नवीन शिक्षा प्रणाली चलाना चाहती है। उसके लिए दो प्रश्न सामने आयेगा, प्रथम प्रश्न है गुरुकुल चलाने के लिए सातत्य वृत्तिवाले तथा भावनाशील आचार्यों की प्राप्ति। ऐसे आचार्य गाँव से तथा क्षेत्र से निकलने चाहिए और हम मानते हैं कि ग्राम स्वराज्य के विचार तथा सयोजन की प्रगति के साथ-साथ हर क्षेत्र से ऐस प्रतिभाशाली नौजवान आगे आयेंगे। सर्वोदय आन्दोलन मे लगे कार्यकर्ताओ

का जिनमे ग्राम गुरुकुल को आगे बढाने की शक्ति और उत्साह हो काम होगा कि वे ऐसे नौजवानो को शिक्षित करें। वस्तुत स्थायी ग्राम गुरुकुल की पूर्व तैयारी मे जो मित्र जगम गुरुकुल के काम म लगगे उनका यह भी एक काम होगा कि भिन्न भिन्न क्षेत्रो के प्रतिभाशाली नौजवानो को इस दिशा मे प्रेरित तथा शिक्षित करें और आवश्यकता पडने पर अगर कोई ग्रामसभा चाहे तो वे किसी गाँव म अधिक दिन बैठकर भी वहाँ के शिक्षको को प्रशिक्षित कर दें।

दूसरा प्रश्न आर्थिक है। स्वभावत ग्रामसभा के सामने यह सवाल खडा होगा कि शिक्षको के गुजारे का तथा गुरुकुल के अन्य खर्चों की व्यवस्था कैसे हो। ऐसे प्रयोगो के लिए ग्रामसभा अनावर्तक खर्च में सरकार या बाहरी सस्थाओ से सहायता ले सकती है लेकिन चालू खर्चों के लिए शिक्षण प्रक्रिया म से ही व्यवस्था निकालनी चाहिए। इस प्रश्न पर गाधीजी बिलकुल स्पष्ट थे।

ग्राम समाज से गुरुकुल के अनावर्तक खर्च के लिए दो प्रयत्न करने होगा।

१—जब गुरुकुल क सभी छात्र और शिक्षक बारी से गाव भर के किसानो के खेत म काम करेंगे तो हर खेत मे श्रम तथा विज्ञान की वृद्धि होगी। इस वृद्धि के कारण निश्चित रूप से पैदावार बढगी। ग्राम-समाज इसका हिसाब लगाकर देखे कि हर साल वृद्धि म कितनी बढती हुई। ग्रामसभा निर्णय कर सकती है कि वृद्धि का चौथाई हिस्सा ग्राम-गुरुकुल को होगी और जैसे-जैसे वृद्धि होती जायगी वैसे-वैसे हिस्सा भी बढता जायगा। किसान जो चौथाई हिस्सा ग्राम गुरुकुल के लिए देगा वह दक्षिणा नही होगा वह गुरुकुल के पुरुषार्थ का मुआवजा मात्र होगा।

२—ससार के हर देश और काल मे यह सस्कृति रही है कि समाज की अगली पीढी के विकास के लिए समाज गुरुदक्षिणा दे। उसके लिए सर्वोदय पात्र का सगठन होना चाहिए। यह सर्वोदय पात्र सामाजिक गुरुदक्षिणा का स्वरूप होगा। जो बच्चे शिक्षा पाते हैं उनका भी धर्म है कि वे कुछ व्यक्तिगत गुरुदक्षिणा द, जिससे गुरु शिष्य का सम्बन्ध बन सके। यह दक्षिणा क्या होगा, उसका निर्णय ग्रामसभा को—अभी भी बहुत से क्षेत्र म धानिचरा आदि का रिवाज है उसी प्रकार का कुछ निर्णय करना चाहिए।

आज देश म बहुत से समर्थ और प्रतिभाशाली नौजवान व्यापक पैमाने पर शिक्षा म क्रान्ति का नारा लगा रहे हैं। क्या वे नारा ही लगाते रहेंगे या जमीन पर उतरकर सकल्पपूर्वक शिक्षा म क्रांति क स्वरूप निकालने के लिए सातत्य के साथ प्रयोग करने म अपने जीवन को भी समर्पित करेंगे ?•

शिक्षा, जिसकी हमें आवश्यकता है

[३-४ जून, १९७२ को शारदाग्राम, गुजरात मे आयोजित अ०भा० नयी तालीम सम्मेलन का प्रमुख सन्दर्भ-लेख—सम्पादक]

हमारे समय का सबसे अधिक ज्वलन्त तथ्य यह है कि हम आज एक ऐसे ससार म रह रहे हैं जो हमम अत्यधिक भय और चिन्ता उत्पन्न करता है। दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाजशास्त्री और दूसरे बुद्धिवादी बराबर मानव समाज के भविष्य पर चिन्तन कर रहे हैं और इस विषय म शका प्रकट की जाने लगी है कि क्या हम एक युग के अन्त म पहुँच गये हैं और जो सभ्यता हमने निर्मित की है क्या वह नष्ट होने जा रही है ? विश्व वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष, अनिश्चितता और बर्बरता के सकट से गुजर रहा है। श्रद्धा के पुराने आधार कभी के टूट चुके हैं। नये आविष्कारो और खोजो की तीव्र गति के कारण जन जीवन और समाज का नक्शा तेजी से बदल रहा है।

आज का सकट सभ्यता का सकट है। विज्ञान और तकनीकी की शानदार विजयो ने भी इस सकट मे कोई कमी नही की है, बल्कि इसके विपरीत इन विजयो ने उन खतरो मे, मानवता आज जिनका सामना कर रही है, वृद्धि कर दी है।

राजनीतिक धरातल पर विश्व के लगभग प्रत्येक कोने मे 'गर्म' और 'शीत' तनाव व्याप्त है। आज यद्यपि कोई बडा युद्ध नही हो रहा है किन्तु हम निरन्तर युद्ध के कगार पर खडे हैं। सभी मनुष्यो, जातियो और राष्ट्रो के लिए मानवाधिकारो की स्वीकृति के बावजूद हम देखते हैं कि सभी राष्ट्र वर्ग-सघर्ष के सकीर्ण राष्ट्रवाद और जातिवाद के दल-दल म फँसते जा रहे है।

विज्ञान और तकनीकी के षड्यन्त्र के कारण राज्य सत्ता के हाथो म इतनी घातक शक्ति सचित हो गयी है कि उससे सारे ससार की सुरक्षा और शांति

खतरे में पड़ गयी है। वैज्ञानिक मस्तिष्क ने अपनी सृजनात्मक योग्यता और प्रवीणता का उपयोग विनाश के ऐसे शक्तिशाली यन्त्रों के आविष्कार में किया है जिनसे मनुष्य के पूर्ण विनाश की ही सम्भावना उत्पन्न हो गयी है।

इस तकनीकी की सबसे बड़ी देन आर्थिक जीवन में प्राचुर्य और मानव-आवश्यकताओं की वस्तुओं के निर्माण में अभूतपूर्व वृद्धि है। मूल्यों की इस तरह की व्यवस्था में होड़ देश का कानून बन जाता है। जीवन अपनी सरलता खो देता है और मनुष्य की लालसाएँ तथा इच्छाएँ वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक बढ़ जाती हैं। नतीजा यह है कि आज एक तरफ तो हमें भौतिक सुख के बेमिसाल साधन उपलब्ध हैं किन्तु दूसरी तरफ, यद्यपि यह विरोधाभास लगता है, उतनी ही अभूतपूर्व बर्बादी, कमी, अवर्णनीय गरीबी, बीमारी और निराश्रयिता भी बढ़ी है। तकनीकी ने भले ही आर्थिक सुरक्षा का आश्वासन दिया हो, किन्तु उसने व्यापक उकताहट तथा मानसिक अस्थिरता भी पैदा की है। भौतिक उपलब्धियों के दुर्बोध जाल में फँसी हुई मनुष्य की आकांक्षाएँ आध्यात्मिक मूल्यों के किसी आधार के अभाव में कई गुना बढ़ गयी हैं।

अस्थिरता और सुरक्षा की यह स्थिति किसी दैवी व्यवस्था का परिणाम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक शक्तियों के साथ मनुष्य के असमंजन का परिणाम है। यह मानवकृत है और इस तकनीकी मानव को ही इस उदासीनता की संस्कृति के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। आज के समाज की इन आर्थिक और राजनैतिक उत्तेजनाओं का एक ही इलाज है कि हम फिर से सत्य का प्रतिपादन करनेवाले महान् ऋषियों के सन्देश का पुनः स्मरण करें।

क्या शिक्षा के पास व्यक्ति और समाज के लिए इस खतरे का कोई जवाब है? क्या शिक्षा विज्ञान और तकनीकी से सम्बन्धित वर्तमान मूल्यों को, यह कहकर कि वे ऐतिहासिक और अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, असहाय होकर चुपचाप स्वीकार कर लेगी? इसके विपरीत क्या हम विश्व के महान् पुरुषों की बुद्धिमत्तापूर्ण सलाह को स्वीकार कर विरासत में प्राप्त जीवन की आवश्यकताओं को पुनः निर्माण कर वर्तमान की चुनौती को साहसपूर्वक स्वीकार करके उसकी बुराइयों को दूर करने के लिए आगे नहीं आयेंगे?

२

यह विश्व-व्यापी संकट एक गम्भीर यथार्थता है और हमारे देश ने, न केवल इस संकट को और गहन बनाने में योगदान ही किया है बल्कि वह स्वयं

भी इसके सर्वग्राही प्रभाव में आ गया है। हमारा वैयक्तिक, सामाजिक और चारित्रिक संकट इस बात का गवाह है।

कुछ आर्थिक और शैक्षणिक विकास के बावजूद जिस सन्दर्भ में हम अपनी नयी लोकशाही का निर्माण करने का प्रयास कर रहे हैं वह उत्साहप्रद नहीं है। पड़ोसियों को दोस्त और दुश्मन में बाँटने में रुचि रखनेवाले राजनैतिक दलों का ध्यान सैनिकवाद और उसकी विनाशक तकनीकी की ओर खिंच रहा है। उद्योगों में विकसित तकनीकी ने चन्द लोगों के लिए सम्पत्ति और सम्पन्नता, किन्तु बाकी लाखों लोगों के लिए दुःख दैन्य और निराश्रयिता पैदा की है। सत्ता की भूख और घृणा की राजनीति के पंजे दूर दूर तक फैल गये हैं और एक सुन्दर लोकतन्त्र बनाने की हमारी आकांक्षाएँ धूमिल होती जा रही हैं। धर्म, जाति, पद या प्रतिष्ठा, क्षेत्र और भाषा पर आधारित समूहों के बीच सामाजिक सम्बन्धों में तनावों तथा संघर्षों का कोई अन्त नहीं है। मालिक-मजदूर, भूमिपति भूमिहीन, भूमिपति-बटाईदार आदि के तनावपूर्ण सम्बन्ध बढ़ते जा रहे हैं और समझदारी से समस्याओं को हल करने का कोई प्रयास नहीं हो रहा है। धार्मिक नेता भी, जिन्हें समता और एकता को बढ़ाने का काम करना चाहिए था, वर्तमान विश्व की दशा पर विचार किये बिना ही पिटे-पिटाये मार्ग पर चलते आ रहे हैं और शिक्षा भी अपना कारखाना चलाये जा रही है।

सभ्यता के चौराहे के इस बिन्दु पर ही, हमें आत्म-नाश या विवेकशीलता के बीच चुनाव करके मत तय करना होगा कि गांधीजी की शिक्षाएँ युग-सापेक्ष हैं और उनकी आज भी आवश्यकता है। अपनी गहन प्रतिभा के बल पर उन्हें इस व्यापक संकट का स्पष्ट दर्शन पहले ही (हिन्द स्वराज्य देखिए) हो गया था और उन्होंने हमें उसी समय इस संकट से बचने की सलाह दी थी। उनका सन्देश केवल अकेले भारत के लिए ही नहीं था, वरन् वह सारे संसार के लिए था। व्यक्ति और समाज के स्वस्थ और शान्त जीवन के लिए गांधीजी जिन मूल्यों में परिवर्तन लाना चाहते थे वह उनके द्वारा सुझाये गये शिक्षा सिद्धान्त को स्वीकार कर ही सम्भव हो सकता है। यदि हम जनता को शिक्षा के गांधीवादी मूल्यों में विश्वस्त कर सकें और नयी तालीम के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के लिए छात्रों और कार्यकर्ताओं को प्रेरित कर सकें तो हम एक नयी समाज-व्यवस्था की आशा कर सकते हैं।

३

स्पष्ट है कि शिक्षा के वर्तमान ढाँचे ने देश में व्याप्त इस संकट को समाप्त

या कम करने मे कोई योगदान नहीं किया है। वर्तमान शिक्षा पद्धति के दोषों और कमियों पर पिछले सौ सालों म साहित्य का ढेर लग गया है और प्रतिष्ठित शिक्षाशास्त्रियों और दूसरे विद्वानों ने इसकी इतनी स्पष्ट और जोरदार शब्दों मे निन्दा की है कि अब उसके विषय म और कुछ कहना मरे घोड़े को मारने के समान होगा। हम यहाँ पर वर्तमान शिक्षा के कुछ पहलुओं पर चर्चा करके इसम कैसे क्रांतिकारी परिवर्तन हो इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

४

आज की शिक्षा पद्धति सृजन करने के बजाय सीखने की प्रक्रिया पर ही जोर देती है। छात्र के सामने मुक्त चिन्तन का नहीं वरन् विनीत अनुमोदन का लक्ष्य रखा जाता है। शिक्षा तो विकास है और उपयुक्त शिक्षा का उद्देश्य छात्र को अध्यापक से मुक्त करना और उसको परिपक्वता के विकास मे सहायता देना है। शिक्षा को व्यक्ति के आन्तरिक स्रोतों का विकास करना चाहिए, अन्यथा एक रूढिबद्ध और दुर्विकसित व्यक्तित्व ही परिणाम होगा। गांधीजी का विचार था कि शिक्षा को छात्र को अपने मूल्यों के अनुसार कार्य-योजना बनाने और अपनी ही शर्तों पर समाज के कार्यों म शरीक होने म मदद करनी चाहिए। आज हमारे विद्यालय निर्णय करने या आत्म निर्देशन की शक्तियों का विकास करने म मदद नहीं करते। इसके विपरीत सारी व्यवस्था बच्चे की बुद्धि को उद्दीप्त किये बिना उसके मस्तिष्क को हर तरह की सूचनाओं की व्यर्थ की सामग्री से भर देती है। जैसा कि गांधीजी ने कहा है यह सोचना गलत है कि हमारे मस्तिष्क को रटे गये तथ्यों का गोदाम बनाने से हमारी समझदारी बढती है। व्यक्ति और समाज, दोनों के जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं से असम्बद्ध एक अलग प्रकार की भोजन-सामग्री के समान अपच विचारों से दबी संस्कृति को पैदा करनेवाली शिक्षा-पद्धति केवल सामूहिक स्तर पर 'ज्ञान का व्यापार' मात्र है। हम शिक्षा के नाम से चलने वाली इस प्रक्रिया को तत्काल रोकना होगा।

वर्तमान किताबी, अनुत्पादक और सैद्धान्तिक शिक्षा के बजाय मस्तिष्क, हाथ, वाणी और हृदय के प्रशिक्षण पर बल देनेवाली शिक्षा के पक्ष म हुआ दृष्टिकोण का परिवर्तन तथ्यों को रटनेवाली शिक्षा पर अत्यधिक जोर देने की ही प्रतिक्रिया है। अब शिक्षा शास्त्रियों ने गांधी के 'समग्र शिक्षा' के

विचार को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया है। नयी तालीम बालक के व्यक्तित्व के किसी एक पहलू के बजाय उसके सम्पूर्ण विकास से सम्बन्ध रखती है।

५

शैक्षणिक प्रक्रिया में उद्योग को शिक्षा का केन्द्रबिन्दु बनाकर गांधीजी ने शिक्षा प्रदर्शन में एक बड़ी क्रान्ति की है। उनका पक्का विश्वास था कि प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को अपने हाथ से काम करना ही चाहिए। भोजन या जीवन की अन्य आवश्यकताओं के लिए पैदा किये बिना खाना वे पाप मानते थे। आज की अधिकांश परेशानियों का कारण श्रम के इस सिद्धान्त को न मानना ही है। मानव-जीवन में शरीर-श्रम जीवन की सर्वोच्च आवश्यकता है। इसीलिए जो शिक्षा शान्त और सार्थक व्यवहार का स्वस्थ विकास चाहती है, वह हाथ के प्रशिक्षण की अवहेलना नहीं कर सकती। उपकरणों के उपयोग में क्षमता और यह भावना कि जो पैदा किया गया है वह सामाजिक दृष्टि से उपयोगी है, सुरक्षा तथा आत्मविश्वास पैदा करती है। उपकरणों के साथ हाथों का उचित उपयोग सेवार्थिता और सामाजिकता को प्रोत्साहन देता है। उपकरणों के माध्यम से सृजनात्मक कार्य हमारे विचारों, आवेगों और भावनाओं का संगठन करता है और छात्र अपने परिवेश पर नियन्त्रण का भाव जागृत करता है।

हाथ का काम बालक को मात्र सैद्धान्तिक और ऐकेडमिक शिक्षण की निर्ममता से राहत देता है तथा अनुभवों के बौद्धिक और प्रायोगिक तत्वों में सन्तुलन स्थापित करता है और इस प्रकार बुद्धि और शरीर के बीच समन्वय स्थापित करने का साधन बन जाता है। शिक्षा में उत्पादन-कार्य का समावेश श्रमजीवियों और बुद्धिजीवियों के बीच के अवरोधों और पूर्वाग्रहों को भी समाप्त करता है। यह श्रम के प्रति आदर की सच्ची भावना पैदा करने में मदद करता है। अपनी जीविका के लिए श्रम पर जीनेवालों और अपने बौद्धिक प्रशिक्षण के कारण श्रम से अलग रहनेवालों के काल्पनिक सामाजिक अलगाव के कारण तनाव, घृणा और संघर्ष पैदा होते हैं। इस अस्वस्थ वस्तुस्थिति का एक ही इलाज है कि सभी शरीर-श्रम करें। हाथ से काम करने का सिद्धान्त हर व्यक्ति की उत्पादक-क्षमता में वृद्धि करता है और प्रत्येक बालक को उत्पादक इकाई बना देता है। एक सुविचारित क्रिया केन्द्रित शिक्षा पद्धति, सहकारी क्रिया-कलापों, नियोजन, अभिक्रम और व्यक्तिगत जिम्मेदारी की भावना को प्रोत्साहन देगी।

६

शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य में सहिष्णुता, सहकारिता और सामाजिक भाव-प्रवणता आदि गुणों का विकास करना है जो अपने पड़ोसियों और साथियों के साथ मेल और सौहार्द्रपूर्ण ढंग से रहने के लिए आवश्यक है। सामाजिक न्याय के लिए अनुराग विकसित करने की बुनियाद बनाने का केवल यही एक मार्ग है। इस प्रकार के रुझानों का विकास विद्यालय में रहकर वास्तविक अनुभव प्राप्त करके ही किया जा सकता है।

नयी तालीम शिक्षण के माध्यम के रूप में सामुदायिक जीवन और सामुदायिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति पर बहुत बल देती है। बुनियादी स्कूलों में छात्रों को प्रथम वर्ग से ही विभिन्न सामाजिक क्रियाओं के सम्यक् क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायित्व ग्रहण करने, साथी छात्रों से आलोचनाओं का सामना करने और सुझावों को अनुग्रह के साथ स्वीकार करने के अवसर प्रदान किये जाते हैं।

केवल सैद्धान्तिक आदेशों और निर्देशों के बल पर लोकतान्त्रिक जीवन की शिक्षा नहीं दी जा सकती। उचित सामाजिक और लोकतान्त्रिक मूल्य केवल लोकतांत्रिक ढंग से संगठित और संचालित विद्यालय - समुदाय में रहकर स्वयं अनुभव प्राप्त करके ही सीखे जा सकते हैं। बुनियादी शालाओं का अनुभव बताता है कि विद्यालयों में एक शान्तिप्रिय, सहकारी और समतावादी समुदाय बनाना अत्यन्त सहज और व्यावहारिक है। किन्तु हमें याद रखना चाहिए कि विद्यालय का संगठन ऐसे वास्तविक क्रियाशील समुदाय के रूप में होना चाहिए जहाँ जीवन और प्रवृत्तियाँ बालकों का दायित्व हो। विद्यालय की स्वायत्त सरकार केवल दिखावे की, बनावटी लोकतंत्र न हो। इसे सच्चा, वास्तविक शैक्षणिक कार्यक्रम होना चाहिए। बच्चे यदि किसी समुदाय में अच्छी तरह से रहते हों तभी वे अच्छी तरह से सीख सकते हैं।

७

अगर शिक्षा के सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करना है तो यह आवश्यक है कि विद्यालय-समुदाय शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में समाज-सेवा के सार्थक कार्यक्रम में भाग ले। आज की शिक्षा में विद्यालय पड़ोस के समुदायों से अलग-अलग पड़ गये हैं। वे स्वयं के कार्यों, भावनाओं और विचारों के घेरे में अकेले और अलग रहते हैं। शिक्षा का एक मुख्य लक्ष्य यह है कि वह प्रत्येक बालक में अपने और अपने सामाजिक परिवेश के बीच विश्वसनीय समझदारी का

विकास करें। इस प्रकार के सम्बन्ध नागरिकशास्त्र के शैक्षणिक पाठ पढ़ा देने से नहीं बनेंगे। इस प्रकार के सम्बन्ध पड़ोसी के साथ घनिष्ट सम्पर्क रखने और उसके प्रतिक्रियात्मक संवेदनशीलता के प्रतिफल होते हैं।

आजकल छात्रों को समाज सेवा शिविरों में शामिल होने के लिए प्रेरित करने का रिवाज-सा हो गया है। ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में निस्सन्देह कुछ उपयोगी कार्य हुए हैं किन्तु इससे सेवित लोगों में अपने विकास के लिए उत्तरदायित्व की भावना का विकास नहीं हो सका है। समाज-सेवा शिविरों के ये कार्यक्रम अधिक से अधिक पाठ्यक्रमेतर कार्यक्रम मात्र हैं, विद्यालय अथवा कालेज जीवन का तानाबाना नहीं हैं।

कुछ शिक्षाशास्त्रियों और प्रशासकों का विश्वास है कि एन०सी०सी० का प्रशिक्षण समाज-सेवा का ही रूप है और इसलिए स्कूल तथा कालेज में इसका स्थान होना चाहिए। नयी तालीम राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में सैनिक प्रशिक्षण के अतिक्रमण में विश्वास नहीं करती है। सैनिक प्रशिक्षण का शिक्षा के उद्देश्यों, जैसे बौद्धिक निर्भयता एवं स्व निर्देशन के सिद्धान्त का विकास और नयी समाज व्यवस्था के लिए युवकों की तैयारी से मेल नहीं बैठता। यह सब विदित है कि सैनिक प्रशिक्षण के माध्यम से विकसित चरित्र व्यक्ति को अनामी और महत्वहीन बना देता है। यह सार्वभौम मानव भ्रातृत्व को प्रोत्साहन नहीं देता। गांधीजी का निश्चित मत था कि हमारी शिक्षा में सैनिक विज्ञान के प्रशिक्षण के लिए कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत उन्होंने अनुशासन और व्यवस्था, स्वस्थ और सन्तुलित शारीरिक शिक्षण पर जोर दिया है। विनोबाजी ने देश के सामने शान्तिसेना की योजना रखी है, जो सार्वभौम समाज-सेवा, निर्भयता और आत्मानुशासन का निर्माण करने में एक क्रान्तिकारी योजना है। यह योजना मनुष्य में हिंसा को प्रोत्साहन दिये बिना एक सैनिक का साहस और बिना घातक हथियारों की मदद के कर्तव्य के लिए जीवन का बलिदान करने का दृष्टिकोण विकसित करती है। शान्तिसेना के पीछे तलवार का नहीं, सेवा की नैतिक मान्यता है।

८

हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति ने हमारे बालक-बालिकाओं को अपनी परम्परागत महान् संस्कृति और धर्म से विमुख कर दिया है। शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए जो देश के नौनिहालों को उनकी ही धरती की संस्कृति में

पाले और उनके स्वस्थ विकास के लिए उचित पोषण दे। हमारी शिक्षा ने अब तक भारत के अतीत की उपेक्षा की है और हमारे विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति की कोई जानकारी नहीं है। अपनी संस्कृति से अनभिज्ञ होना या उसके प्रति अवमानना की भावना रखना एक तरह की सांस्कृतिक आत्महत्या है। शिक्षा की किसी भी सुगठित व्यवस्था को अपने बालकों को न केवल उनके भव्य अतीत का ही ज्ञान देना चाहिए किन्तु इससे भी अधिक आवश्यक है उन्हें भविष्य के लिए उचित निर्देशन देने की दृष्टि से उसके प्रति रागात्मक प्रतीति कराना। शिक्षा को हमें वर्तमान को प्रकाशित करने के लिए अपने अतीत का उपयोग करने में मदद करनी चाहिए। जो कुछ हम हैं और जो हमें होना चाहिए यह जानने के लिए यह जानना भी आवश्यक है कि हम क्या कर रहे हैं। भारत ने अपने लम्बे अतीत काल में जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण और अहिंसा के माध्यम से मानवीय समस्याओं का हल करने की एक पद्धति विकसित की है। उसकी प्रतिभा ने शत्रुओं को भी मित्र बनाया है। मतभेदों को प्यार और समझदारी से सुलझाने का आदर्श और एकरूपता के बजाय समन्वय का विचार ऐसा विचार है, जिसे हमारे विद्यालयों को प्रोत्साहित और क्रियान्वित करना चाहिए। छात्रों को भाषा और साहित्य, दर्शन, धर्म और इतिहास का सुव्यवस्थित प्रशिक्षण देकर और उन्हें भारतीय पुरातत्व, चित्रकारी, संगीत, नृत्य और नाटकों से परिचित कराकर भारतीय सांस्कृतिक विरासत का पुनः मूल्यांकन करना होगा। शिक्षा में प्रामाणिक सौन्दर्यात्मक अनुभवों के अभाव ने छात्रों के मानस में एक ऐसी रिक्तता पैदा कर दी है जो अब 'बाजार की संस्कृति' से भरी जा रही है।

९

सभी शिक्षाशास्त्री इस विषय में एकमत हैं कि बुद्धिवादी लोगों के बीच अनेक सामाजिक, साम्प्रदायिक और राजनैतिक संकटों का मुख्य कारण हमारे विद्यालयों और कालेजों में दी जानेवाली और प्रोत्साहन पानेवाली गलत ऐतिहासिक दृष्टि है। इतिहास का उचित अध्ययन छात्रों को समाज में मनुष्य के जीवन में व्याप्त इतिहास की अन्तर्निहित धाराओं को खोजने और उन्हें प्रकट करने तथा काल प्रवाह में दूरदर्शी मूल्यों को गहराई से देखने की अन्तर्दृष्टि प्राप्त करने में सहायता करेगा। विद्यालयों में सिखाया जानेवाला हमारा आज का इतिहास हमें वास्तविक, शाश्वत जीवित भारत के बारे में कुछ

नही बताता है। इस इतिहास मे हमे विनाशकारी युद्धो और आक्रमणो एव खूनी सामन्तो के बारे में बताया जाता है। किन्तु हमारे बालक उस भारत के बारे मे बहुत कम जानते हैं जिसने कबीर, नानक, चैतन्य और तुकाराम जैसे महान् पुरुषो को पैदा किया है और काशी, काची जैसे ज्ञान के महान् केन्द्रो, सारनाथ तथा साची जैसे पवित्र स्थलो और मन्दिरो तथा मस्जिदो के वैभवपूर्ण प्रताप और उसकी कलात्मक कृतियो और उनके मनोहर सगीत को जन्म दिया है।

गलत ढग से पढाये गये इतिहास म उद्दत्त राष्ट्रवाद क अकुरित होने के बीज मोजूद रहते है। यदि हमारे विद्यालयो मे इतिहास एक विशेष प्रकार के राजनीतिज्ञो की, जो युवको को "मेरा देश सही या गलत" के विचारो मे शिक्षित करना चाहते है, नीतियो से सचालित हुआ तो हम छात्रो को घृणा की घुट्टी पिलाने के माध्यम से देश को विनाश के कगार पर ले जायेंगे। हम गाधीजी की सच्चे राष्ट्रवाद की परिभाषा याद रखनी चाहिए "मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहता हूँ ताकि मेरे देश के साधनो का उपयोग मानव-जाति के हित मे किया जा सके। राष्ट्रवाद के लिए मेरा प्रेम इसलिए है ताकि मेरा देश स्वतन्त्र हो सके और यदि आवश्यकता पडे तो सारा देश समस्त मानव-जाति के जीवित रहने के लिए मर सके।" विद्यालयो मे इतिहास पढाने के सिद्धान्त गाधीजी के इन स्वर्ण-शब्दो मे प्रकट हुए हैं। हमें विद्यालयो मे बालको के मन पर से अलगाव और भय की पुरानी मनोवृत्तियाँ मिटा देनी होगी और उनके स्थान पर समझदारी, प्रेम और सहकार के विचार भरने होग। हमारे विद्यालयो को *विश्व नागरिकता* के उस विचार को प्रोत्साहन देना होगा जिसे विनोबाजी विश्व-मानव-चिन्तन का नाम देते हैं।

१०

आज की शिक्षा के विरुद्ध सबसे बडा आरोप यही है कि उसने विद्यार्थियो में श्रद्धा का दृष्टिकोण नहीं पनपाया है। यदि शैक्षणिक प्रक्रिया मे ऐसा ज्ञान शामिल नही है जिसमे मस्तिष्क प्रकाश पा सके तो वह पूर्ण शिक्षा नही है। मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति के बिना पूर्ण मानव की शिक्षा का कोई अर्थ नहीं है।

जीवन मे मानव मन को अशान्त बना देनेवाली अनिश्चितताओ और अन्तर्विरोधो के कारण आज आध्यात्मिक शिक्षा की अतीव आवश्यकता है।

सांस्कृतिक संकट के काल में सही ढंग की आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा ही सुरक्षित आश्रय हो सकती है। आज परिवार, मन्दिर और अन्य सामाजिक संस्थाएँ मनुष्य में धार्मिक वृत्तियों का पोषण नहीं कर पा रही है। इसके अतिरिक्त तकनीकी संस्कृति सर्वव्यापक हो रही है।

आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा केवल निर्देशन का नहीं, बल्कि शिक्षण का विषय है। विभिन्न विश्वासों की विरासत का प्रसार निस्सन्देह आवश्यक है किन्तु यही अपने आप में पर्याप्त नहीं है। आध्यात्मिक शिक्षा विश्वासों का हस्तान्तरण नहीं, वरन् एक खोज है, एक शोध है। सही तरीके की आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यालयों को विश्व के भिन्न भिन्न धर्मों के अध्ययन को श्रद्धाभाव से अपने पाठ्यक्रम में रखना होगा। सभी धर्मों के पैगम्बरों की रहस्यमय शिक्षाओं और उपदेशों का अध्ययन करना होगा। मौन ध्यान और सामूहिक पूजा का आरम्भ करना होगा तथा छात्रों को तटस्थ भाव से विवादास्पद विषयों पर चर्चा करने का अवसर प्रदान करना होगा एवं विद्यालयों में होड़ और दण्ड की प्रक्रियाओं के बदले सहकार और प्रेम की प्रक्रियाएँ चलानी होंगी। यहाँ यह कहना भी उचित होगा कि स्कूलों और कालेजों में अध्यापकों के जीवन में सादगी और आत्मानुशासन की भावना पायी जानी चाहिए।

विद्यालय के पाठ्यक्रम में चरित्र निर्माण के प्रशिक्षण को प्रमुखता मिलनी चाहिए। शिक्षा को छात्रों को उत्तम स्त्री और पुरुष बनाना चाहिए। गाधीजी सारे जीवन भर छात्रों और अध्यापकों में चरित्र की आवश्यकता पर जोर देते रहे हैं। इससे उनका तात्पर्य हृदय और आवेगों के प्रशिक्षण से था। यह पुस्तकों के माध्यम से सम्भव नहीं है। यह चमत्कार तो शिक्षक के जीवन्त स्पर्श से ही सम्भव है। कर्तव्य निष्ठा, आत्म शक्ति और मन की निर्भयता के बिना कोई शिक्षक अपने छात्र के व्यक्तित्व का निर्माण नहीं कर सकता।

११

शिक्षा शास्त्रियों को इसमें सन्देह है कि आज की सार्वजनिक नियंत्रण की वर्तमान प्रणाली में, जो अनिवार्यतः सरकार के प्रमुख राजनीतिक दलों के मान्य राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्यों को चिरस्थायी बनाने का प्रयास करती है, ऐसी शिक्षा दी भी जा सकती है, जिसका लक्ष्य छात्रों में स्वयं को समझने की वृत्ति का विकास करना है। राज्य, सिवाय अध्यापकों के जिन पर उसका नियंत्रण और प्रभुत्व है, शेष सभी अन्य वर्गों की आलोचना सहन करता

है। राजनीतिक अधिकारी इस ऐतिहासिक तथ्य से भलीभाँति परिचित हैं कि राष्ट्र के शिक्षक ही क्रान्तियों के लिए जिम्मेदार होते हैं। यही कारण है कि राज्य सार्वजनिक शिक्षा-व्यवस्था पर नियन्त्रण करता है और अध्यापकों तथा छात्रों को स्वस्थ विकास के स्थान पर पिष्ठपेषण की मनोवृत्ति के लिए तैयार करता है।

आज की दलीय लोकतन्त्र प्रणाली ने स्वयं इतनी शक्ति संचित कर ली है कि अब शिक्षा के लिए हमारी कल्पना की समाज रचना करना प्राय असम्भव हो गया है। विनोबाजी ने हमें इस प्रभुत्व को अस्वीकार कर शासन के प्रभुत्व से मुक्त होकर एक सशक्त नैतिक और सांस्कृतिक समाज-व्यवस्था के लिए काम करने को कहा है। यह दुर्भाग्य की बात है कि आज शिक्षा पर राजनीतिक सत्ता का इतना प्रभुत्व है जितना इतिहास में पहले कभी नहीं रहा। किन्तु शिक्षा और राज्य शक्ति कभी साथ साथ नहीं चल सकती। राज्य या राजनीतिज्ञों के द्वारा मानवीय मूल्यों पर आधारित शिक्षा कभी भी नहीं दी जा सकती है। प्रशासक हमेशा सारे देश के लिए एक ही तरह की शिक्षा प्रणाली एक स्तर का पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें पसन्द करते हैं। इसलिए इसमें क्या आश्चर्य है कि हमारे विद्यालय प्रतिबद्ध चिन्तन की संस्था बन गये हैं। बाहुल्य, भिन्नता, और स्वातन्त्र्य न हो तो वह फिर शिक्षा ही नहीं है। नयी तालीम तो नित्य नयी तालीम है। विनोबाजी यह कहते नहीं थकते कि राज्य को शिक्षा में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और उसकी व्यवस्था नीतियां और प्रशासन आदि का काम अनुभवी शिक्षा-शास्त्रियों और दूसरे बुद्धिमान लोगों के हाथ में होना चाहिए। न्याय विभाग की भाँति सरकार की सेवाओं का आर्थिक दायित्व स्वीकार कर शिक्षा को अपने ढंग से विकास करने की पूर्ण स्वतन्त्रता देनी चाहिए।

१२

शिक्षा के माध्यम और परीक्षा प्रणाली की चर्चा किये बिना शिक्षा का चित्र पूरा नहीं होता। स्वतन्त्रता प्राप्ति के २५ साल बाद अन्त में शिक्षा प्रशासकों ने स्वीकार किया है कि स्कूलों और कालेजों में मातृभाषा को ही शिक्षा का माध्यम होना चाहिए। हिन्दी को राष्ट्र की सम्पर्क भाषा के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए और अंग्रेजी को पुस्तकालय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क भाषा के रूप में शिक्षा के उच्च-स्तरों पर पढ़ाया जाना चाहिए।

परीक्षाएँ जैसी आज चल रही हैं एक अभिशाप है। उन्हें जड़ से समाप्त

कर देना चाहिए । वे शिक्षा को गलत रास्ते पर ले गयी हैं । विद्यालीय जीवन म सहभाग, वास्तविक कार्य, कार्य-विवरण और रिपोर्ट, कक्षा मे उनके कार्य, निदान, व्यक्ति का मूल्याकन, कार्य की दैनिक और सान्ताना रिपोर्ट, पुस्तकालय, सेमिनार, अभिलेख आदि के माध्यम से छात्रो के कार्यों का सतत मूल्याकन होना चाहिए । आज दफ्तरों में बाबूगिरि के पेशो के लिए पासपोर्ट्स के तौर पर डिग्रियाँ, डिप्लोमा या प्रमाण पत्रो को जो मान्यता प्राप्त है उसके अभाव म तो यह शिक्षा-पद्धति कभी समाप्त हो गयी होती । फिर भी शिक्षा के पवित्र नाम पर चलनेवाले इस बेहूदेपन को समाप्त करने का अब भी समय है । नयी तालीम की सस्थाओ के पास मूल्याकन प्रक्रियाओ के अनुभव भण्डार है जिनका सदुपयोग नही हो सका है ।

१३

और अब छात्रो के सम्बन्ध मे । छात्रो ने यहाँ या अन्यत्र भी विद्यालयो के प्रागण के भीतर और बाहर अपने अनुशासनहीन आचरण के द्वारा इतिहास बनाया है । यह सही है कि उन्होने विद्रोह किया है । किन्तु क्या यह विद्रोह या क्रान्ति थी ? विद्रोह कुछ स्थानीय सुधार के लिए क्षणिक कार्य है किन्तु क्रान्ति भिन्न वस्तु है । यह जीवन के गहरे स्रोतो से उद्भूत होती है । यह वास्तव मे एक प्रकार का पुनर्जन्म है और भविष्य के लिए आशा प्रदान करती है ।

हमारे देश मे छात्र-असन्तोष एक क्रान्ति के बजाय विद्रोह ही अधिक है । किन्तु परिस्थिति को उसके भद्दे प्रदर्शन के बजाय हृदय को आकर्षित करने वाले आदर्श और समय की ऐतिहासिक आवश्यकताओ के आधार पर ही नापा जा सकता है ।

आज का राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सन्दर्भ, जिसमे हमारे युवको को रहना होता है, एक ठोस और समग्र व्यक्तित्व के विकास के लिए उपयुक्त नहीं है । छात्रो से राजनीति, धर्म आदि मे व्याप्त मूल्यो की अपेक्षा करना चमत्कार की अपेक्षा करना है । छात्र, राजनेताओ और उनके अनुयायियों के भ्रष्टाचारो, पाखण्डो और विसगतियो के प्रति आँख नही मूँद सकते । इसके अलावा सामाजिक धरातल पर घृणा, हिंसा और उद्योग, वाणिज्य और व्यापार मे अबाध होड, स्वार्थ और लोभ हैं । उन्हे मिलनेवाली शिक्षा ने उनके व्यक्तित्व के समन्वय म कोई योगदान नही किया है । उसन उनके जीवन की हताशाओ और कुण्ठाओ का परिहार करने मे कोई सहायता नहीं

पहुँचाती है। शिक्षा पाने के बाद उन्हें बेकारी के दैत्य का सामना करना पड़ता है। एक समय था जब परिवार और परम्परा युवकों को मार्गदर्शन और सुरक्षा प्रदान करती थी। किन्तु आधुनिक परिवार इस तरह का आध्यात्मिक और नैतिक नेतृत्व ग्रहण करने में असफल रहा है। परम्परागत धर्म और उसके व्याख्याताओं ने प्राचीन संहिताओं का नयी आवश्यकताओं के अनुकूल भाष्य करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया है। तकनीक के विशेषज्ञ समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक अपने ही विषयों के क्षेत्र में तल्लीन हैं। वे युवकों की हृदतन्त्रियों को स्पर्श करने में असमर्थ हैं। तब प्रतिभावान् और निष्ठावान् युवक क्या करें? वे मार्गदर्शन के लिए किस भगवान् से प्रार्थना करें। सामाजिक वातावरण उनके लिए उपयुक्त नहीं है। ऐसी परिस्थिति में निराशा उत्पन्न होती है और जब जीवन रक्षक सम्भावनाओं का पनपना असम्भव होता है तब विनाशात्मकता ही द्वितीय सम्भावना रह जाती है।

फिर हल क्या है? यह कई प्रकार का है। किन्तु इन सबमें प्रमुख युवकों को एक ऐसी शिक्षा प्रदान करना है जो उनमें स्वतन्त्र चिन्तन और उत्तरदायित्व वहन करने का भाव भरे, जो बिना किसी दबाव या भय के उनके समग्र व्यक्तित्व का विकास करे और जिसे पाकर वे जीवन की स्थितियों में प्रयोग करने की आजादी प्रदान करें।

१४

हमने अब तक शिक्षा के वर्तमान ढाँचे पर सामान्य ढंग से विचार किया है और अपनी वर्तमान राष्ट्रीय शैक्षणिक नीतियों और कार्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन के लिए रूपरेखा बनायी है।

यहाँ प्रस्तुत विचारों में मौलिकता का हमारा दावा नहीं है वे तो बुद्धि की ही तरह पुराने हैं। शिक्षाशास्त्री न केवल हमारे देश में ही वरन् पश्चिमी देशों में भी इन विचारों पर जोर देते रहे हैं। विशिष्ट शिक्षा आयोगों ने भी समय समय पर इन कमियों की ओर हमारा ध्यान खींचा है और सुधार के लिए सुझाव दिये हैं। टनों कागज और स्याही खर्च करके बुलेटिन, परिपत्र, सम्भावित योजनाओं, शोध अध्ययनों और गोष्ठियों के निष्कर्षों एवं रिपोर्टों का पर्वत जैसा ढेर वितरित किया जा चुका है। किन्तु परिणामस्वरूप शिक्षा के संगठन और प्रशासन में कुछ सामान्य सुधार जैसे काम के घण्टों में परिवर्तन, छुट्टियाँ, टाइम-टेबुल, परीक्षा-पद्धति में कुछ परिवर्तन अथवा कुछ नये पदाधिकारियों की नियुक्तियों के अतिरिक्त विचारों को शीघ्र क्रिया में परिणत करने के लिए

बुनियादी सिद्धान्तो म मौलिक और क्रान्तिकारी परिवर्तन करने के लिए कुछ भी नही किया गया है। हम आज प्रशासन और सगठन-सम्बन्धी मामलो मे छिटपुट सुधार की आवश्यकता नही है बल्कि शिक्षा के आदर्श क्रियान्वयन मे क्रान्ति की आवश्यकता है।

यह एक ऐसी क्रान्ति है, जो हम अपने दिल दिमाग के गुप्त महलो म तत्काल कर सकते हैं। परिवर्तन की सकल्पित इच्छा से अधिक और किसी प्रशासक की आवश्यकता नही है। प्रशासक असफल हो गये हैं, किन्तु बच्चो के कल्याण और शिक्षा मे रुचि रखनेवाले हम अध्यापक, छात्र और नागरिक एक नये विश्व की रचना करने का निश्चय कर सकते हैं और तत्काल कर सकते हैं। हमे क्रान्तिकारी लगन और अपने मनीषियो के द्वारा प्रदत्त बुनियादी मूल्यो की आशाओ और प्रेरणाओ से प्रेरित एक नयी समाज रचना की योजना के साथ आगे बढना चाहिए।

सक्षेप मे इस नयी शिक्षा के उद्देश्य और कार्यक्रम इस प्रकार हैं .

१—चरित्र के वर्तमान ह्रास का हल केवल शिक्षा मे सामान्य सुधारो से नही वरन् शैक्षिक उद्देश्यो और क्रियाओ म समग्र क्रान्ति के द्वारा ही निकल सकता है।

२—शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है।

३—शिक्षा को व्यक्ति को हर प्रकार के शोषण से मुक्त एक नयी समाज-रचना करने का उत्तरदायित्व बुद्धिमत्ता और सक्रियता से स्वीकार करने के योग्य बनाना चाहिए।

४—शिक्षा को व्यक्ति मे बुद्धिमत्तापूर्ण समझदारी की आदत और उसकी आत्म निर्देशन की शक्तियो की वृद्धि के साथ साथ उसम वैज्ञानिक दृष्टि-कोण विकसित करना चाहिए।

५—शिक्षा को आध्यात्मिक और नैतिक मूल्य पनपाने चाहिए।

६—शिक्षा को पारम्परिक सस्कृति की पुन व्याख्या मे सहायता करनी चाहिए।

७—शिक्षण सस्थाओ को अपने पाठ्यक्रम, सगठन की पद्धतियाँ विकसित करने की स्वतत्रता होनी चाहिए।

८—शिक्षा को विज्ञान को सत्य के लिए खोज के रूप मे और मानव मूल्यो को बढावा देनेवाली तकनीकी को प्रोत्साहन देना चाहिए।

९—शिक्षा के हर स्तर पर मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए।

१०–शिक्षा को मानवता के प्रति श्रद्धा, विश्वमानस और विश्वचेतना को प्रोत्साहन देना चाहिए।

११–शिक्षा को छात्रों में सृजनात्मक और सौन्दर्यात्मक अनुभवों के लिए प्रचुर अवसर प्रदान करने चाहिए।

१२–शिक्षा के सभी स्तरों पर उत्पादक और सार्थक शरीर-श्रम शिक्षा का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

१३–शिक्षण-संस्थाओं को कार्यकारी लोकतंत्र के रूप में विकसित होना चाहिए।

१४–स्कूलों और कालेजों का भौतिक परिवेश सादगी और सौन्दर्य को प्रतिबिम्बित करनेवाला हो।

१५–वर्तमान परीक्षा-प्रणाली को सतत मूल्यांकन प्रक्रिया से बदल दिया जाना चाहिए।

१६–सार्वजनिक और निजी नौकरी देनेवाली एजेन्सियों को अपनी आवश्यकतानुसार परीक्षण के लिए प्रवेश पाने के अधिकार पत्र के रूप में ही स्कूल रिपोर्टों को मान्यता देनी चाहिए।

१७–शिक्षा को संस्था में, छात्रों और अध्यापकों के लिए पूर्ण स्वतंत्रता का परिवेश प्रदान करना चाहिए, शैक्षिक नीतियों और संगठनों को सरकार और राजनीतिक नियंत्रण से मुक्त रखना चाहिए और उन्हें अनुभवी शिक्षकों और शिक्षाविदों के मार्गदर्शन में काम करना चाहिए।

१८–छात्र असन्तोष को केवल विद्रोह कहकर टाला नहीं जाना चाहिए, बल्कि एक नये समाज की गहन आकांक्षा के रूप में इसका वैज्ञानिक अध्ययन होना चाहिए।

सुश्री मार्जरी साइक्स

जीवन की बुनियादें

बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त और अमल

'चतुर मनुष्य ने अपना घर चट्टान पर बनाया। बारिश आयी, बाढ़ आयी, हवा चली, इन सबने घर पर प्रहार किया। घर गिरा नहीं, क्योंकि उसकी बुनियाद चट्टान पर थी।"

जया छः साल की है, घर जाते समय जया और उसकी माँ बस में मेरे पास बैठी थी। जया खड़ी-खड़ी खिड़की से बाहर रास्ते की ओर देखती है। उसका चेहरा खुशी से चमकता है। मील के फर्लांग के पत्थर गिनती है। बैलगाड़ियों की कतारें, भैसो के टोले जो कुछ गिन सकती, सब मात्र आनन्द के खातिर गिनती रहती है। घर से वह टेकरी के आसपास लकड़ियाँ कंकड़ आदि जमा करती फिरती है। 'देखो, मैंने क्या बनाया है? तीन झाड़ू बनाये। एक आपके लिए, एक माँ के लिए, एक मेरे लिए। देखो, मैंने इधर चौक साफ किया। उसने ठीक तरह से चौक साफ किया था। चौक में गिरी हुई वस्तुएँ उठाकर ठीक तरह रखी। कोना-कोना साफ किया। थोड़ी देर बाद उसने मुझे भोजन बनाते हुए देखा। रसोई घर में टेबुल के कोने पर वह बैठ गयी। मुझे तरकारी सुधारने दो। हम थोड़ी देर साथ साथ काम करते हैं। इतने में मुलाकात के लिए आनेवाले मेहमानो की आवाज सुनते है। जया कहती है, आप जाइए,

मेहमानो से बात कीजिए (अंग्रेजी मे हमारी बातें उसे नीरस लगती हैं) मैं पकाऊँगी। मैं पका सकती हूँ। मेहमानो के चले जाने के बाद मैं रसोई घर म लौटती हूँ तो देखती हू कि तरकारी चूल्हे पर बर्तन म पक रही है।

वह कहती है, 'मुझे बगीचे की छोटी छुरी का उपयोग करने दो। हम बड़ लोग डरते हैं कि शायद वह अपना हाथ काट लेगी। फिर भी अन्त म, हम छुरी का उपयोग करने के लिए उसे देते हैं। थोडी देर बाद हम देखते है कि मुघडता और कुशलता से साफ की हुई सीधी काडियो का घर सपाट-साफ जमीन के टुकडे पर जमा किया हुआ है। जया घर बनाने में पूरी तरह मग्न है। सात साल की छोटी लडकी छुट्टियो और अवकाश क समय का उपयोग स्वेच्छा से इस तरह करती है। जो बच्चो को अच्छी तरह पहचानते हैं या जिन्हें अपने बचपन का स्मरण है, वे यह समझ सकेंगे कि जया जैसे अनेक बच्चे होते हैं। बच्चों को पकाने, सफाई करने, घर बनाने और माता के साथ काम मे मदद करने म आनन्द आता है। वे असली काम करना चाहते हैं।

परन्तु जिस स्कूल म जया जाती है वहाँ उसकी इन निर्दोष उत्साहप्रद प्रवृत्तियो का कुछ भी उपयोग नही होता। उसको अपने हाथ का उपयोग करने मे आनन्द आता है। उसका शिक्षक बुद्धि के विकास और स्फूर्ति के साधन के रूप म उत्पादक श्रम का कभी विचार नहीं करता है। गिनती करने के उसके उत्साह का कुशलतापूर्ण उपयोग उसके स्कूल मे नही होता। पाठशाला मे यन्त्रवत् गिनती की आदत होती है। जया और उसके सहपाठी एक ही बेंच पर बैठते हैं। शिक्षक बातें करता है। परन्तु बालको का ध्यान इधर-उधर रहता है। वे घुसपुस बातें करते हैं। बालको से अनुशासन का पालन कराने के लिए शिक्षक प्राय उन्हें डाटते हैं। बच्चे नाराज होते है। उनमें स्वभाव से ही न्याय की अपेक्षा रहती है। स्कूल के इस दबाव से बच्चे बाहर जाकर झगडालू बनते हैं। उनका सयम टूट जाता है। जिस शक्ति का उपयोग सुखप्रद प्रवृत्तियो मे हो सकता है वह ताकत, शोर गुल और विनाश क काम मे लगती है।

शहर और गाँवो की सभी पाठशालाएँ वैसे खराब नही होती जैसी कि ऊपर बताया गया है। परन्तु बहुत-सी पाठशालाओ म बालको की शारीरिक और बौद्धिक शक्ति बेकार जाती है। बुनियादी तालीम का आन्दोलन इन सबसे बिलकुल अलग किस्म की पाठशालाएँ शुरू करना चाहता है। इन पाठशालाओ की तालीम से बालकों की अमित मानसिक तथा शारीरिक शक्ति स्वागतपूर्वक

उत्पादक कार्यों म लगायी जायेगी। बुनियादी तालीम की पाठशालाएँ यह काम कैसे करती हैं उनका स्वरूप क्या होता है, यह समझना जरूरी है।

जया के सभी साथी बच्चे जो चार-पाँच छ सात के हैं पूर्व बुनियादी तालीम की पाठशाला मे जाते हैं। वे राजी खुशी से सफाई करते हैं, ईंधन जमा करते हैं। उनका नाश्ता तैयार करने म, पकाने मे मदद पहुँचाते हैं। एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। अपने बर्तन साफ कर उन्ह ठीक स्थान पर रखते हैं। वे कपास साफ करते हैं। उसमे से बिनौला बाहर निकालते हैं। उन्ह गिनते हैं और उसका वजनकर छोटे बगीचे म बोते हैं। बगीचे को साफ करते हैं। अपने स बडो और शिक्षको को कातत हुए देखकर बहुत से छोटे बालक तक्ली लेकर बैठ जाते हैं। कई तो अच्छा कातते हैं और इससे उनकी स्नायुओं पर काबू बढता जाता है। अन्य देशो के नर्सरी स्कूलो की तरह पूर्व बुनियादी शाला छोटे बालको के लिए स्वास्थ्यप्रद खुली हवा का जीवन काम और आराम का सयोग और व्यवस्थित सुरक्षा प्रदान करती है। पूर्व बुनियादी शाला छोटे बच्चो मे साफ-सुथरी और भली आदतो की बुनियाद डालती है। इन शालाओ मे माता पिता की आर्थिक क्षमता के बाहर या उनके घर के रीति रिवाज से असम्बन्धित किसी साधन का उपयोग नही होता।

दो एकड जमीन पर एक मजिले लम्बे और सादे मकान म बडे बच्चो की बुनियादी शाला है। वहाँ छोटा सा सुन्दर पुल है, कुँआ है और केले के पत्ते या बाँस के परदेवाला सादा पाखाना है। खेतो से थोडी दूर पर गाँव है। दूसरी दिशा मे एक मील दूरी पर दूसरा गाँव है। बच्चे खेतो से होकर पाठशाला जाते हैं। उनम अधिकतर लडके हैं कुछ लडकियाँ भी हैं। वे झाडू, बाल्टी और बगीचे के औजार बाहर निकालते हैं। कुछ बालक झाडू लगाते है, धूल झटकते हैं तथा वर्ग का कमरा व्यवस्थित करते हैं, और सब चीजें ठीक ठाककर रखते हैं।

फिर बगीचे के रास्तो म घास आदि की नीवाई करते हैं। क्यारियों की गोडाई करते है। सूखे पत्ते बाहर निकालकर कचरो को दूर खाद के गड्ढे म ले जाकर डालते है। जैसे ही घण्टी बजती है, औजार दूर रखे जाते हैं। सभी बच्चे *प्रात कालीन प्रार्थना के लिए साफ होकर एक कतार मे खडे होते हैं।* शान्ति के बाद प्रभु भजन करते हैं। पुन शान्ति होती है। मुख्य अध्यापक उस दिन के लिए सूचनाएँ पढकर सुनाते हैं। जिसको सप्ताह के लिए नेता चुना गया है

वह दस साल का लड़का सब बालकों को अपने वर्ग में जाने की सूचना देता है। वर्ग शुरू होता है।

यह सबसे छोटे प्रथम श्रेणी के बालक हैं, उनकी तकलियाँ हैं जिन पर उनके नाम लिखे गये हैं। तकली घर म दीवार पर लटक रही है। बालक अपनी तकली और अटेरन लेते हैं और सूत कातने के लिए नीचे बैठ जाते है। शिक्षक दो बालकों को बुलाता है, और उनके द्वारा तैयार की हुई पूनियों के बण्डलों का वजन कराता है। वे बालकों को आवश्यकतानुसार दो दो या पाँच-पाँच पूनियाँ देते हैं और स्लेट पर उनको नोट रखते हैं। उनको वजन करने, बाँटने और नोट रखने का थोड़ा अभ्यास होता है। उसके बाद दो बालक यह काम करते हैं, और बाकी कातते रहते हैं। जब बालक की तकली सूत से भर जाती है, वह शिक्षिकाओं के पास जाकर अटेरन पर सूत लपेटते-लपेटते गिनता है। शिक्षिका ध्यान रखती है कि वह ठीक कातता है या नहीं। फिर वह अटेरन पर चिपकाये कागज पर काते हुए सूत के तार की संख्या ठीक तरह लिखता है, यह भी वह देखती है। कताई की प्रक्रिया समझने से सुन्दर और पूर्ण एकाग्रता बनती है। गोष्ठी, शारीरिक व्यायाम, काम के साथ गिनती सीखना व खेल कूद, संगीत, लेखन और सामाजिक सेवा, थोड़ी देर बाद होते हैं।

दूसरी श्रेणी में अलग तरह से काम शुरू किया है। उसमें समय सारिणी का कड़ा बन्धन नहीं है। इन बालकों की सफाई, सफाई के औजारों के नाम, और उनके उपयोग में लाने की क्रिया तथा लिखने-पढ़ने की तालीम में बहुत रस है। शिक्षक बालकों के उत्साह को बढ़ाते हैं। प्रातःकाल के व्यवस्थित कामों का मौखिक व लेखी वर्णन बहुत होता है। पौन घण्टे के बाद वे कपास से बिनौले निकालने और रुई धुनने में व्यस्त होते हैं।

तीसरी-चौथी कक्षा के बालक तकली और चरखा दोनों चलाते है। दस्तकारी के समय में से थोड़ा समय निकाल कर वे अलग अलग टुकड़ी में बैठकर कपास की सफाई, उसमें से बिनौले अलग करने के बाद म वे सब अपनी अपनी तकली लेकर एक साथ बैठते है और रुई धुनना, पूनी बनाना, चरखे पर कातना आदि काम करते हैं। तकली पर कातने म वे कुशल हैं। उनका सारा ध्यान तुरन्त तकली कातने में लग जाता है। कातते-कातते शिक्षक और बालक स्थानीय तथा राष्ट्र के समाचारों पर बातें करते हैं या कपास बोने, उगाने के सम्बन्ध म उनको समझाते हैं। पाँचवी श्रेणी के बालक अपने कपड़ों के

लिए कपास मे से सूत तैयार करते हैं। वे कपास से बिनौले निकाल सकते है, रुई धुन सकते हैं, छोटे बालको के लिए पूनी बना सकते हैं और सरल प्रकार की बुनाई शुरू करते हैं।

बच्चो की पढाई यहाँ चार-पाच श्रेणी तक ही होती है तब तक वे आसानी से पढना सीख लेते हैं। मध्याह्न की छुट्टी मे सबको पाठशाला के छोटे पुस्तकालय का आकर्षण रहता है। बहुत से बालक पुस्तकें या सामाजिक पत्र पढने बैठ जाते हैं। कई बालक बगीचे मे फलो की गिनती करते फिरते हैं। इन बालको ने अपने विद्यार्थी-काल म जो पौधे लगाये वे अब फल देने लगे हैं। ठीक मौसम म और समय पर यदि आपको पाठशाला मे जाने का अवसर मिले तो आपको यह देखकर आश्चर्य होगा और वे आपको अपने लगाये हुए पेडो से अमरूद और खेत से मूगफली निकाल कर देंगे।

सब बुनियादी शालाओ के लिए बगीचा होना आवश्यक है। लेकिन कुछ पाठशालाओ मे बडे बालको के लिए प्रधान उत्पादक श्रम के रूप म बागबानी, खेती व बुनाई के बदले रखी गयी है। ऐसी प्रत्यक पाठशाला के पास सात एकड जमीन है, उसम दोनो प्रकार की खेती हो सकती है—सिंचाईवाली भी और सूखी खेती भी। छोटे बच्चो का साग भाजी का अलग बगीचा है। अगस्त महीने मे आप देखेंगे कि दस, ग्यारह साल के बच्चे पाठशाला के नजदीक के धान के खेत म खुले आकाशवाले दिन सुबह सुबह पानी मे धान के पौधे रोप रहे हैं, और बडे बालक कुछ दूरी पर तरकारी के बगीचे म हल चला रहे हैं। दो बडे खेतो मे मक्का और गन्ना लगाया गया है। मक्के की अच्छी फसल लगभग पक गयी है। गन्ना रसदार और भरा है। इन खेतो का सारा यश बडे बालको को जाता है। क्योंकि हल चलाने से लेकर गन्ने के संरक्षण तक का सब काम उनकी मेहनत से होता है। केवल पाठशाला के नियम पालन तक ही दिमाग सीमित रहने से खेतो का काम नही होता। बालकों को विविध प्रकार के बीजो का कुछ ज्ञान करवाया जाय। स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल फसल की पहचान और खाद को बनाने का अभ्यास बच्चो को करवाना जरूरी है। एक एकड मे कितनी जमीन म कितनी खाद और बीज की आवश्यकता पडती है यह उन्हे मालूम है। किसान को बीज और खाद खरीदने के लिए कहाँ से कितने ब्याज पर कर्ज मिल सकता है, यह बच्चों को मालूम है। इस पूँजी पर कितना ब्याज देना पडेगा यह भी वे जानते हैं। कुछ अश म वे सस्ते ब्याज से पूँजी प्राप्त करने की रीति भी जानते हैं।

उनके द्वारा तैयार माल को बाजार में बेचने से क्या दाम मिल सकता है वे जानते हैं। खेत में कितना माल पैदा होगा और उसका कितना नफा मिलेगा, उसका हिसाब लगाने की उनमें शक्ति है। अर्थात् मक्का पैदा करने के प्रयोग से उन्हें वनस्पति शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीव विज्ञान, गणित और अर्थशास्त्र, आदि का बहुत-सा अभ्यास हुआ। लिखित और मौखिक रूप से विचार व्यक्त करने की आदत डालना, सहकारिता के साथ-साथ काम बाँटकर करने की कला, इन शालाओं में बच्चों को मिलती है।

बुनियादी पाठशाला के बालक, किसान पुस्तकों में लिखी बातों को बिना समझे और परखे स्वीकारते नहीं। वे खुद उसकी आजमाइश करते हैं। अगर एक कोने में गन्ने की एक समान बारह कतारें हैं और उन पर साफ अक्षरों में लेबुल लगा हुआ है तो बच्चे बता सकते हैं कि इन बारह कतारों में तीन प्रकार का गन्ना लगाया गया है, और उनको अलग-अलग ढंग से चार तरह की खाद दी गयी है। वे गन्ने की बढ़ोतरी देखते रहते हैं, परिणाम लिखते जाते हैं। अन्त में गन्ना काटते समय बारह कतारों में से प्रत्येक कतार की पैदाइशी मापी जायेगी और बारह प्रकार की उपज की तुलना की जायगी।

दूसरी पाठशाला में एक १३-१४ साल के लगभग दो दर्जन लड़के दो दो, चार-चार की टुकड़ी में विविध प्रकार के उद्योग सीख रहे हैं। कोई तख्ते बना रहे हैं, कोई छात्रालय के लिए खाद बना रहे हैं, कोई चरखा दुरुस्त कर रहे हैं। वे तरह तरह के काम सीख रहे हैं। कलमदान, बगीचे के औजार, थैलियाँ, खिड़कियाँ और घर में उपयोगी अन्य बहुत-सी चीजें वे बनाना सीख रहे हैं। दूसरे विभाग में सब बालक पेंच, बोल्ट, चाकी, नट, कब्जे, बगीचे और खेत के सादे औजार तथा घर के लिए उपयोगी बर्तन बनाना सीखते हैं। वे एक आने में पेच देते हैं और कहते हैं कि शहर में उसका दाम चार आने है। वे तकुए ठीक करते हैं। वे मकान के लिए बहुत छोटी छोटी जरूरी चीजें तथा घर और पाठशाला के लिए उपयोगी साधन तैयार करते हैं और बेचते हैं।

बच्चों को उस माल की पहचान है जिससे चीजें बनती है जैसे—सागवान की लकड़ी कैसी होती है, उसके गुण क्या हैं, उसे कैसे पकाया जाता है, कितने दाम की होती है और उसको अधिक-से-अधिक लाभदायक रूप से उपयोग में लेने के क्या तरीके हैं—वे जानते हैं।

दोपहर हम उस कक्षा को देखते हैं जहाँ शिक्षक बच्चों को कहानी सुना रहा है। ये कथाएँ बुद्ध की, करुणा और सहृदयता, ईसा के निर्भय प्रेम या पैगम्बर साहब के हिम्मत भरे सत्यकथन की होती है। कहानी पूरी होने के बाद थोड़ा समय मौन बताई होती है। शायद बालकों के दिमाग जो अभी सुनी हुई कहानी का विचार कर रहे होंगे! इन कहानियों से मानव-जीवन के लिए आधारभूत मूल्यों और आदर्शों की प्रेरणा मिलती है। एक प्रकार की मानसिक खुराक और आन्तरिक सन्तुष्टि मिलती है।

त्योहार का दिन आया है। शाम को कुछ बालकों के साथ हम गाँव में जाते हैं। गाँव के बाहर सादा अच्छा पाखाना है। हमारे मेजबान बच्चे कहते हैं, हमने इसे पाठशाला के पाखान जैसा बनाया है। किसी किसी कुटिया के आँगन में पाठशाला के समान छोटे शाक भाजी के बगीचे की शुरूआत है। त्योहार के दिन की तैयारी में पाठशाला का सारा समाज लगा है। गाँव साफ है। एक टुकड़ी रसोई बनाने में व्यस्त है। खुले आकाश के नीचे दावत की तैयारी हुई है। बच्चे और अतिथि जाति पाँति के भेद बिना एक साथ जमीन पर बैठ कर भोजन करते हैं। उनके माता पिता उसमें शामिल नहीं हैं। उनके लिए ऐसा व्यवहार बहुत नवीन और अपरिचित है, वे आसानी से अपनी पुरानी आदत नहीं बदलेंगे। वे अवरोध भाव से, आत्मीयता से, लुब्ध होकर देखते हैं।

(क्रमश)

[पाठकों को सूचित किया जाता है कि सफेद कागज की महँगाई तथा छपाई की दर में वृद्धि के कारण अंक १, वर्ष २१ (अगस्त '७२) से नयी तालीम का वार्षिक चन्दा ६ रुपया की जगह ८ रुपया किया गया है। – स०]

पश्चिम बंगाल में आचार्यकुल की स्थापना

१०-११-१२ जून १९७२ को बर्दवान मे आयोजित द्वितीय पश्चिम बंग सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर प्रदेश से आये हुए लगभग ५०० कार्यकर्ताओ और शिक्षको ने सर्वोदय समाज की स्थापना और सामाजिक क्रान्ति के लिए शिक्षा की भूमिका के सन्दर्भ मे आचार्यकुल की सम्भावनाओ पर विचार-विमर्श किया।

प्रारम्भ मे पश्चिम बंगाल के वयोवृद्ध सर्वोदय नेता चारुबाबू ने केन्द्रीय आचार्यकुल के संयोजक श्री वंशीधर श्रीवास्तव का परिचय देते हुए कहा कि चूंकि सम्मेलन में प्रदेश के विभिन्न जिलो से सर्वोदय विचार मे निष्ठा रखने वाले अनेक शिक्षक भाग ले रहे हैं। अत मैं उनसे अपील करता हूँ कि श्रीवास्तवजी के साथ आचार्यकुल आन्दोलन पर चर्चा करने के बाद वे प्रादेशिक स्तर पर आचार्यकुल की स्थापना करें, जिससे प्रदेशभर मे आचार्यकुल का काम सुचारु रूप से चले और ग्रामस्वराज्य के काम मे शिक्षक-वृन्द का नेतृत्व और सहयोग प्राप्त हो।

इसके बाद आचार्यकुल पर चर्चा प्रारम्भ हुई जो ११ जून को सायंकाल ५ से ८ तक और १२ ता० को प्रात लगभग २ घण्टे तक चली। चर्चा का शुभारम्भ श्रीमती साधना भट्टाचार्य ने किया। पश्चिम बंगाल मे सामान्य और बुनियादी शिक्षा की समीक्षा करते हुए उन्होंने कहा कि प्रदेश मे जो शिक्षा चल रही है उससे सबसे बडा अहित यह हो रहा है कि उससे पूंजीवादी-सामन्तवादी पल रहे हैं जिससे स्वतन्त्रता के इन २५ वर्षों के बाद भी

अमीर-गरीब के बीच की खाई बढ़ी है। बुनियादी शिक्षा से जो यह आशा की गयी थी कि वह इस खाई को पाटेगी, वह आशा भी पूरी नहीं हुई है। आचार्यकुल की स्थापना से शिक्षा के क्षेत्र में समाजवादी मूल्यों की स्थापना में सहायता मिले तो बहुत बड़ा काम होगा। इसके बाद श्री ईश्वरचन्द्र प्रमाणिक ने, मिदनापुर जिले में आचार्यकुल क्या और क्यों विषय पर प्रकाश डाला। उन्होंने विनोबाजी की पुस्तिका 'आचार्यकुल' के आधार पर एक छोटा पम्फलेट बंगला भाषा में तैयार किया था, जिसे पढ़कर सुनाया।

इसके बाद श्री यशोधरजी ने आचार्यकुल के महत्व और युग-सापेक्षता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आज शिक्षा-जगत की प्रमुखतः चार समस्याएँ हैं—(१) शिक्षा की स्वायत्तता में सरकार द्वारा हस्तक्षेप, (२) शिक्षा संस्थाओं में दलगत राजनीति का प्रवेश, (३) शिक्षा के राष्ट्रीयकरण की माँग और (४) छात्रों का हिंसात्मक विद्रोह। आचार्यकुल की स्थापना से इन चारों समस्याओं का हल होता है क्योंकि अगर बुद्धि की सत्ता अहिंसा और शिक्षा की स्वायत्तता में विश्वास रखनेवाली निष्पक्ष आचारनिष्ठ शिक्षकों की एक संगठित जमात खड़ी होती है तो इन समस्याओं का निराकरण होता है। आचार्यकुल आन्दोलन का ग्रामस्वराज्य की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्व इसलिए है कि उसीसे स्थानीय नेतृत्व का निर्माण होगा जो आज ग्रामस्वराज्य आन्दोलन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आज के विक्षुब्ध तरुण का भी जो सामाजिक क्रान्ति के लिए उतावला है आचार्यकुल पथ प्रदर्शन करेगा, क्योंकि वह स्वयं यथास्थितिवाद का विरोधी है और विचारशक्ति के माध्यम से सामाजिक-क्रान्ति करना चाहता है। अन्त में, उन्होंने कहा कि देश के कई प्रदेशों में प्रदेशीय स्तर के आचार्यकुल संगठित हुए हैं और पश्चिम बंगाल में प्रदेशीय स्तर का आचार्यकुल बने इसी कामना से वह इस सम्मेलन में आये हैं।

कलकत्ता कॉमर्स कालेज के श्री सुदिन भट्टाचार्य ने आचार्यकुल के लिए निष्ठापूर्वक काम करने पर जोर दिया। और दरभंगा विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष श्री गोविन्द गोपाल मुखर्जी ने कहा कि आज पश्चिम बंगाल ही नहीं देश भर के हित में यह आवश्यक है कि सर्वोदय का विचार व्यापक और जनप्रिय हो। आचार्यकुल के माध्यम से इसे व्यापक बनाया जा सकता है। अतः पश्चिम बंगाल में आचार्यकुल की स्थापना होनी चाहिए।

१२ ता० को प्रातः की बैठक में शिक्षा के सन्दर्भ में आचार्यकुल पर चर्चा हुई। चर्चा में श्री सुधांशु देव शर्मा, श्री हरिप्रसाद सेन गुप्ता, श्री चित्तदास

गुप्ता, श्री गोपाल बन्धु ने भाग लिया। रामकृष्ण मिशन बेसिक ट्रेनिंग कालेज, दार्जिलिंग के प्रो० हरिप्रसाद सेनगुप्ता ने कहा कि आचार्यकुल आन्दोलन का काम रामकृष्ण मिशन जैसी उन सारी शैक्षिक संस्थाओं का समन्वय करना होना चाहिए जो वर्गगत मूल्यों के स्थान पर मानवीय मूल्यों की स्थापना करना चाहती है। यदि आचार्यकुल शिक्षकों के वर्तमान वेतनभोगी मनोवृत्ति को दूर कर उनमें आचार्यत्व की गरिमा का बोध उत्पन्न कर सकेगा तो यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि होगी।

श्री चित्त दासगुप्ता ने अपने भाषण में बताया कि किस प्रकार प्रशासन की उदासीनता से बंगाल में बेसिक शिक्षा का ह्रास हुआ और आशा की कि आचार्यकुल इस ह्रास को रोककर बेसिक शिक्षा के पुनरुत्थान का साधन बनेगा।

श्री गोपाल बन्धु ने भी कहा कि देश में आज जो शिक्षा प्रचलित है उससे देश की समस्याओं का हल नहीं हुआ है। अतः बेसिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा स्वीकार करना चाहिए और आचार्यकुल यदि इस लक्ष्य को लेकर काम करेगा तो उसकी सार्थकता है।

इसके बाद आचार्यकुल और शिक्षा में उसके रोल पर श्रोताओं ने कई प्रश्न पूछे जिनका उत्तर श्री श्रीवास्तवजी ने दिया और चर्चा का समापन करते हुए उन्होंने कहा कि आचार्यकुल के स्पष्टतः दो लक्ष्य हैं—एक है, लोक-नीति और लोकशक्ति के निर्माण में सहायता देना और दूसरा है, देश में शोषण-विहीन सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए व्यक्ति तैयार करने हेतु शिक्षा नीति और कार्यक्रम विकसित करना। ये दोनों ही लक्ष्य क्रान्तिकारी हैं और आचार्यकुल स्पष्टतः एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है। इस आन्दोलन में शक्ति तभी आयेगी जब आचार्यकुल समाज और शिक्षा में जहाँ भी अन्याय के बिन्दु हैं उनके अहिंसक प्रतिकार के लिए तत्पर रहेगा।

अन्त में प्रदेशीय स्तर की एक तदर्थ आचार्यकुल समिति की स्थापना हुई जिसमें निम्नांकित सदस्य नियुक्त किये गये

१—श्री ईश्वरचन्द्र प्रमाणिक—मिदनापुर—संयोजक

२— ,, सुदिन भट्टाचार्य, कलकत्ता—सह-संयोजक

३—श्रीमती साधना भट्टाचार्य, बर्दमान—सदस्य

४—श्री मन्मथनाथ सिन्हा—मिदनापुर, सदस्य

५— ,, हरिपद मण्डल—मिदनापुर—सदस्य

६— ,, गोविन्दगोपाल मुखर्जी—वर्दवान—सदस्य
७— ,, मनीष बोस—वर्दवान—सदस्य
८— ,, हरिप्रसाद सेन गुप्ता—वीरभूमि—सदस्य
९— , रामरजन पाण्डे—बाँकुरा—सदस्य

मध्य प्रदेश में आचार्यकुल का कार्य-विवरण

मध्य प्रदेश के ४३ जिलो मे से अभी २२ जिलो म आचार्यकुल के गठन की सूचनाएँ मिली है जिनमें सदस्यता शुल्क का अशदान कुल १० जिलों से ही प्राप्त हुआ है। विचार गोष्ठियाँ व्याख्यान, शिक्षक-पालक सम्पर्क तथा साहित्य प्रकाशन के काम की जानकारी प्राप्त हुई है। अभी काम वग नही पकड पा रहा है।

चर्चा होकर तय हुआ कि एक क्षत्र लेकर आचार्यकुल की दृष्टि से कुछ सघन काम हो जिसका व्यापक असर पूरे राज्य पर पड। इस दृष्टि से ग्वालियर मे हाल ही मे घटित हृदय परिवर्तन की अभूतपूव घटना के सन्दभ म ग्वालियर सम्भाग के ६ जिलो म काम करने का तय हुआ। इसके लिए सम्पर्क की दृष्टि से पूरे समय का या आशिक समय का एक कार्यकर्ता आगामी ६ मास के लिए मध्य प्रदेश सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष से चर्चा करके १०० रु० मासिक की सीमा मे रख लिया जाय।

यह भी तय हुआ कि तदर्थ समिति की बैठको मे अपवादस्वरूप केन्द्रीय आचार्यकुल की तरह मार्ग-व्यय देने की व्यवस्था रखी जाय। आगामी बैठक अक्तूबर मे ग्वालियर मे बुलायी जाय।

२२ जिलो म स्थापित आचार्यकुलो के काम को सुव्यवस्थित करने के साथ साथ शेष जिलो मे भी पूरा प्रयत्न किया जाय और अक्तूबर मे आयोजित बैठक म सभी जिला सयोजको को आमन्त्रित किया जाय और उस समय सबकी राय लेकर तदर्थ समिति को भग कर आचार्यकुल के विधान के अनुसार जिलो के सयोजको का प्रादेशिक आचार्यकुल गठित हो।

प्रकाशन

'नई राष्ट्र निर्माण' नाम से ८ पृष्ठों का बुलेटिन अभी तक एक-दो सुरुचि पूर्ण विज्ञापना के आधार पर निकल रहा है जिसका कोई आर्थिक बोझ यद्यपि मध्य प्रदेश आचार्यकुल के ऊपर नहीं है फिर भी व्यापक प्रसार की दृष्टि से वह सामग्री एक परिशिष्ट के रूप म बनाकर शताब्दी सन्देश इन्दौर का भेज दिया जाया करे तो वह माह मे किसी अक के साथ सभी के पास जा सकती है।

मैं आचार्य को ब्रह्मा की दृष्टि से देखता हूँ

जिला आचार्यकुल ग्वालियर के तत्वावधान म स्थानीय बहुद्देशीय उ० मा० वि० गोरखी के शिक्षक-परिवार को सम्बोधित करते हुए उत्तर प्रदेश सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष एव चम्बल घाटी शान्ति मिशन के उपाध्यक्ष स्वामी कृष्णानन्द ने कहा कि मानव-सृष्टि के सृजन का आरम्भ आचार्य के द्वारा ही किया गया और मैं हर आचार्य को ब्रह्मा की दृष्टि से ही देखता हूँ चाहे वह प्राथमिक विद्यालय मे पढाता हो और चाहे विश्वविद्यालय म। उसे स्वतत्र विचारधारा मुक्त हृदय का होना चाहिए जिस तरह न्यायाधीश को स्वतत्रता है कि वह सरकार के खिलाफ भी निर्णय दे सकता है उसी तरह न्यायपालिका की भाँति शिक्षा विभाग भी मुक्त होना चाहिए तभी शिक्षा में तेज जायेगा।

आपने कहा कि शिक्षा मे श्रम की प्रतिष्ठा अनिवार्य रूप से रहनी चाहिए मगर जिनके पास श्रम होना चाहिए उनके पास श्रम करने वालों जैसी हालत है जिनम आपस मे भी कोई भेद नही है। देश और समाज के निर्माण का दायित्व शिक्षक वर्ग पर है उन्ह केवल विद्यालय म ही नही बल्कि अपने दैनिक जीवन मे हर स्थान पर आचार्यवान होना चाहिए।

कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे सर्वोदय विचारक और शान्ति मिशन के वरिष्ठ सदस्य श्री लल्लू दद्दा ने अनेक स्त्रियो और युवको के शोषण की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि समाज के इन तीनो वर्गों की शक्ति का जब सम्यक उपयोग होगा तभी समाज की सुरक्षा और समृद्धि सम्भव है।

आचार्यकुल के राष्ट्रीय राज्य स्तर और जिला स्तर के गठन तथा कार्यों का परिचय देते हुए प्रो० गुरुशरण ने कहा कि आज जबकि देश म अनैतिकता है भ्रष्टाचार और बचत आदि की बात की जाती है तो ग्वालियर क्षेत्र से हृदय-परिवर्तन की हवा की शुरुआत हुई है। अब सभी वर्गों के व्यक्तियो को नैतिकता के पुनरुत्थान म अपना योगदान देकर इस क्षेत्र की प्रतिष्ठा बढानी चाहिए।

कार्यक्रम के आरम्भ म विद्यालय के प्राचार्य श्री वेदप्रकाश सक्सेना ने अतिथियों का परिचय दिया और अन्त मे विद्यालय के व्याख्याता श्री वशिष्ठ ने आभार प्रकट किया।

सम्पादक मण्डल
श्री धीरेन्द्र मजूमदार प्रधान सम्पादक
श्री वशीधर श्रीवास्तव
आचार्य राममूर्ति

वर्ष २०
अंक १२
मूल्य ५० पैसे

अनुक्रम

जुलाई, '७२

•

निवेदन

• 'नयी तालीम' का वर्ष अगस्त से आरम्भ होता है।
• 'नयी तालीम' का वार्षिक चन्दा छ रुपये हैं और एक अक का ५० पैसे।
• पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक अपनी ग्राहक-सख्या का उल्लेख अवश्य करें।
• रचनाओ म व्यक्त विचारो की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होती है।

श्री श्रीकृष्णदत्त भट्ट, द्वारा सर्व सेवा सघ की ओर से प्रकाशित,
तथा अनुपम प्रेस दुर्गाघाट वाराणसी मे मुद्रित।

नयी तालीम : जुलाई, '७२
पहिले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त
लाइसेंस नं० ४६ रजि० सं० एल० १७२३

आवरण मुद्रण [illegible] प्रेस मानमन्दिर वाराणसी-१